# प्रकाशकीय

पूज्य वर्णी जी द्वारा स्वय लिखित मेरी जीवन गाथा प्रथम भाग को प्रकाशित हुए काफी समय हो गया है। इस वर्ष उसकी द्वितीय त्रावृत्ति भी प्रकाशित हो गई है। इसे पूज्य वर्णी जी ने त्रपने जीवनवृत्तके साथ अनेक रोचक और ह्दयग्राही घटनाओं, सामाजिक प्रवृत्तियों और धर्मोपदेशसे समुद्ध बनाया है। पूज्य वर्णा जीकी कलममे ऐसा कुछ त्राकर्षण है कि जो भी पाठक इसे पढ़ता है उसकी त्रात्मा उसे पढ़ते हुए तलमला उठती है। वह वीर स० २४७५ में प्रकाशित हुई थी इसलिए स्वभावतः उसमें उसके पूर्व तक का ही इहवृत्त सकलित हो सका है। उसे समाप्त करनेके वाद प्रत्येक पाठककी इंच्छा होती थी कि इसके स्रागेकी जीवनी भी यदि इसी प्रकार संकलित होकर प्रकाशित हो जाय तो जनताका वडा उपकार हो। स्रानेक वार पूज्य वर्णी जीके समद्य यह प्रस्ताव रखा भी गया किन्तु सफलता न मिली। सौभाग्यकी वात है कि पिछुले वर्प जयन्तीके समय जब हम लोगोंने पुनः यह प्रश्न उठाया श्रौर पृ्ज्य वर्णा जीसे प्रार्थना की तो उन्होंने कहा भैया! उसमें क्या धरा है ? फिर भी यदि ऋाप लोग नहीं मानते हो तो हमने जो प्रत्येक वर्ष की डायरियाँ त्रादि लिखी हैं उनमे त्रव तककी सब मुख्य घटनाएँ लिपिण्ड हैं, ग्राप लोग चाहो तो उनके ग्राधारसे यह कार्य हो नक्ता है। सबनो पूज्य वर्णी जी की यह सम्मति जानकर वड़ी प्रसन्नता हुई। तत्काल जो डायरियाँ या दूमरी सामग्री ईमरीने थी वे वहाँसे ली गर्द श्रौर जो श्री गरोशप्रसाट वर्णी जैन प्रन्थमालाके कार्यालयमें थी वे वहाँसे ली गई त्रौर सबको एकत्रित करके श्री विपायाँ नरेन्द्रसमार जीके हाथ सागर भी प० पनालाल जी नाहित्याचार्रके पान पहुँचावी गई। नेरी जीवन गाभा प्रथम भागको पंर पतालाल जी मारित्याचार्य

ने ही अन्तिम रूप दिया था इसलिए यही सोचा गया कि इस कार्यको भी वे ही उत्तम रीतिसे निभा सकेंगे। पहले तो परिडत जी ने वर्णी प्रन्थमाला कार्यालयको यह लिखा कि त्रानकल हमें विल्कल त्रावकाश नहीं है, गर्मीके दिनोंमे हम यह कार्य कर सकेंगे। किन्तु जब उन्हें यह कार्य शीघ ही करनेकी प्रेरणा की गई तो उन्होंने सागर विद्यालयसे प्रतिदिन कुछ समयके लिए अवकाश ले लिया और अपनी एवजमे दूसरे आदमीको नियुक्त कर दिया। प्रसन्नता है कि उन्होंने उस समयके भीतर वड़ी लग्नसे इसे संकलित कर दिया । इसके वाद परिडत जी उक्त सब सामग्री लेकर ईसरी गये और पुच्य वर्णी जीके समज्ञ उसका पाठ किया। कुल सामग्री पुज्य वर्गी जीके लिखानका संकलन मात्र तो है ही इसलिए उसमें थोडे बहुत हेर-फेरकें सिवा ऋधिक कुछ भी सशोधन नहीं करना पडा। वहीं मेरी जीवन गाथाका यह उत्तरार्ध है जिसे श्री गर्णेशप्रसाट वर्णी जैन प्रन्थमाला वारागासीकी त्रोर से प्रकाशित करते हुए हम प्रसन्नताका श्रनुभव करते हैं I परिडत जी ने मनोयोग पूर्वक इस कार्यको सम्पन्न किया इसके लिए तो हम उनके श्रामारी हैं ही। साथ ही उन्होंने रॉची श्रौर खरखरी जाकर इस भागकी करीव ८०० प्रतियोंके प्रकाशन खर्च का भार वहन करनेके लिए प्रवन्ध कर दिया इसके लिए हम उनके श्रौर भी विशेष श्राभारी हैं। जिन महानुभावोंने प्रतियाँ लेना स्वीकार किया उनकी नामावलि इस प्रकार है—

१. श्रीमान् लाला फीरोजीलाल जी सा॰ दिल्ली	५०० प्रति
२. रायवहादुर सेठ हर्षचन्द्र जी सा० रॉची	२०० ,,
३. दानंबीर स्वर्गीय सेठ चाँदमल जी पॉड्या	1
राँची वालोंकी धर्मपत्नी गुलावीदेवी जी	२५० प्रति
४. श्रीमान् वावृ शिखरचन्द ची सा० खरखरी	२५० ,,
५ श्रीमान् सेठ जगन्नाय जी पाँड्या कोडरमा	₹00 yy ·
६. श्रीमान् सेठ विमलप्रसाद जी खंरखरी	१००,,

श्री रामप्यांगी बार्ड नाहुद्रन एवनिंग हाउस न० ५२ २५ ,,
 श्री बहिन कप्रीटेबी गया (चन्देका)
 इनमेंने बुछ महानुभावोका रुपया पेरागी भी छा गया है। इन सबके इन उदार नहयोग के लिए हम उनके भी प्रत्यन्त छाभारी हैं।

नेगे जीवन गाथा प्रथम भागके समान यह भाग भी ग्रत्यन्त रोचक श्राग श्राक्षणंक बन गया है। इसमें तत्त्वज्ञानकी विशेष प्रचुरता ही उसमी खान विशेषता है। पृष्य वर्णा जोका जीवन प्रारम्भसे लेकर श्रव नक किन प्रकार व्यतीत हुश्रा, उनकी मफलताकी कुड़ी क्या है श्रोर उनकी इस जीवन यात्रासे समाज श्रोर देश किस प्रकार लाभान्तित हुश्रा श्राटि विविध प्रश्नोंका ममुचित उत्तर प्राप्त करनेके लिए तथा श्राग्ने जीवनको कार्यशील श्रोर प्रामाणिक बनानेके लिए प्रत्येक गृहस्थ-को नो मेरी जीवन गाथाके दोनो भागोंका स्वाध्याय करना ही चाहिए। जो वर्तमानमे त्यागी होकर त्यागी जीवन या प्रतिमा जीवन व्यतीत कर रहे हैं उन्हें भी श्रापने जीवनको कर्तव्यशील श्रोर मर्यादानुक्त बनानेके लिए इसके दोनों भागोंका स्वाध्याय करना चाहिए।

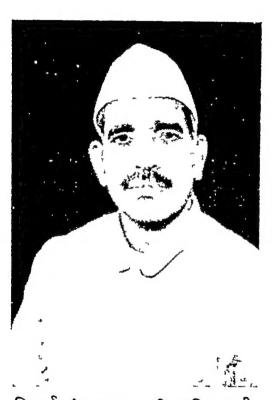
टम कालमे जैन समाजके निर्माता जो भी महापुरुप हो गये हैं, या हैं उनमें पृष्य वर्णा जी प्रमुख हैं। सस्कृत विद्याके प्रचारमें तो इनका प्रमुख हाथ रहा ही हैं। रूढिचुस्त जनताको उसके वन्धनसे मुक्त करनेमें भी इन्होंने ऋपूर्व योग दिया है। ये ऋपनी स्कृतिं, प्रेरणा, सह्दयता, निस्पृहता ऋौर परोपकार वृक्तिके कारण जन-जनके मानसमें समाये हुए हैं। हमारी कामना है कि पृष्य वर्णी जी चिर काल तक हम सबको मार्ग दर्शन करते रहे।

श्रद्धावनत

फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री वंशीधर व्याकरणाचार्ये अन्थमाला सम्पादक और नियामक मत्री श्री ग०वर्णी जैन य०वाराणसी

#### अपनी वात

पिछले वर्प श्री पं॰ फूलचन्द्र जी शास्त्री वर्णा जयन्ती पर ईसरी गये थे। भाई नरेन्द्रकुमार जी, जो श्रपनेको विद्यार्थी लिखते हैं पर श्रव विद्यार्थीं नहीं एम॰ ए॰ ग्रौर साहित्याचार्य हैं, भी गये थे। वहाँ से लौटने पर पिएडतजीने पूज्य वर्णीजीकी पुरानी डायरियों तथा लेख त्र्यादिके रजिस्टरोका एक वडा वस्ता नरेन्द्रकुमारजीके हाथ हमारे पास भिजाया श्रौर साथ ही उनका डाकसे एक पत्र मिला जिसमे लिखा था कि मैं ईसरीसे लौट रहा हूँ । जीवनगाथा प्रथम मागके स्रागेकी गाथा इन डायरियो मे पूज्य वर्णाजीने लिखी है। उसे त्राप शीघ्र ही व्यवस्थित कर दें । नरेन्द्रकुमारजी स्वयं तो सागर नहीं आये पर उनका भी उक्त सामग्रीके साथ इसी त्र्याशयका एक पत्र मिला। इनसे इस पुरय कार्यके लिये प्रेरणा पा मुक्ते बहुत हर्ष हुन्ना । पर प्रातः ५ वजेसे लेकर रात्रिके १० वजे तक मेरी जो दिनचर्या है उसमें कुछ लिखनेके लिये समय निकालना कठिन ही था। मैने वनारस लिखा कि 'यह काम ग्रीष्मावकाशमे हो पावेगा।' ग्रीष्मावकाशके लिये पर्याप्त देरी थी श्रौर पुज्य वावाजीके स्वास्थ्यके जो समाचार श्रा रहे थे उनसे प्रेरणा यही मिलती थी कि यह काम जल्दीसे जल्दी पूर्ण किया जाय। अन्तमे जन कुछ उपाय न दिखा तब विद्यालयसे मैंने प्रतिदिन टो घटेकी सुविधा मागी और विद्यालयके अधिकारियोंने मुफे सुविधा दे दी। फलस्वरूप मेरी शक्ति इस काममे लग गई और ३ माहमे यह महान् कार्य पूर्ण हो गया । पूर्ण होते ही मे पूज्य वावाजीके पास ईसरी गया और उन्हें त्र्याद्योपान्त सव सामग्री श्रवण करा दी। त्र्यावश्यक हेर-फेरके वाट पार्डु लिपिको अन्तिम रूप मिल गया और उसे प्रकाशनके लिये



विद्वद्वर्य पं॰ पत्रालाल जी साहित्याचार्य जीवनगाथाके सफल संपादक ['मू॰ पृ॰ ४]

श्रीवर्गी यन्थमालाको सौप दिया । प्रसन्नता है कि उसका प्रकाशन पूर्ण हो गया है।

मेरो जीवन-गाथाका पूर्व भाग लोकोत्तर घटनात्रोसे भरा है तो यह दूसरा भाग लोकोत्तर उपदेशोंसे भरा है।, इस भागमे कितनी ही सामाजिक रीति रिवाजो पर चर्चा छाई है और खुलकर उनपर विचार हुआ है। आध्यात्मिक प्रवचनोंका तो मानों यह भराडार ही है। इसको पढ़नेसे पाठककी अन्तरात्मा द्रवीभूत हो जाती है। इस युगमे पृष्य वर्णाजीके समान निर्मल सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न अटल श्रद्धानी एवं समाजको गतिविधिमे पूर्ण जागरूक रहनेवाला व्यक्ति मुलभ नहीं है। इसलिये श्री जिनेन्द्र भगवानसे हमारी प्रार्थना है कि पृष्य वर्णांजी चिरकाल तक जन-जनको सच्चा पथ प्रदर्शित करते रहें।

सागर १६–१–१६६० श्रद्धावनत पन्नालाल जैन

# विषय-सूची

\$	मुरारते त्र्यागरा	
ą	मथुरामे जैन संघका श्रिधिवेशन	8
3	त्रलीगढ्का वैभव	9.
Y	मेरठकी <b>ग्रोर</b>	3,
પૂ	मेरठ	80
8	खतौली	પૂર
હ	हस्तिनागपुर	द्
5	मुजफ्फरनगर	६७
3	चहारनपुर-सरसावा	હર
१०	दिल्लीकी स्रोर (१)	3ల
<b>१</b> १	विल्लीकी स्रोर (२)	ەع
१२	दिल्लीका ऐतिहासिक महत्त्व श्रौर राजा हरसुखराय	१००
१३	दिल्लीका परिकर	१०७
१४	हरिजन मन्टिर प्रवेश	११५
१५	पावन दशलच्या पर्व	१२३
१६	नम्र निवेदन	१२७
१७	दिल्लीके शेष दिन	१३२
र्द	दिल्लीसे हस्तिनागपुर	१४५
3.8	इटावाकी ऋार	१४६
२०	इरावा	१६२
२१	इटावाके ग्रञ्जलमें	१६८
२२	त्रप्टान्टिका पर्व	१७२

## [ v ]

५३	उदानीनाश्रम त्रौर सस्कृत विद्यालयका उपक्रम	१७६
२४	जैनदर्शनके लेख पर	१७८
<del>२</del> ५	श्रक्य नृतीया	१८६
<del>२</del> ृह्	विद्यालयका उद्घाटन श्रोर विद्वत्परिपद्की बैठक	328
२७	त्रानेक नमस्यात्रोंका इत सीशिद्या	१६२
२८	इटावामे चातुमांसका निरचय	१६४
३६	सिद्धचक्रविधान	१९७
30	रज्ञावन्थन श्रौर पर्यूपण	२००
३१	इटावासे प्रस्थान	२०६
35	फिरोजाबाटकी ग्रोर	२१२
ŝз	फिरोजाबादमें विविध समारोह	२२५
38	स्वर्णगिरिकी ग्रोर	२३८
રૂપ્	वृच्त्रासागरमें ग्रीप्मकाल	२५१
ર્ફદ્	श्रुतपञ्चमी	२६१
३७	वरुत्रामागरसे प्रस्थान	२६६
३्⊏	ललितपुरकी त्र्योर	२७२
38	चेत्रपालमें चातुर्मास	२⊏१
४०	विविध विद्वानोका समागम	२८७
83	इएटर कालेजका उपक्रम	३३५
४२	तीत्र वेदना	338
४३	पपौरा त्र्यौर त्रहार चेत्र	३०४
88	डोणगिरि त्र्यौर रेशन्दीगिर	३११
જપ્	रेशन्दीगिरिमें पञ्चकल्याग्णक	३१६
४६		३२४
४७		३२८
ሄፍ	पर्व प्रवचनावली	३३७

#### [ 5 ]

38	विचारकस्	४११
५०	स्वराज्य मिला पर सुराज्य नहीं	४१६
५१	गिरिराजके लिए प्रस्थान	· ४१७
પ્રર	कटनी	४२१
पू३	वनारसकी स्रोर	४२६
ጟሄ	बनारस श्रौर उसके श्रञ्जलमें	४३८
પૂપ્	पार्श्वप्रमुकी त्र्योर	४४२
५्६	गयामे चातुर्मास निश्चय	88≃
५७	स्मृतिकी रेखार्ये	४५६
५८	विचार प्रवाह	ያ <b>ሂ</b> ⊏
3,2	लघुयात्रा	४६३
६०	भारहीनो वभूव	४६६
६१	राष्ट्रपतिसे साचात्कार	४७२
६२	स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्णजयन्ती महोत्सव	४७०
६३	<b>त्र्याचार्य निमसागरजी महाराजका समाधिमर</b> ण	<b>አ</b> ፅጺ
६४	सागर विद्यालयका स्वर्णजयन्ती महोत्सव	80=
६५	श्री चु॰ सम्भवसागरजीका समाधिमरण	४८१
६६	हजारीबागका ग्रीष्मकाल	४८३
६७	साहुजीकी दान घोषणा	४८५

# मेरी जीवन गाथा

[द्वितीय भाग]

पूज्य वर्षाींत्रीके शरीरकी वर्तमान अवस्था

} of ]

#### मुरार से आगरा

स सत्यविद्यातपसा प्रणायक समग्रधीरुग्रकुलाम्बराशुमान्। मया सदा पार्विजनः प्रणम्यते विलीर्नामध्यापथदृष्टिविभ्रमः॥

इसी ग्वालियर में भट्टारक जी का मन्दिर हैं। मन्दिरमें प्राचीन शास्त्र भण्डार है परन्तु जो श्रिधकारी भट्टारक जी का शिष्य हैं वह किसीको पुस्तक नहीं दिखाता तथा मनमानी गाली देता है। इसका मूल कारण साक्तर नहीं होना है। पासमें जो कुछ द्रव्य हैं उसीसे निर्वाह करता है। श्रव जैन-जनता भी साक्तर— विवेकवती हो गई है। वह श्रव श्रनक्तरविपयोंका श्रादर नहीं करती। हमने वहुत प्रयास किया परन्तु श्रन्तमें निराश श्राना पड़ा। हृद्यमें कुछ दुःख भी हुश्रा परन्तु मनमें यह विचार श्राने से वह दूर हो गया कि संसारमें मनुष्योंकी प्रवृत्ति स्वेच्छानुसार होती हैं श्रीर वे श्रन्यको श्रपने रूप परिण्माया चाहते हैं जब कि वे परिण्मते नहीं। इस दशामें महा दु खके पात्र होते हैं। मनुष्य यदि यह मानना छोड़ देवे कि पदार्थोंका परिण्मन हम श्रपने श्रनुकूल कर सकते हैं तो दुःखी होनेकी कुछ भी बात न रहे। श्रस्तु।

अगहन वदी न संवत् २००५ को एक वजे ग्वालियरसे चलकर ४ मील पर आंगले साहवकी कोठीसे ठहर गये। कोठी राजमहलके समान जान पड़ती है। यहाँ धमेध्यानके योग्य निर्जन स्थान बहुत हैं। जल यहाँ का अत्यन्त मधुर है, वायु स्वच्छ है तथा बाह्यमे त्रस जीवोंकी संख्या विपुल नहीं है। मकानमें ऋतु के आनुकूल सव सुविधा है। जब बनी होगी तब उसका स्वरूप अति निर्मल होगा परन्तु श्रव मालिकके विना शून्य हो रही है। ऋषि गर्णोंके योग्य है परन्तु इस कालमे वे महात्मा हैं नहीं। यहाँ से ६ मील चलकर वामौरा श्रा गये श्रौर वामौरा से ४ मील चलकर नृरावाद श्रा गये। यहाँ पर भी श्रालीशान कोठी थी, उसी मे ठहर गये।

श्रगहन वदी १२ संवत् २००५ को मोरेनाके श्रव्रज्ञलमे पहुँचे । पहुँचते ही एक दम स्वर्गीय पं॰ गोपालदास जी का स्मरण श्रा गया। यह वही महापुरुप हैं जिनके श्रांशिक विभवसे श्राज जैन जनता मे जैन सिद्धान्तका विकास दृश्य हो रहा है। जब मोरेन के समीप पहुँचे तव श्रीमान् पं० मक्खनलाल जी साहव जो कि जैन सिद्धान्त विद्यालयके प्रधान हैं छात्रवर्गके साथ आये। श्रापने वहुत ही प्रेमसे नगरमे प्रवेश कराया श्रीर सिद्धान्त विद्या-लयके भवनमें ठहराया। सुख पूर्वक रात्रि वीत गई। प्रातःकाल श्री जिनेद्र भगवान्के दर्शन करनेके लिये जैन मन्दिरमे गये। दुर्शन कर वहुत ही विशुद्धता हुई। इतने मे पं॰ मक्खनलाल जी आ गये और कहने लगे कि अभिषेक देखने चिलये। हम लोग पण्डित जी के साथ विद्यालयके भवनके ऊपर जहाँ जिन चैत्यालय था गरे। वहाँ पर एक प्रतिविम्बको चौकीके ऊपर विराजमान किया श्रीर फिर पण्डित जी ने पाठ प्रारम्भ किया। पञ्चामृताभिषेक किया। यह विलच्च एता यहाँ ही देखनेमे आई कि जलाभिषेक के साथ-साथ भगवान्के शिर ऊपर पुष्पोंका भी अभिपेक कराया गया। पुष्पोंका शोधन प्रायः नहीं देखनेमे आया। हमने पण्डित जीसे कुछ नहीं कहा। उनकी जो उच्छा थी वह उन्होंने किया। श्रनन्तर नीचे प्रवचन हुआ। यहाँकी जनताका वहुभाग इस पृजन प्रक्रियाको नहीं चाहता यह वात प्रसङ्ग वश लिख दी।

प्रवचनके श्रनन्तर जब चर्याके लिये निकले तब पण्डित जीके घर पर भोजन हुआ। पण्डित जी ने बहुत हर्पके साथ श्रातिथ्य सत्कार किया तथा सोलापुरकी मुद्रित भगवती श्राराधना की एक प्रति स्वाध्यायके अर्थ प्रदान की। यहाँ पर सिद्धान्त विद्यालय वहुत प्राचीन संस्था है। इसकी स्थापना स्वर्गीय श्री गुरु गोपालदास जीने की थी। इसके द्वारा वहुत निष्णात विद्वान निकले। जिनने भारत वर्ष भरमे कठिनसे कठिन सिद्धान्त शास्त्रोको सरल रूपसे पठन क्रममे ला दिया। १ वजे दिनसे सार्वजनिक सभा थी, प्रसंग वश यहाँ पर मन्दिरके निमित्तसे लोगोंमे जो परस्पर मनोमालिन्य है उसको मिटानेके लिये परिश्रम किया परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। श्रागले दिन भी प्रवचनके श्रानन्तर संगठनकी बात हुई परन्तु कोई तत्त्व नहीं निकला। जब तक हृद्यमें कषाय रूप विषके कण विद्यमान हैं तब तक निर्मलताका श्राना दुर्भर है। मैं तो यह विद्यमान हैं तब तक निर्मलताका श्राना दुर्भर है। मैं तो यह विद्यम कर तटस्थ रह गया कि संसारकी दशा जो है वही रहेगी, जिन्हे श्रात्मकल्याण करना हो वे इस चिन्ता को त्यागें, कल्याणके पास स्वयं पहुँच जावेंगे।

मोरेनामे ३ दिन रहनेके वाद धौलपुरकी छोर चल दिये। मार्गमे एक प्रामके वाह्य धर्मशाला थी उसमें ठहर गये। धर्मशाला का जो स्वामी था उसने सर्व प्रकारसे सत्कार किया। उसकी छन्तरङ्ग भावना भोजन करानेकी थी परन्तु यहांकी प्रक्रिया तो उसके हाथका पानी पीना भी छागम विरुद्ध मानती है। यद्यपि छागम यही तो कहता है कि जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा हो छोर जो शुद्धता पूर्वक भोजन बनावे ऐसे त्रिवर्णका भोजन मुनि भी कर सकता है। अब विचारो जब उसकी रुचि छापको भोजन कराने की हुई तब छापके धर्ममें स्वयं श्रद्धा हो गई। जब श्रद्धा छापमे हो गई तब जो प्रक्रिया छाप बताछोगे उसी प्रक्रियासे वह छनायास छापके छनुकूल भोजन बना देगा। परन्तु यहां तो रूढिवाद की इतनी महिमा है कि जैनधर्मका प्रचार होना कठिन है। छस्तु,

फिर भी उस धर्मशालाके स्वामीने संघके लोगोंको दुग्ध दान दिया, ५ सेर चावल दाल तथा एक भेली गुड़ की दान की। साथ ही बहुत ही शिष्टाचार का वर्ताव किया।

हम लोग जिस अभिप्रायवाले हैं उसीको उपयोगमे लानेका प्रयत करते हैं। हमने धर्मको निजकी पैतृक सम्पत्ति समम रक्खी है। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। वाह्यमें आचरण ऐसा होना चाहिए जो उसमे सह।यक हों। यही कारण है कि जो मानव मदा, मांस, मधुका त्याग कर चुकता है वही चरणानुयोगमें वर्णित धर्मके पालनका अधिकारी होता है। इसका मूल हेतु यही है कि मद्यपायी मनुष्य उन्मत्त हो जाता है। उन्मत्त होनेसे उसका मन विचिप्त हो जाता है। जिसका मन विचिप्त हो गया वह धर्मको भूल जाता है। जो धर्मको भूल जाता है वह निःशङ्क हिसादि पापोंमे श्रनगैल प्रवृत्ति करता है। इसी प्रकार मांसादिकी प्रवृत्तिमें भी अनर्थ परम्परा जान लेना । आजकल हम लोग उपदेश देकर जनताका सुधार करनेकी चेष्टा नहीं करते। केवल, 'यह लोग पतित हैं' इसी प्रकारकी कथा कर संतोप कर लेते हैं। श्रीर की वात जाने दो हम को ५० वर्ष हो गये, प्रतिदिन यही कथा करते करते समय वीत गया परन्तु एक भी मनुष्यको सुमार्ग पर नहीं ला सके। कहाँ तक लिखें अयवा अन्यकी कथा क्या कहूं में स्वयं अपनी आत्माको सुमार्ग पर नहीं ला सका। इसका अर्थ यह नहीं कि वाह्य श्राचरणमे श्रुटि की हो किन्तु जो श्रन्तरङ्गकी पवित्रता पदके योग्य है उसकी पूर्ति नहीं कर सका। तात्त्विक मर्म तो यही है कि अन्तरङ्गमें मूच्छी न हो। जब इसके ऊपर दृष्टि देते हैं तव मनमें यही त्राता है कि इस सांसारिक प्रशंसा को त्याग आत्मदृष्टि करो यही सत्य मार्ग है।

धर्मशालासे चलकर एक छोटे श्राममे पहुंच गया। इस त्राममें ठहरनेका कोई स्थान न था तब वहाँ जो गृहस्थ था उसने अपने निवासको खाली कर दिया और कहा कि सानन्द ठहर जाइये, कोई संकोच न करिये तथा दुग्धादि पान करिये। हमने कहा हम लोग रात्रिको दुग्धादि पान नहीं करते। यह सुनकर बह बहुत प्रसन्न हुन्ना । सानन्द ठहराया, धान्यका घास विद्याने को दिया। सुखसे रात्रि बिताई। यहाँसे ६ मील चलकर एक श्राममें ठहर गये। यहाँका कूप ७० हाथ गहरा था, पानी श्रति स्वादिष्ट था। यहाँसे भोजन कर चार मील चलनेके वाद चम्बल नदीके तट पर श्रागये। यहाँ श्रीमान् प्यारेलाल जी भगतके श्रानेसे वहुत ही प्रमोद हुन्रा। श्रापसे संलाप करते करते ४३ वजे धौलपुर पहुँच गये। स्रागरासे सेठ मटरूमल जी रईस भी स्रा गये। शिष्टाचारसे सम्मेलन हुआ। मन्दिरमें प्रवचन हुआ जो जनता थी वह आ गई। मनुप्यों की प्रवृत्ति सरल है। जैनी हैं यह अवश्य है परन्तु प्रामवासी हैं, श्रतः जैनधर्मका स्त्रहा नहीं सममते। यहाँके राजा वहुत ही सज्जन हैं। वन में जाते हैं श्रीर रोटी श्रादि लेकर पशुर्श्राको खिलाते हैं। राजाके पहुँचने पर पशु स्वयमेव उनके पास आ जाते हैं। देखो दयाकी महिमा कि पशु भी श्रपने हितकारीको समम लेते हैं। यदि हम लोग द्या करना सीख लें तो करूसे करू जीव भी शान्त हो सकता है। परन्तु हमने निजको महान् मान नाना अनर्थ करनेका ही श्रभ्यास कर रक्खा है। पशु कितनी ही दुष्ट प्रकृतिका होगा परन्तु श्रपने पुत्रकी रत्ताके लिये प्राण देनेमें पीछा नहीं करेगा। मनुप्योंमे यह वात नहीं देखी जाती। यदि यह मनुष्य श्रपने स्वरूपका श्रवलोकन करे तो पशुत्रोंकी अपेचा श्रनन्त प्राणियों का कल्याण कर सकता है। मोचमार्गका उदय इसी मनुष्य

पर्यायमे होता है, ऋतः जिन्हे मनुष्यताकी रचा करना है उन्हें ऋनेक उपद्रवोंको त्याग केवल मोचमार्गकी ऋोर लच्य देना चाहिये और जो समय गल्पवादमे लाते हैं उसे धर्म कार्योंमे लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। यहाँके राजाकी प्रवृत्ति देख हमको द्यावा पाठ पढ़ना चाहिये।

धौलपुरसे ५ मील चलकर विरौदा पर शयन किया। भगत जी ने रात्रिको उपदेश दिया। जनता अच्छी थी। यदि कोई परापकारी धर्मात्मा हो तो नगरोंकी अपेचा ग्रामोंमे अधिक जीवोंको मोचमार्गका लाभ हो सकता है। परन्तु जब दृष्टि स्वपर उपकार की हो तभी यह काम वन सकता है। अब मेरी शारीरिक शक्ति अतिनीए हो गई है। शारीरिक शक्तिकी नीएतासे वाच-निक कला भी न्यून हो गई है, अतएव जनताको प्रसन्न करना कठिन हैं। संसारमे वहीं मनुष्य जगत्का उपकार कर सकता है जो भीतरसे निर्मल हो। जैसे जब सूर्य मेघ पटलसे आच्छादित रहता है तब जगत् का उपकार नहीं कर सकता। उसका उपकार यही है कि वह पदार्थोंको प्रकाशित करता है श्रीर यह मनुष्य उन पदार्थीमे से अपने योग्य पदार्थोंको चुन उनसे अपनी इच्छाएं पूर्ण करता है। सूर्यके समान ही वक्ताकी आत्मा जब तक कपायके पटलसे आच्छादित रहती है तव तक वह जगत्का उपकार नहीं कर सकता। यहांसे चलकर मागरील तथा एक अन्य प्राममे ठहरते हुए अगहन सुदी ५ को राजाखेड़ा पहुँच गये।

यहां पर श्री भगत प्यारेलाल जी के द्वारा स्थापित एक जैन विद्यालय है। भगत जी के सत्प्रयत्नसे इस विद्यालयका दो लाखका फण्ड है। श्री पं० नन्हेलाल जी इसके मुख्याध्यापक हैं। श्राप श्रीयुत महानुभाव पं० वंशीधर जी सिद्धान्तशास्त्रीके मुख्य शिष्योंमे प्रथमतम शिष्य हैं। श्रापकी पठन-पाठनशैली श्रत्यन्त प्रशस्त है। यहां पर कई जैन मंदिर हैं, अनेक गृह जैसवाल भाइयों के हैं। सर्व ही धर्म के प्रेमी हैं। बड़े प्रेमसे सबने प्रवचन सुना यथायोग्य नियम भी लिये। पाठशालाका उत्सव हुत्रा। उसमें यथाशक्ति दान दिया। जैनियोंमे दान देनेकी प्रक्रिया प्रायः उत्तम है। प्रत्येक कार्यमे दान देनेका प्रचार है किन्तु व्यवस्था नहीं। यदि व्यवस्था हो जावे तो धर्मके अनेक कार्य अनायास चल सकते हैं। यहाँ प्रत्येक व्यक्तिका नेतृत्व है—सब श्रपनेको नेता सममते हैं श्रीर अपने श्रभिपायके श्रनुरूप कार्य करनेका श्राग्रह करते हैं। यथार्थमे मनुष्य पर्याय पानेका फल यह है कि अपनेको सत्कर्ममें लगावे। सत्कर्मसे तात्पर्य यह है कि विषयेच्छाको त्यागे। विषय लिप्साने जगत्को श्रन्धा बना दिया। जगत्को श्रपनाना — श्रपना समभना ही श्रपने पातका कारण है। जन्मका पाना उसीका सार्थक है जो शान्तिसे वीते अन्यथा पशुवत् जीवन वधवन्धनका ही कारण है। मनुष्य त्र्रपने सुखके लिये परका श्राघात करता है परन्तु उसका इस प्रकारका व्यवहार महान् कष्टप्रद् है। संसारमे जिनको आत्महितकी कामना है उसे उचित है कि परकी समालोचना छोड़े। केवल आत्मामे जो विकार भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें त्यागे। परके उपदेशसे कुछ लाभ नहीं और न परको उपदेश देनेसे आत्मलाभ होता है। मोहकी भ्रान्ति छोड़ो।

राजाखेड़ामें •तीन दिन ठहरे । जैनियों के घर मिले । बड़े घ्रादरसे दिया । बीचमें दो दिन ठहरे । जैनियों के घर मिले । बड़े घ्रादरसे रक्खा तथा संघके मनुष्यों को भोजन दिया, श्रद्धापूर्वक धर्मका श्रवण किया । धर्मके पिपास जितने ग्रामीण जन होते हैं उतने नागरिक मनुष्य नहीं होते । देहातमे भोजन स्वच्छ तथा 'दुग्ध धी शुद्ध मिलता है । शाक बहुत स्वादिष्ट तथा पानी हवा सर्व ही उत्तम मिलते हैं । किन्तु शिचाकी टुटिसे वाचालताकी ट्रिट रहती

है। यदि एक दृष्टिसे देखा जावे तो वर्तमान शिचा उनमें न होनेसे उन लोगोंकी आर्षधर्म श्रद्धा है तथा स्त्रीसमाजमें भी इस्कूली और कालेजी शिक्षांके न होनेसे कार्य करनेकी कुशलता है। हाथसे पीसना, रोटी वनाना तथा अतिथिकों भोजन दान देने की प्रथा है। फिर भी शिक्षा देनेकी आवश्यकता तो है ही। यह शिचा ऐसी हो जिससे मनुष्यमें मनुष्यताका विकास आ जावे। यदि केवल धनोपार्जनकी ही शिचा भारतमें रही तो इतर देशों की तरह भारत भी पर को हड़पनेके प्रयत्नमें रहेगा और जिन व्यसनोंसे मुक्त होना चाहता है उनहीका पात्र हो जावेगा तथा भारतका जो सिद्धान्त था कि—

श्रयं परो निजो वेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

वह वालकों के हदयमें श्रिङ्कित हो जाता था श्रीर समय पा कर उसका पूण उपयोग भी होता था। श्रव तो वालकों के माँ वाप पहले ही गुरु जी से यह निवेदन कर देते हैं कि हमारे पुत्रको वह शिचा देना जिससे वह श्रानन्दसे दो रोटियाँ खा सके। जिस देशमें ऐसे विचार वालकों के पिताके हों वहाँ वालक विद्योपार्जन कर परोपकार निष्णात होंगे यह श्रसम्भव है। यहाँ पर मार्गमें जो श्राम मिले उनमें बहुतसे चित्रय तथा ब्राह्मण ऐसे मिले जो श्रपने को गोलापूरव कहते हैं। हमारे प्रान्तमें गोलापूरव जनधर्म ही पालते हैं परन्तु यहाँ सर्व गोलापूरव शिव, कृष्णा तथा रामके उपासक हैं। सभी लोगोंने सादर धर्मश्रवण किया किन्तु वर्तमानके व्यवहार उस तरह सीमित हैं कि किसीमें श्रन्यके साथ सहान तुभूति दिखानेकी चमता नहीं। इसी से सम्प्रदायवादकी वृद्धि हो रही है। उस प्रान्त में जैयवाल जैनी बहुत हैं, श्रन्य जातिवाले युद्ध कम हैं। यहाँ का जलवायु बहुत ही उत्तम है।

राजाखेड़ा से ६ मील चलकर एक नदी श्राई उसे पार कर निर्जन स्थानमें स्थित एक धर्भशालामे ठहर गये। स्थान बहुत रम्य तथा सुविधाजनक था। एक दहलान मे सर्वे समुदाय ठहर गया। पौष मास था, इससे सर्दी का प्रकोप था। रात्रिम निद्रा देवी न जाने कहाँ पलायमान हो गई ? प्रयत्न करने पर भी उसका दर्शन नहीं हुआ। अन्तरद्भकी मूच्छोंसे उसके अभावमें जो लाभ संयमी महानुभाव लेते हैं उसका रख्न भी हमारे पल्ले न पड़ा। प्रत्युत इसके विपरीत आर्तपरिणामोंका ही उदय रहा। कभी कभी अच्छे विचार भी आते थे परन्तु अधिक देर तक नहीं रहते थे। कभी कभी दिगम्बर मुद्राकी स्मृति त्राती थी त्रौर उससे यह शीतवाधा कुछ समयके लिये श्मशान वैराग्यका काम करती थी। यह देखते थे कि कव प्रातःकाल हो श्रीर इस संकटावस्थासे श्रपने को सुरिच्चित करें। इत्यादि कल्पनार्ट्योके त्रानन्तर प्रातःकाल त्रा ही गया। सामायिक कार्य समाप्त कर वहाँसे चल दिये। सूर्य की सुनहली धूप सर्वत्र फैल गई और उसकी हलकी ऊच्मा से कुछ संतोषका श्रनुभव हुआ। एक याममें पहुँच गये। यहाँ पर श्रावकों के घर भी थे। वहीं पर भोजन किया। सवने वहुत आग्रह किया कि एक दिन यहाँ ही निवास करिये। हम लोग भी तो मनुष्य हैं हम को भी हमारी वात वताना चाहिये। केवल ऊपरी वातों से सन्तोष करा कर श्राप लोगोंका यहाँसे गमन करना न्यायमार्गकी श्रव-हेलना करना है। हम श्रामीण हैं, सरल हें, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हम कुछ न समभते हों। हममें भी धर्मधारणकी योग्यता है। हाँ, हमने शिचा नहीं पाई। शिचासे तात्पर्य यह है कि स्कूल-कालेज तथा विद्यालयों मे पुस्तक द्वारा ज्ञान प्राप्त नहीं किया किन्तु वह ज्ञान, जिसके द्वारा यह श्रात्मा श्रपना पराया भेद जान कर पापोंसे वचती है तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंमे प्राष्ट्रत रूप

से विद्यमान रहता ही है। यदि वह ज्ञान हममे न होता तो हम श्रापको श्रपना साधु न मानते और न श्रापको श्राहार दानकी चेष्टा करते। हम यह जानते हैं कि श्राहार दानसे पुण्यवन्ध होता है, आत्मा में लोभ का निरास होता है और मार्गकी प्रभावना होती है। विना स्कूली शिचाके हमसे दया भी है, हिंसासे भय-भीत भी रहते हैं। भोजनादिमे निर्जीव अन्न पदार्थींका भन्तरा करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन वातोंमे हम लोग नागरिक मनुप्योंकी अपेक्षा न्यून नहीं हैं। केवल वाह्य आहम्वरोंकी अपेता उनसे जयन्य हैं। यहीं कारण है कि आप लोग उनके प्रलोभने मे श्रा कर घण्टों व्याख्यान देकर भी विराम नहीं लेते हैं परन्तु हम लोगों पर त्रापकी इतनी भी द्यादृष्टि नहीं होती कि थोड़ा भी समय प्रवचनमे लगा कर हमे सुमार्ग पर लानेकी चेष्टा करें। यह श्रापका दोष नहीं कालकी महिमा है। यदि तथ्य विचारसे इस पर आप परामर्श करेंगे तव हमारा भाव आपके हृद्यंगम होगा। यामों की अपेचा शहरों में न तो आपको अन्न ही उत्तम मिलता है श्रीर न जल ही। प्रथम तो जिनके द्वारा श्रापको भोजन मिलता है वे औरतें हाथसे आटा नहीं पीसतीं । वहुतोंके गृहमे तो पीसने की चकी ही नहीं। पानीकी भी यही दुर्दशा है। घीकी कथा ही छोड़िये। हाँ, यह अवश्य है कि शहरमे धन्यवाद श्रीर छछ श्रपील करने पर धन मिल जाता है जिससे वर्तमानमें संस्थाएँ चल रही हैं। परन्तु हमारा तो यह विश्वास है कि शहरमे जो धन मिलता है उसमें न्यायाजितका भाग न होनेसे उसका सदु-पयोग नहीं होता। यही कारण है कि समाजमें निरपेच धर्मका उद्योग करनेवाले वहुत ही अल्प देखे जाते हैं। अव आप लोगो की उच्छा जहाँ चाहे जाइये हमारा उदय ही हमारा कल्याण करेगा ।

प्रामके लोगोंका लम्बा व्याख्यान सुन हम हतप्रभ से रह गये कुछ भी उत्तर, देनेमे समर्थ नहीं हुए। यहांसे चल कर एक याममे सायंकाल पहुँच गये और प्रात काल ३ मील चल एक दूसरे त्राममे पहुँच गये। यहाँ पर एक ब्रह्मचारी जी रहते थे उन्हींने भोजनका प्रवन्ध किया। महती भिक्तके साथ संघको भोजन कराया। यहाँ पर आगरासे वहुतसे मनुष्य आगये। सामायिक करनेके अनन्तर सर्व जन समुदायने आगराके लिये प्रस्थान कर दिया। दो मील जानेके वाद सहस्रों मनुष्योंका समुदाय गाजे बाजेके साथ छीपीटोलाके लिये चला। बाजा बजानेवाले वाजामे मधुर मधुर गाना सुना रहे थे जिसको श्रवण कर मार्गका परिश्रम विस्मृत सा हो गया। समुदायके साथ छीपीटोलाकी धर्मशाला मे पहुँच गये। 🖁 घण्टा व्याख्यानमे गया । व्याख्यानमे यही अलाप था कि हम लोगोंका महान् भाग्य है जो आपका शुभागमन हमारे यहाँ हुआ। हमने भी शिष्टाचारके नाते जो कुछ बना वक्तव्य दिया। वक्तव्य में मुख्य बात यह थी कि-

मनुष्यभव पाना ऋति दुर्लभ है उसका सदुपयोग यही है कि निजको जानकर परका त्याग कर इस संसार बन्धनसे छूटनेका उपाय करना चाहिये। इसका मृल कारण संयम भाव है। यही तात्पर्य है कि सब ओरसे अपनेको हटा कर अपनेमें लीन हो जाना। यही संसारके विनाशका मृल है, अतः सबसे मोह त्यगो हम तो कोई वस्तु नहीं महापुरुषोंने भी तो यही मार्ग दिखाया है। महापुरुष वही है जो मोह-राग-द्वेष को निर्मू लित करनेका प्रयत्न करता है। राग द्वेषके अभावमे मृल कारण मोहका अन्त है। उसका अन्त करनेवाला ही सर्वपूज्य हो जाता है। पूज्यता अपूज्यता स्वाभाविक पर्याय नहीं किन्तु निमित्त पाकर आविभूत होती है। जहाँ मोहादिख्प आत्मपरिणित होती है वहीं अपूज्यताका ज्यवहार

होने लगता है श्रोर जहाँ इनका नाश होता है वहीं पूज्यताका व्यवहार होने लगता है। पूज्यता अपूज्यता किसी जाति विशेषवाले व्यक्तिकी नहीं होती। जहाँ पापो की निवृत्ति होकर आत्मश्रद्धा ही जाती है वहीं पुज्यता आ जाती है और जहाँ पापोंकी प्रवृत्ति होने लगती है वहीं अपूच्यताका व्यवहार होने लगता है। यद्यपि समस्त आत्मात्रोंमे निर्मल होनेकी योग्यता है तथापि अनादि कालसे पर पदार्थींका सम्बन्ध इस प्रकारका हो रहा है कि कुछ भी सुध बुध नहीं रहती। यह जीव निरन्तर शरीरके अनुकूल ही प्रवृत्ति करता है। त्र्याप लोगोंने वाजा वजवा कर वाह्य प्रभावना की। वहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाया पर आभ्यन्तर प्रभावनाकी स्रोर प्रयास नहीं हुआ। यदि आभ्यन्तर प्रभावना हो जाय तो स्वर्णमे सुगन्धि हो जावे। श्रपनी च्रोर किसीका लच्च नहीं। प्रायः सर्वत्र यही दृश्य देखा जाता है। हमारी प्रभावनासे च्यन्य लोग लाभ उठा लेते हैं पर हम तो दर्शकमात्र ही रहनेका प्रयास करते हैं। अन्यको धर्मका स्वरूप त्रा जावे यही चेष्टा हमारी रहती है।

छीपीटोलाकी धर्मशालामे २ दिन ठहरे। तीसरे दिन श्री महाबीर इन्टर कालेजका उत्सव था गांजे वाजेके साथ वहां गये। उत्सवमे अच्छे श्रच्छे मनुष्योंका समारोह था। व्याद्यानादि का श्रच्छा प्रवन्ध था। जितने व्याख्यान हुए वे सब प्रायः लांकिक पदार्थोंके पोपक थे। पारमार्थिक हृष्टि लोगों की नहीं। यदापि श्राज शिचाका प्रचार श्रधिक है परन्तु पारमार्थिक हृष्टिकी श्रोर ध्यान नहीं। पहले समयमें शिचाका उद्देश्य श्रात्मदिन था परन्तु वर्तमानकी शिक्षाका उद्देश्य श्रर्याजेन श्रीर वामसेवन है। प्राचीन श्रुपियों ने कहा है कि—

दुःखाद्विभेषि नितरामभियाञ्झम सुव्यमतोऽर्मायामन्। दु स्वापदारि सुव्यक्रमनुशास्मि तयानुमतमेय॥

श्रव यह कथा पुराणोंमे रह गई है। इस कथाको जो कहे वह मनुप्योंकी गणनामे गणनीय नहीं । यही नहीं, लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि इस उपदेशने हमारे भारतवर्पका पतन कर दिया। सभ्य वही जो द्रव्यको अर्जन कर सके और श्रच्छे वस्त्रादिकोंसे सुसिन्जित रहे। स्त्री और पुरुपोंमे कोई श्रन्तर न देखे। जैसे आप भ्रमणको जाता है वैसे ही स्त्रीगण भी जावे। जिस प्रकार तुम्हे सबसे भापण करनेका र्त्राधकार है उसी तरह स्त्री समाज को भी हो। श्रस्तु, विषयान्तरको छोड़ो। सभाका काल पूर्ण होने पर कालेज देखा, व्यवस्था बहुत सुन्दर थी, मटरू-मल जी वैनाड़ाका अनुशासन प्रशंसनीय है। यहाँ पर एक छात्रावास भी है तथा छात्रावासमे जो छात्र रहते हैं उनके धर्म-साधनके अर्थ १ सुन्दर मन्दिर भी है। उसमें एक बृहत्मृति है जिसके दर्शनसे चित्त शान्त हो जाता है। यह सर्व कार्य वैनाडा जी के द्वारा सम्यक्रीतिसे चल रहा है। तद्नन्तर गाजे बाजेके साथ अन्य जिने मन्दिरोंके दर्शन करते हुए वेलनग अकी जैन धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशालामे उपर मन्दिर है। उसमें एक विम्व वहुत ही मनोज है। दुर्शन करनेसे अत्यन्त शान्ति आई। यह विम्व श्री पद्मचन्द्र जी वैनाड़ा और उनके सुपुत्र मटरूमछ जी वैनाड़ा ने शाहपुर-गाएेशगंज (सागर) में पञ्चकल्याण के समय प्रतिष्ठित कराकर यहाँ पधराया है। इसके दर्शन कर भव्योंको जो श्रानन्द श्राता है वह वे ही जानें। मन्दिरमे दो वेदिकाएं श्रीर भी हैं। धर्मशालाके वगलमे श्री स्वर्गीय मूलचन्द्र सेठकी दुकान है उसमे श्री मगनमल्ल जी पाटनी है के स्वामी हैं। त्राप श्रत्यन्त सज्जन हैं। श्राप श्रौर श्रापकी धर्मपत्नी-दोनों प्रातःकाल जिनेन्द्र देव का अर्चन करते हैं। श्रापके दो सुपुत्र हैं वड़े का नाम श्री कुॅवर नेमिचन्द्र है। दोनों ही सुयोग्य हैं। नेमिचन्द्र जीकी अध्यात्म-

शास्त्र मे अधिक रुचि है। आपका अभिप्राय श्री कानजी स्वामीके अनुकूल है। विशेप विवेचनकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ पर श्री ताराचन्द्र जी रपरिया रहते हैं। आप आँग्लविद्या के वी. ए. हैं। फिर भी जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। त्र्यापकी व्याख्यान शैली ऋति उत्तम है, चारों अनुयोगों के ज्ञाता हैं, श्रापका व्यवहार अत्यन्त निर्मल है, फैशनकी गन्ध भी आपको नहीं है, आपके मामा विशिष्ट सम्पन्न हैं फिर भी त्र्याप स्वतन्त्र व्यापार कर स्वयं सम्पन्न हुए हैं। धार्मिक पुरुप हैं। विद्वानों से प्रेम रखते हैं। श्रापकी मण्डलीमें प्रायः तत्त्वरुचिवाले ही हैं। प्रतिदिन शास्त्र होता है। श्रोतात्रों मे श्री वावूराम जी शास्त्री भी त्र्याते हैं। त्र्याप वहुत तार्किक हैं - किसी किसी पदार्थ को सहसा नहीं मान लेते। तर्क भी अनर्गल नहीं करते। यदि यह जीव जैनधर्मके शास्त्रोंका अभ्यास करे तो एक ही हो। परन्तु गृहस्थीके चक्रसे पृथक् हो तव न । इनकी स्त्री सुशीला है । प्रतिदिन दुर्शनादि करती है । जन कि इसका जन्म विषक्कलका है। ताराचन्द्र जी के सम्बन्धसे पं० तुलाराम जी व वकील हजारीलाल जी भी श्रच्छे धर्मज्ञ हो गये हैं। दो मारवाड़ी भाई तथा ख्यालीराम जी भी इनके शास्त्रमे श्राते हैं। यहाँ पर एक सभा हुई जिसमे जनताका समारोह श्रच्छा था। इवेताम्बर साधु भी श्रानेक श्राये थे। साम्यरसके विषयमें ट्याख्यान हुआ। विषय रोचक था, श्रतः सवको रुचिकर हुआ। श्रात्महित इसीमें हैं। इससे उच्चतम विषय क्या हो सकता है। यदि इस पर श्रमल हुआ तो सर्व उपद्रव श्रनायास ही शान्त हो जावेंगे । परमार्थसे कहनेका नहीं श्रनुभव गम्य है परन्तु श्रनुभव तो संसार के विषयोंमे लीन हो रहा है, इसका स्वाद श्राना ही दुर्लभ है। उपयोग क्रमवर्ती है, अत. एक कालमे एक ही पदार्थ

तो वेदन करेगा। यह ज्ञानमे नहीं त्राता कि जव ज्ञान स्वसंवेद्य ही होता है तब वह परको वेदन करता है यह श्रसंभव है। फिर जो यह स्थान स्थान पर लिखा है कि संसारी जीवने आज तक अपनेको जाना ही नहीं यह समभमे नहीं श्राता। इसका उत्तर श्रमृतचन्द्र स्वामी ने स्वयं लिखा है कि ज्ञान तादाम्य होने पर श्रात्मा श्रात्माकी उपासना करता हो है फिर क्यो उपदेश देते हो कि ज्रात्माकी उपासना करना चाहिये? उत्तर—ज्ञान का ब्रात्माके साथ तादात्म्य होने पर भी क्षणमात्र भी ब्रात्मा की उपासना नहीं करता। तो इसके पहले क्या आत्मा अज्ञानी है ? हाँ त्र्यज्ञानी है इसमे क्या सन्देह है ? श्रतः इन पर पदार्थीसे सम्बन्ध त्यागना ही श्रेयोमार्ग है। व्याख्यान समाप्त होने पर सव लोग श्रपने अपने स्थान पर चले गये। यहाँ पर दो श्रादमी रोगशस्त हो गये। उनकी शुश्रूषा यहाँ वालोंने श्रच्छी तरहसे की। वैद्य डाक्टर आदिकी पूर्ण व्यवस्था रही। आगरा बहुत भारी नगर है। यहाँ पर वहुत मन्दिर हैं। हम लोग सव मन्दिरोंमे नहीं जा सके। यहाँ निम्नाङ्कित सद्विचार हृदय मे उत्पन्न हुए।

'संसार की श्रसारताका निरूपण करना कुछ नाभदायक नहीं प्रत्युत श्रात्मपुरुषार्थ करना परमावश्यक है। श्रात्माका पुरुपार्थ यही है कि प्रथम पापोसे निवृत्ति करे श्रनन्तर निजतत्त्वकी शुद्धि का प्रयास करे।'

'परिणामो की निर्मलताका कारण पर पदार्थींसे सम्बन्ध त्याग है। सम्बन्धका मूल कारण आत्मीय बुद्धि ही है'। 'चित्त वृत्ति शमन करने के लिये आत्मश्लाघा त्यागनेकी

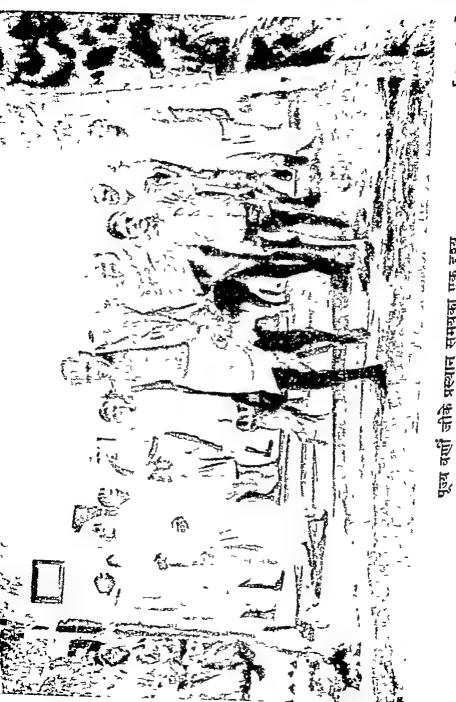
'चित्त वृत्ति शमन करने के लिये ब्रात्मश्लाघा त्यागनेकी महती त्रावश्यकता है। स्वात्मप्रशंसा के लिये ही मनुष्य प्रायः ज्ञानार्जन करते हैं, धनार्जन करते हैं, ब्रान्यकी निन्दा करते हैं, स्वात्मप्रशंसा करते हैं पर मिलता जुलता कुछ नहीं।' 'शिचा का उद्देश्य शान्ति हैं, उसका कारण श्रध्यात्मशिचा है, श्रध्यात्मशिचासे ही मनुष्य ऐहिक तथा पारलौकिक शान्तिका भाजन हो सकता है।'

'धार्मिक शिक्षा किसी सम्प्रदाय की नहीं। वह तो प्रत्येक प्राणी की सम्पत्ति है। उसका आदर पूर्वक प्रचार करना राष्ट्रका मुख्य कर्तेच्य है। जिस राष्ट्रमें उसके विना केवल लौकिक शिक्षा दी जाती है वह राष्ट्र न तो स्वयं शान्तिका पात्र है और न अन्यका उपकारी हो सकता है। आगराके जैन कालेज में धार्मिक शिक्षाका जो प्रवन्ध है वह प्रशंसनीय है। धार्मिक जीवन के लिये धार्मिक शिक्षा की मुख्य आवश्यकता है।'

'त्राजकल भौतिकवादके प्रचारसे संसारका सहार हो रहा है। इसका मूल कारण एकाङ्गी शिचा है। यदि इसको श्रध्यात्म-शिचाके साथ मिश्रण किया गया तो श्रनायास जगत् का कल्याण हो जायगा।'

'वहुत वोलना ही दुःख का मूल है। संसार में वही मनुष्य सुख का भाजन हो सकता है जो निःस्पृह हो। शान्तिका मार्ग वहीं हैं जहाँ निवृत्ति है। केवल जल्पवादसे कुछ लाभ नहीं। केवल गल्प-कथाके रिसक मनुष्योंसे सम्पर्क रहना ही संसार वन्धनका मृल कारण है।'

'यहाँ एक दिन स्त्रप्तमे स्वर्गीय वावा भागीरथ जी की श्राज्ञा हुई कि हम तो वहुत समयसे स्वर्गमें देव हैं। यदि तू कत्याण चाहता है तो इस संसर्गको छोड़। तेरी श्रायु श्रिधक नहीं, शान्ति से जीवन विता। यद्यपि तेरी श्रद्धा दृढ़ है तथापि उसके श्रनुकूल श्रवृत्ति नहीं। हम तुम्हारे हितैपी हैं। हम चाहते हैं कि तुम्हे कुछ वहें परन्तु श्रा नहीं सकते। श्राद्रसे त्यागको श्रपनंत्रो । श्रादरसे



प्रयमी प्रवता प्राप करते हो। प्रयमा प्रमादर जो करता है उससे घन्यका प्रावर नहीं हो सकता। मनुष्य जन्म एक महती निधि है। यदि इसका उपयोग यथार्थ किया जाने तो उस जन्म-मरएके रोग से छुटकारा हो सकता है, क्वोंकि संसारघातका कारण जो संयम है यह उसी विधिसे मिलता है। परन्तु हम इतनी पामरता करते हैं कि राखके लिये चन्दनको भएम कर देते हैं। स्वप्नमें ही वावाजी ने कहा कि तुमसे जन्मान्तरका स्नेह हैं। ध्रभी एक बार तुम्हारा हमारा सम्बन्ध शायद फिर भी हो। जल्लक पदकी रत्ता करना कोई किटन कार्य नहीं। मनुष्य संपर्क छोड़ा। यदि कल्याण मार्ग की इच्छा है तो मर्व उपद्रवींका त्याग कर शान्त होनेका जपाय करो। केवल लोकपणाके जालमें मत पड़ो। हम तो देखा श्रीर श्रमुभव किया कि श्रभी वल्याणका मार्ग दूर है। यदि उहिष्ट भोजन जानकर करते हो तो जुल्लक पद व्यर्थ लिया। लोक प्रतिष्टा के लिये यह पद नहीं। यह तो कल्याणके लिये है, परकी निन्दा प्रशंसाकी परवाह न करो।'

यहाँ रहनेका लोगोंने आग्रह वहुत किया और रहना लाभ-दायक भी था तो भी हमने मथुरा जानेका निश्चय कर यहाँसे चल दिया।

### मथुरामें जैन संघका अधिवेशन

श्रागरासे ३ मील चलकर एक महाशयकी धर्मशालामे १५ मिनट श्राराम किया परचात् वहाँसे चलकर सिकन्दरावाद श्रागये। रात्रि सुखसे वीती, प्रातःकाल शौचादि क्रियासे निवृत्त हो श्रकवर वादशाहका मकवरा देखने गये। मकवरा क्या है दर्शनीय महल है। उसमे श्ररवी भाषामें सम्पूर्ण मकवरा लिखा गया है। क्या है यह हमको ज्ञात नहीं हुआ श्रौर न किसीने

वताया। मुसलमान वादशाहोंमे यह विशेषता थी कि वे अपनी संस्कृतिके पोपक वाक्योको ही लिखते थे। जैनियोंमें वड़ी वडी लागतके मन्दिर हैं परन्तु उनमें स्वर्णका चित्राम मिलगा, जैनधर्मके पोषक आगम वाक्योका लेख न मिलेगा। समयकी वलवत्ता है, धर्म जो आत्माकी शुद्ध परिणति है उसका सम्बन्ध यद्यपि साचात् आत्मासे है तथापि निमित्त कारणोकी श्रपेक्षा परम्परा वहुतसे कारण हैं। उन कारणोसे श्रागम वाक्य वहुत ही प्रवल कारण हैं। यदि इस मकवरामे पठन पाठनका काम किया जावे तो हजारों छात्र अध्ययन कर सकते हैं। इतने कमरोंमे अकारादि वर्णोंकी कत्तासे लेकर एम० ए० तककी कक्षा खुल सकती है, परन्तु इतनी विशाल इमारतका कोई उपयोग नहीं और न उत्तर काल में होनेकी संभावना है। जो राज्यसत्ता है वह यह चाहती है कि ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि जिससे किसीको आघात पहुँचे। यह ठीक है परन्तु निरर्थक पड़ी रहे यह भी ठीक नहीं, उसका उपयोग भी तो होना चाहिये।

यहाँसे चलकर सिकन्द्रावाद आ गये। यहाँ पर श्रीमान् पं॰ माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य भी आए। आप वहुत ही शिष्ट और विद्वान् हैं। आपने हलोकवार्तिक भाष्यका भाषानुवाद किया है। आपके अनेक शिष्य वर्तमानकालीन मुख्य विद्वानोकी गणना में हैं। यहाँ ५-७ घर जैनियोंके हैं। मकवराका वृहद् भवन निरर्थक पड़ा है इसकी चर्चा मैंने पण्डितजीसे भी की परन्तु सत्ताके विना पत्ता भी नहीं हिल सकता यह विचार कर संतोप धारण किया। मनमें विचार आया कि—

मोही जीवों भी मान्यता विलक्षण है और इसी मान्यताका फल यह संसार है। जहाँ शुभ परिणामोंकी प्रचुरता है वहाँ वाह्यमें मनुष्यों के प्रति सद्व्यवहार है। परन्तु यहाँ तो धमान्यताकी उतनी प्रचुरता है कि जो इसलाम धर्मको नही मानते वे काफिर हैं। यह लिखना मतकी श्रपेचा प्रत्येक मतवाले लिखते हैं। जैसे वैदिक धर्मवाले कहते हैं कि जो वेदवाक्यों पर श्रद्धान करे वह नास्तिक है। जैनधर्भवालोंका यह कहना। है कि जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा नहीं वह मिथ्यादृष्टि है। यद्यपि ऐसा कहना या लिखना ऋपनी ऋपनी मान्यताके अनुकृत है तथापि उसका यह अर्थ तो नहीं कि जो अपने धर्मको न माने उसको कष्ट पहुँचात्रो । मुसलिम धर्ममे काफिरके मारनेमे कोई पाप नहीं। विलहारी है इन विचारोकी। विचारोंमे विभिन्नता रहना कोई हानिकर नहीं परन्तु किसी प्राणीको वलात् कष्ट देना परम अन्याय है। परन्तु यह संसार है। इसमे मानव श्रपनी मानवताको भूल दानवताको श्रात्मीय परिएति मान कर जो न करे अल्प है। अन्यायी जीव क्या क्या अनर्थ नहीं करते यह किसीसे गुप्त नहीं। धर्मकी मार्मिकताको न समभ कर मनुष्य अपने अनुकूल होनेसे ही चाहे वह कैसा ही हो उसे आदर देवा है श्रीर यदि प्रतिकूल हो तो श्रनादरका पात्र वना देता है। वास्तवमें धर्म कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं किन्तु जिसमे जो रहता है वही उसका धर्म है। जलमे उप्ण स्पर्श नहीं रहता इसलिये वह उसका धर्म नहीं है। अग्निका सम्बन्ध पाकर जल उष्ण हो जाता है। यद्यपि ज्ञास्परीका तादात्म्य वर्तमान जलसे है तथापि वह उसमे सर्वथा नहीं रहता श्रतः उसका स्वभाव नहीं कहा जा सकता। स्वभाव वह है जो पदार्थमे स्वत रहता है और विभाव वह है जो परके संसर्गगे उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीवमे ज्ञान रहता है अतः वह उसका स्वभाव है। यद्यपि ज्ञान वर्तमान कर्मोद्यसे रागादिरूप हो जाता है तथापि परमार्थसे ज्ञानमें राग नहीं। वह तो त्रात्माका श्रीद्यिक परिणाम है। जिस कालमें चारित्रमोहकी राग प्रकृतिका उद्य होता है उस कालमें आत्माका प्रीतिरूप परिणाम

होता है। उस समय यदि तीव्र राग हुआ तो यह आत्मा विपयोंके साधक स्त्री पुत्रादि तथा अन्य अनुकूल पुद्गलोंमे राग करने लगता है और निरन्तर उन्हीं पदार्थी के साथ रुचि रखता है। यह मन्द् राग हुआ तो पञ्च-परमेष्टीमे अनुराग करनेका व्यापार करना है तथा प्राणियों पर दया करनेकी परिणति करता है। तीर्थ नेत्रावि पर जानेकी चेष्टा करता है, पासमे यदि द्रव्यादि हुआ तो उसे परोपकारमे लगाता है। परमार्थसे पर पदार्थीने आदान प्रदानकी जो पद्धति है वह सर्व मोहजन्य परिणामोंकी चेष्टा है। क्योंकि जो वस्तु हमारी है ही नहीं उसे दान करनेका हमे अधिकार ही क्या हैं तथा जो वस्तु हमारी हैं उसे हम दे ही नहीं सकते। हमारी वस्तु हमसे श्रभिन्न रहेगी श्रत. हम उसका त्याग नहीं कर सकते। जैसे वर्तमानमे हमारी त्रात्मामे कोधका परिएामन हुत्रा उस समय च्रमादिकका तो अभाव है-क्रोधमय हम हो रहे हैं वही हमारा स्वरूप है, क्योकि द्रव्य विना परिणामके रह नहीं सकता। क्षमाका उस कालमे अभाव है अतः जिसकालमें आत्मा क्रोधरूप हाता है उस कालमें क्रोध ही है। एक गुणका एक कालमें एक रूप ही तो परिएमन होगा। परन्तु उस समय भी जो विवेकी मनुष्य हैं वे उसे वैभाविक परिणति मान कर श्रद्धामे उससे विरक्त रहते हैं— यही उसका त्यागना है। देखा जाता है कि गुरु महाराज शिष्यके ऊपर कोध भी करते हैं ताड़ना भी करते हैं, परन्तु श्रमिश्रय ताड़ना का नहीं है। इसी तरह ज्ञानी जीवको कर्मोद्यमे नाना प्रकारके भाव होते हैं परन्तु अन्तरङ्गमे श्रद्धा निर्मल होनेसे उसे करना नहीं चाहते जिस प्रकार जब मनुष्य मलेरिया ज्वरसे पीड़ित होता है तब वह वैद्य द्वारा वतलायी हुई कटुकसे कटुक श्रौपधिका सेवन करता है परन्तु अन्तरंगमें उसे सेवन करनेकी रुचि नहीं इसी प्रकार ज्ञानी जीव वर्मोद्यसे वाह्य पदार्थीका संग्रह करता है, सेवन भी करता है

परन्तु अन्तरंगसे सेवन नहीं करना चाहता। श्रनादि कालीन संस्कारके विद्यमान रहते इसे विना चाहके भी काम करना पड़ता है। आहार, भय, मैथुन श्रौर परिग्रह ये चार संज्ञाएँ श्रनादि कालसे जीवके लग रहीं हैं ? क्योंकि अनादि कालसे मिण्यात्वका सम्वन्ध हैं इसीसे यह जीव परको अपना मान रहा है। इसी माननेके कारण शरीरको भी जो स्पष्ट पर द्रव्य हैं निज मानता है। जब उसे निज मान लिया तव उसकी रत्ताके अनुकूल भोजन प्रहण करता है तथा जो प्रतिकृत हैं उन्हें त्यागता है। नाशके कारण त्र्या जावें तो उनसे पलायमान होनेकी इच्छा करता है। जब वेदका उदय आता है तव स्त्री पुरुष परस्पर विषय सेवनकी इच्छा करते हैं तथा मोहके उद्यमे पर पदार्थींको महण करनेकी इच्छा होती है। इस तरह अनादिसे यह चर्खा चल रहा है। जिस समय दैवात् संसार तट समीप त्रा जाता है उस समय त्रनायास इस जीवके इतने निर्मल यरिगाम होते हैं कि अपनेको परसे भिन्न माननेका अवसर स्वय-मेव प्राप्त हो जाता है। जहाँ त्र्यापसे भिन्न परको माना वहाँ संसार का बन्धन स्वयमेव शिथिल हो जाता है। संसारके मृल कारएके जाने पर शेष कर्म स्वयमेव प्रथक् हो जाते हैं। जैसे दशवें गुगास्थान तक ज्ञानावरणादि पट् कर्मीका बन्ध होता है। वन्धमें कारण सूदम लोभ है, वॅधनेवाले कर्मीकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही पड़ती है परन्तु जव दशवें गुणस्थानके अन्तमें मोहका सर्वथा नाश हो जाता है तव वारहवें गुणस्थानके उपान्त्य समयमें निद्रा प्रचला श्रीर अन्तमें ज्ञानावरणकी ५, श्रन्तरायकी ५ श्रौर दुर्शनावरणकी ४ प्रकृतियाँ नाशको प्राप्त हो श्रात्माको केवलज्ञानका पात्र वना देती हैं। यही प्रक्रिया सर्वत्र है-करणलव्धिके परिणाम होने पर जव सम्यग्दर्शन श्रात्मामे उत्पन्न हो जाता है तव श्रनायास ही मिध्यात्व त्र्यादि सोलह प्राकृतियोंका वन्ध नहीं होता। शेष प्रकृतियोंका जो

वन्ध होता है वह मिध्यात्वके साथमे जैसा होता था वैसा नहीं होता । अतः जहाँ तक वने विपरीत अभिप्रायको दूर करनेका वुद्धि-पूर्वक प्रयत्न करो । विना निर्मल अभिप्रायके कल्याण होना असंभव है। कल्याएका विघातक मिलन अभिप्राय ही है। यद्यपि इसका निर्वचन होना कठिन हैं फिर भी पर पदार्थमें जो निजल कल्पना होती है। वही इसका कार्य हैं वही विपरीत अभिप्राय है। इसीसे असत्करनाएं होती है। इसीके रहते आत्मा किसीमे राग, किसीमें हेप त्र्यौर किसीमें उपेचा करता हैं। इस कार्यसे इसे पहिचान कर इसके छोड़नेका प्रयन्न करो । समस्त संसारी जीवोके मन वचन कायके व्यापार स्वयमेव होते रहते हैं। ये ही व्यापार जब मन्द कपायके साथ हों तो शुभ कहलाते हैं ऋोर शुभास्त्रवके हेतु भी हो जाते हैं श्रौर तीव कषायके साथ हों तो श्रशुभ शब्दसे कहे जाते हैं श्रौर अशुभ आस्त्रवके कारण होते हैं। इस प्रकार यह परम्परा अनादि कालसे चली आती है। कदाचित् सम्यग्दर्शन न हो और मिथ्यात्य श्रादि प्रकृतियों का मन्द उद्य हो तो द्रव्यलिङ्ग हो जाता है परन्तु वह द्रव्यतिङ्ग अनन्त संसारका घातक नहीं। यद्यपि द्रव्यतिङ्ग और भावलिङ्गके वाह्य आचरणमें कोई अन्तर नहीं रहता फिर भी इनके कार्यमे प्रचुर अन्तर हो जाता है। द्रव्यलिङ्गसे पुण्य । बन्ध होता है अर्थात् अयातिया कर्मोंमें जो पुण्य प्रकृतियाँ हैं उनका विशेष वन्ध होता है परन्तु घातिया कर्मोंकी जो पाप प्रकृतियाँ हैं उनका वन्य नहीं रकता। कर्मोंमे घातिया कर्म जो हैं वे सब पाप रूप ही हैं उनमे सर्व आपत्तियोंकी जड़ मोह (मिथ्यात्व ) है। इसकी सत्ता स्वयं अपने अस्तित्वकी रत्ता करती है और शेप घातिया व अघातिया कर्मोंकी सत्ता रखती है। इसके अभावमे जेप कर्मोंका अस्तित्व सेनापतिके श्रभावमे सेनाके श्रस्तित्व तुल्य रह जाता है। वृज्ञकी जड़ उखड़ जाने पर उसके हरापनका श्रास्तित्व कितने काल तक

रहेगा ? अतः जिन जीवोंको संसार वन्धनसे मुक्त होनेकी अभि-लापा हो उन्हे प्राणपन—पूर्ण प्रयत्नसे सर्वे प्रथम इसका निर्मूल उच्छेद करना चाहिये। इसके होने पर जो कार्य करोगे वही सफल होगा।

यहाँ पर आगरासे भी अनेक महानुभाव आये थे। यहीं पर एक चत्रिय महोदय भी मिले। श्रापने अपने श्राम ले जानेका श्चारन्भ किया। श्रापका ग्राम वहीं था जहाँ श्री सूरदासजी ने जन्म लिया था। श्रामका नाम रुनकता था श्रोर चत्रिय महोदयका नाम ठाक्दर अमरसिह था। श्राप डाक्टर धे श्रीर कवि भी। श्रापने श्रपनी कविता सुनाई। रात भर इसी रुनकता श्राममे रहे। ठाकुर साहवका अभिप्राय था कि एक दिन यहाँ निवास किया जावे तथा हमारे गृह पर आप पधारें, हमारे कुटुम्बीजन आपका दर्शन कर लेवें तथा वहीं पर आपका भोजन हो तब हमारा गृह शुद्ध होवे। परन्तु हृदयकी दुर्वलता श्रीर लोगोंकी १४४ धाराने यह न होने दिया। मुख्यतया इसमे हमारी दुर्वलता ही वाधक हुई। यहाँसे चले तो ठाकुर साहब बरावर जिस शाममे हमने निवास किया वहाँ तक त्राये तथा कहने लगे क्या यही जैनधर्म है ? जिस धर्ममे प्राणी मात्रके कल्याणका उपदेश है आप लोगोंने अभी उसके मर्मको सममा नहीं। हमे दृढ़ विश्वास है कि धर्मका अस्तित्व प्रत्येक जीवमे है किन्तु उपचारसे वाह्य कारण माने जाते हैं। आप लोग भी इस वातको जानते हैं कि वाह्य कारणोंमें उलमना अच्छा नहीं। जब श्राप लोग व्याख्यान करते हैं तब ऐसे ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं कि जिन्हे श्रवण कर श्रन्य प्राणी मोहित हो जाते हैं। हमने कई स्थानों पर अवण किया 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्य-स्थानि च सत्त्रगुणाधिकिक्तरयमानाविनयेषु' त्र्यर्थात् प्राणीमात्रमे मैत्री भावना त्राना चाहिये। मैत्रीका अर्थ है किसी प्राणीको दुःख

न हो ऐसी श्रमिलाषा रखना। प्राणीमात्रका दुःख दूर हो जावे इसकी श्रपेत्ता प्राणीमात्रको दु.ख न हो यह भावना उत्कृष्ट है। जो आत्मगुण विकासमे ला चुके हैं ऐसे महानुभावोंको देखकर हर्षित हो जाना इस भावनाका नाम प्रमोदभावना है। हम आपके इस अर्थको श्रवण कर गद्गद हो गये। जो जीव क्लेशसे पीड़ित है, दुखी हैं, दीन हैं, दारिंद्रच कर पीड़ित हैं तथा धनी होकर भी कृपण है उन्हें देखकर करुणा भाव करना तथा जो मोचमार्गकी कथा न तो स्वयं श्रवण करते हैं श्रीर न श्रवण करनेकी श्रिभलापा ही रखते हों ऐसे दुरायही लोगोमे माध्यस्थ्य भावना रखना ही उचित है। ऐसा जिस धर्मका अभिप्राय है—कहाँ तक कहे जहाँ उन जीवोंकी भी रचाका उपाय वतलाया है कि जो दृष्टिगोचर भी नहीं होते। जैसे अनाजके उत्पर जहाँ फुल्ली आ जावे वहाँ उस श्रनाजको उपयोगमे मत लात्रो, जो रस स्वादसे चलित हो जावे उसे मत भन्नए करो। कहाँ तक लिखें जो जल जिस कृतादिसे लाये हो उसे छानकर जीवानी उसी जलाशयमे निचिप्त कर दो। जहाँ ऐसी द्याका वर्णन हो वहाँ पर हमारे साथ जो आपका व्यवहार हे क्या वह प्रशंतनीय है ? हम इस वातको मानते हैं कि हमारा त्राचरण त्राप लोगोंकी त्रपेना श्रच्छा नहीं है परन्तु यह सर्वथा मानना श्रच्छा नहीं, क्योंकि इम लोगोंके यहाँ भी श्राटा, रोहूँ चुग चुग कर पीसा जाता है, चावल श्रादि भी चुग कर खाते हैं, शाकादिक देखकर वनाये जाते हैं। हाँ, पानी छानकर नहीं पीते तथा जैन मन्दिर नहीं जाते सो बहुतसे लोग श्रापम भी एसे हैं जो विना छना पानी पी जाते हैं तथा नियमपूर्वक मन्दिर नही जाते । अस्तु, इन युक्तियोसे हम आपको लिजत नहीं करना चाहते परन्तु हृद्यसे तो कहो कि छाप जैनधर्मके प्रचारका कितना उपाय करते हो ? आप पैदल यात्रा कर रहे हैं उसलिये उचित ता यह था

कि जहाँ पर जाते वहाँ आम जनतामें धर्मका उपदेश करते। जो मनुप्य उसमे रुचि करते वहाँ १ या २ दिन रहकर उन्हें भोजनादि प्रक्रियाकी शिद्धा देते तथा उनके गृह पर भोजन करते तब जैनधर्मका प्रचार होता या जहाँ ठहरे वहाँ पर साथमे रहनेवालोंने भोजन दिया खाया। रात्रिको जहाँ ठहरे वहाँ पर कुछ काल तो मार्गकी कथामे गया, कुछ गल्पवादमें गया, अन्तमे सो गये। एक त्यागीके भोजनमे बीसों रुपये व्यय हो गये, फल क्या निकला ? केवल मार्गकी धूलि छानना ही तो हुआ। यह हम जानते हैं कि एक त्यागी २०) नहीं खा सकता परन्तु उसीके श्रर्थ तो यह श्राडम्बर है। कल्पना करो यदि वह एकाकी चलता तो जिस ग्राममे जाता मुमे विश्वास है कि उस प्राममे एक श्राध दिन ही व्यवस्था होनेमें कठिनाई होती पश्चान सब ठीक हो जाता श्रीर लोग उसके जानेकी व्यवस्था कर देते। मैं हृदयसे कहता हूँ म्थुरा तक तो मैं पहुँचा देता। वर्णीजी श्रियापसे मेरा श्राति प्रेम हो गया है इसका कारण श्रापकी सरलता है परन्तु खेद है कि लोगोंने इसका दुरूपयोग किया तथा श्रापसे जो हो सकता था वह न हुआ। इसमे मूल कारण त्राप भीरु प्रकृतिके हैं। त्रापकी भीरु प्रकृति इतनी है कि मैं इनके यहाँ भोजन करने लगूंगा तो लोग मुक्ते क्या कहेंगे ? यह श्रापकी कल्पना निःसार है, लोग क्या कहेगे १ इजारों मनुष्य सुमार्ग पर श्राजावेंगे। श्राजकल श्रहिंसा तत्त्वकी श्रोर लोगें की दृष्टि भुक रही है सो इसका मूल कारण यह है कि श्रहिसा श्रात्मा-की स्वच्छ पर्याय है। 'श्रहिंसा ही धर्म है' इसका श्रर्थ यह है कि जब श्रात्मामे मोहादि परिणाम नहीं रहता तब श्रात्मा तन्मय हो जाता है। श्रहिसा किसी एक जाति या एक वर्ण विशेषका धर्म नहीं है। जिस श्रात्मामे जिस काल तथा जिस चेत्रमे रागादि परिशाम नहीं होते हैं उसीके पूर्ण श्राहिसा धर्म होता है। श्रापने ही तो सुनायां था कि-

श्रात्मामे रागादि भावोंका उत्पन्न न होना श्राहिसा है श्रोर उन्हींका उत्पन्न होना हिसा है। श्रस्तु, हमको ऐसी प्रवृत्ति करना चाहिये जो हमारी प्रवृत्ति पर पदार्थोंके संसर्गसे दूषित न हो। श्राप लोग न तो स्वयं श्रहिसा धर्म पालते हैं श्रोर न पर को उसकी शिक्षा देते हैं। हम लोग भी उतने श्रज्ञानी हो रहे हैं कि श्रापसे धर्म चाहते हैं। जो धर्म श्राप पालते हैं वह हम भी पाल सकते हैं। हमने यह समज्ञ रक्खा है कि श्राप लोग ही धर्मके उपदेश हैं। श्रापको दान देनेसे हमे पुण्यवन्ध होता है यह भ्रम निकल गया। श्राप लोग भयभीत हैं, बड़े श्रादमियो की हाँ में हाँ मिलानेवाले हैं, उनके विरुद्ध श्रद्धा भी नहीं बोल सकते। श्रर्थात् उनकी बात चाहे श्राम विरुद्ध हो श्राप लोग उसका प्रत्युत्तर न देवेंगे श्रथवा हाँ में हाँ मिला देवेंगे। परन्तु इससे हमें क्या को नले श्रोपको रुचे वैसा करो .... ... ... इतना कह कर वह तो चले गये, हम निरुत्तर रह गये।

पश्चात् वहाँसे गमन कर एक स्थानमे निवास किया। सानन्द रात्रि व्यतीत कर चल दिये। भोजनादिकी व्यवस्था हुई, मध्या-न्होपरान्त श्री पं॰ राजेन्द्रकुमार जी महामंत्री सदलवल द्या गये। महान् समारोह हो गया श्रोर त्यानन्दसे श्र जम्बूस्वामीकी निर्वाण भूमि पहुँच गये। पहुँचते ही स्मृति पटलमें पिछली बात याद श्रा गई कि यह वही भूमि है जहाँ पर श्री जैन महाविद्यालयकी स्थापना हुई थी श्रोर मैंने भी जिसमे रह कर अध्ययन किया था। श्राज वल दि० जैन संघका कार्यालय यहीं पर है। श्रनेक सुन्दर भवन संघके हैं, एक सरस्वती भवन भी है। एक दिगम्बर जैन गुरु-कुल भी है जिसमें इण्टर तक पढ़ाई होती है। हम लोगोंका श्रातिथ्य सत्कार होनेके वाद सुन्दर भवनोंमें निवास कराया गया। संघका वार्षिकोत्सव था जिसके सभापति श्रीमान् सर सेठ हुकमचन्द्रजी साहव इन्दौरवाले थे। समारोहके साथ आपका स्त्रागत किया गया। आप अत्यन्त पुण्यशाली जीव हैं। धर्मके रच्नक तथा स्त्रयं धर्मात्मा हैं। जब कोई आपित धर्म पर आती है तब आप उसे सब प्रकारसे निवारण करनेका प्रयत्न करते हैं। आपने सभापितका भाषण देते हुए कहा है कि वर्तमानमें जैनधर्मका विकास करना इप्ट है तो सर्व प्रथम आत्मिवश्वास करो तथा संयम गुणका विकास करो, उदार हृदय बनो, परकी निन्दा तथा आत्मप्रशंसा त्यागो, केवल गल्पवादमें समय न खोत्रो। भाषण देते हुए आपने कहा कि इस समय हम सबको परस्पर मनोमालिन्यका त्याग कर सौजन्यभावसे धर्मकी प्रभावना करना चाहिये। केवल व्याख्यानोंसे कल्याण न होगा, जो वात व्याख्यानोंसे आती है उसे कर्तव्यपथमें आना चाहिये—

बात कहन भूपग धरन करण खडग पद धार। करनी कर कथनी करें ते विरले संसार॥

श्र्यात् वातका कहना कोई कठिन नहीं जो कहा जावे उसे कर्तव्यमे लाना चाहिये। श्राज हर एक वक्ता होनेकी चेष्टा करता है—प्रत्येक मानव उपदेष्टा वनना चाहता है, श्रोता व शिष्य कोई नहीं वनना चाहता। श्रस्तु, कालका प्रभाव है, हमको जो कहना था कह दिया। जैनसंघकी रक्षाके लिये श्रापने २५०००) पचीस हजारका दान किया। उपस्थित जनताने भी यथाशक्ति दान दिया। इसी श्रवसर पर विद्वत्परिषद्की कार्यकारिणीकी वैठक भी थी जिसमे पं० फूलचन्द्रजी वनारस, पं० वंगचन्द्रजी वनारस, पं० द्याचन्द्रजी, पं० पत्रालालजी सागर, पं० वावूलालजी इन्द्रोर, पं० खुशहालचन्द्र जी वनारस, वंशीधरजी वीना, प० नेमीचन्द्रजी श्रार, पं० जगन्मोहनलालजी कटनी श्रादि श्रनेक विद्वान् पधारे थे। वैठकमे विचारणीय विषय थे मानवसात्रको दर्शनाधिकार,

प्राचीन दस्सा शुद्धि श्रादि। जिन पर उपस्थित विद्वानोंमे पक्ष विपक्षको लेकर काफी चर्चा हुई परन्तु श्रन्तमें निर्णय कुछ नहीं हो सका। यदि विद्वान् परस्परका मनोमालिन्य त्याग किसी कार्यको उठावें तो उनमे वह शक्ति है जिसे कोई रोकनेके लिये समर्थ नहीं परन्तु परस्परका मनोमालिन्य उनकी शक्तिको कुण्ठित किये हुए हैं। 'विश्व शान्ति श्रौर जैनधर्म' इस विषय पर निवन्ध लिखानेका विचार स्थिर हुआ। जैन संघमे श्री पं० राजेन्द्रकुमारजी ऋत्यन्त डत्साही श्रौर कर्मठ व्यक्ति हैं। संघका वर्तमान रूप डर्न्हींके पुरुपार्थका फल है। एक दिन आपके यहाँ भोजन हुआ तव आपने स्याद्वाद विद्यालय वनारसको ५०१) देना स्वीकृत किया। इसी तरह एक दिन सेठ भगवानदासजीके यहाँ श्राहार हुआ। सेठानी श्री वच्छराजजी लाडन्वालोंकी पुत्री हैं। इन्होंने भी स्याद्वाद विद्या-लयको १०००) देना अंगीकार किया। सेठ भगवानदासजी सौम्य व्यक्ति हैं। आप नवयुवक होते हुए भी सज्जनतासे भरे हुऐ हैं। टोंग्याजी भी यहाँ पर प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। श्रापके प्रवन्धसे यहाँ रथयात्रा महती प्रभावनाके साथ हुई। वाहरके भी मनुष्य श्राये। तीन दिन तक अच्छी चहल पहल रही। अनन्तर मेला विघट गया। यहाँ श्री विनयकुमारजी 'पथिक' संघमें रहते हैं जो जात्या ब्राह्मण हैं तथा कविता श्रच्छी करते हैं कविता करनेकी पद्धति प्रायः प्रत्येकको नहीं आती, यह भी एक कत्ता है। एकान्त चिन्तनके समय निम्नाड्कित विचार उत्पन्न हुए-

'लोगोंमें धर्मके प्रति महान् श्रद्धा है किन्तु धर्मात्माश्रोंका श्रमाव है। लोग प्रतिष्ठा चाहते हैं परन्तु धर्मको श्राद्र नहीं देते। मोहके प्रति श्राद्र है धर्मके प्रति श्राद्र नहीं। धर्म श्रात्मीय वस्तु है उसका श्राद्र विरला ही करता है। जो श्राद्र करता है वहीं संसारसे पार होना है।'

'सागरके समान मनुष्यको गम्भीर होना चाहिये। सिंहके सदृश उसकी प्रकृति होना चाहिये। श्र्रताकी पराकाष्टा होना ही मनुष्यके लिये लौकिक और पारमार्थिक सुखकी जननी है। पारमार्थिक सुख कहीं नहीं, केवल लौकिक सुखकी आशा त्याग देना ही परमार्थ सुखकी प्राप्तिका उपाय है। सुख शक्तिका विकास आकुलताके अभावसे होता है।'

'भगवन् <sup>1</sup> तुम अचिन्त्य शक्तिके स्वत्यमे क्यों दर दरके भिज्ञक वन रहे हो ? भगवन्से तात्पर्य स्वात्मासे हैं। यदि तुम अपनेको संभालो तो फिर जगत्को प्रसन्न करनेकी आवश्यकता नहीं।'

'संसारसे उद्घार करनेके अर्थ तो रागादि निष्टित्त होनी चाहिये परन्तु हमारा लच्य उस पिनत्र मार्गकी ओर नहीं जाता। केवल जिससे रागादि पुष्ट हों उसी ओर अयेसर होता है। अनादि कालसे पर पदार्थोंको अपना मान रक्खा है उसी ओर दृष्टि जाती है— कऱ्याण मार्गसे विमुख रहते हैं।'

'सुखका कारण क्या है कुछ समममें नहीं श्राता। यदि वाह्य पदार्थोंको माना जावे तव तो श्रनादिकालसे इन्हीं पदार्थोंको श्रर्जन करते करते श्रनन्त भव व्यतीत हो गये परन्तु सुख नहीं पाया। इस पर्यायमे यथायोग्य वहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु कुछ भी शान्ति न मिली।'

'संसारमे कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं जो आज है वह कल नहीं रहेगा। संसार चएएमंगुर है इसमे आश्चर्य की वात नहीं। हमारी आयु ७४ वर्ष की हो गई परन्तु शान्तिका लेश भी नहीं आया और न आनेकी संभावना है, क्योंकि मार्ग जो है उससे हम विरुद्ध चल रहे हैं। यदि सुमार्ग पर चलते तो अवश्य शान्तिका आस्वाद आता परन्तु यहाँ तो उल्टी गङ्गा वहाना चाहते हैं। धिक् इस विचारको जो मनुष्यजन्मकी अनर्थकता कर रहा है। केवल गल्पवादमे जन्म गमा दिया। वाह्य प्रशंसाका लोभी महान् पापी है।'

'लोगों की श्रन्तरङ्ग भावना त्यागीके प्रति निर्मल है किन्तु इस समय त्यागीवर्ग उतना निर्मल नहीं।'

'हम वहुत ही दुर्वल प्रकृतिके मनुष्य हैं, हर किसीको निमित्त मान लेते हैं, अपने आप चक्रमें आ जाते हैं, अन्यको व्यर्थ ही उपालम्भ देते हैं, कोई द्रव्य किसीका विगाड़ सुधार करनेवाला नहीं "यह मुखसे कहते हैं परन्तु उस पर अमल नहीं। केवल गल्पवाद है। वड़े वड़े विद्वान् व्याख्यान देते हैं परन्तु उस पर अमल नहीं करते।'

मशुरासे चलते चलते पद्मपुराग्रमे वर्णित मशुरापुरीका प्राचीन वैभव एक वार पुनः स्मृतिमे श्रा गया ।

यहाँ पर मधु राजाका शत्रुन्नके साथ युद्ध हुआ। शत्रुन्नने छलसे उसके शस्त्रागारको स्वाधीन कर लिया। अस्त्रादिके अभावमे राजा मधु शत्रुन्नसे पराजित हो गया किन्तु गजके उपर स्थित जर्जरित शरीरवाले मधुने अनित्यत्वादि अनुप्रेचाओंका चिन्तन कर दिगन्वर वेपका अवलम्बन किया। उसी समय शत्रुन्नने आत्मीय अपराध की चमा मॉगी—हे प्रभो। मुक्त मोही जीवने जो आपका अपराध किया वह आपके तो चम्य है ही मै मोहसे चमा मॉग रहा हूँ।

## अलीगड़का वैभव

मथुरासे चलते ही चित्तमे संघसे विरक्तता हो गई। विरक्तताका कारण परको अपना मानना है। वह अपना होता नहीं, केवल परमे निजत्व कल्पना ही दुःखदायी है। चलकर वसुगाँवमें ठहर गये। यहाँके ठाकुर नत्थासिंहजी बहुत ही सज्जन हैं। यहीं पर श्री मनीराम जाट मिलने आया, बहुत ही सज्जन था। उसके यह

नियम था कि हाथसे उपार्जन किया ही मेरा धन है पराया धन न जाने अन्यायोपार्जित हो तथा में किसीके प्राण नहीं दुखाना चाहता। हम यहाँ पुरसानकी धर्मशालामे ठहर गये। यह धर्मशाला एक अप्रवाल शाहकी है वहुत ही सज्जन हैं, अतिथि सत्कारमे अच्छी प्रवृत्ति है, मन्दिर भी बना है, रामचन्द्रजी का उपासक है, अनेक भाई दर्शनके लिये आते हैं, यहाँका जमादार भलामानुष है। यहाँसे मिल चलकर हाथरस पहुँचे। यहाँ पर ६ मन्दिर हैं। १ मन्दिर चहुत वडा है जिसका निर्माण वहुत ही सुन्दर रीतिसे हुआ है इसकी कुरसी बहुत ऊँची है। यहाँ पर मनुष्य बहुत ही सज्जन हैं। यहाँ कन्यापाठशालामे ठहरे किन्तु स्थान संकीण था। लघुशंकाके लिये स्थान ठीक नहीं था, नालीमे पानी जाता था जो आगम विरुद्ध है। भोजनके अर्थ श्रावकोंके घर जाते थे परन्तु मार्ग निर्मल नहीं प्रायः अग्रुचिका सम्बन्ध मार्गमे बहुत रहता है।

नये मन्दिरमें सभा हुई। वाहरसे आये हुए विद्वानोंके व्याख्यान मनोरञ्जक थे। थोडा-सा समय हमने भी दिया। व्याख्यान श्रवण कर मनुष्योंके चित्त द्रवीभूत हो गये तथा मनमे श्रद्धा विशेष हो गई। श्रद्धा कितनी ही दृढ़ क्यों न हो किन्तु आचारणके पालन विना केवल श्रद्धा अर्थकरी नहीं। श्रद्धाके अनुरूप ज्ञान भी हो परन्तु आचरणके विना वह श्रद्धा और ज्ञान स्वकार्य करनेमे समर्थ नहीं।

हाथरससे सासनी ७ मील था। लगातार चलनेसे थक गये, ज्वर आ गया। श्री छेदीलालजीके आयहसे सासनी आये थे। इनके पिता बहुत ही धर्मात्मा थे। इनके कॉचका कारखाना है, वहाँ पर इनके पिताका निवास रहता था, आप निरन्तर ईसरी आते रहते थे, धार्मिक मनुष्य थे, आपकी धर्मक्चि वहुत ही प्रशस्त थी। ईसरी आश्रममे जितने गेहूँ व्यय होते थे सव आप देते थे। अव आपका स्वर्गवास हो गया है। आपके छेदीलाल और उनके लघुआता इस प्रकार दो पुत्र हैं। आप लोगोंने वेदी प्रतिष्ठा कराई जिसमें उस प्रान्तके वहुतसे जैनी भाई आये। आपके द्वारा एक हाईस्कूल भी सासनीमें चल रहा है। वहुत ही सुखसे यहाँ रहा। यहाँ पर १ विलक्षण प्रथा देखनेमें आयी कि जिस समय श्री जिनेन्द्रदेवक रथ निकल रहा था उस समय यहाँ के प्रत्येक जातिवालोंने श्री जिनेन्द्रदेवकों मेंट की। कोई जाति इससे मुक्त न थी। सर्व ही जनताने श्री महावीर स्वामीकी जय वोली। यवन लोगोंने ४०) मेंट किया तथा ब्राह्मण एवं वैश्योंने भगवानकी आरती उतारी। कहाँ तक कहे चर्मकारोंने २००) की मेंट की। खेद इस वातका है, हमने मान रक्खा है कि धर्मका अधिकार हमारा है। यह कुछ बुद्धिमें नहीं आता। धर्म वस्तु तो किसीकी नहीं, सर्व आतमा धर्मके पात्र हैं, ब्राधक कारण जो हैं उन्हें दूर करना चाहिये।

माघ वदी ४ संवन् २००५ का दिन था। श्राज वेगसे ज्यर श्रा
गया। मनमे ऐसा लगने लगा कि अव शारीरिक शक्ति चीण होती
जाती है। सम्भव है आयुक्ता श्रवसान शीव्र हो जावे अत कुछ आत्महित करना चाहिये। केवल स्वाध्याय आदिमें चित्तवृत्ति स्थिर
करना चाहिये, प्रपञ्चोंमें पड़ व्यर्थ दिन व्यय करना उचित नहीं।
संसारकी दशाका खेद करना लाभदायक नहीं। दूसरे दिन साधारण सभा थी, हमारा व्याख्यान था परन्तु हमसे समय पर यथार्थ
व्याख्यान न वन सका। हमारी शारीरिक शक्ति बहुत मन्द हो
गई हैं श्रव हम उतने शक्तिशाली नहीं कि १००० जनतामे व्याख्यान
दे सकें। श्रव तो केवल १० मनुख्योंमे व्याख्यान दे सकते हैं। शक्ति
हासको देखते हुए उचित तो यह है कि अव सर्व विकर्त्योंका त्याग
कर केवल आत्म-हित पर दृष्टिपात करें। गल्पवादके दिन गये, अव
श्रात्मकथामें रिसक होना चाहिये। श्राज रात्रिको पुनः वावा
भागीरथजी का दर्शन हुआ। श्रापने कहा—

'क्या चक्रमे फॅंस अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हो ? आत्माकी शान्ति पर पदार्थोंके सहकारसे बन्धनमे पड़ती है और बन्धनसे ही चतुर्गतिके चक्रमें यह जीव अमण करता है। हम क्या कहे ? तुमने श्रद्धाके अनुरूप प्रवृत्ति नहीं की। त्याग वह वस्तु है जो त्यक्त पदार्थका विकल्प न हो तथा त्यक्त पदार्थके अभावमे अन्य बस्तुकी इच्छा न हो। नमकका त्याग मधुरकी इच्छा बिना ही सुन्दर है।'

अगले दिन प्रातः नियमसारका प्रवचन हुआ । उसमें श्री कुन्द-कृन्द महाराजने जो आवश्यककी व्याख्या की वह बहुत ही हृदयप्राही व्याख्या है । तथाहि

> जो ग्र हवदि श्रग्णवसो तस्स दु कम्मं भग्ति श्रावासं। कम्मविणासग्जोगो गिव्दादिमग्गो ति पिज्जुत्तो॥१४१॥

श्रयात् जो जीव श्रन्यके वश नहीं होता है उसे श्रवश कहते हैं श्रोर उसका जो कर्म है उसे श्रवश्य कहते हैं। वही भाव कर्म विनाश करनेके योग्य है। उसीको निर्वृति मार्ग है ऐसा निरूपण किया है। कुन्दकुन्द स्वामीकी वात क्या वहें उनका तो एक एक शब्द ऐसा है मानो श्रमतके सागरमें श्रवगाहन कर वाहर निकला हो। लोग हमारे जीवनचरित्रकी चर्चा करते हैं परन्तु उसमें है क्या ? जीवनचरित्र उसका प्रशंसनीय होता है जिसके द्वारा कुछ श्रात्महित हुआ हो। हम तो सामान्य पुरुप हैं। केवल जन्म मानुषका पाया परन्तु मानुष जन्म पाकर उसके योग्य कार्य न किया। मानुष जन्म पाकर कुछ हित करना चाहिये।

माघ वदी ६ सं० २००५ को मध्याहकी सामायिक पूर्ध होते होते अलीगढ़के महानुभाव आ गये जिससे वहाँके लिये प्रस्थान कर दिया। यहाँसे अलीगढ़ ३ मील था। १ मील चलकर वागमे ठहर गये। वहाँसे गाजे-वाजेके साथ खिरनीसरायके मन्दिरमे गये। श्रानन्दसे दर्शन कर मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। स्थान स्यागियोंके ठहरने योग्य नहीं। यदि वास्तवमें धार्मिक वृद्धि है तो त्यागीको गृहस्थके मध्यमें नहीं ठहरना चाहिये। गृहस्थोंके संपर्कसे वुद्धिमे विकार हो जाता है श्रौर विकार ही श्रात्माको पतित करता है श्रतः जिन्हें श्रात्महित करना है वे इन उपद्रवोसे सुरचित रहे।

श्रलीगढ़ वह स्थान है जहाँ पर श्री स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी साह्वका जन्मस्थान था। श्रापका पाण्डित्य वहुत ही प्रशस्त था, श्रापके भजनोंमे समयसार गोम्मटसार श्रादि व्रन्थोंके भाव भरे हुए हैं। छहढाला तो आपकी उतनी सुन्दर रचना है कि उसके अच्छी तरह ज्ञानमें आने पर आदमी पण्डित वन सकता है। पण्डित ही नहीं मोत्तमार्गका पात्र वन सकता है। 'सकल झेय झायक तदपि' स्तोत्रमें समस्त सिद्धान्तकी कुञ्जी वता दी है। स्तवन करनेका यथार्थ मार्गप्रदर्शन कर दिया है। यहीं पर वर्तमानमे पण्डित श्रीलालजी' हैं। स्त्राप संस्कृतके प्रौढ़ विद्वान हैं। स्त्रापकी श्रद्धा वीस् पन्थके ऊपर दृढ़ हो गई है। श्राप पहले खड़े होकर पूजा करते थे, श्रव वैठकर करने लगे हैं तथा श्रपने पत्तको श्रागमानुकूल पुष्ट करते हैं। हमारा श्रापसे प्राचीन परिचय है। श्रापके पुत्र कमलकुमारजी हैं। श्रापने मध्यमा तक व्याकरणका श्रध्ययन किया है। पण्डितजीके पिता पं० प्यारेलालजी धर्मशास्त्रके उत्तम विद्वान थे। गोम्मटसारादि यन्थोंके मर्मज्ञ थे। छहढालाके श्रर्थको घण्टों निरूपण कर सभा को प्रसन्न कर देते थे। श्रापके तक वहुत प्रवल शक्तिमय थे। श्रच्छे श्रच्छे वक्ता श्रापको मानते थे। श्रापकी श्रद्धा दिगम्बर श्राम्नायमे तेरापन्थको माननेकी थी। हम तो उनको श्रपना हितेषी

१. श्रव श्रापका देहान्त हो गया है।

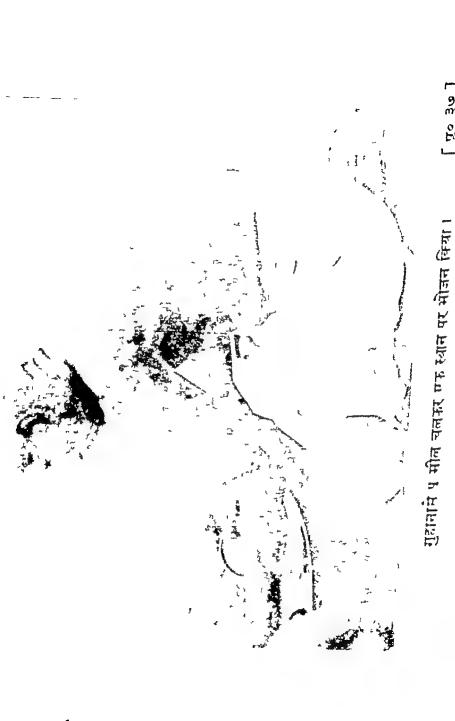
मानते थे, क्योंकि उन्हींके उपदेशसे जैनधर्मके श्रध्ययनमें हमारी रुचि हुई थी। श्रापके द्वारा जैन जनतामें स्वाध्यायका विशेष प्रचार हुआ। श्राप जैनधर्मकी वृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करते थे। यहीं पर एक छीपीटोला है। वहाँ पर ३ जिन मन्दिर हैं। इसी टोला मे श्री हकीम कल्याणराय जी रहते थे। श्राप महासभाके मुख्य उपदेशक थे। श्रापके द्वारा महासभाका सातिशय प्रचार हुआ। इस टोलामे १ मन्दिरमें श्री महावीर स्वामीकी पद्मासन प्रतिमा बहुत ही रस्य विराजमान है जिसे श्रवलोकन कर परम शान्तिका परिचय होता है।

यहाँ वागके मन्दिरमें सार्वजनिक सभा हुई जिसमें बहुत वक्तात्रोंके भाषण हुए। मेरा भी व्याख्यान हुत्रा। मैं वृद्धावस्थाके कारण पूर्ण रूपसे व्याख्यान नहीं दे सकता फिर भी जो कुछ कहता हूं हृदयसे कहता हूं। मेरा श्राभिप्राय यह है कि श्रात्मा श्रपने ही श्रपराधसे संसारी बना है श्रीर श्रपने ही प्रयत्नसे मुक्त हो जाता है। जब यह श्रात्मा मोही रागी द्वेपी होता है तब स्वयं संसारी हो जाता है तथा जब राग द्वेप मोहको त्याग देता है तब स्वयं मुक्त हो जाता है, श्रतः जिन्हे संसार बन्धनसे छूटना है उन्हें उचित है कि राग द्वेप मोह छोड़ें।

श्रात्मपरिण्तिको निर्मल वनानेके जो उपाय हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ श्रात्माववोध है। परसे भिन्न श्रपनेको मानो, भेदविज्ञान ही ऐनी वस्तु है जो श्रात्माका वोध करता है। स्वात्मवोधके विना राग द्वेपका श्रभाव होना श्रति कठिन क्या श्रसंभव है श्रतः श्रावश्यकना उस वातकी है कि तत्त्वज्ञान सम्पादन किया जाय। तत्त्वज्ञानका कारण श्रागमज्ञान है। श्रागमज्ञानके लिये यथाशक्ति व्याकरण न्याय तथा श्रलंकार शास्त्रका श्रभ्यास करना चाहिये। में योलनेमें

बहुत दुर्वेल होगया हूं, क्योंकि मेरी यह दृढ़ श्रद्धा है कि मैं जो कहता हूँ उसका स्वयं तो पालन नहीं करता अन्यसे क्या कहूं ? यही कारण है कि मैं उपदेशमें संकोच करता हूं। वास्तवमें वही श्रात्मा सुखका पात्र हो सकता है जो कथनपर श्रारूढ़ होता है। न तो हम स्वयं तद्रूप होनेकी चेष्टा करते हैं ऋौर न अन्य पर उसका प्रभाव डाल सकते हैं। इसका मूल कारण केवल कपायकी कुशताका अभाव है। उस आत्माको ही उपदेश देनेका अधिकार है जो स्वयं मार्गपर चले । केवल शब्दोंकी मधुरता श्रौर सरलता श्रन्य पर प्रभाव नहीं डाल सकती। उचित तो यह है कि हमें इस वातका प्रयत्न करना चाहिये कि हम प्रथम उस पर अमल करें अनन्तर परको वतानेकी चेष्टा करें तभी सफल हो सकते हैं। प्रतिदिन सुन्दर विचार त्रात्मामे त्राते हैं परन्तु उन पर त्रारूढ़ नहीं होते त्रतः जैसे आये वैसे न आये, कुछ लाभ नहीं। केवल कथावादसे कोई लाभ नहीं, लाभ तो उस पर हृदयसे श्रमल करनेमे है। देहलीसे पं० राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री आ गये और पं० चन्द्रमौलि जी हमारे साथ ही थे। त्र्राप लोगोंके भी उत्तम व्याख्यान हुए। परन्तु स्वभावमे परिवर्तन होना कठिन है। स्वभावसे तात्पर्थ पर निमित्तक भावोंसे है। श्रनादिकालसे हमारी प्रवृत्ति श्राहारादि संजाश्रोंमें हो रही हैं। श्रात्माका स्वभाव ज्ञायक भाव है। ज्ञायक भावमे ज्ञयका श्रनुभव होना ही कष्टकर है।

अलीगढ़से चलकर वागके मन्दिरमे आये। वहां १ घण्टा रहे। हकीम इन्द्रमिए जीने व्याख्यान दिया। यहांसे चलने पर विजली-वालोंने वहुत रोका पर हम लोग नहीं रके। लोगोंमे भक्ति वहुत हैं परन्तु भक्ति जिसकी की जाती है वह पात्र नहीं, वेषमात्र है। कुछ भी हो, अलीगढ़का पहला वैभव चलते चलते ऑखोंके सामने भूलने लगा।



## मेरठकी श्रोर

श्रालीगढ़से भाक़री ६ मील है। यहाँ पर ठहर गये। प्रातःकाल यहाँसे ४ मील चलकर नगरियाकी धर्मशालामें भोजन किया। १२३ वजे सामायिक कर चल दिये श्रौर ३ बजे गुहानाकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँ पर १ वाग है। बीचमें १ छोटा सा सरोवर है। उसमें शिवजीका मन्दिर है। वाग सुन्दर है। यहाँ पर श्रालीगढ़से ५ मनुष्य श्राये । उनसे स्वाध्यायकी बात हुई तो उत्तर मिला करते हैं। हम इतरको उपदेश दानमें चतुर हैं स्वयं करनेमें असमर्थ हैं। केवल वेष वना लिया श्रौर परको उपदेश देकर महान् बननेका प्रयत्न है। यह सब मोहका विलास है। गुहानासे ५ मील चलकर एक स्थान पर भोजन किया। यहाँ पर १ त्र्ययवाल मनुष्य बहुत ही सज्जन था जिसका नाम मुमे स्मृत नहीं रहा। उसने घरसे लाकर ऽ२ सेर गुड़, श्राटा, नमक, दुग्ध संघके श्रन्य लोगोंके भोजनके लिये दिया । बहुत ही श्रद्धासे भोजन कराया । जैनी लोगोंकी श्रवेत्ता इनमें श्रद्धा न्यून नहीं परन्तु जैनी त्यागी इसका प्रचार नहीं करते। यहाँसे चलकर दमारामें १ वैश्यकी दूकानमें ठहर गये। स्थान तो अच्छा था परन्तु मिक्सकाओं की बहुलतासे खिन्न रहे। इम ६ आदमी यहाँ रह गये। बाकी सब लोग खुरजा चले गये। ग्राम है, जलवायु उत्तम है। यहाँ एक वेदान्ती ठाकुर मिले, शान्तपरिणामी थे।

सं० २००५ माघ सुदी ३ को प्रातः १० वजे खुरजा पहुँच गये । यह वही खुरजा है जहाँ पर राणीवाले प्रसिद्ध सेठ रहते थे । उन्हींके

मुख्य पुत्र सेठ मेवारामजी थे जो सेठ ही नहीं उस समयके प्रमुख विद्वान् थे। उस समय श्रापकी गणना विद्वानोंमें ही नहीं प्रमुख सेठोंमे भी थी। श्राप विद्याके रसिक थे। एक संस्कृत वियालय भी श्रापके द्वारा चलता था जिसमें २५ छात्र श्रध्ययन करते थे। छात्रोंको मोजनाच्छादन आपकी तरफसे था। क्वीन्स कालेज बनारसकी मध्यमा परीक्षा तक व्याकरण न्याय काव्यका ऋध्ययन होता था। श्राप स्वयं श्रध्ययन श्रध्यापन करते कराते थे। श्राप विद्वान ही न थे बक्ता श्रौर बाग्मी भी थे तथा श्रार्यसमाजके विद्वानोंसे शास्त्रार्थ भी करते थे। यहाँ पर पं० तेजपाल जी भी प्रसिद्ध विद्वान् थे, आप विद्वान् ही नहीं धनाढ्य भी थे। यहीं पर पण्डित नैनसुख-दासजी थे जो स्त्री सभामें शास्त्र पढ़ते थे। यहीं पर श्रीसेठ मेवाराम जीके चाचा सेठ श्रमृतलालजी थे जो श्रत्यन्त धर्मात्मा श्रीर शासके वक्ता थे। त्र्यापकी प्रवृत्ति त्र्यारम्भसे बहुत भयभीत रहती थी। बहु श्रारम्भकी श्राप निरन्तर निन्दा करते थे । मिलके कार्योंसे आपको महती घृणा थी। आप छात्रोंकी निरन्तर दान देते थे। श्राप सात भाई थे, सातों ही सम्पन्न श्रौर धार्मिक विचारोंके थे। मैंने भी खुर्जामें विद्याभ्यास किया था। बनारसकी प्रथमा परीचा यहींसे दी थी। यहीं पर न्याय पढ़ना श्रारम्भ किया था। पण्डित चण्डीप्रसादजी जो कि व्याकरणके निष्णात विद्वान् थे उनसे पढ़ना शुरू किया था। सेठ मेवारामजी उन दिनों मुक्तावली श्रादिका श्रध्ययन कर चुके थे। व्याकरणकी मध्यम परीचा उत्तीर्ण हो चुके थे। यहाँ पर १ सुन्दरताल वैश्य थे जो वहुत व्युत्पन्न थे।

वर्तमानमें सेठ मेवारामजीके सुपुत्र शान्तिप्रसादजी वहुत ही योग्य हैं। उनके घर श्राहार हुश्रा, श्राप वहुत कुशल हैं, धर्ममे श्रापकी रुचि वहुत है, तत्त्वज्ञानके सम्पादनमें बहुत प्रयत्नशील हैं। श्रापके कमरामे सरस्वतीभवन है। सव तरहकी पुस्तकें श्रापके भण्डारमें विद्यमान हैं। हस्तिलिखित शास्त्र भी १०० होंगे। सत्यार्थप्रकाश भी प्रायः जितने प्रकारके मुद्रित हैं सर्व यहाँ पर हैं। प्रायः मुद्रित सभी पुराण इनके पास हैं। श्रापके कुदुम्वकी लगभग १०० जनसंख्या होगी। प्रमुख व्यक्ति यहीं पर रहते हैं। खुर्जा श्राते ही पिछले दिन स्मृति पटलमें श्रद्धित हो गये। उस ज्योतिषीकी भविष्यवाणी भी याद श्रा गई जिसने कहा था कि तुम वैशाखके वाद खुर्जा न रहोगे। मोहजन्य संस्कार जब तक श्रात्मामे विद्यमान रहते हैं तब तक यह चक्र चलता रहता है। जब तक श्रन्तरङ्गसे मुच्छी नहीं जाती तब तक कुछ नहीं होता। केवल विकल्पमाला है। मोहके परिणामोंमें जो जो क्रिया होती है करना पड़ती है। श्रानन्दका उत्थान तो कषाय भावके श्रभावमे होता है। गल्पवादसे यथार्थ वस्तुका लाभ नहीं। संसारमे श्रनेक प्रकारकी श्रापत्तियाँ हैं जिन्हे यह जीव माहवश सहन करता हुश्रा भी उनसे उदासीन नहीं होता।

खुर्जीमें ३ दिन रह कर चल दिये। नहरके बांध पर श्राये। पानी वड़े वेगसे वरसा श्रीर हम लोग मार्ग भूल गये परन्तु श्री चिदानन्दजीके प्रतापसे उस विरुद्ध मार्गको त्याग कर श्रनायास ही सरल मार्गपर श्रा गये। रात्रि होते होते एक प्राममें पहुंच गये। यहां जिसके गृहमे निवास किया था वह चित्रयका था। रात्रिमें उनकी मांने मेरे पास एक चहर देखकर वडी ही दया दिखलाई। बोली—वावा! शरदी बहुत पड़ती है, रात्रिको नींद न श्रावेगी, मेरे यहां नवीन सौड (रजाई) रक्खी है, श्रभी तक हम लोगोके काममे नहीं श्राई, श्राप उसे लेकर रात्रिको सुख पूर्वक सो जाइये श्रीर में दूध लाती हूं उसे पान कर लीजिये, खुर्जीसे श्राये हो थक गये होगे, इससे श्रधिक हम कर ही क्या सकती हैं ? श्राशा है हमारी

प्रार्थनाको त्र्याप भड़ न करेंगे। मैंने कहा — मां जी! मैं यही वस्त्र त्रोढ़ता हूं तथा रात्रिको कुछ खान पान नहीं करता हूं। वुढ़ियां मां सुन कर बहुत उदासीन हो वोली — सुमत्को वहुत ही क्लेश हुआ। श्रव एक प्रार्थना करती हूँ कि प्रातः काल मेरे यहाँ भोजन कर प्रस्थान करें। अनन्तर हम लोग शयन कर गये। प्रातःकाल हुआ सामायिक कर चलने लगे तो बूढ़ी माँ आ गई और बोली कि यह क्या हो रहा है ? हमने कहा—माँ जी ! जा रहे हैं । यह वोली -यह शिष्टाचारके अनुकूल आचरण नहीं। हमने कहा —माँ। किर घाम हो जावेगा। उसने कहा—यह उत्तर शिष्टाचारका विवातक है। अच्छा, तुम्हारी जो इच्छा सो करो किन्तु २) ले जाओ उनके फल लेकर सब लोग व्यवहारमे लाना तथा पुत्रसे बोली—वेटा! घरके ताँगामें उनका सामान भेज दो। हम लोग बुढ़िया माँके व्यवहारसे सन्तुष्ट हो चल दिये और मार्गमे उसीके सौजन्य पूर्ण व्यवहारकी चर्चा करते रहे। उसका बेटा महावीर राजपूत २ मील तक पहुँचाने आया और मेरे बहुत आग्रह करने पर वापिस लौटा । मेरे मनमें श्राया कि यदि ऐसे जीवोंको जैनधर्मका यथार्थ स्वरूप दिखाया जाय तो वहुत जनताका कल्याण होने।

खुर्जासे ४ मील चल कर बुलन्दराहर श्रागये श्रीर वहाँ वालोंने शिष्टाचारके साथ हमें मन्दिरजीकी धर्मशालामे ठहरा दिया। यहाँ पर मन्दिरजीके नीचे भागमें मन्दिरकी दुकानमें एक सज्जन मनिहारीकी दुकान किये थे उन्हींके घर पर भोजन हुआ। श्राप बहुत ही उदार व्यक्ति थे, श्रापका व्यापार लाहौरमें होता था, बहुत ही धनाट्य थे परन्तु लाहौरके पाकिस्तानमें जानेसे श्राप यहाँ श्रा गये श्रीर श्रापकी सम्मत्तिका बहुत भाग वहाँ ही रह गया। इसका श्रापको खेद न था, श्रापके हृदयसे यही वाक्य निकले कि संसारमें यही होता हैं। जहाँ पर सहस्रों नरेशोंको

परम्परागत श्रधिकारोंसे विश्वत होना पड़ा तथा अंग्रे जोंका श्रखण्ड प्रताप श्रस्त हो गया वहाँ हमारी इस दशा पर श्राश्चर्यकी कौन वात है ? श्रथवा श्रन्यकी कथा त्यागों श्राप स्वयं श्रपनी दशाको देखो । क्या चालीस वर्ष पहले श्राप इसी तरह यष्टिके सहारे चलते थे ? श्रस्तु, इस कथाको छोड़ो श्रोर मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन कीजिये । श्रनुकूल कारणके सद्भावसे चित्तमे शान्तिका परिचय हुआ । श्रात्मानुशासनका स्वाध्याय किया—

श्री गुणभंद्राचार्यका कहना है कि हे श्रात्मन् । तुम दुःखसे भयभीत होते हो श्रीर सुखकी बाँछा करते हो श्रतः जो तुन्हे श्रभीष्ट है उसीका हम श्रनुशासन करेंगे । देखा जाता है संसारमें श्राणी-मात्र दुःखसे हरते हैं श्रीर सुखकी श्रमिलापा करते हैं। यदि उनकी श्रमिलापाके श्रनुकूल उन्हें मार्ग मिल जाता है तो उनकी श्रात्माको शान्ति हो जाती है परन्तु यह संसार है, श्रनन्त दुःखोंका भण्डार है इसमें श्रनुकूल मार्गदर्शकोंकी श्रत्यन्त श्रुटि है।

> जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युवृ योत्यिताः। इर्लभा हान्तराद्री ये जगदभ्युजिहीर्षवः॥

श्रयात् संसारमें ऐसे मनुष्य श्रीर मेघ सुलभ हैं जो वाचाल श्रीर वृथा गर्जना करनेवाले हैं। जगत्के मनुष्योंको व्यामोहमें हालनेवाले शब्दोंकी सुन्दर सुन्दर रचना द्वारा श्रपनेको छत्कृत्य माननेवाले मनुष्योंकी गणनातीत संख्या है इसी प्रकार घटाटोपसे गर्जन करनेवाली श्रगणित मेघमालाएँ श्राकाशपथमें प्रकट होकर विलीन हो जातीं हैं परन्तु जलग्रन्य होनेके कारण जगत्की उपकारिणी नहीं होतीं। श्रवः बन्धुवर्ग! जो वक्ता श्रात्महितका उपदेश करें मन्दक्षायी हों, निर्लोम, निर्मान, निर्माय तथा चमा गुण संयुक्त हों उनके मुखसे शास्त्र श्रवण कर श्रात्मकल्याणके

मार्गमे लग जात्रो। मनुष्य जन्मका लाभ श्रति कठिन है, संयम-का साधन इसी पर्यायमें होता है। सब प्रकारकी योग्यता यहाँ हैं। नारकी तो श्रनन्त दुःखके ही पात्र हैं। तिर्यक्रोंमे भी वहुभाग निरन्तर पर्याय वुद्धिमे ही काल पूर्ण करता है। कुछ अन्य तिर्येख्व संज्ञी पर्यायके पात्र होते हैं। उनमे अधिकांश तो महाहिंसक कर ही जन्म पाते हैं। कुछ सरल-भद्र भी होते हैं। इन दोनों प्रकारके तिर्युद्धोमें जिनके मन है वे सम्यग्दर्शन और देशसंयमके पात्र हैं परन्तु विरले हैं। देवों मे शुभोपयोगके कार्योंकी मुख्यता है परन्तु कितना ही प्रयत्न करें संयमसे विश्वत ही रहते हैं। मन्द कषाय हैं, शुक्ललेश्या तक हो सकती है परन्तु वह लेश्या मनुष्य पर्याप्तमें संभवनीय शुक्ललेश्यासे न्यून ही है। मनुष्य जन्ममें संसार नाशका साचात् कारण जो रत्नत्रय है वह हो सकता है। मनुष्य ही महाव्रतका पात्र हो सकता है। ऐसे निर्मल मनुष्य जन्मको पा कर पञ्चेन्द्रियोंके विषयमे लीन हो खो देना बुद्धिका दुरुपयोग है। श्राप लोग सम्पन्न हैं, नीरोग हैं श्रोर साधन श्रच्छे हैं। यदि इस उत्तम अवसरको पा कर श्रात्महितसे बिद्धित रहे तो अन्तमे पश्चात्ताप ही रह नावेगा, अतः नहाँ तक वने आत्मतत्त्वकी रज्ञा करो। उससे अधिक मैं नहीं जानता। श्रव हमको जाना है श्राप लोग श्रानन्दसे रहिये।

प्रवचनके वाद बुलन्दशहरसे ४ मील चल कर एक कूप पर विश्रामके अर्थ रह गये और १५ मिनटके अनन्तर वहाँसे प्रस्थान कर २ मीलके उपरान्त एक धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशालाके समीप ही एक शिवालय था, उसमे सायंकाल बहुतसे भद्र मनुष्य आये और सन्ध्या वन्दन कर चले गये। अन्तमें १ महाशयने प्रश्न किया कि संसारमे मनुष्यका क्या कर्त्तव्य हैं १ यह तो महादुः खका सागर हैं १ प्रश्नके उत्तरमें मैंने कहा-दुख क्या हैं १ वह महाशय वोले— जो नाना प्रकारकी अभिलापाएँ होती हैं वही दुःख है। मैंने कहा-जव यह निश्चय हो गया कि श्रमिलापाएँ ही दुःख है तव इन्हें त्यागना ही दु.खनिवृत्तिका उपाय है। किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नही। इतना ही मामिक तत्त्रवेत्ता कहेगे। दुःख निवृत्तिका उपाय जव यही है तव दुःखके मूल कारणोंसे अपनेको सुरक्षित रखना मनुष्यका कर्तव्य श्रनायास सिद्ध है। श्राजकी कथा तो प्रत्यत्त ही हैं। संसारमे जिसकी आवश्यकताएँ जितनी अधिक होंगी वह उतना ही अधिक दुःखका पात्र होगा। जितनी कम अभि-लाषाएँ होगी वह उतना ही कम दुःखका पात्र होगा इससे अधिक उपदेश कल्याग्रमार्गका है नहीं। दुःखका मूल कारण परमे निजकी कल्पना है। जिसने इस कल्पनाकी उत्पत्तिको रोका उसने संसारका वीज ही उच्छेद कर डाला। देव गुरु श्रीर श्रागमकी उपासनाका भी यही सार है। यदि मोह नष्ट हो गया तो विषाक दन्तके विना सर्प जिस प्रकार फरण पटकता रहे पर कुछ श्रहित करनेको समर्थे नहीं उसी प्रकार श्रन्य विभाव काम करता रहे पर श्रात्माका छछ. पदार्थ विगाड़ नहीं सकता इसे हम और आप जानते हैं। यदि विशेष जाननेकी इच्छा हो तो विशिष्ट विद्वानोंके पास जास्रो। मेरा उत्तर सुन उसका चित्त गद्गद हो गया।

यहाँ रात्रिको ठण्डका बहुत प्रकोप हुआ परन्तु जब निरुपाय कोई उपद्रव आ जाता है तब एक सन्तोप इतना प्रवल उपाय है कि उससे वह उपद्रव विना किसी उपायके स्वयमेव शान्त हो जाता है। यहाँसे प्रातःकाल चले। लगभग ६ मील चले होंगे कि एक वैष्णव धर्मको माननेवाली महिला आई और उसने बहुतसे फल समर्पण किये। बहुत ही आदरसे उसने कहा कि हमारा भारतवर्प-देश आज जो दुर्दशापन्न हो रहा है उसका मूल कारण साधु लोगोंका अभाव है। प्रथम तो साधुवर्ग ही यथार्थ नहीं और जो कुछ है वह

अपने परिमहमें लीन है। कोई उपदेश भी देते हैं तो तमाखू छोड़ो, भाँग छोड़ो, रात्रिको मत खात्रो " यह उपदेश नहीं देते, क्योंकि वे स्त्रयं इन व्यसनोके शिकार रहते हैं। यथार्थ उपदेशके श्रभावमें ही देशका नैतिक चारित्र निर्मल होनेकी जगह मलिन हो रहा है। यद्यपि सम्प्रदाय भेद होनेसे भिन्न भिन्न सम्प्रदायके साध हैं तथापि त्रात्माको चैतन्य मानना पञ्च पाप त्यागना यह तो प्राणिमात्रके लिये उपदेश देना चाहिये। इसमे क्या हानि है ? अथवा यह तो दूर रहो प्रथम तो उपदेश ही नहीं देते। यदि देते भी हैं तो ऐसा उपदेश देवेंगे जिसका सामान्य मनुष्योंको बोध भी नहीं होगा कि महाराज क्या कह रहे हैं ? आप पैदल यात्रा करते हैं यह बहुत ही उत्तम है परन्तु आप जो आपके परिकरमें हैं उन्हें उपदेश देवेंगे या जहाँ जैन जनता मिल जावेगी वहाँ उपदेश देवेंगे। हम लोगों को आपके पैदल भ्रमणसे क्या लाभ ? आपको तो सर्व प्राणिवर्गके साथ धार्मिक प्रेम रखना चा हिये। धर्म तो धर्मीका होता है। हम भी तो धर्मी ( श्रात्मा ) हैं श्रतः हमको भी धर्मका तत्त्व सममाना चाहिये। मेरा तो दृढ़तम विश्वास है कि यदि वक्ता सुवोध श्रौर दयालु है तो श्रोतागण उससे अवश्य लाभ उठावेंगे । हम लोग इतने संकुचित विचारके हो गये हैं कि इतरको दीन समक सदुपदेशसे वचित रखते हैं। मैं तो इसका श्रर्थ यह जानती ह कि जो वक्ता स्वयं मोचमार्गसे विद्वित है वह इतरको उससे न्ताभान्तित कैसे कर सकता है ? अतः मेरी आपसे नम्र प्रार्थना है कि श्राप श्रपनी पैदल यात्राका यथार्थ लाभ उठावें। वह लाभ श्राप तभी उठा सकेंगे जव धर्मका उपदेश प्राणीमात्रके लिये श्रवण करावेंगे। जो वातें मैंने श्रापके समच् प्रद्शित की यदि उनमें कुछ त्तथ्यांश दृष्टिमें श्रावे तो उन्हें स्वीकृत करना श्रन्यया त्याग देना। इतना वोलनेका साहस मैंने आज ही किया और आपने सुन लिया

यह त्रापकी शिष्टाचारता है। श्रव मै श्रापका श्रधिक समय नहीं लेना चाहती \*\*\*\* \*\*\* इतना कह प्रणाम कर वह चली गई।

महिला चली गई श्रौर हृद्यके श्रन्दर विचारोंका एक संघर्ष छोड़ गई। उसके चले जाने पर मैंने बहुत कुछ मानसिक परिश्रम किया। मनमे विचार आया कि क्यों तुम्हे एक अबला इतनी शिचा दे गई ? क्यों उसका इतना दम्भ साहस हुआ ? मैं तो उसका कथन श्रवण कर श्रात्मीय दुर्वलता पर ध्यान देने लगा। विचार किया कि ७४ वर्षकी आयु होनेवाली है परन्तु तुमने आज तक शान्ति नहीं पाई। प्रथम तो सम्यग्दर्शन होनेके बाद आत्मामे अनन्त संसारकी विच्छित्ति हो जानेसे अनन्त ही शान्ति आना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण कषाय शान्तिकी घातक नहीं । केवल ईषत् संयम जिसे देशसंयम कहते हैं नहीं होने देती । देशसंयम घातक कषाय आत्मस्वरूपके बोध होनेमें वाधक नहीं। श्रनन्तानु-वन्धी कपायके श्रभावमे श्रात्मा हर समय चाहे स्वात्मोपयोगी हो चाहे पर पदार्थोंके ज्ञानमें उपयुक्त हो आत्मश्रद्धासे विचलित नहीं होता। यही कारण है कि यह सर्व संसारके कार्योंमे व्यय रहने पर भी व्यत्र नहीं होता। उसकी महिमा अवर्णनीय और श्रचिन्त्य है। जिस दिन सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो गया उस दिन श्रात्मा कतु त्वधर्मका स्वामी मिट गया।

श्रज्ञानके कारण ही यह श्रात्मा पर पदार्थोंका कर्ता बनता फिरता है, श्रतः जब श्रज्ञानभावकी—मोह मिश्रित ज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है तव यह श्रकर्ता हो जाता है। किसी पदार्थका श्रपने श्रापको कर्ता नहीं मानता। जिसे इस तत्त्वकी प्राप्ति हो चुकी उसे श्रव चिन्ता करनेकी कौन सी वात है १ जिसके पास १६६६६६६) रुपये ६३ पैसे श्रोर २ पाई हो गई उसे कोट्यधीश कहना कुछ श्रत्युक्ति नहीं परन्तु परमार्थसे श्रभी १ पाईकी कमी

चसे कोट्यधीश नहीं कहने देती। इसी प्रकार श्रमन्त संसारका अभाव होने पर भी अभी उस जीवको हम सर्वज्ञ-केवली नहीं कह सकते। कहनेका तात्पर्य यह है कि जव जीवके सम्यग्दर्शन हो जाता है उस समय उसकी श्रात्मामें जो शान्ति श्राती है उसका अनुभव उसी आत्माको है अन्य कोई क्या उसका निरूपण करेगा ? इतना होने पर भी यदि वह अन्तरङ्गसे खिन्न रहता है न्तो मेरी बुद्धिमें तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। व्यर्थ ही व्रती वननेका मान करता है। मोक्षमार्गमें जो कुछ कला है इसी सम्य-उदशीनकी है। विवाहमें मुख्यता वरकी है वरातियोंकी नहीं। यदि वह चगा है तो सर्व परिकर सानन्द है। इसके श्रसङ्गावमें सर्व परिकरका कोई मुल्य नहीं अतः हम जो रात्रि दिन शान्तिके अर्थ रुदन करते हैं उस रुद्नको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि हम लोगोंकी जैनधर्ममें अकाट्य श्रद्धा है। शेष त्रुटि दूर करनेके अर्थ पुरुषार्थ करना चाहिये। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि धर्ममें हमारी रुचि है तो ऋवश्य ही हम मोक्समार्गके पात्र हैं। श्री समन्तमद्रस्त्रामीने कहा है कि सम्यक्त्वके समान श्रेयस्कर श्रोर मिथ्यात्वके समान श्रश्रेयस्कर न्त्र्यन्य नहीं । श्रस्तु इस विषयमे विवाद न कर निरन्तर शान्तभावोंका ज्याजन करो। मनमें यही विचार आया कि-गल्पवाद मत करो, सहसा उत्तर मृत दो, हठ मृत करो किसीको अनिष्ट मृत वोलो, जो उचित वात हो उसके कहनेमें संकोच मत करो, आगमके प्रतिकूल मत चलो। न धर्म वाह्य चेष्टामे है श्रीर न श्रधर्म, उसका तो सीधा सम्बन्ध श्रात्मासे हैं। श्रात्माकी सत्ताका श्रनुमापक सुख दुःखका - अनुभव हैं तथा प्रत्यभिज्ञान भी आत्माकी नित्यतामें कारण हैं, प्रत्येक मनुष्य सुखकी श्रभिलापा करता है।

इसी विचार निमग्नदशामें चल कर वुलन्दशहरसे म मील ज्याये श्रीर १ धर्मशालामें ठहर गये। यहाँसे ९ मील चल कर गुलावटीमें श्री मोहन जैसवालकी धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर कई बुढ़ियाँ आई और केला आदि चढ़ा गई । उन्होंने सममा कि यह उड़िया वावा हैं। श्रभी तक भारतमें वेषका श्रादर है। यहाँ पर मेरठसे वावू ऋपभदास जी आ गये। उन्हींके यहाँ भोजन किया। श्राप वहुत ही सज्जन हैं। यहांसे ३ मील चलकर १ धर्म-शालामें ठहर गये। एक कोठरी थी उसीमें ५ श्रादमियोंने गुजर किया। रात्रिको शीतका बहुत प्रकोप था। परन्तु श्रान्तमें वह प्रकोप गया । प्रातःकाल ७३ वजे जव दिनकरकी सुनहली सर्व ओर फैल गई तब चले। कुछ समय बाद लगा ब्राह्मणोंके प्राममें पहुँच गये, तगा लोग श्रपनेको त्यागी कहते हैं, ये लोग दान नहीं लेते हैं देते हैं। त्यागकी महत्ता समभते हैं। जिनके यहाँ ठहरे थे उनका पूर्वज बहुत विद्वान था। उनके घर बहुतसे प्रन्योंका संप्रह था, शिष्ट मानव था। मेरठसे दो चौका आ गये थे उन्हींके यहाँ भोजन किया। पिछले दिनों एक महिलाने प्रेरणा की थी कि जहाँ जाम्रो सर्व हितके लिये उपदेश दो, धर्मका प्रचार करो पर हमने उस पर कुछ भी चेष्टा न की। श्राखिर संस्कार भी तो कोई वस्तु है। वास्तवमे यही उपेक्षा हमारे उत्कर्षमे वाधक है। यहाँसे २ कोश चलकर हापुड़ आगये। यह बहुत भारी मण्डी है। यहाँ पर वर्तनोंका महान् व्यापार है तथा यहाँ पर २ वर्षमें करोड़ों रूपयेका सट्टा हो जाता है। सहस्रों मन गुड़ यहाँ पर प्रतिदिन आता है। यहाँ पर मन्दिर बहुत सुन्दर है। प्रतिमाएँ भी अत्यन्त मनोज्ञ हैं। आजकल कारीगर बहुत निपुण हो गये हैं। दर्शन करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीके गृहमें श्राये। बहुत ही सुन्दर गृह है। आपके ३ सुपुत्र हैं। तीनों ही बुद्धिमान् हें। आपका कुल धार्मिक है, आपके यहाँ शुद्ध भोजन बनता है तथा आपकी दानमें प्रवृत्ति श्रच्छी है। कन्याशालामें श्री चौ॰ रामचरणलाल

सागरकी बहिन है। यहाँके मनुष्य बहुत ही सज्जन हैं। १ खण्डेल-वाल भाईके वागमें जो शहरसे श्राधा मील होगा ठहर गये। श्रापने सर्व प्रकारकी व्यवस्था कर दी, कोई कष्ट नहीं होने दिया। मन्दिरमे २ दिन प्रवचन हुआ, मनुष्यं संख्या अच्छी उपस्थित होती थी। प्रवचन सुन मनुष्य बहुत ही प्रसन्न हुए परन्तु वास्तवमें जो वात होना चाहिये वह नहीं हुई श्रीर न होनेकी श्राशा है, क्योंकि लोग अपरी त्राहम्बरमें प्रसन्न रहते हैं अन्तरङ्गकी दृष्टि पर ध्यान नहीं देते। केवल गल्पवादमे समय व्यय करना जानते हैं। १ धमशाला मन्दिरके पास वन रही है। मन्दिरके पास वर्तन वनानेवाले वहुत रहते हैं। इससे प्रवचनमें अतिवाधा उपस्थित रहती है पर कोई उपाय इस विध्नके दूर करनेका नहीं हैं। शामको मेरठवाले आये और मेरठ चलनेके लिये प्रार्थना करने लगे जिससे हापुड़वालोंमे श्रीर उनमे वहुत विवाद हुआ। हापुड़के मनुष्योंको मेरे जानेका वहुत खेद हुआ परन्तु प्रवास तो प्रवास ही है। प्रवासमे एक स्थान पर कैसे रहा जा सकता है। फलतः माघ सुदी १३ को हापुड़से मेरठकी श्रोर प्रस्थान कर दिया। यहाँ निम्नांकित भाव मनमे स्राया-

'किसीकी मायामें न त्राना" यही बुद्धिमत्ता है। जो कही उस पर दृढ़ रहो, न्यर्थ उपदेष्टा मत बनो, किसीसे रुष्ट तथा प्रसन्न मत होत्र्यो, किसी संस्थासे सम्बन्ध न रक्खो, त्रापने स्वरूपका त्रातुः भवन करो, परकी चिन्ता छोड़ो, कोई किसीका कुछ उपकार नहीं कर सकता।'

## मेरठ

हापुड़से ४ मील कैली श्राय, एक जर्मीदारके वरण्डामे ठहर गये. श्रित सज्जन था। सत्कारसे रक्त्वा, दुग्धादि पान करानेकी



तदमन्तर चलकर एक बागमे ठहर गये।

बहुत चेष्टा की परन्त किसीने नहीं पिया। यहाँसे ३ सील चलकर खरखोंदा श्रा गये। यहाँ पर एक तगा ब्राह्मएके घर पर ठहर गये जो वहुत ही सज्जन था । इनके वावा तुलसीराम वहुत प्रसिद्ध पुरुष थे । निरन्तर दानमे प्रवृत्ति रखते थे। यहाँ तक दयाल थे कि निज उपयोगके पदार्थ भी परजनहिताय दे देते थे। ऐसे पुरुष बहुत कम होते हैं। यहाँ पर मेरठसे एक चौका आया था। उसीमे भोजन किया। यह प्राम ६००० मनुष्योंकी वस्ती है। यहो पर त्र्यनिवार्चे शिचा है। संस्कृतशाला तथा हाईस्कूल है। सव प्रकारकी सुविधा है। व्यापारकी मण्डी है। यहाँसे ११३ वजे चल दिये और १ मील चलकर मार्गमे सामायिक की। नगरके कोलाहलसे दूर निर्जन स्थान पर सामायिक करनेसे चित्तमे बहुत शान्ति ऋाई। तद्नन्तर चलकर एक वागमें ठहर गये। माघ सुदी पूर्णिमाको प्रातः तीन मील चलकर मेरठसे इसी श्रोर र मील दूरी पर १ वाग था उसमें ठहर गये। देहलीसे श्री राजकृष्णके भाई आये, उनके यहाँ भोजन हुआ। वहाँ १६ वजते-वजते मेरठसे वहुत जनसंख्या श्राकर एकत्र हो गई श्रीर गाजे-वाजेके साथ मेरठ ले गई। लोगोंने महान् उत्साह प्रकट किया। अन्तमें श्री जैन वोर्डिंगमें पहुँच गये श्रौर यहीं ठहर गये। यहाँ पर १ मन्दिर वहुत सुन्दर है, स्वच्छ है। १ भवन शास्त्रप्रवचन-का है जिसमें २०० मनुष्य तथा १०० महिलाएँ श्रानन्दसे शास्त्र अवण कर सकते हैं। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचन हुन्या। श्री वर्णी मनोहरलालजीने प्रवचन किया। श्रापकी प्रवचनशैली गम्भीर है, श्राप सस्टुतके श्रच्छे विद्वात हैं, कवि भी हैं, भजनोंकी श्रच्छी रचना की है, गान विद्यामें भी आपकी गति है, हारमोनियम श्रच्छा वजाते हैं, सौम्यमृतिं हैं। श्रापने सहारनपुरमे गुरुइल खोला है उसके अर्थ दुछ संकेत किया तो २००००) वीस हजार

स्पये हो गये। १००००) दस हजार तो आटेकी मिलवालोंने दिये। आपसे यहाँकी जनता प्रसन्न हैं। यहाँ वावू ऋषभदासजी साहव अच्छे विद्वान हैं। आपके प्रवचनसे हमें वहुत आनन्द आया। आपको चारों अनुयोगोंका ज्ञान है। जनता आपके प्रवचनों से वहुत प्रसन्न रहती है। आपने व्यापारका त्याग कर दिया है। आपके पुत्र भी वहुत सुशील हें। आपका कुटुम्च आपके अनुकूल हैं। आप विद्वान भी हैं, सदाचारी भी हैं, त्यागी भी हें, वक्ता भी हें। आपके समागमसे अपूर्व शान्ति हुई। आप गृहमे रहकर जलमें कमलके समान अलिप्त हैं। आपके साथ वार्तालाप करनेसे श्री आचार्य समन्तभद्रके रत्नकरण्डश्रावकाचारका श्लोक—

ग्रहस्थो मोच्नमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्। श्रनगारो ग्रही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥

याद श्रा गया श्रीर दृद्रतम विश्वास हो गया कि कल्याण मार्गका वाधक श्रन्य पदार्थ नहीं। इसका श्रर्थ यह नहीं कि निमित्त कारण कुळ नहीं करता। यदि पदार्थमे योग्यता है तो निमित्त उसके विकासमें सहकारी हो जाता है। चनामें विकास होनेकी योग्यता है, श्रतः उपण वालु पुञ्जका संसर्ग पाकर वह खिल जाता है। वालुका पिण्ड श्राग्नका निमित्त पाकर उपण तो हो जाता है परन्तु विकसित नहीं होता श्रीर निजकी योग्यता रहने पर भी श्राग्न रूप निमित्तकी सहायताके विना चना विकस्तित नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि कार्यकी सिद्धिमें पदार्थकी योग्यता श्रीर वाह्य निमित्तका श्रालम्बन दोनों ही कार्यकारी हैं।

मेरठ पहुँचते ही हमे वावा लालमनजीका स्मरण हो आया। श्रापकी कथा वड़ी रोचक है। आपके नेत्रोंकी दृष्टि जाती रही थी। एक दिन आप मन्दिरमे गये तो आपकी माला टूट गई। तव श्रापने नियम लिया कि श्रव तो मन्दिरसे तव ही प्रस्थान करेंगे जव माला पोलॅंगे या यहीं संन्यास धारण करेंगे। लोगोंने वहुत समभाया परन्तु आपने किसीकी शिचा नहीं मानी। २ दिन हुए कि श्रापको लघुशंकाकी वाधा हुई। उसके निवृत्त्यर्थं श्राप मन्दिरसे निकले परन्तु निकलते समय आपके शिरमें पत्थरकी चौखटका आघात लगा श्रीर मस्तक्से रुधिरधार वहने लगी। मालीने जलसे धोया शिरका विकृत भाग निकल जानेसे आपको दिखने लगा। इस घटनासे श्रापने गृह जानेका त्याग कर दिया श्रीर चुल्लक दीचा श्रंगीकार कर ली। श्राप प्रसिद्ध ज्ञुहक हुए। १५—१५ दिन तकके उपवास करनेमे आप समर्थ थे। आप धर्मप्रचारक भी श्रच्छे थे। वीसों स्थानों पर श्रापने जिन मन्दिर निर्माण कराये, अनेकोंको माँस भन्नएका त्याग कराया और अनेकोंको मन्दिर-मार्गी वनाया। जिसके पीछे पड़ जाते थे उसे कुछ न कुछ त्याग करना ही पड़ता था। श्रापकी तपस्याका प्रभाव श्रनेक व्यक्तियों पर पड़ता था। त्र्याप यदि विद्वान् होते तो कई विद्यालय स्थापित करा जाते परन्तु उस स्रोर स्रापकी दृष्टि न गई, फिर भी स्रापने जैनधर्मका महान् उपकार किया, स्वयं निर्दोष चारित्र पालन किया, श्रीरोंको भी पालन करानेका पूर्ण शक्तिसे प्रचार किया। एक बारकी वात है कि आप सिंहपुरीकी यात्राको गये थे और मैं भी वहाँके दर्शनके लिये गया था। श्रापके दर्शनका श्राकस्मिक लाभ हो गया। मैंने सविनय श्रापको प्रणाम किया। फिर क्या था १ श्राप कहते हैं - कौन हो ? मैंने उत्तर दिया छात्र हूं । आपने कहा - कहाँ श्रध्ययन करते हो १ मैंने कहा—स्याद्वाद विद्यालयमें । श्रापने प्रश्न किया—कुछ त्याग कर सकते हो १ मैंने विचार किया—हम छात्र हैं, श्रतः क्या त्याग कर सकते हैं १ हमारे पास कुछ द्रव्य तो

है नहीं। फिर भी जो वनेगा १ श्राना २ श्राने किसी गरीवको दे देवेंगे। इस विचारके श्रनन्तर मैंने सहर्ष स्वीकृत किया कि-कर सकते हैं। अच्छा महाराज बोले—तुमको भोजनमें सबसे प्रिय शाक कौनसा है ? मैंने कहा-महाराज ! आपने कहा था कुछ त्याग कर सकते हो, मैंने सममा — कुछ पैसेका त्याग महा-राज करावेंगे पर आप तो पूछते हैं भोजनमे कौनसा प्रिय शाक है ? महाराज ! मुमे सबसे प्रिय शाक भिण्डी है। सुन कर महा-राज वोले—इसीको त्यागो । मैं वोला—महाराज । यह कैसे होगा ? क्योंकि यह तो मुमे अत्यन्त प्रिय है। महाराज बोले-तूने स्वयं कहा था कि त्याग कर सकते हैं। मैंने कहा-महाराज भूल हुई चमा करो । महाराज वोले-भूलका फल तो तुम्हे भोगना ही पड़ेगा। मैंने कहा - महाराज ! जो आज्ञा, कब तकके लिये छोड़ूं ? महाराज वोले—तेरी इच्छा पर निर्भर है। मैं वोला—महाराज ! मैं मोही जीव हूं, आपही वतावें । महाराजने कहा-जो तेरी इच्छा सो वोल। मैंने कहा- जव तक वनारस भोजनालयमे नहीं पहुँचा तत्र तक त्याग है। महाराज वोले-वेटा! हम समम गये परन्तु ऐसी दन्भिता सुखकारी नहीं। ज्ञानार्जनका यह फल नहीं कि छलसे काम निकाल लो। यही दोप वर्तमानके वातावरणमे हो गया है कि हर वातमे कुतर्कसे काम निकालते हैं। इम तुमको छात्र जान तुम्हारे हितकी यात कहते हैं जो मनमे हो सो कहो। देखो, यदि भिण्डीका शाक छोडना इष्ट नहीं था तो हमसे कह देते—महाराज, मैं नहीं छोड़ सकता— यही सीधा उत्तर देना था। श्रस्तु, छलसे काम न नरना। मैंने महाराजसे कहा-१२ मासको त्याग दिया। महाराज प्रसन्न हुए, कहने लगे-प्रसन्न रहो, कल्याएके पात्र होश्रो । महा-राजका श्रन्तिम उपदेश तो यह था कि यदि कल्याण नामका

कोई पदार्थ है तो उसका पात्र त्यागी ही हो सकता है। अन्य कथा छोड़ो जो हिंसक हैं, विषयी हैं, व्यसनी है उन्हें भी जो सुख होता है वह त्यागसे ही होता है। जैसे हिंसक मनुष्यके यह भाव हुए कि अमुक प्राणीकी हिंसा करूँ। अब वह जब तक उस प्राणीका घात न करे तवतक निरन्तर खिन्न और दुखी रहता है। अब उसकी खिन्नता जानेके दो ही उपाय हैं—या तो अपनी इच्छाके अनुसार उस प्राणीका घात हो जावे या वह इच्छा त्याग दी जावे। यहाँ फलस्वरूप यही सिद्धान्त तो अन्तमें आया कि सुखका कारण त्याग ही हुआ। हम उस और दृष्टि न दें यह अन्य कथा है। विषयी मनुष्य जब विषय कर लेता है तभी तो प्रसन्न होता है। इसका यही अर्थ तो हुआ कि उसे जो विषयेच्छा थी वह निवृत्त हो गई। मेरा ही यह विश्वास है सो नहीं, प्राणीमात्रको ही यही मानना पड़ेगा कि त्यागमें ही कल्याण है।

कल्याणका बाधक कर्म है श्रीर यह कर्म उदयमें विकृति देकर ही खिरता है। उस समय जो श्रीदियक विकृति होती है वही फिर नवीन बंध वाँधनेका कारण हो जाती है। यही संतित हमारी श्रात्माको श्रात्मोन्मुख नहीं होने देती। यही हमारी महती श्रज्ञानता है। जब तक हमारी श्रयंज्ञी श्रवस्था थी तव तक तो हमको हेयोपादेयका बोध ही न था। पर्याय मात्रको श्रापा मान पर्याय ही में श्राहारादि संज्ञाओं द्वारा मग्न रहते थे परन्तु श्रव तो संज्ञीपनाको प्राप्त हो हेयोपादेयके जाननेके पात्र हुए हैं। श्रव भी यदि निजकी श्रोर लच्य न दिया तो हमारा सा श्रपात्र कीन होगा? हमको यह बोध है कि हम जो हैं वह शरीर नहीं है। शरीर पुद्गल परमाणुश्रोंका पिण्ड है। श्रनादिकालसे विभाव परिणतिके कारण इन दोनोंका वन्ध हो रहा है श्रोर

उस वन्थके कारण दोनें द्रव्य त्रात्मीय स्वरूपसे च्युत हो रहे हैं। जैसे स्वर्ण श्रौर रजतको गला कर यदि १ पिण्ड कर दिया जावे तो उस अवस्थामे न वह केवल स्वर्ण है और न रजत है किन्तु दोनोंकी विकृतावस्था है। यद्यपि जिस समय उन दोको गलाया था उस समय उनमें जो चार श्राना भर स्वर्ण श्रीर चार म्राना भर रजत था वही पिग्डावस्थामे भी विद्यमान है तथापि पर्यायदृष्टिसे न वह केवल स्वर्ण है और न केवल रजत ही है किन्तु स्वर्णे श्रौर रजतकी १ मिश्रित श्रवस्था है। इसी प्रकार आतमा और पुद्गलकी वन्धावस्थामे एकमेक प्रतीति होती है। यद्यपि दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न हैं तथापि मोहके कारण भिन्नता दृष्टिपय नहीं होती। भिन्नताका कारण जो भेदज्ञान है वह मद्य-पाँची मनुष्यकी विवेकशक्तिके समान अस्तमितके समान हो रहा है। श्रतः वेटा ! हमारा यही जपदेश है कि मोहको त्यागी श्रीर श्रात्मकल्याणमे श्रात्रो। केवल जाननेसे कुछ न होगा। श्ररतु, महाराजकी यह कथा आनुपङ्गिक आ गई। मेरठमे कई दिन रहे। यहाँका जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। यहाँकी मण्डली भी धार्मिक है-धार्मिक भावोंसे श्रोत-श्रोत है। सदरमे २ जिन मन्दिर हैं। यहाँ पर भी लोगोंका वर्ताव धार्मिक भावोंसे अनुस्यृत है। इसी तरह तोपखानेमे भी १ सुन्दर जिन मन्दिरका निर्माण कराया गया है। यदि ब्रुटि देखी गई तो यही कि समाजमे संघटन नहीं, अन्यथा आज संसारमें आत्माका जो वास्तव धर्म हैं उसका विकाश होनेमें विलम्ब न होता।

श्रहिंसा धर्म है श्रीर वह श्रात्माका वह परिगाम है जहाँ मोह राग-द्वेपकी कलुपता नहीं होती। इस तरह श्रात्माकी जो शुद्ध श्रवस्था है वही श्रहिंसा है। विषय नालनासे पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंमें जो प्रवृत्ति हो रही हैं वह श्रहिंसाके श्रद्धानमात्रसे विलीन हो जाती है। पञ्चेन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका ज्ञान होना अन्य वात है और रुचिपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए जानना अन्य वात है। दोनोंमें महान् अन्तर है। प्रमाद पूर्वक जो हिंसा होती है आन्तरिक्षक कलुषताके निकल जाने पर वह भी नहीं होती। प्रयत्न पूर्वक निष्णमाद रहने पर यदि किसी प्राणीका वध भी हो जावे तो वह हिंसा नहीं, क्योंकि अमृतचन्द्रदेवने कहा है—

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमन्तरेणापि। न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥

श्रथीत् जिसका श्राचरण युक्त—निष्प्रमाद है उसके रागादि जन्य श्रावेशके विना यदि वाह्यमें कदाचित् प्राणोंका व्यपरोप भी होता है तो उससे हिंसा नहीं होता। श्रतः श्रन्तरङ्गमें जिनका श्रामिप्राय निर्मल हो गया उन महापुरुष की प्रवृति श्रलोंकिक हो जाती है। किसीके ये भाव बाहरसे श्राते नहीं किन्तु जिन श्रात्माश्रोंके संसार बन्धनसे मुक्त होनेकी श्राकांचा हो जाती है उनके श्रनायास ही श्राभ्यन्तरसे प्रकट हो जाते हैं। प्रत्येक प्राणीकी श्रहिंसाक्ष्प परिणित स्वभावतः विद्यमान रहती है, कहीं वाहरसे वह श्राती नहीं है। जैसे श्रानिमें उद्याता किसीने लाकर नहीं दी है। वह तो उसका स्वभावसिद्ध गुण है परन्तु जिस प्रकार चन्द्रकान्तम णके संपर्कसे श्रानिका उद्याता गुण दाह कार्यसे विमुख हो जाता है उसी प्रकार श्रात्माका श्रहिंसक गुण मोहके संपर्कसे स्वकार्यसे विमुख हो रहा है। हे श्रात्मन ! श्रव इन पर पदार्थों हे द्वारा श्रपनी प्रशंसा निन्दा श्रादिके जो भाव होते हैं उन्हे त्याग सुमार्ग पर श्राश्रो।

यहाँ वावू जुगलिकशोर जी मुख्त्यार तथा उनके साथ पं० दरवारीलालजी न्यायचार्य भी छाये। यहाँ छाहार छादिके समय लोगोंने सहारनपुर गुरुकुलके लिये यथाशक्य सहायता दी। गुरुकुल संस्था उत्तम है परन्तु लोगोंकी दृष्टि उस श्रोर नहीं। उसका खाद नहीं, जिन्हें स्वाद है उनके पास द्रव्य नहीं, जिनके पास द्रव्य है उनके परिणाम नहीं होते। संसारी जीव निरन्तर परको श्रपता मानता है। इसी कारण वह संसारमे अमता है। हमारे मनमे यह विचार श्राया कि 'स्पष्ट श्रोर सरल व्यवहार करो। परको पराधीन वनाना महती श्रज्ञानता है। श्रात्मीय कलुषताके विना परकी समालोचना नहीं होती।'

'श्रन्तरङ्ग वृत्ति निर्मल नहीं। तत्वज्ञानकी रुचि जैसी चाहिये वह नहीं। खेद इस बातका है कि हम स्वयं श्रात्मपरिणामों के परिणामन पर ध्यान नहीं देते। स्वकीय श्रात्मद्रव्यका कल्याण करना मुख्य है परन्तु उस श्रोर लच्य नहीं है। श्रात्मन्! तॅ परपदार्थीमे वव तक उलमा रहेगा ?'

## खंतौली

पर निवास किया। यहाँ पर जो वंगला था वह ईसाईका था परन्तु उसमे जो रहनेवाला था वह उत्तम विचारका था, जातिका वंश्य था, गांधीजीके आश्रयमें १३ वर्ष रहा था, मुफ्त श्रोपध बाँटता था, योग्य था। उसने यह नियम लिया कि तमाखु न पीवेंगे तथा जहाँ तक वनेगा मनुष्यता सम्पादन करनेकी चेष्टा करेंगे। चेष्टा ही नहीं मनुष्य वनकर ही रहेंगे। बहुत विनयसे १ मील पहुँचा गया। शिवायासे चलकर होराला श्राया। यहाँ पर भोजन कर सामायिक किया की श्रोर फिर चलकर सायंकाल सकोती पहुँच गये। यहाँ पर ठहनेके लिये पवित्र स्थान मिला। रात्रिको विचार श्राया कि 'परके सम्बन्धसे जीव कभी भी सुखी नहीं हो सकता,

क्यों कि नहीं पर पराधीनता है वही दुःख है श्रतः नहीं तक वने परकी पराधीनता त्यागों। यही कल्याणका मार्ग है। स्वतन्त्रता ही सुखकी जननी है, सुखका साधन एकाकी होता है।

फाल्गुन वदी ८ सं० २००५ के ३ वजे खतौली श्राये। श्रामके सर्व मनुष्य श्राये, स्त्री जन भी श्रिधक संख्यामे श्राई। लोगोंकी स्वागत पद्धतिको देखकर मनमें विकल्प श्राया कि 'केवल रूढिकी श्रवृत्ति ही चलनेसे लाभ नहीं। मार्गमे चाँदीके फूल विखेरे। मैं तो इसमे कोई लाभ नहीं मानता। परोपकार करनेकी श्रोर लच्य नहीं। इसका कारण यह है कि हम लोग श्रात्मतत्त्वको नहीं जानते श्रातः श्रनावश्यक प्रवृत्ति कर श्रापनेको धर्मातमा मान लेते हैं। परन्तु धर्मातमा वही हो सकता है जो धर्मको श्रंगीकार करें।'

यह वही खतौली है जहाँ पर लाला हरगुलालजी बहुत ही श्रवल विद्वान् श्रोर उदार थे। श्राप केवल संस्कृतके ही विद्वान् न थे किन्तु फारसीके भी पूर्ण विद्वान् थे। श्राप यहाँसे २ कोस पर मौलवी साहवका गृह था वहाँ पर पढ़ने जाते थे। मौलवी साहवने कहा—हरगू वेटा! तुमको कष्ट होता होगा श्रतः हम स्वयं खतौली श्राया करंगे श्रोर यही हुश्रा। यहाँ पर वर्तमानमे कई सज्जन ऐसे हैं जो धवलाका स्वाध्याय करते हैं। श्री महादेवी चहुत विदुषी है, त्यागकी मूर्ति है, निरन्तर श्रपना समय ज्ञानार्जनमें लगाती है। यहाँ पर पहले जो कुन्दकुन्द विद्यालय था वह श्रव श्रंग्रेजीका कालेज हो गया। इस युगमें लोकेषणाके कारण श्रध्यात्मविद्याकी श्रोरसे लोगोंका भुकाव कम होता जा रहा है परन्तु मेरा तो हढ़ विश्वास है कि इस जीवका वास्तविक कल्याण श्रध्यात्मविद्यासे ही हो सकता है। यहाँ पर कई सज्जन हैं— बाबूलालजी साहव महापरोपकारी हैं। लाला 'त्रिलोकचन्द्रजी तो एक पैरसे कमजोर होकर भी धार्मिक कार्योमें श्रपना समय

लगानेमें कृपण्ता नहीं करते। लाला ,विश्वम्भरसहायकी क्या कहें सामग्री होते हुए भी उसका उपभोग करनेमें संकोच करनेसे नहीं चूकते । हमारा आपका वहुत प्राचीन सम्बन्ध है । हमारी सुनते तो हैं परन्तु 'हर्रा लगे न फटकरी रंग चोखा हो जाय' ऐसा मधुर भाषण कर टाल देते हैं। टालते रहें पर हमें विश्वास है कि एक दिन अवश्य मार्ग पर चलॅंगे। मार्गमें हैं पर चलनेका विलम्ब है। यहीं पर लाला खिचोड़ीमह हैं जो सचमुच एक उदारताका पुतला है। यदि ऐसा मनुष्य विशेष धनिक होता तोन जाने क्या करता ? मेरा इनका बहुत दिनसे सम्बन्ध है, निरन्तर इनकी प्रवृत्ति स्वाध्यायमें रहती है। पूजन प्रतिदिन करते हैं। मुरारमें आप ४ मास रहे। निरन्तर त्यागियोंको आहार कराना, संस्थाओंमे दान करना, किसीको कुछ त्रावश्यकता हो उसकी पूर्ति करना, विद्वानींका श्रादर करना श्रापके प्रकृति सिद्ध कार्य हैं। वनारस तथा सागर विद्यालयकी निरन्तर सहायता करते हैं। श्रापका श्रधिक समय मेरे पास ही जाता है। श्रापने श्रपने भानजेके पाणिप्रहणमें २५००) का दान किया तथा विवाह नवीन पद्धतिसे किया। कन्यात्रालेसे कुछ भी आग्रह नहीं किया। आपका व्यवहार इतना निर्मल है कि कोई किसी पत्तका क्यों न हो प्रायः श्रापसे स्नेह करने लगता है। खतौलीमे प्रायः सर्व सज्जन हैं। यहाँ पर श्री माड़ेलाल जी दस्सा बड़े प्रतापशाली थे। श्रापने १ जैन मन्दिर भी उत्तम बनवाया है। आपके २ पुत्र बहुत ही योग्य थे। १ अब भी विद्यमान है। उन्हीं के वॅगलामे मैं ठहरा था।

प्रातःकाल पर्ने वजेसे हैं। वजे तक प्रवचन किया परन्तु मेरी बुद्धिमें तो यह आया कि हम लोग रूढ़िके उपासक हैं, धर्मके बास्तविक तत्त्वसे दूर हैं। धर्म तो आत्माकी शान्ति परिणितिके उदयमें होता है अतः उचित तो यह है कि पर पदार्थके साथ जो श्रात्मीय सम्बन्ध जोड़ रक्खा है उसे त्यागना चाहिये। जब तक यह नहीं होगा तव तक सर्व कियाएं निःसार हैं। इसका श्रयं यह हैं कि जब तक श्रनात्मीय पदार्थों साथ निजत्वकी कल्पना है तब तक यह प्राणी धर्मका पात्र नहीं हो सकता। प्रवृत्तिकी निर्मलता उसीकी हो सकती है जिसका श्राशय पवित्र हो श्रीर श्राशय पवित्र उसीका हो सकता है जिसने श्रनात्मीय पदार्थों श्रात्मबुद्धि त्याग दी। वही संसारके बन्धनोंसे छूट सकता है। फागुन बदी ११ को जैन कालेजमें प्रवचन था। पं॰ मनोहरलालजी वर्णीका प्रवचन हुआ। श्रनन्तर मैंने भी कुछ कहा—

श्राशाका त्याग करना ही सुखका मूल कारण है। जिन्होंने श्राशा जीत ली उन्होंने करने योग्य जो था वह कर लिया। श्राशाका विषय इतना प्रवल है कि कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता। सांसारिक पदार्थोंकी पूर्तिकर इस आशागतेको आज तक कोई नहीं भर सका है। संसारमें सुखी वही हो सकता है जो इन श्राशाश्रों पर विजय प्राप्त करले। श्रगले दिन क्वीवाले मन्दिरमे प्रवचन हुआ। मनुष्योंकी संख्या श्रच्छी थी। १० बजे चर्याको निकले, परन्तु भीड़ बहुत होनेसे चर्यांकी विधि नहीं मिली। परिणामोंसे कुछ अशान्ति हुई। अशान्तिका कारण मोहकी वलवत्ता है। मोही जीव सर्वदा दुःखका पात्र होता है। शारीरिक श्रवस्था दुःखकी जननी नहीं किन्तु उसके होते उसमे जो आत्मीयताकी कल्पना है वही दुःखकी जननी है। शरीर पर पदार्थ है, परन्तु उसके साथ ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि भिन्नता सासमान नहीं होती। मनमें विचार श्राया कि यदि यह चाहते हो-हमारे श्रेयोमार्गका विकास हो तो शीघ्रसे शीघ्र इन महापुरुषोंका समागम त्यागो। आजकल जितने महापुरुष मिलते हैं उनका श्रमिप्राय तुम्हारे श्रमिप्रायसे नहीं मिलता है और इससे यह दृढ़ निश्चय करों कि प्रत्येक पदार्थ-

का परिएामन भिन्न भिन्न हैं। तव यह खेद करना कि यह समागम अच्छा नहीं व्यर्थकी कल्पना है।

एक दिन भैंसी गये, मन्दिरकी दर्शन किये। यहाँ पर ५ घर जैन हैं। मन्दिर वहुत सुन्दर है परन्तु मनुष्योंकी रुचि धार्मिक कार्योमें थोड़ी है। यहाँ पर २ श्रादमियोंने प्रतिज्ञा ली कि हमारे जो खर्च होगा उससे एक पैसा रुपया दानमें दिया करेंगे। यह प्राम जाट लोगोंका है। यहाँ पर १ चर्मकार है। उसकी प्रवृत्ति धर्मकी श्रोर है। पार्श्वनाथका चित्र रक्खे है श्रीर उसकी भक्ति करता है। यहाँ जो जैनी हैं वे सज्जन हैं। भोजनके बाद सामायिक की। अनन्तर स्त्रीसमाज श्राया। उसे कुछ उपदेश दिया परन्तु प्रभाव कुछ नहीं पड़ा। प्रायः स्त्रीपर्याय मोहसे भरी रहती है। इसका सहवास मोही जीव चाहते हैं श्रीर उनके संपर्कसे श्रात्मीय कल्यागसे विश्वत रहते हैं। संसारमें सबसे कठिन मोह स्त्रीका है।

श्रगले दिन फिर प्रवचन हुश्रा । प्रवचन करते करते मुफे लगा कि लोग ऊपरी दृष्टिसे सुनते हैं। परचात् उसका कुछ श्रसर नहीं रहता केवल प्रशंसा ही रह जाती है। वक्ता श्रात्मीय परिण्तिसे कार्य नहीं लेता। लौकिक मर्यादा ही में निज प्रतिष्ठा मान प्रसन्न हो जाता है। होता जाता कुछ नहीं। मोचमार्गकी सरल पद्धित है परन्तु वक्ताश्रोंने उसे इतनी दुरूह बना दी है कि प्रत्येक प्राणी सुन कर भयभीत हो जाता है। धर्म जव श्रात्माकी परिण्रित हैं तब उसको उतना कठिन दिखाना क्या शुभ है ?। मनमें विचार श्राया कि श्रपनी दिनचर्या ऐसी वनाश्रो जो विशेषतया परका सम्पर्क न्यून रहे। पर सम्पर्कसे वही मनुष्य रिचत रह सक्ता है जो श्रपनी परिण्तिको मिलन नहीं करना चाहता। मिलनताका कारण परमें मोह द्वेप ही है। श्रतः स्वीय मोह राग द्वेप छोड़ो।

यहाँसे प्रातः काल ७॥ वजे चलकर न॥ बजे गंधारी स्त्रा गये। यहाँ पर घूमसिंहके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर ४ घर हैं। चारों ही अच्छे हैं। घसीटामल अत्यन्त दयालु हैं। आयका है भाग दानसे लगाते हैं। यहाँसे चलकर तिसना आ गये। तिसना गंधारीसे ५ मील है। यहाँ पर ६ घर जैनी है। प्रायः सभी सम्पन्न हैं। यहाँ त्र्यानन्दस्वरूपके घर भोजन किया। यहाँसे १२ मील हस्तिनापुर है। हस्तिनापुर पहुँचनेकी भावना हृदयको विशेषरूपसे उत्सक कर रही थी । स्रतः यहाँसे चलकर वटावली ठहर गये श्रीर श्रगले दिन प्रातः २ मील चलकर वसूमा श्रा गये। यहाँ पर वहत उच्चतम मन्दिर है। मन्दिरमे श्री शान्तिनाथ जीकी मूर्ति है। १२३१ सम्बत्की है। बहुत सुन्दर और देशी पत्थरकी है। यहाँ पर तिसनासे आये हुए आनन्दस्वरूपजीके यहाँ भोजन हुआ। श्राप हस्तिनागपुर तक बराबर हमारे साथ आये। फागुन सुदी पञ्चमी सं० २००५ को दिनके ३ वजते वजते हम हस्ति-नागपुर स्त्रा गये। स्त्रानन्द्से श्रीजिनराजका दर्शन किया।

## हस्तिनागपुर

यह वही हस्तिनागपुर है जहाँ शान्ति, कुन्थु श्रौर श्ररनाथ भगवान्के गर्भ, जन्म तथा तप कल्याणक हुए थे। देवोपनीत जिसकी रचना थी तथा जहाँ भगवान्के गर्भमे श्रानेसे ६ माह पूर्व ही से रत्नवर्षा होने लगती थी। जगत् प्रसिद्ध कौरव पाण्डवोंकी भी राजधानी यही थी। श्रकम्पनाचार्य श्रादि सात सौ मुनियोंकी रचा भी यहाँ हुई थी तथा रचावन्धनका पुण्य पर्व भी यहींसे प्रचितत हुश्रा था। यहाँके प्राचीन वैभव श्रौर वर्तमानकी निर्जन श्रवस्था पर दृष्टि हालते हुए जब विचार करते हैं तो श्रतीत श्रौर वर्तमानके बीच भारी श्रन्तर श्रनुभवमे श्राने लगता है।

वर्तमानमें यहाँ पर १ विशाल मन्दिर है, जो देहलीके लाला इरसुखरायजीका वनवाया हुत्रा है। वहुत ही पुष्ट श्रीर सुन्दर मन्दिर है। इस मन्दिरका निर्माण किस स्थितिमें किस प्रकार हुआ यह इसके इतिहाससे प्रसिद्ध है। मन्दिरमें श्रीशान्तिनाथ स्वामीका विम्ब श्रतिरम्य हैं । १२३१ सम्वत्का है । जिसे देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है। वीचमें एक वेदी है। उसके वाद एक नवीन विम्ब श्रीमहावीर स्वामीका है। यह सव है. परन्तु मनुप्योंकी प्रवृत्ति तो प्रायः इस समय अति कलुषित रहती है। यदि यहाँसे लोग शान्तभावको लेकर जावें तव तो यात्रा करनेका फल है, - अन्यथा अन्यथा ही है। संसारवंधनके नाशका यदि यहाँ आकर भी कुछ प्रयास नहीं हुन्ना तो निमित्त कारणका क्या उपयोग हुआ ? दूसरे दिन मन्दिरमे प्रवचन हुआ। प्रवचनमे मैंने कहा कि न्त्रात्मामे अचिन्त्य शक्ति है फिर भी उपयोगमे नहीं त्राती। जल्प-वादसे मुख मीठा नहीं होता। कर्तव्यवाद कथनवादसे भिन्न वस्तु है। श्रात्मा ज्ञाता दृष्टा है यह शब्दकी रचना उसमे राग-द्वेपकी कलुपतासे रचा करे, यह श्रमंभव हैं। मनुष्योंकी प्रवृत्तिके हम कर्त्ता धर्ता नहीं, फिर भी वलात्कार स्वासी वनते हैं। मोही जीव कुछ कहे परन्तु उस स्वादको नहीं पहुँचता जो मोहाभावके समय होता है। यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि ज्ञानमे ज्ञय नहीं जाता, फिर भी हम इयोंके व्यवस्थापक वनते ही जाते हैं। नौकिक व्यवहार भी इसी वल पर चल रहा है। लोकिक व्यवहार भी मोही जीवोंकी चेप्टाका विशेष फल हैं। यह तो लोकिक प्रक्रिया है। परमार्थसे विचारा जाय तव व्यवहार मात्र उसी मोहसे चल रहे हैं। छान्यकी कथा दूर गरी, मोक्ष्मार्गकी प्रवृत्ति भी उसी कपायके श्राधीन है। योगोंकी प्रकृति श्रात्मामे प्रदेश कम्पन करा दे परन्तु वन्ध जनक नहीं **।** यही कारण

१—यह मूर्ति यहाँ वसुमासे लाई गई है।

हैं कि उपशान्त मोहसे लेकर त्रयोदश गुणस्थान पर्यन्त योगोंकी प्रवृत्ति स्थितिवन्धकी उत्पादक नहीं, श्रतः श्रभिशयको निर्मल वनानेकी चेष्टा करो। योगोंकी प्रवृत्तिमें मत उलमे रहो। योगोंमे शुभता श्रौर श्रशुभता तन्मूलक ही है। संसारका मूल कारण कपाय है। इसके विना योगका कोई महत्त्व नहीं। वृत्तकी जड़ कटनेके चाद हरापन स्थितिका कारण नहीं। श्रतः हमे श्रावश्यकता कपाय शत्रुको पराजित करनेकी है । जिन्होंने इस पर विजय पा ली वे सिद्ध पदके श्रिधकारी हो चुके। ज्ञानमें जो ज्ञेय त्राता है अर्थात् ज्ञानका जो परिएमन ज्ञेय सहश होता है उसका कारए ज्ञानावरण कर्मका चयोयशम है तथा ज्ञानमे जो रागादि प्रतिभासता है उसका कारण मोहनीय कर्मका उदय है। उस उद्यसे चारित्र गुगा विकृत होता है। वही गुगा विकृतरूप होकर ज्ञानमे स्राता है। ज्ञेय, यह दोनों हैं परन्तु एक ज्ञेय वाह्य है। उसके निमित्तसे ज्ञान साचात् ज्ञेयाकार हो जाता है। रागमे चारित्र गुणकी विकृति जो होती है वह ज्ञानमें भासती है। परमार्थतः राग भी ज्ञेय है श्रोर घट पटादि भी ज्ञेय हैं।

हम तो कुछ विद्वान् नहीं परन्तु विद्वान् भी वक्ता हो तव भी ये भद्रगण—नाम मात्रके जैनी उस वक्ताके प्रवचनका लाभ नहीं उठाते। त्रव संयमके स्थानमे श्रष्टमूलगुणधारणका उपदेश रह गया है। वहुतसे बहुत वलका प्रभाव पड़ा तो बाजारकी जलेवी त्याग तक सीमा पहुँच गई है।

प्रवचनके वाद भोजन हुआ। भोजन बहुत ही संकोचसे होता है। कारण उसका यह है कि पदके अनुकूल प्रक्रिया उत्तम नहीं। अनेक घरसे भोजन आता है तथा अति भोजन परोस देते हैं जो कि आगम विरुद्ध है। भोजन थालीमें छूटना नहीं चाहिये पर मेरी थालीमें १ आदमीका भोजन पड़ा रहता है। भोजन करते समय मुमे लगता है कि यदि मैं पाणिपात्रभोजी होता तो लोग यह अधिक भोजन कहाँ परोस देते ? यह मेरी दुर्वलता है, संकोचवश होकर यह अनर्थ होता है। संकोचका कारण भी एक प्रकारसे स्वप्रशंसाका लोभ है—कोई अप्रसन्न न हो जाय यह भावना है। जिस जीवके प्रशंसाकी इच्छा नहीं वही निर्भीक कार्य कर सकता है।

एक दिन स्त्री समाजके सुधारके अर्थ भी व्याख्यान हुआ।

सेने कहा कि यदि मनुष्य चाहे तो स्त्रीसमाजका सहज कल्याण हो सकता है। यदि यह समाज मर्यादासे रहे तो कल्याण पथ दुलेभ नहीं। सबसे प्रथम तो ब्रह्मचर्य पाले, स्वपितमें संताप करे तथा पुरुप वर्गको उचित है कि स्वदारमें सन्तोष करे। जब स्त्रीके उदरमें वालक आ जावे तबसे लेकर ३ वर्ष ब्रह्मचर्य पाले तथा ब्रह्मचर्य पालनेवालोंको आत्मीय वेषभूवाकी चटक-मटक मिटा देना चाहिये, क्योकि वेषभूषाका प्रभाव मन पर पड़ता है। यदि आजकी जनता ब्रह्मचर्यके इस महत्त्वको हृदयांकित कर सके तो उसकी सन्तान पुष्ट हो तथा जन संख्याकी वृद्धि सीमित रहे। आज मनुष्यकी आयके साधन सीमित हो गये हैं और उसके विरुद्ध सन्तानमें वृद्धि हो रही है जिसके कारण उसे रात-दिन संक्लेशका अनुभव करना पड़ता है। इस संक्लेशसे वचनेका सीधा सचा उपाय यही है कि पुरुष तथा स्त्रीवर्ग अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करे।

एक दिन व्रतीसम्मेलन हुआ। व्रती लोगोंने भाषण दिये। प्रायः सफलता अच्छी मिली। लोगोंके हृदयमे व्रतका महत्त्व भर गया यही तो उसकी सफलता थी। लगभग वीस आदिमियों ने व्रह्मचर्य व्रत लिया, छोटे छोटे वालकोने रावि भोजन त्याग किया, अनेकोंने अष्टमी चतुर्दशीके दिन व्रह्मचये व्रत लिया।

श्रावश्यकता उपदेशकी है । जैनक़्लमे उत्पन्न हुए लोगोंकी त्यागकी छोर स्वाभाविक प्रवृत्ति देखी जाती है। फिर उन्हे यदि वार-वार प्ररणा मिलती रहे तो उनका वह त्यागभाव त्र्यधिक विकसित हो सकता है। सैने देखा कि किसी भी व्यक्तिके उपर यदि प्रभाव पड़ता है तो स्रात्माकी पवित्रताका ही पड़ता है। शब्दोका नहीं, उनका प्रभाव तो कानो तक ही रहता है। अन्छे शब्द हुए, लोग सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं श्रोर कटुक शब्द हुए, नाराज हो जाते हैं। कुछ समय वाद 'लोग वक्ताने क्या कहा' यह भूल जाते हैं। परन्तु एक वीतराग मनुष्यकी आत्मासे यदि कोई शब्द निकलते हैं तो लोगोंके हृदय उन्हें सुनकर द्रवीभूत हो जाते हैं—वे कुछ करनेके लिए विचार करते हैं। यदि ये व्रती लोग श्रपना श्राचरण पवित्र रक्लें तथा जन कल्याणकी भावना लेकर भ्रमणके लिये निकत पड़ें तो जनताका कल्याण हो जावे। पूर्व समयमें निर्श्रन्थ मुनियोंका विहार होता था जिससे उनके उपदेश लोगोंको अनायास ही प्राप्त होते रहते थे, इसलिये जनताका आचार पवित्र रहता था पर त्राज यह साधन दुर्लभ हो रहे हैं। यही कारण है कि लोगोंका श्राचरण निर्मल नहीं रहा।

फागुन शुक्ला १२ सं० २०८५ को मध्यान्होपरान्त १ वजेसे
गुरुशुलका उत्सव हुआ। प्रायः अच्छी सफलता मिली। लोगोंके
चित्तमे यह बात आ गई कि गुरुशुलकी महती आवश्यकता है।
बच्चोंका हृदय अपक्व घटके समान है। उसमें जो संस्कार भरे
जावेंगे वे जीवन भर स्थिर रहेंगे। आजका नागरिक जीवन
विलासतापूर्ण हो गया है जिसका प्रभाव छात्र समाज पर भी
पड़ा है। मैंने देखा है कि आजका छात्र साधारण गृहस्थकी
अपेद्मा कहीं अधिक विलासी हो गया है।यह बात उसके रहन सहन
तथा वेषभूषासे स्पष्ट होती है। उसका बहत समय इसी साज-

सजावटमें निकल जाता है जिससे विद्याका प्रगाढ़ श्रध्ययन नहीं हो पाता। प्राचीन कालमे लोग थोडा पढ़ कर भी ऋधिक विद्वान् हो जाते थे पर आजके छात्र अधिक पढ़ कर भी अधिक विद्वान् नहीं वन पाते हैं। इसका कारण उनका चित्तविक्षेप ही कहा जा सकता है। गुरुकुलकी श्रावश्यकता इसलिये है कि वे नागरिक वातावरणसे दूर स्वच्छ वायुमण्डलमे होते हैं श्रोर इसीलिये उनमें पढ़नेवाले छात्रोंको चित्तवित्तेपके साधन नहीं जुट पाते। इस दशामे वे अच्छा अध्ययन कर सकते हैं। हस्तिनागपुरका वर्तमान वातावरण श्रत्यन्त शान्तिपूर्ण है। यहाँ गुरुकुल जितना श्रच्छा कार्य कर सकता है उतना अन्यत्र नहीं। इसकी पूर्तिके लिये ५ लाख की योजना की गई। ऋपील करने पर ५००००) पचास हजारका चन्दा हुन्ना। चौतीस हजार ३४०००) पहिलेका था। कुल चौरासी हजार हुआ। यद्यपि इतनेसे उसकी पृतिं नहीं हो सकती तथापि जो साधन उपलब्ध हों उसीके अनुसार काम हो तो हानि नहीं। यदि सब लोग परस्परका श्रविश्वास दूर कर दें तथा यह उद्देश श्रपने जीवनका वना लें कि हमारे द्वारा जगत्का कल्याण हो तो बड़ी बड़ी योजनाएँ श्रनायास ही पूरी हो सकती हैं।

एक दिन प्रातः निस्याजीके दर्शन किये, चित्त प्रसन्न हुआ। हरी भरी माड़ियोंके बीच जानेवाली पगर्डंडीसे निसयाजीको जाना पड़ता है। इन स्थानों पर श्रपने आप चित्तमें शान्ति आ जाती है। मिन्द्रिसे थोड़ी दूरी पर पाण्डवोंका टीला नामसे प्रसिद्ध स्थान है जहाँ कुछ खुदाईका काम हुआ है। गवर्नमेन्टकी थोरमे यहाँ एक नगर बसाया जा रहा है जिसमें शरणार्थी बसाये जावेंगे। जनी लोगोंको उचित है कि यहाँ पर १ वियालय गोले जिसमें शरणार्थी लोगोंके वालकोंको श्रध्ययन कराया जावे तथा १ श्रीपधालय गोला जावे जिसमें। श्राम जनताको श्रीपध बाँटी जावे। श्रष्टानिका पर्य

होनेके कारण आठ दिन तक बहुत चहल पहल रही परन्तु अन्तिम दिन होलीका उत्सव होनेसे अधिकाश लोग चले गये। पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री वनारस, पं० दरवारीलाल जी कोठिया तथा मुख्त्यार साहव भी यहाँ आये थे। एक दिन हमारा भोजन स्वर्गीय महावीर-प्रसाद जी रईस विजनौरवालोंकी पुत्रीके घर हुआ। आपने वर्णी-प्रन्थमालाको १०१) दिये। आप बहुत ही धर्मनिष्ठासे रहती हैं। आपके पतिका स्वर्गवास हो गया है। वड़ा ही सज्जन था, निरन्तर दानमें प्रवृत्ति रखता था तथा जैनधर्मकी पुस्तकें वितरण करता था। भीड़-भाड़ कम हो जानेसे २ दिन शान्तिसे वीते।

#### मुजप्फरनगर

चैत्र बदी ३ सं॰ २००५ को हस्तिनागपुरसे चलकर गणेशपुर आये। चलते समय लाला कपूरचन्द्र जी कानपुरवालोंने वड़े आप्रहसे कहा कि यदि कहीं पर कुछ आवश्यकता पड़े तो वह आप मेरेसे मॅगा लीजिये। गणेशपुरमे विद्यानन्दीजीने जो कि ब्राह्मण हैं गुरुकुलके लिये ११) दिये। १ वजे चलकर ३ वजे मवाना आ गये। यहाँ बहुत ही शानदार स्वागत किया गया। पं० शीलचन्द्र जी शास्त्री बहुत ही योग्य हैं, इनका सर्व समाज पर प्रभाव है, आप म्युनिसिपलके चेयरमेन हैं तथा ऐंग्लो संस्कृत कालेजके सभापित भी हैं। दूसरे दिन आतःकाल प्रवचन ह्आ। मध्यान्हके बाद १ वजे एंग्लो संस्कृत कालेजमे गये। प्रिन्सिपल साहवने वहुत ही आदरसे स्वागत किया। आपने वर्तमान परिस्थितिका स्वरूप सम्यक् रीतिसे वतलाया। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षामे प्रायः चार्वाक मतकी ही पुष्टि होती है। आज कल शिक्षाका प्रयोजन केवल आर्थोपार्जन और कामसेवन मुख्य

रह गया है। जहाँसे शिक्षांका श्रीगणेश होता है वहाँ पहला पाठ यही होता है कि आजीविका किस प्रकार होगी तथा ऐसा कोनसा उपाय होगा कि जिससे संसार की विभूति हमारे ही पास आ जावे, संसार चाहे किसी आपत्तिमे रहे। प्रिन्सिपल साहवके इन हार्दिक तथ्य उद्गारोंसे मुक्ते वड़ी प्रसन्नता हुई।

्र अगले दिन सामायिकके वाद वसूमाके लिये चल दिये। मवानासे वसूमा श्राठ मील होगा। घाममें चलना पड़ा जिससे महान् कष्ट हुआ। रात्रिको व्वर आ गया। हम विलकुल निर्विचार श्रादमी हैं जो विना विवेकके काम करते हैं। = मील घाममें चलना वहुत ही कष्टकर हुआ। हमारी शारीरिक शक्ति छ ति चीए हो गई है तथा आत्माकी स्फृति जाती रही है। इसका कारण मोहकी सवलता है। कह देते हैं कि मोह शत्रु है परन्तु स्वयं उसके कर्त्ता है, पर पदार्थके शिर दोप मढ़ते हैं। अज्ञानी जीवको अपना दोप नहीं दिखाता, परमे ही नाना कल्पनाएं करता है। देहलीवाले महाशयने यहाँ आहार दिया। यहाँ श्री शान्तिनाथ स्वामीके सदृश चन्द्रप्रभस्वामीका प्रतिविम्व श्रति मनोज है, वायु ऋति प्रशस्त है, मनुष्य सरल हैं परन्तु ज्ञानकी हीनतासे जैन-धर्मका प्रचार जैसा चाहिये वैसा कार्यस्पमे परिएत नहीं होता। यहाँसे ६ मील चलकर मीरापुर आ गये। ब्राम वड़ा है किन्तु मुसलिम जनताका प्रभाव ऋधिक है। वर्तमानमे यद्यपि कार्यसका साम्राज्य होनेसे प्रभाव द्व गया है तथापि समय पा कर श्रागे पुनः त्राविर्भूत हो सकता है। चैत्यालयमे प्रातः प्रवचन हुन्ना पर जनता नहीं थी। यहाँ धर्मकी रुचि तो है परन्तु सायन नहीं। यहाँ पर शीतलप्रसाद जी तथा वावृरामजीके घर प्रतिष्टिन हैं। इनका चित्त धर्ममे उपयुक्त है। श्री वावृराम जी वरावर वैवावृत्त्वमे रहे। उनका लड़का धनेशचन्द्र बहत ही योग्य है। १ वजे सभा

हुई। प्रायः सर्वे रुचिमान् थे। गुरुकुल सहारनपुरको ७२८) चन्दा हुआ। एक महानुभावने २००) भेजनेको कहा।

यहाँसे ६ मील चलकर ककरौली श्रा गये। वड़े समारोहसे स्वागत हुँ ह्या। प्रातःकाल प्रवचन हुन्ना। मनुष्य संख्या ५० के अन्दाज थी । उनमे १ मौलवी साहव थे जो वहुत ही योग्य थे । आपने वहुत प्रसन्नता प्रकट की। यहाँ पर सैयद लोगोंकी जमीदारी थी जो काल पाकर उनके हाथसे निकल गई। वैश्य लोगोंके हाथमे चली गई। सुमतिप्रसाद जी यहाँ के प्रमुख व्यक्ति हैं। इन्हीं के यहाँ आहार हुआ। आपने सहारनपुर गुरुकुलके लिये हस्तिनागपुरमे १००१) दिये थे। त्रापकी माँ रुद्ध भोजन करती हैं। यहाँसे चलकर तिस्सा त्रा गये। प्रातःकाल प्रवचन हुत्रा। श्री मंगुलसेनजीके वहिनोईके घर भोजन किया। मध्यान्हको आमसभा हुई। एक त्राह्मणने जो कि मद्यपान करता था जीवन पर्यन्तके लिये मद्यपान छोड़ दिया, रे मुसलमान भी जीवघात छोड़ गया तथा एक चमारने मदिरा छोड दी। यहाँ पर मुजफ्फरनगर, ककरौली तथा मंसूरपुरसे वहुत त्रादमी त्राये। सब कुछ हुत्रा परन्तु हमारे जैन वन्धुत्रों भी दृष्टि स्त्रयं धर्मश्रवण करनेकी नहीं है। अन्य धर्म जान जावें, हमको चाहे ज्ञान हो या न हो । यहाँसे अगले िन ६३ वजे चलकर ९५ वजे कवाल आ गये । यहाँ पर २० घर जैनियोंके हैं । १ मंदिर हे परन्तु उसमे अभी श्रीजीकी स्थापना नहीं हुई। १ चैतन्यालयमे विस्व विराजमान है। विस्व श्रति मनोज है। भोजन की प्रक्रिया उत्तम है परन्तु लोग त्राहारदान करनेसे भय करते हैं। उसका कारण कभी दिया नहीं। कवालसे ६ मी इ चलकर मंसूरपुर आ गये। यहाँसे ४ मील चलकर गङ्गा नहर मिली। यहाँ पर विजली भी वनती है। वड़े बेगसे पानी चलता है। वहाँ पर आदा पिसता है। मंसूरपुर श्राम सैयद मुसलमानोंका है। शतः ३ घंटा प्रवचन

हुन्रा। पश्चात् भोजन किया। मध्यान्ह वाद त्र्यामसभा हई। प्०० मनुष्य होंगे । श्री चिदानन्दजी तथा पूर्णसागरजीने परिश्रमके साथ वक्तव्य दिया। वक्तव्यमे मुख्य विपय ऋष्टमूलगुरा था। यहाँ मुजफ्फरनगरसे बहुत मनुष्य आये। उन्होंने वहुत ही आग्रह किया कि कल ही मुजप्फरनगर आइये। चाहे आपको कष्ट हो इसकी परवाह न कीजिये । हमारा प्रोयाम है, इसीके अनुकूल आप प्रवृत्ति करिये, इसीमे हमारी प्रतिष्ठा है। चैत्र वदी १४ सं० २००५ को ६३ वजे प्रातःकाल चलकर ६ वजे वहलना पहुँच गये। यहाँ पर १ प्राचीन जिन मन्दिर है। उसमे श्रीपारवेनाथ भगवान्का प्रतित्रिम्य वृहुत ही मनोज्ञ है। यहाँ पर मुजफ्फरनगरसे १०० जन-संख्या त्राई। भोजनोपरान्त २३ वजे यहाँसे चलकर कम्पनीवाग श्रागये । वहाँसे कोई २००० श्रादमियोंका जुल्र्स निकला । २ तोला धूल फाँकनेमे आई होगी। ५ वजते वजते जैन स्कूलमे पहुँच गये। यहीं पर जनताका वहुत समारोह हुआ। अगले दिन वाजार वन्द् था, इसलिये प्रवचनमें वहुत मनुष्य त्राये । प्रवचनके लिये प्रवचनसारकी निम्न गाथा थी-

> जो जाणदि श्ररहंतं दन्वत्तगुणत्तपज्ञयतेहि। सो जाणदि श्रप्पाणं मोहो खलु जादि तस्य लयं॥

जो द्रव्य, गुण श्रीर पर्यायकी श्रपेत्ता श्ररहन्तको जानता है वह श्रात्माको जानता है श्रौर जो श्रात्माको जानता है उसका मोह विनाशको प्राप्त होता है। श्रनादि कालीन मोहके कारण यह जीव श्रात्मस्वभावसे च्युत हो रहा है। मोहकी तीव्रतामे तो इसे यह भी प्रत्यय नहीं होता कि शरीरके श्रातिरक्त कोई श्रात्मा नामका पदार्थ है भी। वह शरीरको ही श्रहं मानकर उसकी इष्ट श्रनिष्ट परिणतिमे हर्ष-विपाद कर सुखी-दुखी होता है। यदि

भाग्यवश मोहका पटल कुछ चीएा होता है तो शरीरसे पृथक् श्रात्माकी सत्ता अंगीकार करने लगता है, परन्तु कर्मोदयसे श्रात्माकी जो विकृत दशा है उसे ही शुद्ध दशा या स्वाभाविक दशा मान उसीरूप रहना चाहता है। कर्मीदय भड़्रर है, इसलिये उसके उदयमे होने याली श्रात्माकी दशा भी भङ्गर होती है। पर यह मोही प्राणी यथार्थ रहस्य न समम हर्ष-विपादका पात्र होता है। जब मोहका उदय विल्कुल दूर होता है तव इसे आत्माकी शुद्ध दशाका अनुभव होने लगता है। पद्मराग मिएके सम्पर्केंसे स्फटिकपे जो लालिमा दिखती है उसे ऋज्ञानी प्राणी स्फटिककी लालिमा सममता है पर विवेकी प्राणी यह सममता है कि स्फटिक तो अत्यन्त स्वच्छ है। यह लालिमा पद्मराग मणिकी है। इसी प्रकार वर्तमानमें हमारी आत्मा रागी द्वेषी हो रही है सो यह मोहजन्य विकृतिका चमत्कार है। श्रज्ञानी प्राणी इस अन्तरको न समम आत्माको ही रागी द्वेषी मान वैठता है, परन्तु विवेकी प्राणी यह जानता है कि त्रात्मा तो सदा स्यच्छ तथा निर्विकार है। उस पर जो वर्तमानमें विकार चढ रहा है वह मोहजन्य है। जो द्रव्य, जो गुण और जो पर्याय अरहन्तकी है वही द्रव्य, वही गुण और वही पर्याय मेरी है। जिस प्रकार इनका चेतन द्रव्य केवल ज्ञानावि चायिक गुणोंसे उद्भासमान होता हुआ परमात्मपर्यायको प्राप्त हुंत्र्या है उसी अकार हमारा चेतनद्रव्य भी उक्त गुर्शोंसे उद्गासमान होता हुँत्रा परमात्मपर्यायको प्राप्त हो सकता है। जब त्रात्मामे ऐसा विचार उठता है—विवेकरूपी ज्योतिका त्र्याविर्भाव होता है तव उसका मोह स्वयं दूर हो जाता है श्रीर ज्ञानघन त्रात्मा निर्द्वेन्द्र रह जाता है। यही इस जीवकी सुखमय श्रवस्था है। इसे ही प्राप्त करनेका निरन्तर प्रयत्न होना चाहिये।

कुन्दकुन्द महाराजके वचन मिश्रीके करण हैं। मिश्रीका जो भी करण खाया जायगा वह मीठा होगा। इसी प्रकार कुन्दकुन्द महाराजका जो भी वचन या गाथा आपके चिन्तनमे आवेगा वह आपको आनन्ददायी होगा।

दिनके दो वजेसे सभा थी। उसमे वहुतसे नर-नारी आये। श्री पूर्णसागर महाराज चिदानन्दजी महाराजका व्याख्यान हुं आ। समयकी वलवत्ता है कि अब अष्टमूलगुरा पालनका उपदेश दिया जाता है। जैनियोंका जो कौलिक धर्म था उसका स्रव <u>ज्पदेश होने लगा है। लोगोंके ब्राचरण</u> अत्यन्त गिर गये हैं। जैनधर्मकी व्यवस्था तो इतनी उत्तम है कि उसका पालन करनेसे सहज ही कल्याग्यका पथ मिल सकता है। श्री पं० चन्द्रमौति शास्त्रीने गुरुङ्कतकी अपील की तथा भी समगौरयाजीने समर्थन किया। चन्दा प्रारम्भ हो गया। पौँच हजारके अन्टाज चन्दा हो गया। रात्रिमे फिर चन्दा हुँ आ। सव मिलाकर १८ हजारका चन्दा हो गया । जैनियोंमें दान करनेका गुण नैसर्गिक है। निमित्ता मिलने पर वह अनायास ही प्रकट हो जाता है। अगले दिन प्रातःकाल फिर प्रवचन हुआ पर मैं अव प्रवचनका पात्र नहीं। मेरी शक्ति चीए हो गई है। वचन वर्गणा स्पष्ट नहीं। केवल मनुष्योंको रखन करना तात्त्विक मार्ग नहीं। तात्त्विक मार्ग तो वह है जिसमे आत्माको शान्ति मिले। पर शान्ति राग द्वेषकी प्रचुरतासे अत्यन्त दूर है, क्योंकि परपदार्थीम जो इष्टानिष्ट कल्पना होती हैं उस ≯ा मूल कारण ही मोह है स्रोर मोहसे पर पदार्थोमें श्रात्मीय बुद्धि होती है। श्रात्मीय बुद्धि ही रागका कारण है। श्राजका जनसमूह गल्पवादका रसिक है। वास्तविक तत्त्वका महत्त्व नहीं समभता। केवल वाह्य आडम्वरमे निज धर्मकी प्रभावना चाहता है। प्रभावनाका मृल कारण ज्ञान

है। उसकी श्रोर दृष्टि नहीं। ज्ञानके समान श्रन्य कोई हितकारी नहीं, क्योंकि ज्ञान ही श्रात्माका मूल श्रसाधारण गुण है। उसीकी महिमा है जो यह व्यवस्था वन रही है। एक दिन नईमण्डी भी गये। लोग वहुत भीड़के साथ ले गये जिससे कष्टका श्रमुभव हुशा। यहाँ प्रयचनमें श्रजैन जनता वहुत श्राई श्रार उत्सुकना भी उसे वहुंत थी परन्तु मतविभिन्नता वहुत ही वाधक वस्तु है। यथार्थ वस्तुका स्वरूप प्रथम तो जानना कठिन है। फिर श्रन्यको निरूपण करना श्रोर भी कठिन है। वस्तु स्वरूपका परिचय होना ही कल्याणका मार्ग है, परन्तु उसके लिये हमारा प्रयास नहीं। प्रयास केवल वाह्य श्राडम्बरके श्रथं है। मुजफ्ररनगरमे ६-७ दिन रुकना पड़ा।

### सहारनपुर-सरसावा

चैत्र सुदी ६ सं॰ २००६ को मुजण्फनगरसे ५ मील चलकर जंगलमे ठहरे। यहाँ पर १ पुल वना हुआ है जिसके ५२ दरवाजे हैं। यहाँ पर ८ चौके आये। हमारा श्री मुनीमजीके यहाँ भोजन हुआ। भोजन पित्र था। इसका मूल कारण था कि वे स्वयं पित्र भोजन करते हैं, अतएव अतिथिको भोजन देनेमें उन्हें कोई आपित नहीं। सदा मनुष्यको शुद्ध भोजन करना चाहिये, इससे उसकी युद्धि शुद्ध रहती है, शुद्ध बुद्धिसे तत्त्वज्ञानका उदय होता है, तत्त्व- ज्ञानसे पर भिन्नताका ज्ञान होता है और पर भिन्नताका ज्ञान ही कल्याणका मार्ग है। ४ भीलके वाद रोहाना आगये, स्थान उत्तम है। १ मन्दिर है, ४ घर जैनियों के हैं, मकान वहुंत उत्तम हैं परन्तु वहुंत आदमी प्रायः दर्शन नहीं करते। २ वजे सार्वजनिक सभा हुंई। श्रीवर्णी मनोहरलालजीका व्याख्यान हुआ। इनके सिवा अन्य त्यागियोंके भी व्याख्यान हुए। सभीने अच्छा कहा।

श्रीसुमेरुचन्द्रजीका त्याग धर्म पर अच्छा रुचिकर व्याख्यान हुंच्या। बहुंत मनुष्योंने दर्शनकी प्रतिज्ञा ली। दूसरे दिन फुटेसरा पहुंच गये। यह स्थान श्री जीवाराम जी ब्रह्मचारीके जैनधर्म प्रहेण करनेका है। जिनका संसार निकट रह जाता है उन्हें ही जैनधर्म उपलब्ध होता है। जैनधर्मके सिद्धान्त अत्यन्त उदात्त हैं। हृदयका व्यामोह छूट जावे तो यह धर्म सभीको रुचिकर हो जाय, परन्तु इस युगमे यही छूटना कटिन है। श्री समन्तमह स्वामीने तो लिखा है—

क्लेः प्रभावः कलुषाशयो वा श्रोतः प्रवनतुर्वचनानयो वा । त्वच्छासनैकाधिपतित्वलच्म्याः प्रभुत्वशक्तेरपवादहेतुः ॥

हे भगवन् ! त्र्यापका शासन—धर्म ऐसा है कि उसका समस्त संसारमे एकाधिपत्य होना चाहिये, परन्तु उसमे निम्नाङ्कित वाधक कारण हैं - १ कालिकालका प्रभाव, श्रोताका कलुपित आशय और ३ वक्ताको कथन करने योग्य नयका ज्ञान नहीं होना। यदि यह हुण्डावसिप्णी काल नहीं होता, श्रोताका आशय निर्मल होता और वक्ता किस समय कौन वात कहना चाहिये इसका ज्ञान रखता तो श्रापका शासन समस्त संसारमे एकाधिपत्य रूपसे फैलता। यदि श्राज कोई श्रजैन जैन धर्मको स्त्रीकृत भी करना चाहता है तो वर्तमान जैनियोंका व्यवहार इतना संकीर्णतापूर्ण हो गया कि उसका निर्वाह होना कठिन होता है। किसी एकाकी ब्रह्मचारीका जैनधर्म धारण करना तथा उसका निर्वाह होना दूसरी वात है पर पूरी गृहस्थीके साथ यदि कोई श्रजैन जैनधर्म धारण करता है तो उसका वर्तमान जैन समाजमे ।नर्वाह कहाँ है ? वह तो उभयतः भ्रष्ट जैसा हो जाता हैं। श्रस्तु, मन्दिरमे दर्शन किये। मन्दिर निर्मल वना हुंत्रा है। दिनको ३ वजे सभा हुई। श्री चुहक पूर्णसागरजी तथा ज्ञुङ्क चिदानन्दजी साहवका प्रयचन हुत्रा। यहाँ पर २० घर

जैनोंके हैं। सर्व सम्पन्न हैं। गुरुकुल सहारनपुरको ११०१) प्रदान किया। १०१) वर्णी यन्थमालाको भी दान किया। रात्रिको वागमे शयन किया। वाग वहुत ही रम्य था। आगामी दिन देव-वन्द् आ गये। अच्छा स्वागत हुआ, मध्याहके ३ बजेसे सभाका श्रायोजन हुत्रा । मनुष्योंका समारोह श्रच्छा था, परन्तु बात वही थी कि मानना किसीकी नहीं। आज कल मनुप्यों के यह भाव हो गये हैं कि 'त्रम्य सिद्धान्तवाले हमारा सिद्धान्त स्वीकृत कर लेवें' यह समभमे नहीं आता। प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि हमारा त्रात्मा उत्कर्ष पदको प्राप्त करे, किन्तु उत्कर्ष प्राप्त करनेका जो मार्ग है उस पर न चलना पड़े। यही विपरीत भाव हमारे उत्कर्षका वाधक है। हमारा विश्वास तो यह है कि यदि हम अपने सिद्धान्त पर आरूढ़ हो जावें--उसीके अनुसार अपनी सव प्रवृत्ति करने लगें तो श्रन्य लोग हमारे सिद्धान्तको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेंगे। हम लोग अपने सिद्धान्तोंको श्रपने श्राचरण या प्रवृत्तिसे तो दिखाते नहीं, केवल शब्दों द्वारा श्रापको वतलानेका प्रयत्न करते हैं परन्तु उसका प्रभाव उनपर नहीं पड़ता। यहाँ मुसलिम समाजका विशाल कालेज है जिसमे उनके उच्चतम प्रन्थ पढ़ाये जाते हैं, २००० छात्र उसमे शिक्षा पाते हैं। वहुत ही सरल इनका व्यवहार है, वहुत मधुरभाषी हैं। एक मौलवी साहवने उक्त सर्व स्थान दिखलाये। इनके यहाँ वाह्य श्राडम्बरका चिलकुल श्रभाव है, भोजन व्ह्त सादगीका है। यहाँसे चलकर ४ मील पर १ श्राम था उसमे निवास किया। यहाँ जिसके स्थानमे ठहरे वह बहुत ही उदार प्रकृतिका था। उसने वड़े सत्कारके साथ रहनेका प्रवन्ध किया। उसी समय ५ पाँच सेर दूध निकाल लाया। जो पीनेवाले थे उन्हें पान कराया। अनन्तर हम लोग कथोपकथन कर सो गये।

चैत्र सुदी १२ सं० २००६ को सहारतपुर आ गये। टपरी म्टेशनसे ही मनुष्योंका संपर्क होने लगा श्रौर सहारनपुरके वाहर तो हजारों मनुष्योंका जमाव हो गया। बड़ी सजधजके साथ जुळ्स निकाला। श्री हुंलासरायजी रईसके गृहके पास जो कन्यो विद्यालयका मकान या वहीं पर जुलूस समाप्त हुआ। हजारों नरनारियोंका समुदाय होनेसे •इतना शच्टमय कोलाहल था कि लाउडस्पीकरके द्वारा भी कार्य सिद्धि नहीं हो सकी। एक भी कार्य नहीं हुआ, केवल श्री जिनमन्दिरके दर्शन कर सके। चैत्र सुदी १३ भगवान् महावीर स्वामीका जन्म दिवस है। इस दिन समस्त भारतवर्षमें जैन वड़ा उत्सव करते हैं। यहाँ भी उत्सवकी वडी वड़ी तैयारियाँ थीं। प्रात काल = वजेसे ६ वजे तक जैन कालेजमे प्रवचन हुन्या । वहुत भीड़ थी, भीड़के त्रानुकूल ही प्रवचन रहा। प्रवचनसे जनता प्रसन्न भर हो जाती है पर जो वात होनी चाहिए वह नहीं होती। जनतामे वहुत ही त्रानन्द समाया हुआ था। वनारससे श्री सम्पूर्णानन्दजी आये थे। रात्रिको त्रापका भाषण होगा। लोगोंने उत्सुकताके साथ दिन व्यतीत किया परन्तु जव रात्रिका समय श्राया तव श्रखण्ड पानी वरसा इससे सभा नहीं हो सकी और श्री सम्पूर्णानन्दजीके भाषण श्रवणसे जनता विद्यित रह गई। श्रगले दिन जैन वागसे प्रवचन हुत्रा, मनुष्योंकी भीड़ वहुत थी तद्पेक्षा स्त्री समाज वहुत था। समुदाय इतना अधिक था कि प्रवचनका आनन्द मिलना किटन हैं। १ घण्टा जिस किसी तरह पूर्णकर छुट्टी मिली। यहाँ स्वाध्यायके रसिक बहुत हैं जिनमें श्री त्र० रतनचन्द्रजी मुख्त्यार श्रोर श्री नेमिचन्ट्रजी वकील प्रमुख हैं। ये टोनों भाई श्रात्म-हितमे जागरूक तथा श्रागम प्रन्थोंके परिज्ञानसे युक्त हैं। सम्दृन भापाका घ्राध्ययन न होने पर भी जिनागमका विशद ज्ञान प्राप्त

हो जाना उनके पूर्व संस्कारका फल है। ज्ञानका संस्कार पर्यान्तरमे साय जाता है, इसलिये साधन रहते हुए मनुष्यको ज्ञानार्जनमे कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। यहाँ प्रवचनोमे लोगोंका समु-दाय बहुत आता है, परन्तु न तो तात्त्विक लाभ उठाता है और न तान्त्रिक धर्मके उत्पर दृष्टि है। केवल वाह्य प्रभावनामे अपना सर्वस्य लगाकर धर्मका उत्कर्ष मानते हैं। प्रभावनाका प्रभाव साधारण जनता पर पड़ता है ऋौर साधारण जनता वाह्य वेपको देखकर केवल इतना समम लती है कि इन लोगोंके पास द्रव्यकी पुष्कलता है। ये लोग व्यापारी हैं। इन्हें संग्रह करनेकी युक्ति विदित है। वास्तवमे पूछा जाय तो आजका मनुष्य इन वाह्या-हम्बरोसे प्रभावित नहीं होता। उसे प्रभावित करनेके लिये तो उसका अज्ञान दूर होना चाहिये । ज्ञानकी महिमा अपरम्पार है। उसका जिसे स्वाद आ गया वह वाह्य पदार्थीकी अपेक्षा नहीं करता। यहाँ गुरुकुलकी उघाई करनेका कार्य हुआ। एक महानु-भावने २ कमरा गुरुकुत्तके लिये वनानेका वचन दिया। दो वी ए. लड़कोंने यह प्रतिज्ञा ली कि विवाहमे रुपया नहीं मॉगेंगे। दो ने यह नियम लिया कि जो खर्च होगा उसमे )। पैसा प्रति रुपया विशालय को देवेंगे। कई मनुष्योंने विवाहमें कन्या पक्षसे याख्वा न करनेका नियम लिया । श्री लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईसने गुरुकुल के लिये २६ बीघा जमीन देनेका वचन दिया तथा १०००) स्याद्वाद विद्यालय को भी भदान किये। यहाँ १०-११ दिन रहे। सभी दिनोंमे समागम अच्छा रहा। मोहोदयमे समागम अच्छा लगता है। मोहकी महिमा देखो कि लोग जिस समागमसे बचनेके लिये गृहका त्याग करते हैं, त्यागी होने पर भी उन्हें वही समागम अच्छा लगता है। परमार्थतः मोह गया नहीं है, उसने रूप भर वदल लिया है।

वैशाख वदी ६ को सहारनपुरसे चलकर = | वजे विलखनी पहुँच गये | पं॰ दरवारीलाल जी कोठियाके यहाँ भोजन हुआ | भद्र पुरुष हैं | सहारनपुरसे कई चौके आये | सर्व मोहका ठाठ है | जिस दिन मोहका अभाव होगा उस दिन यह सर्व प्रक्रिया समाप्त हो जायगी | मोहकी मन्द्रता और तीव्रतामे शुभ अशुभ मार्गकी सत्ता है | जिस समय मोहका अभाव होता है उस दिन यह प्रक्रिया अनायास मिट जाती है | मोहके नष्ट होते ही ज्ञानावरणादिक तीन घातिया कर्म अन्तर्मुहूर्तमे स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं |

वैशाख वदी १० सं० २००६ को सरसावा श्रा गये। पं० जुगल-किशोरजीके यहाँ भोजन हुन्रा । त्र्यापका त्याग त्र्यौर जिनवाणीसेवा प्रसिद्ध है। श्रापने श्रपना समस्त जीवन तथा समस्त धन जिनवाणीकी सेवाके, लिये ही ऋर्पित कर दिया है। ऋापका सरस्वती भवन दर्शनीय है। यहाँ १ घटनासे द्वित्तमें ऋति क्षोभ हुआ और यह निश्चय किया कि परका समागम श्रादि सर्व व्यर्थ है। श्रात्मा स्वतन्त्र हैं। स्वतन्त्रताका वाधक श्रपनी श्रकर्मण्यता है। श्रकर्मण्यताका यह अर्थ है कि उसकी ओर उन्मुख नहीं होते। परपदार्थीं के रक्षण भक्तामें ही आत्माको लगा देते हैं। अगले दिन प्रातः शव वन हुआ। वक्ता धर्मका स्वरूप वतलानेमे ही अपनी शक्ति लगा देते हैं। निरन्तर प्रत्येक वक्ता ऋपने परिश्रम द्वारा धर्मके स्यरूपको समभानेकी चेष्टा करता है, धर्मके अन्दर वाह्य आभ्यन्तर ह्रप दिखलानेकी चेष्टा करता है अौर जहाँ तक वनता है दिखलानेमें सफल भी होता है। परन्तु आभ्यन्तर रसास्त्राद न आनेके कारण न तो आपको लाभ होता है और न जनता को। केवल गल्पवाटमें परिएत हो जाता है। वैशाख वदी १२ को वीरसेवामन्टिरका १३ वाँ वापिकोत्सव हुत्रा। सभापतिके पट पर मुक्ते वैठा टिया। वीरसेवा मन्दिरकी रिपोर्ट, मुख्त्यार साह्वकी प्रेरण पाकर दरवारी-

लालजी कोठियाने सुनाई । इसके श्रनन्तर श्री जयभगवान्जी वकीलने प्राचीन धर्मोंमे जैनधर्मकी विशेषता वतलाई। आपका तुलनात्मक श्रध्ययन प्रशंसनीय है। श्रन्तमे मैंने भी कुछ कहा। श्रागामी दिन कन्या विद्यालयका वार्षिकोत्सव हुत्रा। लोगोकी वहुत भीड़ थी। रिपोर्ट श्रादि सुनानेके वाद श्रपील हुई। मन्त्री महोदयने १००१) स्वयं दिये तथा ३०००) श्रौर हो गये। लोगोंने विशेष ध्यान नहीं दिया अन्यथा १००००) हो जाते। पुरुषोंकी श्रपेचा महिलावर्गमे धार्मिक रुचि श्रधिक है। उसका कारण है कि इनका वाह्य सम्पर्क नहीं है। आजका मनुष्य तो वाह्य सम्पर्कके कारण धर्मसे च्युत होता जा रहा है। उसे धर्म आडम्बर मात्र जान पड़ने लगा है। यदि प्रारम्भसे मनुष्य पर अपना रङ्ग चढ़ जावे तो फिर दूसरा रङ्ग नहीं चढे, परन्तु लोग प्रारम्भसे ही श्रपनी सन्तानको निज धर्मके रङ्गसे विमुख रखते हैं। परिणाम उसका जो होता है वह सामने है। ऋस्तु, समयका प्रवाह ऋौर लोगोंकी रुचि भिन्न भिन्न प्रकार है।

# दिल्ली की श्रोर (१)

वैशाख वदी १३ सं० २००६ को प्रात काल ५३ वजे सरसावासे चल पड़े १ मील तक १०० मनुष्य और स्त्री समाज पहुँचानेके लिये आया जिसे वड़े आग्रहसे लौटा पाया। यहाँसे

७ मील चलकर ९ वजते वजते हम लोग अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। स्नानादिसे निवृत्त हो स्त्राध्याय किया पद्धात् भोजन किया। भोजनके वाद कथोपकथन हुआ। प्रतिदिन यही चर्चा होती हं कि राग-द्वेष-मोह संसारके मूल कारण हैं। इन तीनोंमे मूल मोह हैं । इसके विना राग-द्वेपकी प्रधानता नहीं । स्त्रागामी दिन प्रातः = ३ वजे जगाधरी आ गये। सर्व समाजने स्वागत किया। यह व्र० सुमेरुचन्द्रजी भगतका ब्राम है। ६ वजे श्री मन्दिरजीमे जुहक पूर्णसागरजीका व्याख्यान हुआ। ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ। जनताको हॅसी आ गई। हास्यका कारण वृद्वायस्था है। वृद्वा-वस्थामे जो कथा मनुष्य कहता है वह प्रायः प्रत्येक विषयमं स्खलित निकलती है। किन्तु उसका अभिप्राय निर्मल रहता है, श्रतः श्रादरका स्थान हो जाती है। मध्यान्हके ३ वजे श्रामसभा हुई। विशेष व्याख्यान हुए। एक शास्त्रीका व्याख्यान वहुत मार्मिक हुआ। अगले दिन न से ६ वजे तक प्रवचन हुआ। प्रवचनमे वहुतसे मनुष्य आये। त्राह्मण भी वहुत आये। १ शास्त्रीजी व १ च्योतिपीजी भी श्राये जो जैनधर्मकी पटार्थ निरूपणुकी शैलीमे वहुत प्रभावित हुए। श्रन्य मनुष्य भी श्राये। उनको भी बहुत हर्प हुआ। जैनधर्मकी प्रणालीसे मभी प्रभावित हुए। श्यन्तरङ्गमे निर्मलता हो तो तत्त्व निरूपण रुचिकर होता है नथा जिज्ञासाको वृद्धिगत करता है, श्रम्यथा उत्तमसे उत्तम नन्त्र निरूपण श्ररुचिकर हो जाता है तथा द्वेप व मात्सर्यको वृद्धिगत करने लगता है। वई मानवोंने ब्रह्मचर्य ब्रत लिये तथा स्त्री समाउने महीन वम्त्रींके परिधानका त्याग किया। वैशाप्य सुरी १ की जगायरीसे ५ मील चलकर रत्नपुर था गये। यहाँ सुगनिकाल दीरें यहाँ भोजन किया। श्रापके भाईने १००१) स्यादाट वियालय वनारमको प्रदान किया । ४ चौके जगावरीसै भी स्राये थे । सबने

श्रपनी श्रपनी भक्तिके श्रमुकूल पात्रको दान देनेकी चेष्टा की, परन्तु जो पात्र हैं वे सर्यादातिक्रमण कर दान लेते हैं। चरणानु-योग की पद्धतिको श्रितिक्रमण कर नई नई पद्धति निकालना उचित नहीं। प्रायः पात्रको देखकर दान देनेवाला व्यक्ति भयसे कम्पाय-मान हो जाता है। इसमे पात्रकी श्रासरलता ही कारण है।

रत्नपुरसे ३ मील चलकर यमुना नदी पर आ गये। यहाँसे ३ मील चलकर कुतुवपुरी श्रा पहुँचे । यहीं भोजन हुश्रा । जिसने भोजन दिया वह वहुत प्रसन्न हुई। आज कल इस पछ्चम कालमे अनेक आपत्तियोंके आने पर भी लोगोंमे धामिक प्रेम है तथा त्यागीकी महती प्रतिष्ठा करते हैं। उसका भोजन हो गया मानो उन्हें त्रैलोक्यकी निधि मिल गई। जब तक त्यागी भोजन न करले तब तक वड़ी सावधानी रखते हैं। यही भावना निरन्तर रखते हैं कि किसी तरह मेरे घर पात्रका भोजन हो जावे। दैवयोग्से पात्र त्रा जावे तो मेरा धन्यभाग होगा। २ वजे त्रामसभा हुई। यहाँ पर जो ठाकुर राणा थे स्रापने शिकार छोड़ दिया तथा मिदरा का भी त्याग कर दिया। प्रामके अन्य प्रतिष्ठित लोगोंने भी मांस मदिराका त्याग किया । यहाँसे २ मील चलकर समस्तपुरमे ठहर गये। दूसरे दिन प्रातः ६ मील चलकर नकुड़ स्रा गये। प्राम-वालोंने स्वागतसे धर्मशालामे ठहराया। मन्दिरमे प्रवचन हुआ पश्चात् भोजन हुआ। दिनके ३ बजेसे सभा हुई। जो सर्वत्र होता है वही यहाँ हुआ, कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ और न होनेकी संभावना है क्योंकि मनुष्योंके भाव प्रायः निर्मल नहीं रहते। अगले दिन मन्दिरमें प्रवचन हुआ। कुछ तत्त्र दृष्टिगोचर नहीं हुआ, केत्रल रस्म अदा करना पड़ती है। वक्ताको स्वयं अपनेमें आत्मकल्याणकी भावना रखना चाहिये। कल्याणका मूल कारण स्वपर विवेक है। जिनने स्वपर विवेक किया उनका जन्म सार्थक है। मध्यान्होपरान्त ३

वजेसे सभा हुई। मनुष्य समुदाय अच्छा था, परन्तु कोई तत्त्र नहीं निकला। प्रायः प्रति दिन यही कथा होती है। यहाँ की समाजने ५०१) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ५०१) गुरुक्कतको हो गये। रुपया मिलना है पर सदुपयोग होना अधिकारियोंके हाथकी वात है।

यहाँसे ५१ वजे प्रातः ५ मील चलकर श्रम्याड़ा श्रा गये। वड़े स्वागतसे लोगोंने धमेशालामे ठहराया। पश्चात् मन्दिरमें गया, प्रवचन हुआ। लोगोने स्वाध्यायका नियम लिया। धर्मशालामें कई महाशयोंने, जो कि हरिजनोंमें थे, मिंदराका त्याग किया। वई महाशयोंने मौंसका त्याग किया। खेद इस वातका है कि जैनी भाई स्वयं वीचमें वोलने लगते हैं इससे जनतामें प्रभाव नहीं रहता। सायंकाल व्याख्यान हुआ। जैनेतर जनता श्रित प्रसन्न हुई। यहाँ १५ घर जैनियोंके हैं। मन्दिर वहुत सुन्दर है। शास्त्र प्रवचनका हाल वहुत वड़ा है। दूसरे दिन प्रातःकाल समयसारका प्रवचन किया। श्रनन्तर रत्नकरण्डश्रावकाचारके भावना प्रकरणसे ३ भावनाश्रोंका वर्णन किया। पं० सदासुखरायजीने वहुत सुन्दर वर्णन किया है। सवने प्रेमसे सुना, परन्तु जिनको उनपर विचार करना चाहिये वे कदापि उनका पालन नहीं करते यह महती श्रिट है।

श्रम्वाड़ासे ४ मील चलकर इसलामपुर श्रा गये। यह वस्ती पठान लोगों की है। ३ घर जैनियोंके हैं। मार्गमे १ पठानने ६ श्राम उपहारमें दिये। १ जैनी भाई लेनेको प्रस्तुत नहीं हुए। मैंने कहा कि श्रवश्य लेना चाहिये। श्राखिर यह भी तो मनुष्य हैं। इनके भी धर्मका विकास हो सकता है। वाह्य श्राचरएके श्रनुरूल ही मनुष्योंका व्यवहार चलता है। इससे ही हम लोग उनमे घृणा करने लगते हैं, श्रतः श्रावश्यकता श्रन्तरंग श्राचरएके निर्मल

करनेकी है। उसके ऋर्थ वाह्य ऋाचरणको भी निर्मल बनानेकी आवश्यकता है। यदि वाह्य आचरण शुद्ध हो जाते तो ,अन्तरङ्ग श्राचरण का निर्मल होना कठिन नहीं। श्रगले दिन इसलामपुरसे ४ मील चल कर रामनगर आये। वीचमे १ नहर मिली। हवा ठण्डी थी। साथ ही हवाकी प्रचुरतासे वाल्क् के कण वहुत उठते थे जिससे आँखोंमे कष्ट प्रतीत होता था । यहाँ वालोंने बहुत ही स्यागत किया। अनेकों स्थानों पर दरवाजे वने हुए थे। जगह जगह सजावट थी। लोगोंमें उत्साह ही उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था। धर्मशालामे ठहराया । = वजे प्रवचन हुआ । वहुंतसे मनुष्य आये । प्रवचन रुचिकर हुआ, परन्तु विशेष वाचालता (कोलाहल ) से चित्त नहीं लगा। पश्चात् भोजन किया। मध्यान्हके वाद २ वजेसे सभा हुई जिसमें मनुप्योंकी भीड़ वहुत आई। जुहक द्वय तथा अन्य लोगोंके व्याख्यान हुए । श्रगले दिन प्रातः ७ वजे वाचनालय खुला । समारोह श्रच्छा था। पश्चात् = वजेसे ६ वजे तक प्रवचन हुआ। वहुत मनुष्य एकत्र हुए। सवने प्रवचन सुना। जैनियोंकी अपेचा श्रन्य मनुष्योंने वड़े स्नेहसे धर्मके प्रति जिज्ञासा प्रकट की तथा उनके चित्तमें मार्गका विशेष श्रादर हुआ। अनन्तर भोजनके लिये गमन किया। बहुत ही भीड़ थी। भोजन करना कठिन हो गया। एकके वाद एक आता ही रहा।

वैशाख सुदी १०-११ संवन् २००६ को ६ वि वि वि कर ७ मील नानौता आ गये। श्री महेन्द्रने वहुत ही आदरसे अपने घरमे स्थान दिया। स्नानान्तर मन्दिरमें गये। अपके घर पर आपकी माँ तथा स्त्रीने आहार दिया। २ वजे वाद उत्सव हुआ। कई सहस्र मनुष्य उत्सवमे आये। कीर्तन करनेवालोंने कीर्तन किया। प्रायः संसारमें मनुष्य जो काम करता है वह अपने उत्सवके लिये करता है। उन्नतिका मार्ग कपाय निवृत्ति है, कपायकी निवृत्ति

ज्ञानसे होती है, ज्ञानका मूल कारण आगमज्ञान है और आगम-ज्ञानका कारण विद्याका अभ्यास है। दूसरे दिन वड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्य संख्या पुष्कल थी। परन्तु हमको इतनी योग्यता नहीं कि उन्हें प्रसन्न कर सकते। केवल १ घण्टा समय गया। हम रूढिके गुलाम हैं और उसीकी पूर्ति करना चाहते हैं। वहुत आदमी जिसमे प्रसन्न हों उसीमे प्रसन्नता मानना हमारा कार्य है, परन्तु धर्मका स्वरूप तो निर्मल आत्माकी परिणति है। उसकी यथार्थता मोह राग द्वेषके अभावमे ही है। यदि राग-द्वेपकी प्रचुरता है तो आत्माका कल्याण होना असम्भव है। प्रवचनोंमे जैन लोगोंके अतिरिक्त अन्य लोग भी आते हैं। परन्तु उन्हें उनकी भाषामे तत्त्वका उपदेश नहीं होता, श्रतः वे लोग उपदेशके फलसे विश्वत रह जाते हैं। जैन लोग स्वयं इसकी चेष्टा नहीं करते, केवल अपरी व्यवहारमें श्रपना समय व्यय कर देते हैं। एक दिन प्रकाश-चन्द्रजी रईसके यहाँ भोजन हुआ। आपने स्याद्वाद विद्यालयको १०००) दिये । भोजन भी निरन्तराय हुस्रा । प्रकाशचन्द्र व उनकी पत्नी दोनों योग्य हैं। एक दिन चतुरसेनके यहाँ भोजन हुआ। आपने भी स्याद्वाद विद्यालयको ५०१) प्रदान किये तथा महेन्द्रने भी १००१) उक्त विद्यालयको दिये। कुछ लोगोंने देनेका वचन दिया। यह सब हुआ, परन्तु यह सुनकर बहुत खेद हुआ कि नानौता त्राममें कई जैनी भाई मिटरा पान करते हैं तथा कई वेश्यागामी हैं। त्यागी लोगोंको शुद्ध भोजन मिलना प्रायः किंतन है। ज्ञह्रक पूर्णसागरजी लोगोंके सुवारका वहुत प्रयास करते हैं। बहुत मनुष्य श्रष्टमृलगुणका नियम लेते हैं, किन्तु जानते हुउ नहीं। इससे त्रतका निर्वाह होना कठिनसा प्रतीत होता है। इस प्रान्तमे सदाचारकी हुटि महती हैं। नानौतामे ४ दिन लग गये।

वैशाख सुदी १५ सम्वत् २००६ को नानौतासे ३ मील चल कर यमुनाकी नहर पर त्रा गये। यहाँसे ४ मील चल कर तीतरों त्र्याये । यहाँ जैनियोके १० घर है । मन्दिरमे प्रायः जैन लोग बहुत कम त्राते हैं। हम जिस घर भोजनके लिये गये, पता चला कि उस घरसे कोई भी दशन करनेको नहीं जाता। यहाँ पर ३ वजे सभा हुई जिसमे पं॰ हुकमचन्द्रजी सलावावालोने मूर्तिपूजा विवयक व्याख्यान दिया। श्रमले दिन १३ वजे तीतरोंसे चलकर कचोगढ़ी आ गये। यहाँ प्र घर जैनियोंने हैं। १ मन्दिर है। यहाँ पर रामाभाई खतोलीके निवास करते हैं, सज्जन हैं, श्राँखसे नहीं दिखता, वृद्धावस्था है। यहाँके जैनी श्रापके साथ श्रच्छा सऌक करते हैं। मन्दिर स्वच्छ है। सव भाईयोंने पूजा करनेकी प्रतिज्ञा ली । अगले दिन ७ मील चलकर पक्कीगढ़ी आये । यहाँ १ मन्दिर है। १० घर जैनियोंके हैं जो सम्पन्न हैं। मिहिल स्कूलमें प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। लाला जम्यूप्रसादजीके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५१) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। मध्यान्हके बाद ज्ञहक चिदानन्दजीका उपदेश हुत्रा। श्रापको व्याख्यान देनेका बहुत शौक है। अगले दिन पक्कीगढ़ीसे ३ मील चलकर भैंसवाल आये। यहाँ ३ घर जैनोंके हैं। सर्व सम्पन्न हैं। यहाँ जाट लोगोंकी वस्ती है। याममें ईख बहुत उत्पन्न होती है। इससे यहाँके कृषक सम्पन्न हैं। पैसाकी पुष्कलता सबके है, किन्तु वह दुरुपयोगमे जाता है। देहातोंमें धार्मिक विद्याके जाननेवाले नहीं श्रीर शहरोंमें ऐश आरामसे लोगोंको अवकाश नहीं। अवतो काम और अर्थ पुरुषार्थ ही मुख्य रह गये हैं।

यहाँसे ६ मील चलकर जेठ वदी ४ को शामली छा गये। यहाँ पर १०० घर जैनियोंके हैं। वड़ी भारी मण्डी है। छाज कल इस नगरमे सट्टाकी प्रचुरता है। यहाँ र मन्दिर हैं, किन्तु पूजन श्रीर स्वाध्यायका प्रचार नहीं। जिसके घर भोजन किये वह भला श्रादमी है। ३ वजेसे श्रामसभा हुई, परन्तु फलांश जो सर्वत्र होता है यहाँ भी वही हुआ। वाह वाहमे संसार लुट रहा है। आप स्वयं निज स्वरूपसे च्युत हैं और संसारको उस स्वरूपमे लगाना चाहता है.. यह सर्वथा उचित नहीं। जो मनुष्य जगत्के कल्याणकी चेष्टा करते हैं उनका स्वयं अपनी श्रोर लच्य नहीं। ऐसे लोगोंका प्रयत्न अन्धेके हाथमे लालटेनके सहश है। संसारकी विडम्चनाका चित्रण करना संसारीका काम है। जिसको नाना विकल्प उत्पन्न होते हैं वह पदार्थको नाना रूपमें देखता है। वास्तवमें पदाथ तो श्रामन्न है, श्रखण्डित है, यह उसे च्योपशम ज्ञानसे नाना रूपमें देखता है।

त्राज यहाँ प्रातःकाल होनेके पूर्व एक घटना हुई जो कल्पनामे न श्रानेके योग्य है। स्वप्नमें वावा भागीरथजीका दर्शन हुआ। दर्शन होना श्रमंभव नहीं, परन्तु जैसा उनका रूप न था वैसा देखा। उन्हे दिगन्वर मुद्रामे देख मैंने कहा—महाराज। आप दिगम्बर हो गये श्राप तो यहाँ पञ्चम गुणस्थानवाले श्रावक थे श्र यहाँसे स्वर्ग गये, देव पर्याय पाई। फिर यह मुद्रा कहाँ पाई श्र उन्होंने कहा—भाई। गरोशप्रसाद। तुम बड़े भोले हो। मैं तुम्हारे सममानेके लिये श्राया हूँ। यद्यपि मैं अभी सागरों पर्यन्त श्रायु भोग कर मनुष्य हो जँगा तब दिगम्बर पदका पात्र वन्न्गा, परन्तु तुमको कहता हूँ कि तुमने जो पद श्रंगी-कार किया है उसकी रक्षा करना। व्रत धारण करना सरल है, परन्तु उसकी रक्षा करना कठिन है। वाह्यमे श्वहर श्रोर श्लंगोटी रखना। श्वार पानी पीना कठिन नहीं तथा श्राजन्म निर्वाह करना कोई कठिन नहीं। किन्तु श्राभ्यन्तर निर्मलता होना श्रति कठिन है।

स्राज जेठ वदी म सं० २००६ का दिन था। उपवास करना चाहिये, परन्तु शाक्तिकी न्यूनतासे १ वार तो प्रति दिन भोजन होता ही है. किन्तु जो भोजन प्रतिदिन करते थे उससे कुछ घ्रस्प किया। लोग संसारमे शान्ति चाहते हैं, परन्तु संसारका स्वरूप ही श्रशान्तिका पुञ्ज है। उसमे शान्ति खोजना रम्भास्तम्भमे सार अन्वेपण करनेके सदृश है। संसारके अभावमे शान्ति है। लौकिक मनुप्य स्थान विशेपको संसार श्रौर मोच सममते हैं वह नहीं। संसार असंसार आत्मा की परिणति विशेप है। आत्मा की सकर्म परिणित संसार है श्रीर निष्कर्म परिणित श्रसंसार है - मोत्त है। नत्रमीके दिन श्री शीतलप्रसादजी शाहपुरवालोंके यहाँ भोजन किया। प्रत्येक मनुष्यकी यह दृष्टि रहती है कि हमारे यहाँ ऐसा भोजन वने जो सर्वेश्रेष्ठ हो तथा पात्र हमारी इच्छानुसार उतना भोजन कर लेवे। चाहे पात्रको लाभ हो चाहे ऋलाभ हो। भोजनकी इच्छाका ही नाम त्राहार है। त्राहार संज्ञाके कारण संसारमे महान् अनर्थ होते हैं। अनर्थकी जड़ भोजनकी लिप्सा है। अच्छे श्रच्छे महान् पुरुष इसके वशीभूत हो कर जो जो क्रिया करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं। भोजनकी लालसा श्रच्छे श्रच्छे पुरुषोका तिरस्कार करनेमें कारण हो जाती है।

एक दिन लोगोंने सभामें निर्ध्य किया कि लड़कीवालेसे रुपया नहीं लेना । समयकी बलवत्ता देखो कि लाग लड़कीवालेसे ठहराव कर रुपया मॉगने लगे हैं। कितनी अकर्मण्यता लोगोंमें आ गई है और लोभकी कितनी सीमा वढ़ गई है शवस्तवमें लोभ ही पापका मूल कारण है। वहुतसे मनुष्य लोभके वशीभूत हो कर नाना अनर्थ करते हैं। आज संसार दुखी है इसवा लोभ ही मूल हेतु है। हज़रों मनुष्योंके प्राण लोभके वशीभूत होनेसे चले गये। आज संसारमें जो संप्राम हो रहा है उसका कारण राज्यित्त हो। आज जितने यन्त्रोंका संचालन हो रहा है उसका अन्तरङ्ग कारण लोभ है। और यन्त्रोंमें जो असंख्य प्राण्योंका

घात हो रहा है उसका मृल कारण यह लोभ ही है। श्राजकल तत्त्व-ज्ञानका श्रादर नहीं, केवल उपरी वातोंसे लोकको रञ्जन करना ही व्याख्यानका विषय रहता है। मैंने वहुत विचार किया कि अव इन विषयोंमें न पड़ूँ तथा आत्मकल्यागिकी स्रोर दृष्टिपात करूँ, परन्तु पुरातन संस्कार भावनाके श्रमुसार कार्य नहीं होने देते। ठ्याख्यान देना तभी उपयोगी होगा जिस दिन स्रात्मप्रवृत्ति निर्भल हो जावेगी। उसी दिन अनायास संवर हो जायेगा, संवर ही मोच-मार्ग है। इसके विना मोच्नमार्गका लाभ होना श्रति कठिन नहीं श्रसंभव है। मनुष्योंके साथ विशेष संपर्क नहीं करना चाहिये, क्योंकि संपर्क ही रागका कारण है। रागके विषयकां त्यागनेमे भी राग की निवृत्ति होती है। निर्विपय राग कहाँ तक रहेगा ? सर्वथा ऐसा सिद्धान्त नहीं कि पहले राग छोड़ो पश्चात् विषय त्यागो । …यदि च्योपशम ज्ञानको पाया है तो उसे पराधीन जान उसका अभिमान छोड़ो। भोजनकी लिप्सा छोड़ो। उदयानुकूल कार्य होते हैं। परने हमारा उपकार किया हमने परका उपकार किया यह श्रहंकार त्यागो। न तो कोई देनेवाला है अगर न कोई हरण करनेवाला है। सर्व कार्य सामग्रीसे होते हैं। केवल दैव भी कुछ नहीं कर सकता और न केवल पुरुषार्थ ही कार्यजनक है, किन्तु सामग्री कार्यजननी है। वाह्याभ्यन्तर निमित्तकी उपस्थिति ही सामश्री कहलाती है।

सामलीके वाद विशेष श्रावास काँदलामे हुआ। यहाँ प्रवचनमें मनुष्योंका समुदाय श्रच्छा रहा, किन्तु समुदायसे ही तो छुछ नहीं होता। शास्त्र प्रवचन केवल पद्धित मात्र रह गया है। वास्तवमें तो न कोई वक्ता है और न श्रोता है। मोहकी वलवत्तामें ही यह सब ठाठ हो रहा है। जहाँ तक मोहकी सत्ता है वहाँ तक यह सब प्रपश्च है। संसारके मूल कारण रागादिक हैं। उनके सद्भावमें ही यह सब हो रहा है। रागकी प्रवलता पष्ट गुणस्थान तक ही

है, इसिलये यह लीला वहीं तक सीमित है "यह भाव वक्ता तथा श्रोताके हृद्यमें श्रा जावे तो प्रवचनकी सार्थकता है। महावीरसे पं० धरऐन्द्रकुमारजी श्राये। उन्हींके यहाँ भोजन हुआ। श्रापने १ कपायप्राभृत भेंट किया तथा स्याद्वाद विद्यालय को ११) प्रदान किये। स्रापकी श्रद्धा धर्ममे उत्तम है। वास्तवमें श्रद्धा स्रात्माका अपूर्व गुगा है। इसके होने पर सर्व गुगा स्वयमेव सम्यक् हो जाते हैं। इसकी महिमा ऋचिन्त्य है। इसके होने पर ज्ञान सम्यक् और मिथ्याचारित्र श्रविरत शब्दसे व्यवहृत होने लगता है। जेठ सुदी २ का प्रवचन वहुत शान्तिसे समाप्त हुन्त्रा। प्रकरण ब्रह्मचर्य व्रतका था। पर पदार्थसे भिन्न ज्ञात्माका निश्चय कर जो पर पदार्थों में राग द्वेपका त्याग कर देता है वही पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाला होता है। लौकिक मनुप्य केवल जननेन्द्रिय द्वारा विषयसेवनको ही ब्रह्मचर्यका घातक मानते हैं, परन्तु परमार्थसे सर्व इन्द्रिय द्वारा जो विषय सेवनकी इच्छा है वह सव ब्रह्मचर्यका घातक है। त्राज देहलीसे २० मनुष्य त्राये। सवका यही श्राग्रह था कि दिल्ली चलिये। चातुर्मासका श्रवसर निकट था तथा उसके उपयुक्त दिल्ली ही स्थान था, इसलिये हमने कह दिया कि दिल्लीकी श्रोर ही तो चल रहे हैं।

कांदलामें एक दिन पत्दूरामजीके यहाँ भोजन हुआ। आप यहुत ही सज्जन तथा तत्त्वज्ञानी हैं। आप स्थानकवासी सम्प्रदायके हैं। आपका हृदय विशाल है, परन्तु साथमें छुछ आग्रह भी है। स्थानकवासी सम्प्रदायका छुछ व्यामोह है। यद्यपि आप निर्जन्थ पदको ही मुख्य मानते हैं फिर भी वस्त्रधारीको भी मुनि माननेमे संकोच नहीं करते। दिगम्बर संप्रदायमे तो यह अकाट्य मान्यता है कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका जहाँ त्याग है वहीं मुनि पद हो सकता है। एक दिन यहाँ ग्रामके सबसे बड़े

प्रसिद्ध मौलवीने २ श्राम भोजनके लिये दिये। लोगोंने वहुत टिप्पणी की, परन्तु मैंने उन्हें श्राहारमें ले लिया, खेद इसका है कि लोग बिना शिर-पैरकी टीका-टिप्पणी करते हैं। यदि ये ही श्राम किसी मुसलमानकी दुकानसे लाये होते तो ये लोग टीका-टिप्पणी न करते। अस्तु, लोग अपने अभिप्रायके अनुसार टीका-टिप्यणी करते हैं। हमको उचित है कि उससे भय न करें। पापसे भयभीत रहे। किसीके प्रति अन्यथा न विचारें। जो होना है होगा इसमे खेद किस वात का ? मेरा तो वार-वार यही तच्य रहता है कि आत्माकी निर्मलता ही सुखका कारण है और सुख ही शान्तिका उपाय है। उपाय क्या ? सुख ही शान्ति है। इधर प्रवचनमे अजैन लोग भी वहुत आते हैं और जैनधर्मके मर्मको श्रवण कर प्रसन्न भी होते हैं। श्रात्मा श्रनादि श्रनन्त है यह सवको मान्य है। किन्तु इसका यह ऋर्थ नहीं कि स्रात्मा कूटस्थ रहे परिग्णम बिना परिगामी नहीं और परिग्णमी बिना परिग्णम नहीं, श्रत यह मानना सर्वथा उचित है कि श्रात्मा न तो सर्वथा नित्य है श्रौर न सर्वथा श्रनित्य है, किन्तु नित्या-नित्यात्मक है।

## ( ? )

जेठ सुदी १० सं० २००६ को ५ वजे प्रात कांद्रलासे चलपर गंगेरु थ्या गये। यहाँ पर १ मन्दिर है। ४० घर जैनियों के हैं। मन्दिरमागीं हैं। इनके श्रातिरिक्त ४० घर म्थानक्यासियों के हैं। ये लोग मूर्तिको नहीं मानते हैं। श्रालम्बन के बिना धर्मका कोई श्राचार इनमें नहीं हैं श्रीर न धर्मका स्वरूप ही सममते हैं। नाममात्रके जैन हैं। सायंकालको सभा हुई जिसमे अष्टमूल गुण आदिके व्याख्यान हुए। यहाँसे ६ मील चलकर कैराना आये। यहाँ पर ४० घर जैनियोंके हैं। प्रायः सम्पन्न हैं, सरल हैं, स्वाध्याय और पूजनका अच्छा प्रवन्ध है। यहाँ जैनियोंके अनेक वालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघमे हैं, परन्तु संघका उद्देश्य क्या है किसीको पता नहीं। देशमे सर्वत्र इनका प्रचार है। कुष्ठ उनसे पृछो वताते नहीं। केवल देशका भला हो यह कह देते हैं। वास्तव वात कुछ वताते नहीं। भारतवर्ष ऋषिभूमि रही, परन्तु अब तो यहाँके मनुष्य कामलोलुप हो गये। प्रवननमे बहुत लोग आये। प्रवचनका सार यही था कि ज्ञानका विपरीत अभिप्रायसे मुक्त हो जाना सम्यग्दर्शन है, पदार्थको जानना सो सम्यग्दर्शनादि तीन रूप है—विद्यानन्द स्वामीने यही वात इलोकप्रातिकमे कही है—

मिथ्याभिप्रायनिमुं किजीनस्येष्ट हि दर्शनम् । ज्ञानत्वम्यविज्ञतिश्चर्यात्वं कम्महन्तृता ॥

भोजनमें अन्तराय तथा पैरमें मोच आ जानेंके कारण एक दिन यहाँ और रुकना पड़ा। शरीरकी दशा पतनोन्मुख है फिर भी हम वाह्य आडम्बरमें उलक रहे हैं यह दुःखकी वात है। उचित तो यह है कि धर्म साधनमें सावधान रहें। धर्म साधनका अर्थ यह है कि परिणामोंकी व्ययतासे रज्ञा हो। धर्म मानें वाह्य किया नहीं। किन्तु हम अज्ञानी लोगोंने वाह्य कियामें धर्म मान रक्ता है। आज यहाँसे जाना था, परन्तु किहलके मनुष्योंमें परस्पर रात्रिको वैमनस्य हो गया। वैमनस्यका कारण पाठशालाके अर्थ चन्दा था। परमार्थसे पूछा जावे तो संसारमे दुःखादिका कारण परियह पिशाच है। यह जहाँ आया वहाँ अच्छे-अच्छे

महापुरुशेंकी मित भ्रष्ट कर देता है। परिग्रहकी मूच्छा इतनी प्रवल है कि आत्माको आत्मीय ज्ञानसे विद्धित कर देती हैं। कहाँ तक लिखा जावे ? जब तक इसका सद्भाव है तब तक आत्मा यथा ख्यातचारित्रसे बिद्धित रहती हैं। अविरत अवस्थासे पार होना क ठेन हैं।

श्राषाढ़ वदी १ सं० २००६ को किहलसे ५ मील चलकर छन्रौली श्रा गये। यहाँ पर १०० घर जैनधर्मवालोंके हैं जिनमे ५० घर मन्दिरमागीं दिगग्वर श्राम्नायवालोंके हैं श्रीर शेप स्थानकवासियोंके हैं। पख्रम कालका माहात्म्य है कि इस निर्मल धर्ममे भी पन्थोंकी उत्पत्ति हो गई। शान्तिका मार्ग तो मिध्याभिप्रायके त्यागनेसे होता है, परन्तु उस श्रोर दृष्टि नहीं। दृष्टिको शुद्ध वनाना ही श्रात्माके कल्याणका मूल मार्ग है। हमारी भूल ही हमारे संसार परिश्रमणका कारण है। वहुत विचार करनेके वाद हमने तो यह निश्चय किया कि श्रपनी श्रम्तरद्ध की परिणित निर्मल करना चाहिये। पर पदार्थोंके गुण दोपोंकी समालोचनाकी श्रपेत्ता श्रात्मीय परिणितिको निर्मल करना वहुत लाभदायक है। देवपूजा करनेका तात्पर्य यह है कि श्रात्माकी परिणिति निर्मल होनेसे यह दशा श्रात्माकी हो जाती है। श्र्यात् श्रात्मा देव पदको प्राप्त हो जाता है। मेरी श्रात्मा भी यि श्रक्तके कथित मार्गपर चलनेकी चेष्टा करे तो कालान्तरमे हम भा तत्तुल्य हो सक्ते हैं, परन्तु हमारी प्रवृत्ति श्रत्यन्त निन्दा है।

ह्यपरोलीसे ४ मील चलकर नगला आये। यहाँ १५ घर जैनियों के हैं। सब दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। १ मन्दिर है, स्वच्छ है, २ वेदिकाएँ हैं, १ काली मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। यहाँ जाट लोग बहुत हैं, प्रायः सन्पन्न हैं। प्रवचनमें सब लोग आये। आज वल लोगों के हृद्यमें धार्मिक संघर्षका जोर प्रायः कम हो गया है और लोग प्रेममे एक दूसरेकी वात सुननेको तैयार हैं "यह प्रमन्नतार्वी वात है। धर्म जीवका स्वच्छ स्वभाव है जिसका उदय होते ही आत्मा केवल्यावस्थाका पात्र हो जाती हे। मोन्न, आत्माकी केवल परिणितको कहते हैं। उसके अर्थ ही यावत् प्रयास है। यदि उसका लाभ न हुआ तो सर्व प्रयास विफल हे। अगले दिन यहाँसे ४ मील चलकर वावली आ गये। यह प्राम वहुत वड़ा है। मन्दिर भी यहाँका विशाल है। यहाँ श्री शान्तिनाथकी मूर्ति अत्यन्त मनोहर और आकर्षक हं, परन्तु मूर्तिके अनुरूप स्थान नहीं। यहाँ पर परस्पर मनोमालिन्य बहुत हे और वह इतना विकृत हो गया है कि जिसमे हानिकी सम्भावना है। वहुतसे मनुष्य ऐसे होते हैं जिन्हें कलह ही प्रिय होता है। जनता उनके पन्नमें आजाती है। सद्सद्विवेक होना अत्यन्त कठिन है। शास्त्रका अध्ययन करने-वाले जब इस विपयमे निष्णात नहीं तब अज्ञानी मनुष्य तो अज्ञानी ही हैं।

अपाढ़ बदी ५ सं० २००६ को वावलीसे चलकर वड़ीत आ गये। यह नगर अच्छा है, व्यापारका केन्द्र है। ५०० घर दिगम्बर जैनोंके हैं। २ मन्दिर हैं। वड़ी शानसे स्वागत किया। कालेज भवनमे वहुत भीड़ थी। व्याख्यानका प्रयास बहुत लोगोंने किया, परन्तु कोलाहलके कारण कुछ असर नहीं हुआ। हमने भी कुछ वोलना चाहा, परन्तु कुछ वोलन सके। लोगोंका कोलाहल और हमारी वृद्धावस्था इसके प्रमुख कारण थे। कालेजकी विलिंहग बहुत बड़ी है। किराया अच्छा आता है। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ, भीड़ बहुत थी। अब शास्त्रकी प्रणालीसे शास्त्र होता नहीं, क्योंकि जनता अधिक आती है और शोरगुल बहुत होता है। इस स्थितिमे यथार्थ वात तो कहनेमें आती नहीं, केवल सामाजिक वातोंमे शास्त्रका प्रवचन होने लगता है। समाजमें विद्वान बहुत है तथा व्याख्याता भी उत्तम हैं, किन्तु वे स्वयं अपने ज्ञानका

श्राट्र नहीं करते। यदि वे श्रपने ज्ञानका श्राट्र स्वयं करें तो संसार स्वयं मार्ग पर स्त्रा जावे स्रथवा न स्त्रावे, स्वयं तो कल्याण पर श्रा जावरो । ज्ञानके श्रादरसे श्रभिप्राय तदनुकूल श्राचरण है। तद्नुकूल आचरणके विना ज्ञानकी प्रतिष्ठा ही क्या है ? मुमे तो अन्तरङ्गसे लगता है कि वोलना न पड़े, अपनी परिएतिको निर्मल वनानेका प्रयत्न करूँ इसीमें सार दिखता है। संसारमे ऐसा कोई शक्ति-शालि पुरुष नहीं जो जगन्की सुधारणा कर सके। वड़े वडे पुरुप हो गये। वे भी संसारकी गुत्थी सुलका न सके तब श्रल्प-ज्ञानी इसकी चेष्टा करे यह महती दुर्वीयता है। यदि कल्याएकी इच्छा है तो अपने भावोंको सुधारा जाय। इच्छाको रोकना ही सुंखका कारण है। सुख कोई अन्य पदार्थ नहीं जिसके अर्थ किसीसे याचना की जाने । जैसे कुम्भकार घटको चाहता है और यह जानता है कि घटकी पर्याय सिट्टीमे होती है। वह निरन्तर १ ढेर निट्टी का घरमें रखता है। यदि वह मिट्टीकी पूजा करने लगे तया जप करने लगे कि घट वन जावे तथा घटानुकूल व्यापार न करे वो क्या घट वन जावेगा ? इसी प्रकार सुख आत्माका गुण है और आत्मामें सदा विद्यमान है, परन्तु वर्तमानमे मोहके कारण उसमें दुः खरूप परिण्मन हो रहा है। यदि यह प्राणी सुख प्रापिके अनुकूल चेष्टा न करे—आत्मासे मोह परिण्तिको विषटिन न करे तो क्या अपने आप सुख गुण प्रकट हो जावेगा ?

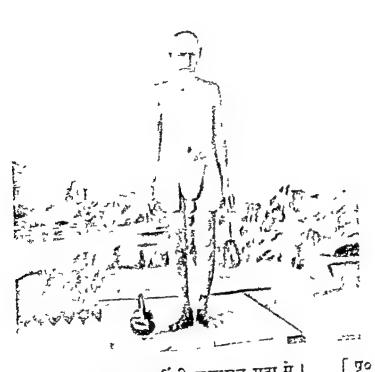
श्रपाढ़ वदी ९ सं० २००६ को श्रीजिल्लक चिदानन्दर्जी तथा जु॰ पूर्णसागरजीके केशलुक्च हुए। दृश्य देखनेके लिये श्रपार भीड एकत्रित हुई। यद्यपि केशलुक्च एक क्रिया है श्रीर उसको मुनि तथा ऐलक करते हैं एवं यह एकान्तमें होता है, किन्तु श्रव उमे प्रभावनाका श्रंग बना दिया है, सहस्रों मनुष्य उसमें इकट्टे हो जाते हैं तथा जयकारके नारे लगाते हैं। पक्चम काल है, मनुष्य

स्वेच्याचारी हैं जो मनमे आता है वह करते हैं। आगमकी अव-हेलना भले ही हो जावे, परन्तु जो असत्कल्पना मनमे आ जावे उसकी सिद्धि होना ही चाहिये। मनुष्य आवेगमे आकर अनेक अनर्थ करता है। यद्यपि केशलुख्य करना कोई धर्म नहीं। केश हैं, पास-मे पैसा नहीं। यदि उन्हें रक्खा जावे तो कोंन संभाले, यूका आदि हो जावें, अत. हाथसे उपाइना ही धर्म है। उसे जनता वीत-रागताका द्योतक समभती हैं तथा जय-जयकारके नारे लगाती है और उसीमे हमारे जो त्यागी हैं वे द्वादशानुप्रेचाका पाठ पढ़ते हैं तथा नाना नारे लगाते हैं। मेरी समभसे व्रतीको आगमकी अवहेलना 'करना उचित नहीं। वड़ौतमे ६ दिन लग गये। अष्टाहिकाके पूर्व दिल्ली पहुँचना था, इसलिये वीचमे अधिक रकना रुचिकर नहीं होता था।

श्राषाढ वदी ११ सं० २००६ को प्रातःकाल ५ वजे वड़ौतसे चलकर ७ वजे वड़ौली श्राये। यहाँ पर १ मन्दिर तथा १० घर जैनोंके हैं, साधारण स्थितिके हैं, सरल हैं। परिणामोंकी सरलता जो छोटे श्रामवासियोंमें होती है वह वड़े श्रामोंके मनुप्योंमे नहीं होती। वड़े श्रामोंके मनुप्योंमे विषयकी लोलुपता श्रधिक रहती है, क्योंकि छोटे श्रामोंकी श्रपेचा उनमे विषय सेवनकी सामग्री श्रधिक रहती है श्रोर यह जीव श्रानादिसे विषय लोलुप वन रहा है। इसी दिन मध्यान्हके वाद चलकर मसूरपुर श्रा गये। यहाँ १ मन्दिर श्रोर २० घर जैनियोंके हैं। मसूरपुरसे ६ मील वागपत श्राये। यहाँ पर २० घर जैनियोंके तथा १ मन्दिर है। १ हाई-स्कूल भी है। मनुष्य सज्जन हैं, परन्तु यहाँ पर कोई समागम नहीं। इससे जैनत्वका विशेष परिचय नहीं। कहाँ तक लिखें? न जाननेके कारण प्रायः जैनधमके मूल सिद्धान्तोंकी विरलता होती जाती है। लोगोंकी वुद्धिकी विलहारी है कि वे स्वकीय द्रव्य

मन्दिरों के सजाने तथा सोने चाँदीके उपकरणों के एकत्रित करनेमें तो व्यय करते हैं पर जिनसे जैन सिद्धान्तों का ज्ञान वहें, हमारी सन्तान सुवोध हो इस ख्रोर उनका लच्य नहीं। त्रयोदशी के दिन वागपतसे ३ मील चलकर टटेरीमण्डी आ गये। यहाँ पर १० घर जैनियों के तथा १ चैत्यालय है। चैत्यालय न्वहुत ही सुन्दर हं। आज बहुत ही गर्मी रही। तृषाने बहुत सताण, परन्तु स्त्रप्तमें भी यह ध्यान न आया कि यह व्रत धारण करना उपयोगी नहीं। प्रत्युत यही विचार चित्तमें आया कि परिपद्द सहन करना ही तप है। आत्माकी अचिन्त्य शक्ति है। परिणामों की निर्मलतासे यह आत्मा अनायास ही संसारके वन्धनसे विमुक्त हो सकता है। जहाँ तक वने अभिप्राय शुद्ध करनेकी महती आवश्यकता है।

चतुर्दशीको टटेरीमण्डीसे ध्रुमें मील चलकर खेखड़ा श्रागये। यह श्राम बहुत प्रसिद्ध है। इसमें बाबा भागीरथजी प्रायः निवास करते थे। यहाँ नगभग २०० घर जैनियोंके है। लोगोंने बहुत स्त्रागतसे लाकर लाला उप्रसेनजीकी कोठीमें ठहराया था। ६ वर्ज मन्दिर गये। वहाँ पर बहुत जनता थी। मुक्ते लगा कि जनता धर्मकी पिपासु है, परन्तु धर्मका स्वरूप वतलानेवाले विरले हैं। में तो श्रपने श्रात्माको इस विपयमे प्रायः बहुत ही दुर्वल देग्व रहा हूँ। जहाँ तक बने परकी बख्रना मत करो। परकी बख्रना हो व मत हो, श्रापकी बख्रना तो हो ही जाती है। श्रापकी बद्धनावा यही श्रर्थ है कि श्राप वर्तमानमें जिस कपायसे दुसी होता है उसीका बीज फिर वो लेता है। श्रात्माको दुख देनेवाली यम् इच्छा है। वह जिस किसी विपयकी हो जब ,तक उसकी पूर्ति नहीं होती, यह जीव दुखी रहता है तथा श्रात्मा भी श्रागामी दुःगमा पात्र हो जाता है। यह सब होने पर भी मनुष्य निज हित करनेमें संकुचित रहते हैं। केवल संसारकी वासनाएँ इन्हें सताती रहती हैं।



पुच्य वर्णीजी खद्गामन मुद्रा में । [ पृ० ६४]

वासनात्रोभें सबसे बड़ी वासना लोकैपणा है जिसमे सिवाय संक्षेश के कुछ नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल कन्या पाठशालाका निरान्तण किया। द्रव्य की पुष्टकलताके अभावमे यथायोग्य व्यवस्था नहीं। यहाँ पर २०० घर जैनियोंके हैं, परन्तु उनमे परस्पर प्रेम नहीं और संघटन होना भी असंभव सा है। मान कषायकी तीव्रताके कारण लोग एक दूसरेको कुछ नहीं सममते। दूसरेके साथ नम्रताका भाव आनेमे अपना अपमान सममते हैं यही सर्वत्र पारस्परिक वैमनस्यका कारण होता है। यदि हृदयसे मानकी तीव्रता निकल जावे और एक दूसरेके प्रति आत्मीयभाव हो जाय तो वैमनस्य मिटनेमें क्या देर लगेगी ? जहाँ वैमनस्य नहीं, एक दूसरेके प्रति मत्सरभाव नहीं वहाँ वहेंसे वहे काम अनायास सिद्ध हो जाते हैं वा द्रव्यकी कभी कभी नहीं रहती। यह वैमनस्यका रोग सर्वत्र है और सर्वत्र ही इसका यही एक निदान है। इसे मिटानेकी चमता सबमे नहीं। वही मिटा सकता है जो स्वयं कषायजन्य कलुषतासे परे हो।

श्राषाढ़ सुदि २ सं० २००६ को प्रातः ५ वजे चलकर वड़ेगाँव चेत्र पर श्रा गये। यहाँ पर १ विशाल मन्दिर हैं श्रीर मन्दिरके चारों कोनों पर १ छोटे मन्दिर हैं। उनमे भी प्रतिमाएं विराजमान हैं। उहाँ पर श्री पारसदासजी ब्रह्मचारी रहते हैं। पण्डित इयाम-लालजीका भी यहाँ निवास है। श्राज वाहरसे १०० यात्री श्रा गये दिल्लीसे राजकृष्णजी, उनकी पत्नी तथा श्रीमान जुगलिक्शोरजी श्रीर घड़ीवालोंके वालक भी श्राये। मध्यान्ह वाद वावाजीका प्रवचन हुशा। श्री पं० जुगलिक्शोरजीसे वातचीत हुई। १० लाख रुपयेके सद्भावमें प्राचीन संस्कृत साहित्यका उद्धार प्रारम्भ हो सकता है। दूसरे दिन वड़ेगाँवसे १ भील चलकर नहर पर श्राये

श्रीर वहाँसे ५३ मील चलकर नहरके ऊपर १ वंगला सरकारी था उसमें निवास किया । यहाँ पर लाला रघुवीरसिंहजी व श्री जैनेन्द्रकिशोरजी दिल्लीवालोंके चौकामें भोजन किया। श्री ३० कृष्णावाईजी भी श्राईं थीं। इनकी त्यागचर्या वड़ी ही कठिन है। स्त्रीजाति स्वभावतः कृष्टसिंहण होती है।

स्त्रीजाति स्वभावतः कप्टसहिष्णु होती है। त्राषाद सुदी ४ सं०२००६ को वंगलासे ५३ मीलका मार्ग तय कर टीलाके वागमे निवास किया। यह वाग श्री लाला उलफतरायजी दिल्लीवालोका हैं। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्याय नहीं हुन्ना। वैसे उपयोगकी स्थिरताके लिये स्थान सुन्दर है, परन्तु वाह्य कारण कूटके श्रभावमे कुछ नहीं हुआ। मेरी अवस्था ७५ वर्षकी हो गई, परन्तु उसका लाभ न लिया और न लेने की चेष्टा है। इसका मूल कारण मोहकी प्रवलता है। जिसने मोहकी प्रमुता पर विजय नहीं पाई उसने मनुष्य जीवनका सार नहीं पाया। पञ्चभीको प्रातः टीलासे ५ मील चलकर शाहद्रा आ गये। यहाँ पर ५० घर जैनोंके तथा १ मन्दिर है। स्थान भद्र है। जलवायु उत्तम है। हम लोग धर्मशालामें सानन्द ठहर गये। यहाँके लोगोंकी प्रवृत्ति ग्रामवासियोंके सदृश है, परन्तु दिल्लीके समीपवर्ती होनेसे यहाँके मनुष्य प्रायः उसी विचारके हैं। यहाँ दिल्लीसे वहुत मनुष्य आये थे, किन्तु सबकी प्रवृत्ति वही है जो होना चाहिये। निवृत्तिमार्गकी श्रोर दृष्टि वहुत ही कम है। मुक्ते लगा कि कल्याणके अर्थ लोग इतस्ततः भ्रमण करते हैं। किन्तु क्ल्याणका मार्ग संसारमे कहीं भी नहीं। आभ्यन्तर आत्माकी निर्मल परिणतिमे ही है। शाहदरा-से ३ मील चलकर राजकृष्णके वागमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। दोपहरको १ मिनट भी विश्राम नहीं मिला, १ मनुष्यके वाद १ मनुष्यका आगमन वना रहा और संकोचवश में वठा रहा।

वास्तवमे आभ्यन्तर मोहकी परिणित इतनी प्रवल है कि इसके प्रभावमें आकर कुछ भी रागांशका त्यागना कठिन है। वाह्य रूपादि विपयोंका त्याग तो प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, किन्तु आभ्यन्तर त्याग करना अति कठिन है।

श्रापाद सुदी ८ सं० २००६ को राजकृष्णजीके बागसे ३ मील चलकर यमुना पुलके १ फर्लाझ बाद लोगोंने विश्राम लिवाया। तदनन्तर एक विशाल जुल्र्सके साथ १ मील चलकर लाल मन्दिरमें श्रा गये। जनता बहुत थी फिर भी प्रवन्ध सराहनीय था। यहीं पर लाल मन्दिरकी पञ्चायतने श्रमिनन्दन पत्र श्रीमान् पं० मक्खनलालजीके द्वारा समर्पित किया। मैंने भी श्रपना श्रमिपाय जनताके समन्द व्यक्त किया। मेरा श्रमिप्राय यह था कि त्यागसे ही कल्याणमार्ग सुलम है। त्यागके बिना यह जीव चतुर्गतिरूप संसारमें श्रनादिकालसे भ्रमण कर रहा है श्रादि। यहाँसे १ मील चलकर श्रनाथाश्रमके भवनमे ठहर गया। मुरारसे लेकर यहाँ तक ७ माहके निरन्तर परिभ्रमणसे शरीर शान्त हो गया था तथा चित्त भी क्रान्त हो चुका था, इसिलये यहाँ इस मिलल पर श्राते ही ऐसा जान पड़ा मानों भार उतर गया हो। पं० चन्द्रमौलिने मुरारसे लेकर देहली तक साथ रहकर सब प्रकारकी व्यवस्था बनाये रक्खी।

## दिल्लीका ऐतिहासिक महत्त्व और राजा हरसुखराय

भारतीय उतिहासमे दिहीका महत्त्वपूर्ण स्थान है, रहा है और श्चागे रहेगा। उसका प्राचीन नाम उन्द्रप्रस्य है। यह वर्तमान-में भारतकी राजधानी है और पहले भी इसे राजधानी वननेका सीभाग्य प्राप्त रहा है। दिल्लीको उजाड़ने, पुनः वसाने श्रौर कले श्राम करने कराने श्रादिके ऐसे भीपणतम दृश्य इतिहास प्रसिद्ध हैं कि जिनका स्मरण भी शरीरमे रोमाञ्च ला देता है। दिहीपर तुंवर ( तोमर ) चौंहान, पठानो, मुगलों तथा श्रंत्रेजों श्रादिने शासन किया है। वर्तमानमे स्वतन्त्र भारतकी राजधानी होनेसे दिहीकी शोभा अनूठी है। यहाँकी जनसंख्या २२ लाखसे कम नहीं है जिसमें जैनियोंकी जनसंख्या पत्रीस हजारसे कम नहीं ज्ञात होती। रात्रिमे विजलीकी चमचमाहट श्रौर कारोकी दौड़ देख साधारण जनता विस्मित हो उठती है। दिहीमे प्राचीन समयसे ही जैनोंका गोरव रहा है । यहाँ ऋनेक जैन श्रीमन्त, राजमन्त्री तथा कोपाध्यक्ष हो गये हैं। जैन संस्कृतिके संरत्तक अनेक जैन मन्दिर समय-समय पर यहाँ वनते रहे हैं। वर्तमानमे जैनियोंके २६ मन्दिर श्रीर ४-५ चैत्यालय हैं। २-४ मन्दिरोंमे अच्छा विशाल शास्त्रभण्डार भी है। वर्तमान मन्दिरोंमे चाँदनी चौककी नुक्कइपर वना लाल मन्दिर सवसे प्राचीन है, क्योंकि उसका निर्माण शाहनहाँके राज्यकाल-में हुआ था। दूसरा दर्शनीय ऐतिहासिक मन्दिर राजा हरसुखराय का है जो 'नया मन्दिर' के नामसे लोकमे ख्यात है। इस मन्दिरमे पञ्चीकारीका वहुत वारीक श्रौर श्रनूठा काम है जो कि ताजमहलमे भी उपलब्ध,नहीं होता।

दिष्टीका यह ऐतिहासिक मन्द्र जॉ अप्रमी कलाके लिये प्रसिद्ध है, दर्शनीय है। उसकी अनूठी क्रासेगरी अपूर्व और आश्चर्य कारक है। दिष्टीके वर्तमान ऐतिहासिक स्थानोंमे इसकी गणना की जाती है। भारत पर्यटनके लिये आनेवाले विदेशी जन दिल्लीके पुरातन स्थानोंके साथ इस मन्द्रिकी कलात्मक पच्चीकारी और सुवर्णिङ्कत चित्रकारीको देखकर हिंपत तथा विस्मित होते हैं। इस मन्द्रिके निर्माता जैनसमाजके प्रसिद्ध राज्यश्रेष्ठी लाला हरसुखराय हैं जो राजाकी उपाधिसे अलंकृत थे। उन्होंने वि० सं० १८५७ में इसे वनवाना क्रुक्त किया था और सात वर्षके कठोर परिश्रमके वाद वि० सं० १८६४ में यह वनकर तैयार हुआ था। इसका प्रतिष्ठा महोत्सव सं० १८६४ वैशाख सुदी ३ (अज्ञय हतीया) को सूर्य मन्त्रपूर्वक हुआ था। उस समय इस मन्द्रिकी लागत लगभग सात लाख स्थया आई थी जब कि कारीगरको चार आना और मजदूरीको दो आना प्रतिदिन मजदूरीके मिलते थे।

मन्दिरके वाहर प्रवेशद्वारके ऊपर वनी हुई कलात्मक छतरी साचीके तोरणद्वारोंके समान सुन्दर तोरणद्वारोंसे अलंकत है। उसमे पापाणका कोई भी ऐसा हिस्सा नहीं दीखता जिसमे सुन्दर वेलवूटा, गमला अथवा अन्य चित्ताकर्षक चीजें उत्कीर्ण न की गई हो। यह छतरी दशकको अपनी ओर आकर्षित किये विना नहीं रहती। मन्दिरमे प्रवेश करते ही दर्शकको मुगलकालीन १५० वर्ष पुरानी चित्रकलाके दर्शन होते हैं। मन्दिरकी छतें लाल पापाणकी हैं और उनपर बारीक घुटाईवाला पलम्तर कर उसके ऊपर चित्रकारी अङ्कित की गई है। चित्रकारी इतनी सधी हुई कलमसे वनाई गई है कि जिसे देखकर दर्शक आनन्द विभोर हो उठता है। ज्यों ज्यों दर्शककी इष्टि समी दहिलानी, देखती है त्यों त्यों उसकी अतृति वढ़ती जाती

है। मन्दिरका प्राङ्गण विशाल और मनोरम है। इतना विशाल प्राङ्गण अन्य मन्दिरोंमे कम देखनेको मिलता है। जब दर्शक चोंकमेसे मूलवेदीका निरीचण करता है, साथ ही वेदीके चारों श्रोर लगे हुए जंगलोंकी वारीक जालीकी कटाईका अञ्लोकन करता है तो त्रानन्द्विभोर हो उठता है। जब वह देदीकी वारीक क्लात्मक पच्चीकारी वेदीके चारों स्त्रोर चारां दिशास्रोंमें वने हुए सिंहके युगलोंको तथा उनकी मूझोंके वारीक वालोंको देखता है तव उसे उस शिल्गीके चातुर्यपर आश्चर्य हुए विना नहीं रहता। उसके वाद जब दर्शक वेदीके ऊपरी भागमें वने हुए कमलका श्रव-लोकन करता है जिसपर आदिनाथ भगवान्की सं० १६६४ की प्रतिष्ठित प्रशान्त मूर्ति विराजमान है। साथ ह जव उसे ज्ञान होता है कि जब मन्दिर बना था तब इस कमलकी लागत दश हजार रुपया थी स्रोर वेदीकी सवा लाख रुपया तव वह स्रोर भी स्रिधिक श्राश्चर्यमे पड़ जाता है। यह वेदी मकरानेके सुन्दर सफेद संगमर्मर पाषाण्से वनाई गई है। इसमे कहीं कहीं तो पत्रीकारीका इतना वारीक काम है कि जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता । गर्भालयके चारों श्रोर दीवारोंपर सुवर्णाङ्कित श्रनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक भावोंको चित्रित करनेका प्रयत्न किया गया है। जैसे गजकुमार मुनिका अनि उपसर्ग, सेठ सुदर्शनके शील प्रभावसे ग्लीका सिंहासन होना, सीताका सतीत्व परिचयके लिये अग्निकुण्डमें प्रवेश करना, रावग्पका कैलाशगिरिको उठाना श्रौर वाली मुनिका तपश्चरग, भरत श्रौर वाहुवलीके दृष्टि, जल श्रौर मल्ल नामक तीन युद्ध, राजा मधुका वैराग्य, सनत्कुमार चक्रवर्तीकी देवोंके द्वारा परीचा, श्रवन्तीसेठ सुकुमालका वैराग्य, मोर्यसम्राट् चन्द्रगुप्रका भद्रवाहु श्रुतकेत्रलीसे स्वप्नोंका फल पूँछना, यादववंशी भगवान् नेमिनाथ श्रौर उनके चचेरे भाई श्रीवृष्णके वलकी परीचा, श्रुकलंक

देवका वौद्धाचार्यके साथ राजसभामें शास्त्रार्थ तथा भगवान् जिनेन्द्रके समवसरएका दृश्य । अपर मानतुङ्गाचार्यके भक्तामर स्तोत्रके ४८ कान्योंको सुत्रर्णाचरोंमे श्रंकित किया गया है।साथ ही उनकी सिद्धि तथा ऋद्विमन्त्रोंको भी स्पष्ट रूपसे चित्रित किया है। तीर्थोंमे पावापुरी, चम्पापुरी, मन्दारगिरि श्रौर मुक्तागिरिके चित्र श्रंकित हैं। ऊपर अनेक देवगण श्रपने श्रपने वाद्योंको लिये हुए दिखलाये गये हैं। मूल वेदीके अतिरिक्त अन्य ३ वेदियाँ भी पीछे चलकर यहाँ वनवाई गई हैं जिनपर प्राचीन एवं नवीन मूर्तियाँ विराजमान हैं। इन मूर्तियोंमे स्फटिक, नीलम और मरकतकी मूर्तियाँ भी विद्य-मान हैं। कुछ मुर्तियाँ तो १११२ तथा ११५३ वि० सं० तककी प्रतिष्ठित हैं। चौकेने वांई श्रोर दहलानमे चारों श्रोर सुवर्णाक्षरों में श्राचार्य कुमुद्चन्द्रका कल्याणमन्दिर स्तोत्र श्रङ्कित है श्रौर वगल-वाले कमरामे विशाल सरस्वती भवन है। सरस्वती भवनमे प्राकृत, संस्कृत, त्रपभ्रंश त्रौर हिन्दी त्रादिके १८०० के लगभग हस्त लिखित प्रन्थ हैं तथा २०० के लगभग हिन्दी सस्कृतके गुटकोंका भी संकलन है। इन प्रन्थोंमें सबसे प्राचीन प्रन्थ १४८६ वि॰ सं० का लिखा हुआ है। ५०० से अधिक मुद्रित यन्थ भी संगृहीत हैं।

यहाँ चौकके सामनेवाली दहलानमें शास्त्रसभा होती है। यह सभा अपने ठॅगकी एक ही है। यही सभा लाला हरसुखराय तथा लाला सगुनचन्द्रके समय सगुनचन्द्रशैलीके नामसे प्रसिद्ध थी। संवत् १८५१ में जयपुरके विद्वान् पं॰ मन्नालाल जी, अमर चन्द्रजी दीवानके साथ हस्तिनागपुरकी यात्राको गये थे। यात्रा कर जब वापिस दिल्ली आये तब लाला सगुनचन्द्रजीने चातुर्मासमें दिल्ली ठहरा लिया और उनसे शास्त्र प्रवचन सुना। साथ ही लालाजीने उनसे राजा चामुण्डरायके चारित्रसारकी हिन्दी टीका करनेकी प्रेरणा की जिसे उन्होंने वि० सं० १८५१ में बनाकर पूर्ण की

थी। छहडालाके कर्ता पं॰ दौलतरायजीने भी श्रपना श्रन्तिम जीवन यहीं विताया श्रीर तत्त्वचर्चा तथा स्वाध्यायकारस लिया एवं श्रनेक श्राध्यात्मिक पद वनाये। प्रसन्नता हैं कि शास्त्रसभाकी परम्परा श्रभीतक चली श्रा रही है।

मन्दिरके निर्माता राजा हरसुखरायजीके पिता लाला हुकूमत सिह हिसारके रहनेवाले थे । दिल्लीके वादशाहके आपहसे दिली आकर रहने लगे थे। वादशाहने उन्हे शाही मकान प्रदान किया था। लाला हुकूमतसिंहके पाँच पुत्र थे—१ हरसुखराय. २ मोहनलाल, ३ संगमलाल, ४ मेवाराम श्रीर ५ तनसुखराय। इनमें हरसुखराय ज्येष्ठ थे। आप बहुत ही गंभीर तथा समयातु-कूत काय करनेमें अत्यन्त पदु थे। वादशाहने इन्हें अपना खजांची वना दिया तथा इनके कार्यसे वह इतना खुश हुआ कि इन्हें 'राजा' पदसे ऋलंकृत कर दिया। इन्हें सरकारी सेवाओं के ज्यलच्यमे तीन जागीरें सनदें तथा सार्टिफिकेट आदि भी प्राप्त हुए थे जो उनके कुटुन्चियोंके पास श्राज भी सुरिचत हैं। ये खभावतः दानी श्रौर दयालु थे। इनके पास जा कर कोई गरीव मनुष्य श्रसहाय नहीं रहा। वि॰ सं॰ १८५५ को रात्रिके समय विस्तर पर पड़े पड़े राजा साहवके मनमे मन्दिर वनवानेका विचार डठा श्रीर दूसरे दिन प्रातःकाल ही उस विचारको कार्यस्पमें परिणत करनेके लिये आपने अपने मकानके पास ही विशाल जमीन खरीद ली तथा वादशाहसे मन्दिर निर्माणकी त्राज्ञा ले ली। ग्रुभ सुहूर्तमें मन्दिरकी नींव डाली गई श्रौर मन्दिर वनना श्रारम्भ हो गया। सात वर्ष तक वरावर काम चलता रहा, परन्तु जव शिखरमे थोड़ा काम वाकी रह गया तव आपने काम वन्द कर दिया। काम वन्द देख लोगोंमे तरह तरहकी चर्चाएं उठीं। कोई कहता कि वाटशाहने शिखर नहीं वनने दी, इसलिये काम वन्द हो गया है तो कोई कहता

कि राजा साहवने मन्दिर वनवाना प्रारम्भ कर हम जैनियों शि प्रतिष्ठा कम करा दी श्रादि । बुछ लोग राजा साहवके पास पहुँचे श्रार काम वन्द करनेका कारण पृछने लगे । उन्होंने उत्तर दिया कि भाईयो ! श्रपनी स्थिति छिपाना बुरा है, श्रतः श्राप लोगोंसे कहता हूँ कि मेरी जितनी पृंजी थी वह सब इसमे लग गयी । श्रव श्राप लोग चंदा एकत्रितकर वाकी कार्य पूरा करा लीजिये । राजा साहवके इतना कहते ही उनके इप्ट-मित्रोंने श्रसिक्योंके ढेर उनके सामने लगा दिये । उन्होंने कहा कि नहीं, इतने धनका श्रव काम वाकी नहीं है, वहुत थोड़ा ही काम वाकी रह गया है सो उसे श्राप एक दो नहीं किन्तु समस्त जैनियोंसे थोड़ा थोडा इकट्ठा लाइये । श्राज्ञानुसार समस्त जैनियोंके घरसे चन्दा इकट्ठा हुंश्रा, उससे मन्दिर पूरा हुश्रा ।

जव वि॰ सं॰ १८६४ में मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई श्रौर कलशारोहणका समय श्राया तव सव लोगोंने राजा साहवसे प्रार्थना की कि
श्राप कलशारोहण कीजिये। इसके उत्तरमें राजासाहवने पगड़ी उतारकर कहा कि भाइयो । मन्दिर मेरा नहीं है समस्त जैन भाइयोंके
चन्दासे इसका निर्माण हुत्रा है, इसलिए पत्र्यायत इसका कलशारोहण करे श्रौर वही उसका प्रवन्ध करे। उस समय लोगोंकी समममें श्राया कि राजा साहवने काम वन्दकर इसलिये चन्दा कराया था।
वे लोग गद्गद हो गये। राजा साहवने कहा भाइयो । यदि मैं
इसमें श्राप लोगोंका सहयोग न लेता तो सदा मेरे मनमें यह श्रहंकार
उठता रहता कि यह मन्दिर मेरा है श्रथवा मेरी वात जाने दो,
हमारी जो संतान श्रागे होगी उसके मनमें भी यह श्रहंकार उठता
रहेगा कि यह मेरे पूर्वजोंका वनवाया हुत्रा है। श्राप सवके चन्दासे
इसका काम पूरा हुत्रा है, इसलिये यह श्राप सवका मन्दिर है।
रा इसके उपर कुछ भी स्वत्त्व श्राजसे नहीं है। उसी समयसे

मन्दिरका नाम 'पंचायती सन्दिर' प्रचलित हुआ। दि ही के स्रतिरिक्त स्थापने हस्तिनापुर, श्रलीगढ़, करनाल, सोनपत, हिसार, सांगानेर स्थानेपर पानीपत आदि स्थानोंपर भी मन्दिर निर्माण कराये हैं।

हस्तिनागपुरके मन्दिर वनवानेकी तो विचित्र कथा है। वहाँके राजाको सरकारी खजानेका २ लाख रुपया भरना था पर भरनेका समय निकट त्राने पर वह रूपयोंका प्रवन्ध न कर पाया। इतना रुपया कौन देगा ? इस चिन्तामे राजा निमग्न था। कुछ लोगोंने राजा ह्रसुखरायका नाम सुभाया । राजाने श्रपना श्रादमी हरसुख-रायजीके पास भेजा। उन्होंने आश्वासन दिया कि व्यय न हों, समय पर त्र्यापका रूपया खजानेमे जमा हो जायगा। समयके पूर्व ही उन्होंने दो लाख रूपया खजानेमें जमा कर दिया श्रीर श्रपने यहाँ वहींमें वह रूपया राजाके नाम न लिखकर हस्तिनागपुरमे मन्दिर बनवानेके लिये राजाके पास भेजे, यह लिखा दिया। समयने पलटा खाया। हस्तिनागपुरके राजाकी स्थिति सुधरी श्रौर उन्होंने २ लाख रपया राजा हरसुखरायजीवे पास पहुँचाया। हरसुखरायजीने कागज पत्र दिखाकर कहा कि हमारे यहाँ श्रापक राजाके नाम कोई रूपया नहीं निकलता। लोग बड़े आश्चर्यमें पड़े कि दो लाख रूपयेकी रकम इनके यहाँ नामें नहीं पड़ी। जब इस श्रोरसे श्रधिक श्रामह हुत्रा तव उस वर्षकी वही निक्लवाई गई तथा उसमे लिखा राजासाहवको वताया गया कि यह रुपया तो उन्होंने हस्तिनागपुरमें मन्दिर वनवानेके लिये आपके पास भेजा था। राजा उनके व्यवहारसे गद्गद हो गया भ्रौर उसने श्रपनी देखरेखमें हस्तिनागपुरका मन्दिर वनवा दिया।

श्राप श्रपने व्यवहारसे समाजके गरीवसे गरीव व्यक्तिको श्रपमानित नहीं करते थे तथा सवको साथ लेकर चलते थे। वि० सं० १८६७ मे श्रापके प्रयन्नसे शाही लवाजमाके साथ रथोत्सव हुआ था छोर जैनधर्मकी अद्भुत प्रभावना हुई थी। वि० सं० १८८० में आपका देहावसान हुआ था। आपका एक ही पुत्र था जिसका सुगुनचन्द्र नाम था। यह भी अपने पिताके समान ही प्रतापी, धर्मनिष्ठ तथा पुण्यशाली था।

वर्तमानमें भी यहाँ भारतवर्षीय दि० जैन अनाथालय नामकी संस्था चलती है जिसका विशाल भवन तथा साथमें स्कूल है। समाजमें कई उत्साही व्यक्ति हैं जो निरन्तर समाजको आगे वढ़ाते रहते हैं। लाला राजाकृष्ण भी एक दक्ष व्यक्ति हैं। इन्होंने अपने पुरुपार्थसे अच्छीसे अच्छी संपति संचित की है तथा अहिसा मन्दिरका निर्माण करा कर समाजसेवाके लिये उसका ट्रष्ट करा दिया है। इनके सिवा लाला फिराजीलालजीका नाम भी उल्लेखनीय है। ये अधिकतर अपनी सम्पत्तिका उपयोग धार्मिक कार्योमें करते रहते हैं।

## दिल्लीका परिकर

मेरे साथ श्री जुल्लक पूर्णसागरजी, जुल्लक चिदानन्दजी, त्र० सुमेरुचन्द्रजी भगत तथा एक दो त्यागी श्रौर थे। श्री कर्मानन्द्रजी जिनका श्राधुनिक नाम त्र० निजानन्द था यहाँ थे ही। त्र० चाँदमलजी भी उदयपुरसे श्रागये थे, इसलिये यहाँ समय सम्यक् रीतिके व्यतीत होता था। दिल्ली बड़ा शहर है। अनेक मोहल्लोंमे दूर दूर पर जिन मन्दिर तथा जैनियोंके घर हैं। चृद्धावस्थाके कारण मेरी प्रवचनकी शक्ति प्रायः चीण हो गई थी, श्रतः इन सबके प्रवचनों श्रौर भाष्णोंसे जनताको लाभ मिलता

रहता था। प्रवचनके वाद में भी जो वनता था कह देता था। पहले दिन कण्ठ रुद्ध होनेके कारण में कुछ नहीं कह सका, इसिलेये सभा विसर्जन हो गई। श्री रघुवीरसिहजी रईसेके यहाँ भोजन हुआ। आपने ५०१) दानमें दिये। आज मनमें विचार आया कि जगत्को प्रसन्न करनेका भाव त्याग दो। जो कुछ वने स्वात्मिहत की ओर दृष्टिपत करो। संसारमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जो सका कल्याण कर सके। कल्याणका मार्ग स्वतन्त्र है। अन्तर्ज रागद्वेपका त्याग करना ही आत्मशान्तिका साधक है। अन्तर्ज रागद्विक आत्माके शत्रु हैं, उनसे आत्मामें अशान्ति पैटा होती हैं और अशान्ति आकुलता की जननी है, आकुलता ही दुःख हैं, दुःख किसीको इप्ट नहीं, सर्व संसार दुःखसे भयभीत है। अषाद सुदी १२ के दिन कण्ठ ठीक हो जानेके कारण मैंने कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि—

श्रात्मा मोहोदयके कारण पर पदार्थों में श्रात्मवृद्धि कर दुःखी हो रहा है। एक प्रज्ञा ही ऐसी प्रवल छैनी है कि जिसके पड़ते ही वन्ध और श्रात्मा जुदे जुदे हो जाते हैं। श्रात्मा श्रोर श्रनात्माका ज्ञान कराना प्रज्ञाके श्राधीन है। जब श्रात्मा श्रोर श्रनात्माका ज्ञान होगा तब ही तो मोक्ष हो सकेगा। परन्तु इस प्रज्ञारूपी छैनीका प्रयोग वड़ी सावधानीसे करना चाहिये। वृद्धिमें निजका श्रंश छूट कर परमें न मिल जाय श्रोर परका श्रंश निजमें न रह जाय यही सावधानीका मतलव है।

धन धान्यादिक जुदे हैं, स्त्री-पुत्रादिक जुदे हैं, शरीर जुटा है, रागादिक भावकर्म जुदे हैं, इन्यकर्म जुदे हैं, मितज्ञानाटिक चायोपशमिक ज्ञान जुदे हैं। यहाँ तक कि ज्ञानमें प्रतिविम्वित होने-वाले ज्ञेयके आकार भी जुदे हैं। इस प्रकार स्वलक्षणके वलसे भेद करते करते अन्तमे जो जुद्ध चैतन्य भाव वाकी रह जाता है वही निजका अंश है। वही उपादेय है। उसीमे स्थिर हो जाना मोच है। प्रज्ञाके द्वारा जिसका महरण होता है वही चैतन्य रूप 'मैं' हूँ। इसके शिवाय अन्य जितने भाव हैं निश्चयसे वे पर द्रव्य हैं - पर पदार्थ हैं। प्रजाके द्वारा जाना जाता है कि श्रात्मा ज्ञाता है, दृष्टा है। वास्तवमे ज्ञाता दृष्ट' होना ही आत्माका स्वभाव है पर इसके साथ जो मोहकी पुट लग जाती है वही समस्त दु खोका मूल है। अन्य कर्मके उद्यसे तो आत्माका गुण रुक जाता है पर मोहका उदय उसे विपरीत परिणमा देता है। अभी केवलज्ञाना-वरगाका उद्य है। उसके फल स्वरूप केवलज्ञान प्रकट नहीं हो रहा हे, परन्तु मिथ्यात्वके उद्यसे त्रात्माका त्रास्तिक्य गुण त्रन्यथा रूप परिणम रहा है। त्रात्माका गुण रुक जाय इसमे हानि नहीं पर मिध्यारूप हो जानेमे महती हानि है। एक आदमीको पश्चिमकी स्रोर जाना था, कुछ दूर चलने पर उसे दिशा भ्रान्ति हो गई। वह पूर्वको पश्चिम समभ कर चलता जा रहा है, उसके चलनेमे वाधा नहीं आई पर ज्यों ज्यों चलता जाता है त्यों त्यों अपने लच्यसे दूर होता जाता है। दूसरे आदमीको दिशा आन्ति तो नहीं हुई पर पैरमे लकत्रा मार गया इससे चलते नहीं वनता। वह अचल होकर एक स्थान पर बैठा रहता है पर अपने लक्ष्यका बोध होनेसे वह उससे दूर तो नहीं हुआ, कालान्तरमे ठीक होनेसे शीघ्र ही ठिकानेपर पहँच जावेगा ।

एकको आँखमे कमला रोग हो गया जिससे उसका देखना वन्द तो नहीं हुआ, देखता है, पर सभी वस्तुएं पीली पीली दिखती हैं। उससे वर्णका वास्तविक वोध नहीं हो पाता। एक आदमी परदेश गया। वहाँ उसे कामला रोग हो गयो। घरपर स्त्री थी, उसका रझ काला था। जव वह परदेशसे लौटा और घर आया तो उसे श्री पीली पीली दिखी। उसने उसे भगा दिया। कहा कि मेरी श्री तो काली थी तू यहाँ कहाँसे श्राई? वह कामला रोग होनेसे श्रपनी ही श्रीको पराई सममने लगा। इसी प्रकार मोहके उदयमे यह जीव कभी कभी श्रपनी चीजको पराई सममने लगता है श्रोर कभी कभी पराईको श्रपनी। यही विश्रम संसारका कारण है, इसलिये ऐसा प्रयत्न करों कि जिससे पापका पाप यह मोह श्रारमासे निकल जाय। हिंसादिक पाँच पाप हैं श्रवश्य पर ये मोहके समान श्रहितकर नहीं हैं। पापका वाप यही मोह कम है। यही दुनियाको नाच नचाता है। मोह दूर हो जाय श्रीर श्रातमाके परिणाम निर्मल हो जाँय तो संसारसे श्राज छुट्टी मिल जाय। पर हो तव न। संस्कार तो श्रनादि कालसे इस जातिके वना रक्खे हैं कि जिससे उसका छूटना कठिन दिखने लगता है।

हानके भीतर जो अनेक विकल्प उठते हैं उसका कारण मोह ही है। किसी व्यक्तिको आपने देखा, यदि आपके हृदयम उनके प्रति मोह नहीं है तो कुछ भी विकल्प उठनेका नहीं। आपको उसका ज्ञान भर हो जायगा। पर जिसके हृदयमे उसके प्रति मोह है उसके हृदयमे अनेक विकल्प उठते हैं—यह विद्वान है, यह अमुक कार्य करता है, इसने अभी भोजन किया है या नहीं श्रि आदि। विना मोहके कौन पृत्रने चला कि इसने अभी राया है या नहीं श्रि मोहके निमित्तसे ही आत्माम एक पटार्थको जानकर दूसरा पदार्थ जाननेकी इच्छा होती है। जिसके मोह निकल जाता है उसे एक आत्मा ही आत्माका वोध होने लगता है। उसकी हृष्टि बाह्य होयकी और जाती नहीं है। ऐसी दशामें आत्मा आत्माके हारा आत्माके लिये आत्मासे आत्मामें ही जानने लगना आत्माके हारा आत्माके लिये आत्मासे आत्मामें ही जानने लगना है। एक आत्मा ही पट्कारक रूप हो जाता है। सीथी बान यह निकल करने सामनेसे करा, कर्म, करणादिका विकल्प हट जाना है।

चेतना यद्यपि एक रूप है फिर भी वह सामान्य विशेषके भेट्से दर्शन श्रोर ज्ञान रूप हो जाती है। जब कि सामान्य श्रौर विज्ञेष पदार्थमात्रका स्वरूप है तव चेतना उसका त्याग कैसे कर सकती है ? यदि वह उसे भी छोड़ दे तव तो अपना श्रस्तित्व भी खो वठे श्रीर उस रूपमें वह जड़रूप होकर श्रात्माका भी श्रन्त कर दे सकती है, इसिलये चेतनाका द्विविध परिणाम होता ही है। हाँ, चेतनाके अतिरिक्त अन्य भाव आत्माके नहीं हैं। इसका यह अर्थ नहीं सममने लगना कि आत्मामे सुख वीर्य आदि गुण नहीं हैं। उसमे तो अनन्त गुण विद्यमान हैं और हमेशा रहेगे, परन्तु अपना और उन सवका परिचायक होनेसे मुख्यता चेतना-को ही दी जाती है। जिस प्रकार पुद्गलमे रूप रसादि गुरा अपनी अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार आत्मामे भी ज्ञान दुर्शन आदि अनेक गुण अपनी अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार चेतनातिरिक्त पदार्थोंको पर रूप जानता हुआ ऐसा कौन युद्धिमान् है जो कहे कि ये मेरे हैं। शुद्ध आत्माको जाननेवालेके ये भाव तो कदापि नहीं हो सकते।

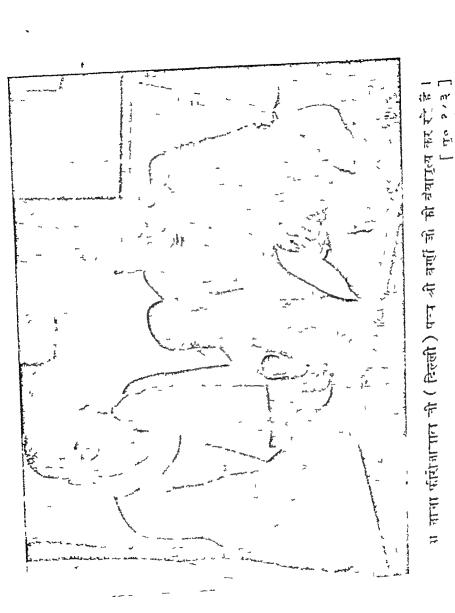
जो चोरी त्रादि त्रपराध करता है वह शंकित होकर घूमता है। उसे हमेशा शङ्का रहती है कि कोई मुफे चोर जान कर बांध न ले, पर जो अपराध नहीं करता है वह सर्वत्र निःशङ्क होकर घूमता है। 'मैं बाँधा न जाऊ' इस प्रकारकी चिन्ता ही उसे उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार जो आत्मा परभावोंको प्रहणकर चोर वनता है वह हमेशा शङ्कित ही रहेगा श्रौर संसारके वन्धनमें बंधे गा। सिद्धिका न होना अपराध है। अपराधी मनुष्य सदा शङ्कित रहता है, अतः यदि निरपराधी वनना है तो आत्माकी सिद्धि करो। आत्मासे परभावोंको जुदा करो। अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि मोचार्थी पुरुपोंको सदा इस सिद्धान्तकी सेवा करना

चाहिये कि मै शुद्ध चैतन्यज्योतिरूप हूँ और जो ये अनेक भाव प्रतिच्गा उझसित होते हैं वे सव मेरे नहीं हैं स्पष्ट ही पर द्रव्य हैं।

एक दिन (अपाड़ सुदी १३) को श्री पं० जुगलिक्शोरजी सुख्त्यारने जैनधर्मके सिद्धान्तपर अच्छा प्रकाश ढाला। अन्तम आपने यह भाव प्रदर्शित किया कि हमे जैनशासनको प्रकाशमे लानेका प्रयत्न करना चाहिये। आज लोगोंमे जैनधर्मके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। परस्परका तनाव भी लोगोंका न्यून हो गया है, इसलिये यह अवसर है कि हम जैनधर्मके प्राचीन ब्रन्थ जनताके सामने लावें और अच्छे रूपमे लावें। जैनधमके पवित्र सिद्धान्त मन्दिरकी चहार दीवालोंके अन्दर सिद्योंसे कैद चले आ रहे हैं उन्हें हमे वाहर प्रकाशमें लाना चाहिये। मुख्यार साहवने यह वात इस ढॅगसे कही कि सवको पसंद आ गई। आपका वीरसेवा मन्दिर सरसावामे हैं। लोगोंने प्रेरणा दी कि वह स्थान त्रापकी संस्थाके लिये उपयुक्त नहीं है। यहाँ राजधानीम इसका संचालन होना चाहिये। जनताने स्थानकी व्यवस्था करनेका आश्वासन दिया। जैन समाजमे रुपयेके व्ययकी श्रुटि नहीं, परनु डसका उपन्तेग कुछ विवेकके साथ नहीं होता। यदि इसीका उप-योग यथार्थ हो तो मानवजातिका वहुत कुछ कल्याण हो सकता है। मानवजातिकी कथा छोड़ो, जैनधर्म तो संसार मात्रके प्राणिया-का संरचक है।

श्रीकर्मानन्द्जी (निजानन्द्जी) के प्रवचन रोचक होते हैं। जनतामें धर्म श्रवणकी उत्सुकता वहुत है, परन्तु एकत्रित होकर इतना कलख करते हैं कि सब श्रानन्द किरिक्रा हो जाता है। साबन बड़ी ७ सं० २००६ को रिववार था, इसलिये जनताकी भारी भीड़ टपास्थित हुई। श्री ज्ञ० चिदानन्दजी महाराजने मनुष्यों से सममानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु उनका सब प्रयत्न जनताक कलरा





में विलीन हो गया। पं० मक्खनलालजीने भे प्रयत्न किया पर कोई प्रभाव जनतापर न पड़ा। उसके अनन्तर आरासे पधारी हुई चन्दा-वाईने भी अपनी मधुर ध्विनसे उपदेश दिया, परन्तु जनतामें सर्व प्रयत्न विलीन हो गये। अन्तमे हमारा प्रयत्न भी असफल ही रहा। लोग जिस भावनाको लेकर धर्मायतनों उपस्थित होते हैं उसकी पूर्तिकी वात तो भूल जाते हैं और वाह्य वातावरणमें इतने निमग्न हो जाते हैं कि सारकी कोई वस्तु उनके हाथ नहीं पड़ती। श्रीराजकृष्णके भाई हरिचन्द्रजीके यहाँ एक दिन आहार करनेके लिये गये। यहींपर श्रीलाला सरदारीमहजी भी आये। आपने महिलाश्रम वननेपर पूर्ण वल दिया। मैंने कहा कि भैया! दिस्लीमें कभी किस वातकी है शि महिलाश्रम वन जाय तो महिलाओंका भला ही होगा।

वस्तुतः धर्मका तत्त्व सरल है, किन्तु अन्तरद्वमे माया न होना चाहिये। च्योपशमज्ञानका होना किन बात नहीं, किन्तु सम्य-ग्ज्ञान होना अति किन है। इसका मूल कारण यह है जो हम अनात्मीय पदार्थोंमे आत्मीय बुद्धि मान रहे हैं। आज तक न कोई किसीका हुआ, न है और न होगा। फिर भी बलात् माननेमें हम त्रुटि नहीं करते। एक दिन नये मन्दिरमे गये। यह मन्दिर धर्म-पुरामें है। इसमे स्फटिक मणिकी वई मूर्तियाँ रग्य हैं। बाहुबली स्वामीकी मूर्ति अति सुन्दर है। दर्शन करनेसे चित्तमें शान्ति आ जाती है। यथार्थमे शान्तिका कारण तो आभ्यन्तरमें है, बाह्य तो निमित्तमात्र है। निमित्त कारण बलात् कार्य नहीं कराता, किन्तु यदि तुम करना चाहो तो वह सहकारी हो जाता है।

धर्मपुराके मन्दिरमे हु॰ पूर्णसागरजीका प्रवचन हुन्ना। त्रष्ट मूलगुणधारण श्रौर सप्त व्यसनके त्यागपर बल था। नगरोंकी श्रपेक्षा महान् नगरमे विशेष प्रभावना होती है, परन्तु उस प्रभावना- में मुख्यता वाह वाहकी रहती है। मार्मिक सिद्धान्तका विवेचन नहीं होता। मनुप्योंका कल्याण, तत्त्व विवेकमूलक रागह पे निवृत्तिमें ही होता है। केवल तत्त्व विवेकके परामशंसे शान्तिका लाभ नहीं। एक दिन सेठके कृचामें वनारससे आगत पं॰ कैलाश चन्द्रजीका उत्तम व्याख्यान हुआ। पश्चान् हमने भी कुछ अस्पष्ट भापामे कहा। सावन सुदी पूर्णिमा रक्षावन्धनके दिन श्री विज्ञानन्द (कर्मानन्द) की समारोहके साथ जुल्लक दीना हुई। ७००० हजार मनुप्योंका समुदाय था। समारोहमे पं० मिणक चन्द्रजी न्यायाचार्य फिरोजावाद, पं० कैलाशचन्द्रजी वनारस तथा पं॰ राजेन्द्रकुमारजीके भाषण हुए। श्रीनिजानन्द्जी पहले आर्य समाजी थे, परन्तु वादमे आप जैन सिद्धान्तसे प्रभावित हो जैन हो गये। कुछ समय पहले आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की थी और आज जुल्लक दीना लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा धारण की श लोकैषणाकी चाह न हो तो आदमी अच्छा है-प्रभावक है।

एक दिन वैजवाड़ाके मन्दिर भी गया। वहाँ प्रवचन हुआ। समुदाय अच्छा था, परन्तु वास्तिवक लाभ कुछ नहीं। यथार्थमें प्राणीमात्रका कल्याण उसीके आधीन है। जिस कालमें वह अपनी ओर दृष्टिपात करता है उस कालमें अनायास बाह्य पदार्थों से विरक्त हो कर आत्मकल्याणके मार्गमें लग जाता है। अतः सर्व विकल्पोंको त्याग कर आत्महित करना व्यर्थकी झंमटोंमें पडना अच्छा नहीं। एक दिन धीरजपहाड़ीके लोगोंने पहाड़ी पर ले जाने की चेष्टा की। फल स्वस्प हमलोग ३ मीलका लम्बा मार्ग तयकर सदर पार पहाड़ी पर पहुँच गये। यहाँ पर हीरालाल हाईस्कृलमें व्याख्यान हुआ। वहुत ही भीड़ थी, परन्तु प्रवन्ध अच्छा था। इसी प्रकार एक दिन हिन्दीगंजमें भी गये। वहाँ भी प्रवचन और व्याख्यान सभाएँ हुई, परन्तु सार कुछ नहीं निकला। यदि प्रवचनों व्याख्यान सभाएँ हुई, परन्तु सार कुछ नहीं निकला। यदि प्रवचनों

प्रोर व्याख्यानसभाओं से लाभ लेकर एक भी आदमी सुमार्गपर प्राना तो में उन सब आयोजनों को सारपूर्ण सममता। लोगों का व्याल नो ऐसा हो गया है कि ये सुनानेवाले हैं, कुछ देना लेना तो है नहीं। एक तरहका सिनेमा है पर मिनेमामे तो पैसाका व्यय है, यह श्रमृत्य दृश्य है। मेरे हृद्यसे तो यह ध्वनि निकल पड़ी कि—

जो चुरा चाहो मित्र तुम तज दो पर की श्रास।

सुख नाही संसारमें सदा तुम्हारे पास॥

गल्पवादमें दिन गया विषय भोगमें रात।

भोंदू के भोंदू रहे रात दिना विललात॥

## हरिजन मन्दिर प्रवेश

इसी समय समाजमे हरिजन मन्दिर प्रवेश श्रान्दोलन जोर पकड़ रहा था। श्रस्पृश्योंके उद्धारकी भावना तो भारतमे बहुत पहलेसे चली श्रा रही थी पर श्रव स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद भारतका जो विधान बना उसमें मनुष्यमात्रको समानाधिकार घोषित किया गया। उसीका श्रालम्बन लेकर बम्बई प्रान्तकी सरकारने एक कानून ऐसा बनाया कि जिसमें श्रस्पृश्य लोग भी मन्दिरोंमे जानेसे न रोके जावें। हिन्दू भाईयोंके साथ ही साथ यह कानून जैनधर्मावलम्बियों पर भी लागू होता था, श्रतः वे भी श्रपने मन्दिरोंमें श्रस्पृश्य लोगोंको जानेसे नहीं रोक सकते थे। यदि रोकते तो दण्डके पात्र होते। इस कानूनकी प्रतिक्रिया करनेके लिये श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने श्रन्नके श्राहारका त्याग कर दिया। केवल सिंघाड़ा, दूध तथा फल ही लेने लगे। इस समाचारसे समाजमे इस आन्दोलनने जोर पकड़ लिया। कुछ लोग यह कहने लगे कि हरिजनोंको मन्दिर प्रवेशकी म्राजा मिलनेसे धर्म विरुद्ध काम हो जायगा, क्योंकि जव हरिजनोंको हम अपने घरोंमे नहीं आने देते तब मन्दिरोंमे कैसे आने देंगे ? उनके आनेसे मन्दिर अशुद्ध हो जावेंगे तथा हमारे धर्मायतनोमें हमारी जो स्वतन्त्रता है उसमे वाधा आने लगेगी एवं अव्यवस्था हो जायगी । हरिजन जव हमारे धर्मके माननेवाले नहीं तव वलात् हमारे मन्दिरोंमे सरकार उन्हे क्यों प्रविष्ट कराना चाहती है ? इसके विरुद्ध कुछ लोगोंका यह कहना रहा कि यदि हरिजन शुद्ध त्रौर स्वच्छ होकर धार्मिक भावनासे मन्दिर त्राना चाहते हैं तो उन्हे वाधा नहीं होना चाहिये। मन्दिर कल्याणके स्थान हैं ऋौर कल्याणकी भावना लेकर यदि कोई स्राता है तो उसे रोका क्यों जाय ? इस चर्चाको लेकर एक दिन मैंने कह दिया क हरिजन संज्ञी पञ्चेद्रिय पर्याप्तक मनुष्य हैं। उनमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी सामर्थ्य है, सम्यग्दर्शन ही नहीं व्रत धारण करनेकी भी योग्यता है। यदि कदाचित् काललच्धि वश उन्हे सम्यग्दर्शन या व्रतकी प्राप्ति हो जाय तव भी क्या वे भगवान्के टर्शनसे विद्धित रहे श्रावेंगे ? समन्तभद्राचार्यने तो सम्यग्दर्शन सम्पन्न चाण्डालको भी देव संज्ञा दी है पर श्राजके मनुष्य धर्मकी भारता जागृत होने पर भी उसे जिन दर्शन – मन्दिर प्रवेशके भ्रानिधकारी मानते हैं। 'मेरे इस वक्तव्यको लेकर समाचार पत्रीम लेख प्रतिलेख लिखे गये। अनेकोंको हमारा वक्तव्य पसन्द अया। त्रुनेकोंकी समालोचनाका पात्र हुआ पर अपने हृदयका स्त्रिमिप्राय मैंने प्रकट कर दिया। मेरी तो श्रद्धा है कि संजी पञ्चेहिय जीव सम्यग्दर्शनके अधिकारी हैं यह आगम कहता है। सम्यग्दर्शनके होनेमे वर्ण और जातिविशेषकी आवश्यकता नहीं। देव और नारकी तो कितना ही प्रयास करें उन्हें सम्यग्दर्शनके सिवाय व्रत धारण नहीं हो सकता, क्योंकि वैक्रियिक शरीरवालोंके चतुथे गुणस्थान तक ही हो सकता है। मनुष्य और तिर्थक्कोंके पक्षम गुणस्थान भी होता है। मनुष्योंके महाव्रत भी होता है और यही एक पर्याय ऐसी है कि जिससे यह जीव कर्म बन्धन काट मोक्ता पात्र हो जाता है। मनुष्योंका वर्णविभाग आगममें देखा जाता है—व्राह्मण, ज्तिय, वैश्य और गृद्ध। इनमें प्रारम्भके तीन वर्णवाल उच्चगोत्री हैं और अन्तिम वर्णवाले अर्थात् शृद्ध नीचगोत्री हैं। उन्च गोत्रमे ही मुनिव्रत होता है। गृद्धोंमें उच्चगोत्र नहीं, अत्रप्य उनके मुनिधमें नहीं होता। आवकके ही व्रत हो सकते हैं। उनमे भी जो स्पृश्य गृद्ध हैं वे जुल्लक व्रत धारण कर सकते हैं, अस्पृश्य गृद्ध व्रती हो सकते हैं। इसमें बहुतसे महाशय उन्हे द्वितीय प्रतिमा तक मानते हैं। अस्तु जो आगममें कहा सो ठीक है।

श्राज कल हरिजनोंके मन्दिर प्रवेश पर वहुत विवाद चल रहा है। वड़े वड़े धर्मात्माश्रोंका व वड़े वड़े पण्डिलोंका कहना है कि वे मन्दिर नहीं जा सकते, क्योंकि उनमें चाण्डाल, चर्मकार, भंगी श्रादि श्रनेक वहुत ही घृणित रहते हैं तथा श्राचार विचारसे शून्य हैं। ये मन्दिरमें श्राकर दर्शन नहीं कर सकते यह चरणानु-योगकी पद्धति है परन्तु करणानुयोगमें उनके भी सम्यग्दर्शन तथा व्रत हो सकता है। चाण्डालके भी इतने निर्मल परिणाम हो सकते हैं कि वह श्रनन्त संसारका कारण जो मिण्यात्व है उसका श्रमाव कर सकता है। श्रव विचार करो कि जो श्रात्मा सबसे वड़े पापको नाश कर दे वह फिर भी चाण्डाल वना रहे। चाण्डालका सम्वन्ध यदि श्रिरसे ही है तब तो हमे कोई विवाद नहीं। रहो परन्तु श्रात्मा तो जब सम्यदिष्ट हो जाता है तब पुण्य जीवोंकी गणनामे हो जाता है।

श्रागममे मिध्यादृष्टि जीवोंको पापी जीव कहा है। चाहे वह किसी वर्णका हो । हाँ, चरणानुयोगकी अपेक्षा जो देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा रखता है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वाह्यमे जिसके चरणानुयोगके श्रमुकूल व्रत हैं उसे व्रती कहते हैं। चरणानुयोगके सिद्धान्तका व्यवहारमें उपयोग नहीं। व्यवहारमे उपयोग न हो, परन्तु अन्त-रङ्ग भी निर्मलताका वाह्यमे नियमसे असर पड़ता है। जिस व्याव्रीने सुकोशल स्वामीके उद्रको विदारण किया उस समय उसका परि-णाम अति मलिन था —आर्तरौद्र परिणामके वशीभूत हो वह दया का भाव विलकुल भूल गई। उसके उदर विदारेणसे स्वामीके किञ्चित् भी श्रन्यथा वृत्ति नहीं हुई। उन्होंने तो चपकश्रेणी द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न किया। उसी समय देव लोग उनकी पूजा करने आये तथा कीर्तिधर खामी जो उनके पिता थे, दैवयोगसे वहाँ आ गये। उन्होंने उस व्याव्रीको समकाया कि जिस पुत्रके वियोगमे मरकर व्याची हुंई उसीका उदर विदारण किया यह सब मोहका माहात्म्य है । मुनिके वाक्य अवएकर व्यात्री एकदम शिर धुनने लगी। यह देख मुनिने कहा कि व्यर्थ शोकको त्याग। संसारकी यही दशा है, यही भवितव्य था, शान्तभाव धारण-कर आत्मकल्याणके मार्गमें अपनेको तन्मय कर दे। उसने मुनि मुखारविन्दसे श्रनुपम उपदेश सुन एक दम संन्यासमरणकी प्रतिज्ञा कर ली और अन्तमें स्वर्ग गई। ऐसे अनेक उदाहरण त्र्यागममें मिलते हैं परन्तु हम लोग इतने स्त्रार्थी हो गये कि विरले तो यहाँ तक कह देते हैं कि यदि इनका सुधार हो जायगा तो हमारा कार्य कौन करेगा ? लोकमें अञ्यवधा हो जायगी, अतः इनको उच्च धर्मका उपदेश ही नहीं देना चाहिये। जगत्में उतना स्वार्थ फैल गया है कि जिनके द्वारा हमारा सर्व व्यवहार वन रहा है उन्हींसे हम घृणा करते हैं। कवीरदास एक साधु हो गया।

श्रध्यात्मकी श्रोर उसकी दृष्टि थी। यदि वह व्यवहारकी तरफ कुछ भी दृष्टि देता तो अच्छे अच्छे उसके अनुयायी हो जाते। फिर भी उसने लाखो मनुष्योंको मद्य मास छुड़वा दिया श्रोर लाखों श्रादमियोको सरल वना दिया। श्राज हम लोग धर्म जो कि प्राणी-मात्रका है उसके विकाशमे वाधक वन रहे हैं। यदापि धर्मका विकाश श्रात्मामें ही होता है श्रोर श्रात्मा ही उसका उत्पादक है तथा श्रात्मा ही उसका घातक है। जिस समय श्रात्मा परसे भिन्न श्रपने स्वरूपको जानता है उसी समय परमे निजत्वकी कल्पनाको त्याग देता है श्रौर उसके त्यागसे उसकी रत्ताके लिये श्रनुकूल पदार्थों के संचयका उद्यम स्वयमेव नहीं होता तथा प्रतिकूल पदार्थों के नियह करनेकी चेष्टा स्वयमेव शान्त हो जाती है। किन्तु व्यवहार में जिन महात्मात्रोंने त्रात्मज्ञानकी पूर्णता प्राप्त की उनके स्मरणके अर्थ जो मन्दिर आदि आयतन हैं उनकी आवश्यकता जघन्य अवस्थामे आवश्यक है, अतः मानवजाति मन्दिर आदिका निर्माण करती है। उस मन्दिरमे वही जा सकता है जो स्वच्छ हो, क्योंकि मन्दिर एक पवित्र स्थान है और उसमें पवित्र आत्माकी स्थापना रहती है। ऋव यहाँ पर यह विचारना है कि पवित्रता उभयविध हैं—एक तो यह कि श्रात्मा पख्च पापोका परित्यागी हो तथा जिसके दर्शन करने जावे उसमे श्रद्धा हो। यह ता श्रन्तः करणकी शुद्धता होनी चाहिये श्रीर दूसरी वाह्यमे शरीर शुद्ध हो, स्वच्छ वस्त्रादिक हो। जिसके यह उभयविध शुद्धता हो वह मनुप्य उस मन्दिरमें प्रतिष्टापित देवके दुर्शनका ऋधिकारी हो। मूर्तिपूजाका ऋधिकारी वहीं हो जो उस मन्दिरके अधिकारियों द्वारा निर्मित नियमोंका पालन करे।

यथार्थमें जो प्रतिमा है उसमें जिस देवकी स्थापना है वह तो साचात् है नहीं, केवल स्थापना है। उस देवपर किसी जातिविशेष-

का श्रिधिकार नहीं। प्रत्येक मनुष्य यदि उस देवमे उसकी श्रद्धा है तो उसकी आराधना कर सकता है, केंत्रल उच्चगोत्रवाले ही उसके श्राराधक हो सकते हैं यह नियम नहीं। श्राजकल उच्चवर्ण-वालोंने यह नियम वना रक्खा है कि ये हमारे ही भगवान हैं। उनकी जो मृति इमने वना रक्खी है उसे अन्य विधर्मियोंको पूजनेका श्रविकार नहीं है। तत्त्रसे विचारकर देखो, तुमने मृर्तिमे भगवान्की स्यापना ही तो की है। स्थापना २ प्रकारकी होती है—एक तदा-कार श्रोर दूसरी श्रतदाकार। तदाकार स्थापनामें पञ्चकल्याणकी श्रावश्यकता होती है श्रीर श्रतदाकार स्थापनामें विशेष श्राहम्बरकी त्रावश्यकता नहीं । केवल विशुद्ध परिणामोंकी त्रावश्यकता है। मन ही में भगव न्की स्थापना कर प्रत्येक प्राणी पूजन कर सकता है। उस पूजाको त्र्याप नहीं रोक सकते। उससे भी मनुष्य लाभ उठा सकते हैं। अरहन्त नामका स्मरण प्राणीमात्र कर सकता है। उसमे आपके निषेध एक काममें न आवेगे, क्योंकि वर्णसमार म्नाय अनादिसिद्ध है श्रीर वह प्रत्येक मनुष्यके उपयोगमें श्रा सकता है। इसी तरह जैसे श्रापको श्रीतीर्थ करदेवकी मूर्ति बनानेका श्रिधिकार है वैसे यदि श्रन्य भी वनावे श्रीर पूजे तो श्राप रोक्ने-वाले कौन ? हाँ, लोकमें जिन वस्तुत्रोंपर जिनका अधिकार है वे उनकी कहलाती हैं। श्रन्य उसे विना स्वामीकी श्राज्ञाके उपयोगमें नहीं ला सकता। श्रथवा यह भी कोई नियम नहीं, क्योंकि संसारमे नीति प्रसिद्ध हैं 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' देखिये चक्रवर्ती जव उत्पन्न होते हैं तब क्या लाते हैं पर वे पट्खण्डके राजा बन जाते हैं। इसी प्रकार जब उन्हें राज्यसे विरक्तता श्राती है तथा विरक्ताके श्रानेपर जव दिगम्बर पद धारण करते हैं तब चकादि शस्त्र स्वयमेव चले जाते हैं। उनके पुत्र सामान्य राजा रह जाते हैं, ख्रतः यह कोई नियम नहीं कि जो वस्तु श्राज हमारी है वह कल भी हमारी ही रहे।

देखो, विचारो, जो मनुष्य संज्ञी है यदि उसे संसारसे अरुचि हो तथा धर्म साधन करनेकी उसकी भावना जागृत हो तो उसे कोई मार्ग भी तो होना चाहिये। मन्दिर एक श्रालम्बन है। उससे विख्नत रहा, त्राप स्वयं उससे वोलना नहीं चाहते, वाङ्सय त्रागम है उससे पढ़नेका श्रिधिकारी नहीं, श्रत स्वाध्याय नहीं कर सकता, आप सुनाना नहीं चाहते तव वह तत्त्वज्ञानसे बब्चित रहेगा, तत्त्व-ज्ञानके विना संयमका पात्र कैसे होगा श्रीर संयमके विना श्रात्मा-का कल्यारा कैसे कर सकेगा? इस तरह आपने भगवान्का जो सार्वधर्म है उसकी अवहेलना की। धर्म प्राणीमात्रका है उसका पूर्ण विकाश मनुष्य पर्यायमें ही होता है, स्रतः चाहे चाण्डाल हो श्रथवा महान् द्यालु हो, धर्मश्रवणके श्रधिकारी दोनों ही हैं। श्रापको यदि धर्मका रहस्य मिला है तो पक्षपातको तिला जिल दो श्रीर उस धर्मका विकाश करो, अन्यथा उसका लोप करोगे तो तुम स्त्रयं ऐसे कर्मचक्रमे आस्त्रोगे और स्ननन्त कालतक भवश्रमणके पात्र होस्रोगे । स्रतः जाति स्रभिमानका परित्यागकर प्राणी मात्र पर दया करो, जिनके आचरण मिलन हैं उन्हें सदाचारकी शिक्षा दो। वह भी तो मनुष्य हैं। हम जो वड़े वनते हैं, अपनेको पुण्य-वान् मानते हैं उन्होंने अपने आरामके लिये शूद्रोको सेवावृत्ति दी और श्राप स्वयं राजा वन वैठे। सबसे जघन्य काम जिसे श्राप न कर सके भंगियोंके सुपुर्व किया श्रौर उनको चाण्डाल शब्दसे पुकारने लगे। प्रायः मनुष्य जो कार्य करता है उसीके अनुरूप उसका परिमाण वन जाता है यही संस्कार कहलाता है। आत्मामे ज्ञान-दर्शन गुण हैं। प्रत्येक आत्मामे यह वात है। यही जव विकृत अवस्थाको धारण करता है तब अनन्त संसारका पात्र होता है और नाना यातनाएं सहता है। प्रत्येक आत्मा ज्ञानादि गुणोंका आश्रय है। त्रनादि कालसे इसके साथ पर द्रव्यका एक चेत्रावगाह सम्बन्ध

है। एक चेत्रमें ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव ये षट्द्रव्य स्वकीय स्वकीय सत्ता लिये निवास कर रहे हैं। उनमे जीव ख्रौर पुद्गलको छोड़कर चार द्रव्य तो अपने श्रपने स्वभावमें लीन हैं। उनमें कोई प्रकारकी विकृति नहीं आती। २ द्रव्य - जीव श्रोर पुद्गल इनमे विभाव नामक शक्ति है, इससे उनका परस्परमे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हो रहा है। जीवके रागादिक परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गलमे ज्ञानावरणादिरूप परिणाम होता है और कर्मके उदयको पाकर जीवमे रागादि परिणाम होते हैं। उन रागा-दिकके द्वारा जीव नाना प्रकारके कार्य करता है ? जो पदार्थ अपने अनुकूल होते हैं उन्हें इप्ट मान लेता है और जो प्रतिकूल होते हैं उन्हें अनिष्ट मानता है। यदि इष्ट पदार्थ मिले तो उनके साधकों से राग और श्रनिष्ट पदार्थ मिले तो उनके साधकोंसे द्वेष करने लगता है। इस प्रकार निरन्तर राग-द्वेषकी कल्पनासे मुक्त नहीं होता श्रौर मुक्त होनेका कारण जो उपेचाभाव (रागद्वेप रहित परिणाम) है उस त्रोर इस जीवकी दृष्टि नहीं। उपयोग त्रात्माका एक कालमे एक ही होता है।

इस प्रकार हम तो अपना भाव प्रकट कर दिया। यद्यपि यह निश्चय है कि जो होना है वही होगा। संसारकी दशाको वटलनेकी किसीमे सामर्थ्य नहीं। परन्तु अभिप्रायके विरुद्ध वात कहना और करना दम्भ है, इसिजये यह लिखकर मैं निर्द्धन्द्व हो गया।

# पावन दशलच्चण पर्व

दशलक्षण पर्व श्रा गया। कटनीसे श्री पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री श्रा गये। लाल मन्दिरपे विशाल मण्डपका श्रायोजन हुत्रा। प्रति दिन १ वजेसे मण्डपमे पं० जगन्मोहनलालजीका प्रवचन होता था। श्रनन्तर कुछ हम भी कह देते थे। जैन समाजमे दशलक्षण पर्वका महस्त्र श्रनुपम है। भारतमे सर्वत्र जहाँ जैन रहते हैं वहाँ इस समय यह पर्व समारोहके साथ मनाया जाता है। पर्वका श्रर्थ तो यह है कि इस समय श्रात्मामे समाई हुई क्लुषित परिण्तिको दूरकर उसे निर्मल बनाया जाय पर लोग इस श्रोर ध्यान नहीं देते। बाह्य प्रभावनामे ही श्रपनी सारी शक्ति व्यय कर देते हैं।

प्रारम्भके दिन जब मेरा विवेचनका अवसर आया तब मैंने कहा कि यद्यपि आज उत्तम चमाका दिन है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आज मार्द्व धर्म धारण नहीं करना चाहिये। धर्म तो प्रत्येक दिन सभी धारण करनेके योग्य हैं। फिर चमा आदिका जो कम वताया है वह केवल निरूपणकी अपेचासे वताया है। चमाधर्म कोध कपायपर विजय प्राप्त करनेसे होता है। कोध कपायके उदयमे यह आत्मा स्वात्मनिष्ठ रत्नत्रयके विकाशको रोक देता है। देखो, उपशमसम्यग्दृष्टिका काल जब जधन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे ६ आविल प्रमाण वाकी रह जाता है तव यदि अनन्तानुवन्धी कोध, मान, माया या लोभमेसे किसी एकका उदय आ जावे

तो यह जीव उपरितन गुणस्थानोंसे गिरकर द्वितीय सासादन गुणस्थानमें आ जाता है और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नमय पर्वतकी शिखरसे नीचे गिर जाता है। इससे जान पड़ता है कि कषायका उदय श्रच्छा नहीं।

द्वितीय दिन मार्ट्व धर्मका व्याख्यान हुआ। मृदुका भाव मार्ट्व होता है और मृदुका अर्थ कोमल है। इसकी व्याख्या करना पण्डितोंका कार्य है, परन्तु इतना हर कोई जानता है कि मन, वचन और कायके व्यापारमे कठोरता न आना चाहिये। कठोरताका व्यवहार बहुत ही अनुचित होता है। जिसका व्यवहार मृदुताको लिये हुए होता है उसको जगत् प्रिय मानता है, वह जगत्में प्रत्येक समय आदरका पात्र होता है। कोई भी उसके साथ असद्व्यंवहार नहीं करता।

तृतीय दिन त्रार्जवधर्मका विवेचन हुत्रा । त्रार्जव धर्म सरत परिणामोंसे होता है यह कह देना कौन कठिन है ? परन्तु जीवनमें उतर जाय यह कठिन है । मायारूप पिशाचीके वशीभूत हुत्रा यह प्राणी नाना स्वांग वनाता है । त्राज तो लोगोकी वात-वातमें माया-चारका व्यवहार भरा हुत्रा है । मायाचारका व्यवहार रहते परिणामों-में निःशल्यता नहीं त्राती त्रीर निःशल्यताके त्रभावमें शान्ति कहाँसे प्राप्त हो सकती है ? श्रतः शान्तिके यदि इच्छुक हो तो माया रहित व्यवहार करो ।

चतुर्थ दिन शौचधर्मका ज्याख्यान था। शौचधर्म कहीं वाहरसे नहीं श्राता किन्तु श्रात्माकी निर्मल परिणति हो जानेसे श्रात्मामें ही प्रकट होता है। श्रात्माकी परिणति लोभ कपायके कारण क्लुपित हो रही है, श्रतः क्लुपितताका श्रपहरण करनेके लिये लोभका सब-रण करना श्रावश्यक है। शौचधर्म श्रात्माकी स्वकीय परिणति है श्रीर लोभ उसकी विकृत परिणित है। जब कि एक गुणकी एक समयमे एक ही पर्याय होती है तब लोभके रहते हुए शौच रूप परिणित नहीं हो सकती।

पद्धम दिन सत्यधर्मका ज्याख्यान था। वास्तवमे सत्यधर्म तो वह ह जहीं परका लेश नहीं। जहाँ परमे ज्ञात्मवुद्धि है वहां धर्मका लेश नहीं। ज्ञात्माका स्वभाव भगवान्ने ज्ञान और दर्शन कहा है। ज्यर्थात् उसका स्वभाव ज्ञानना और देखना वतलाया है। चेतना ज्ञात्माका लक्ष्मण है। चेतनाका द्विविध परिणाम होता है। उनमेसे स्वपर ज्यवसायात्मक परिणामको ज्ञान कहते हैं और केवल स्वज्यवसायात्मक परिणामको दर्शन कहते हैं। मोहके वशीभूत हुआ प्राणी अपने ज्ञान दर्शन रूप स्वभावसे विमुख हो जाता है यही असत्य धर्म है। स्वभाव विमुख प्राणीके वचन ही अन्यथा निकलते हैं।

पष्ट दिन संयम धर्मका दिवस था। संयम धर्म यह शिक्षा देता है कि सर्व तरफसे वृत्तिको संकोच करो। जहाँ पर पदार्थोंमें दृष्टि गई उनको अपनाया वहाँ संयम गुणका घात हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि हम केवल संयमको जानते हैं पर उसके अनुभवसे जून्य हैं, अन्यथा जैसी हमारी विषयोंमे प्रवृत्ति है वैसी संयममें क्यों न होती ? वाह्यमें संयम धर लेनेपर भी अन्तरङ्ग उन्हीं विषय कषायोंकी और आदृष्ट क्यों होता ?

सप्तम दिन तपका व्याख्यान था। अनादिसे आत्मामें जो पर पदार्थोंकी उच्छा उत्पन्न हो रही है वही तप धर्ममे वाधक है। आत्माका स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, परन्तु मोहजन्य इच्छाके कारण इसके सामने जो आता है उसे यह अपना मान लेता है। जहाँ किसी पदार्थमें अपनत्व बुद्धि हुई वहीं उसकी रचाका भाव उत्पन्न हो जाता है। जहाँ रत्ताका भाव उत्पन्न हुआ वहाँ उसके साधक-त्रावक कारणोंमें राग द्वेष-इष्ट श्रनिष्टकी कल्पना अनायास हो जाती है।

श्रष्टम दिन त्याग धर्मका मार्मिक विवेचन था। श्रनादिसे यह श्रात्मा पर वस्तुको श्रपना मान रहा है। यद्यपि पर श्रपना होता नहीं श्रोर न एक श्रंश उसका हममें श्राता है। वस्तु जिस मर्यादामें है उसीमें रहेगी, परन्तु हम मोहके वशीभूत हो वस्तु स्वरूपको श्रन्यथा मान रहे हैं। जिस तरह कामला रोगवाला हवेत सङ्खको पीत मानता है उसी तरह मैं श्रनात्मपदार्थको स्वात्मा मान रहा हूं। जब तक किसी पदार्थसे श्रपनत्व बुद्धि नहीं हटती तब तक उसका त्याग होना संभव नहीं।

नवम दिन आिक ज्ञान पर मिका अवसर था। आत्मासे मूर्च्छी भाव निकल जाने पर आिक ज्ञान धर्म प्रकट होता है। मूर्च्छी का अर्थ परमें ममताभाव है। यद्यपि संसारका कोई पदार्थ किसी का नहीं। सब अपने अस्तित्व गुणसे परिपूर्ण हैं तो भी यह मोही प्राणी उन्हे अपने अस्तित्वमें मिलाना चाहता है और जब वे इसके अस्तित्वमें मिलते तब दुःखी होता है। व्यर्थ ही पर पदार्थों का भार अपने अपर ले संक्लेशका अनुभव करता है। 'काजी दुर्वल क्यों? नगरकी चिन्तासे' यह कहावत हमारी प्रवृत्तिमे आ रही है।

दशम दिन ब्रह्मचर्यका प्रकरण था। परमार्थसे ब्रह्मचर्यका अर्थे ब्रह्म अर्थात् आत्मस्वरूपमे लीन होना है। योग और कपाय ये दोनों ही आत्माको आत्मलीनतासे विमुख कर रहे हैं, अतः उनका अभाव करनेसे ही ब्रह्मचर्यमें पूर्णता आती है। वाह्ममें स्त्रीत्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। प्रारम्भमें स्त्रदार संतोप ब्रह्मचर्य कहलाता है, परन्तु सप्तम प्रतिमासे स्वदारका भी त्याग हो जाता है।

चतुर्दशीके दिन श्रनन्तनाथ महाप्रमुका निर्वाणोत्सव हुत्रा था। इसलिये वह लोकमे श्रनन्त चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। श्राजके दिन नगरमें गाजे वाजेके साथ सर्व समूहका विशाल जुलूस निकला तदनन्तर श्री जिनेन्द्रदेवका कलशाभिषेक हुत्रा। श्राहिवन कृष्ण प्रतिपदाके दिन चमावर्णीका श्रायोजन हुत्रा। कलशाभिषेकके वाद सबका सम्मेलन हुश्रा।

#### नम्र निवेदन

भादों सुदी पूर्णिमाके दिन, दिल्लीसे निकलनेवाले हिन्दुस्तान दैनिक पत्रमें यह लेख छपा हुआ दृष्टिगोचर हुआ कि वर्णी गरोशप्रसाद शूद्र लोगोंके मन्दिर प्रवेशके पत्तमें हैं "" अस्तु, हम किसी पत्तमें नहीं, किन्तु यह अवश्य कहते हैं कि धर्म श्रात्माकी परिणति विशेव है श्रीर उसका विकास संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें प्रारम्भ हो जाता है। देव नारकीके तो अविरत अवस्था ही तक होती है। अर्थात् उनके सम्यग्दर्शन तक ही होता है, व्रत नहीं हो सकता। तिर्यगवस्थामे अणुव्रत हो सकता है। अर्थात् तिर्यञ्चके सकता। तियावस्थाम अणुमत हो सकता है। जनात त्यावस्थाम पश्चम गुणस्थान हो सकता है श्रीर मनुष्यके चतुर्दश गुणस्थान हो सकते हैं, वह मोचका पात्र हो सकता है। मनुष्योंमे विशेष शक्ति तथा ज्ञानके प्रकट होनेकी योग्यता है। मनुष्योंमे गोत्रके दोनो भेद होते हैं। श्रर्थात् नीचगोत्र भी होता है श्रोर उचगोत्र भी। ब्राह्मण, क्षित्रिय और वैश्य ये उचगोत्रवाले हैं और शृह नीचगोत्रवाला है। शृहके दो भेद हैं— एक स्पृश्य शृह और दूसरा श्रस्पृश्य शूद्र । स्गृश्य शृद्र चुहक तकका पद ग्रहणकर सकते हैं, उच्चगोत्रवाले उन्हें भक्ति पूर्वक दान देते हैं, उन्हें मन्दि जानेका प्रतिबन्ध नहीं। रहे अस्पृश्य शूद्र, जिन्हें हरिजन कहते हैं सो इनके भी ब्रत प्रतिमा हो सकती है। ये १२ व्रत पाल सकते हैं. धर्म की भी अकाट्य अद्धा इन्हें हो सकती है फिर इनको भी देवदर्शनसे क्यों रोका जावे ? चरणानुयोग क्या आज्ञा देता है इसका तो हमे विशेष ज्ञान नहीं, परन्तु हृद्य हमारा यह कहता है कि उनके साथ इतना वैमनस्य रखना अनुचित है। वह भी आखिर मनुष्य हैं, उन्हें भी धर्मका मर्म सममाना चाहिये। वह भी धर्म सममकर हिंसादि पापके त्यागी हो सकते हैं। ज्ञानके उपार्जनसे ही धर्मका अद्धान हो सकता है।

श्रीमान् श्राचार्य शान्तिसागरजी महाराज वर्तमान कालमें श्रात्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उनके श्रादेशानुसार सम्पूर्ण दि॰जैन जनता चलनेको प्रस्तुत है। श्रापने हरिजन मन्दिर प्रवेश विलके कारण श्राजीवन श्रन्न त्याग दिया है इससे सम्पूर्ण समाज वहुत ही खिन्न है। होना ही चाहिये।

इसी अवसरपर मैंने महाराजसे निम्नाङ्कित निवेदन किया कि
महाराज! मैं आपसे कुछ निवेदन करूँ, सहस नहीं होता किन्तु
एक नम्र निवेदन है कि जब चतुर्गतिके जीवोंको सम्यक्त्व होता है
तब मनुष्य गतिमे जन्म पानेवाले हिर्जिन भी उसके पात्र हैं
तथा मनुष्य और तिर्यगतिमे जन्म लेनेवाले पछम गुणस्थनवर्ती
भी होते हैं तब क्या हिर्जिन इस गुणस्थानके पात्र नहीं हो सकते ?
यह तो करणानुयोगकी कथा रही, परन्तु व्यवहारमे चरणानुयोगके
अनुसार मनुष्य पर्यायमे जिसे देव, गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा हो
उसे सम्यग्हिं कहते हैं। जब यह व्यवस्था है नव हिर्जिन भी
इस श्रद्धाके पात्र हो सकते हैं, जब देव, शास्त्र और गुरु की श्रद्धा के
पात्र हैं तब देव दर्शनके अधिकारी क्यों नहीं हो सकते ? जब

देवदर्शनके श्रिधकारी हैं तब फिर हरिजन मन्दिर प्रवेश विलपर इतनी श्रापत्ति क्यों ? चरणानुयोगके श्रनुकूल मद्य मांस मधुका त्याग होना चाहिये तब वे भी इस त्यागके पात्र हैं तथा जब गुरुकी श्रद्धाके पात्र हैं तब क्या वे हरिजन श्रापकी भी वन्क्याके पात्र नहीं हो सकते हैं ? यदि वे श्रद्धालु जहाँपर श्राप तत्त्वोपदेश कर रहे हैं श्राकर उपदेशको श्रवण करें तथा श्रापकी वन्दना करें तो क्या नहीं श्राने देंगे ? श्रतः यह सिद्ध होता है कि हरिजन भी देवदर्शनके पात्र हो सकते हैं तब हरिजन मन्दिर प्रवेश विलपर इतनी श्रापत्ति क्यों ?

धर्म तो जीवकी निज परिएति है। उसका विकास संज्ञी पञ्चेन्द्रियमे होता है। वह चारों गतिवाला जीव हो सकता है। वहाँ पर यह नहीं है कि ऋमुक व्यक्ति ही उसका पात्र है। यह श्रवश्य है कि भन्य, पर्याप्तक, सज्ञी जागृदवस्थावाला जीव होना चाहिये। हरिजनोंमें भी ऐसे जीव हां सकते हैं। हरिजनोंमें उत्पत्ति होनेसे वह इसका पात्र नहीं यह कोई नहीं कह सकता। वे निन्च कार्य करते हैं इससे सम्यग्दर्शनके पात्र न हों यह कोई नियामक कारण नहीं ? क्यों कि उच गोत्रवाले भी प्रातःकाल शौचादि किया करते हैं तथा यह कहो कि उस कार्यमें हिंसा वहुत होती है इससे वे सम्यग्दर्शनादिके पात्र नहीं तब मिलवालोंके जो हिंसा होती है – हजारों मन चमड़ा श्रौर चर्चीका उपयोग होता है तदतेचा तो उनकी हिसा अत्प ही है, श्रतः हिंसाके कारण वे दर्शनके पात्र नहीं यह कहना उचित नहीं। यदि यह कहा जाय कि भोजनादिकी श्रशुद्धताके कारण वे दर्शनके पात्र नहीं तो प्रायः इस समय बहुत ही कम ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो शुद्ध भोजन करते हैं, श्रतः यह निर्णय समुचित प्रतीत होता है कि जो मनुष्य धर्मकी श्रद्धा रखता हो वह भी जिनदेवके दर्शनका पात्र हो स्कता है। यह

ठीक है कि उसके व्यवहारमें शुद्ध वस्त्रादि होना चाहिये तथा मद्य मास मधुका त्यागी होना चाहिये। व्यवहारधर्मकी यह वात है।

निक्रयधर्मका सम्वन्ध श्रात्मासे हैं। उसका तो यहाँपर विवाद ही नहीं है, क्योंकि उसके पालनके प्रत्येक संज्ञी जीव पात्र हो सकते हैं। धर्म प्रत्येक प्राणीका प्राण है। उसके विना श्रात्मा जीवित नहीं रह सकता। त्रिकालमें उसका सद्भाव है। जैसे पुद्गलमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण रहते हैं, उनके विना पुद्गलका श्रस्तित्व नहीं इसी प्रकार श्रात्माका धर्म दर्शन-ज्ञान है। इनसे शृत्य श्रात्मा नहीं रह सकता हाँ, यह श्रवश्य है कि स्पराीदिका परिएमन किसी रूपमे हो किन्तु सामान्य स्पर्शादिगुएके विना जैसे उसके विशेष नहीं रह सकते इसी प्रकार दर्शन-ज्ञानका परिएमन कोई रूपमे हो उनके विना यह परिणमन विशेष नहीं रह सकता। जब यह व्यवस्था है तब सर्व जीव दर्शन-ज्ञानके पात्र हैं। उनके अन्दर जो विकृति त्रागई उसका त्रभाव करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिये। जब यह वात है तव जैसे हम संज्ञी हैं श्रीर श्रात्महित चाहते हैं ऐसे ही श्रीर मनुष्य भी चाहे किसी जातिविशेषके हों उन्हें भी आत्महित करनेका अधिकार है। इसके सिवाय जब उनके वज्रर्षभनाराच संहनन हो सकता है श्रोर वे सप्तम नरक जानेका पापोपार्जन कर सकते हैं तब उत्तम पुण्य उपार्जन करलें इसमे क्या चिति है <sup>१</sup> पशुत्रोंमें मत्स्य सप्तम नरक जाता है उसके दृष्टान्तसे यह वाधित नहीं, क्योंकि मनुष्य पर्याय तिर्यक् पर्यायसे भिन्न है। श्रागममे शूर्के जुल्लक पर्याय हो सकती है ऐसा विधान है तन क्या शूद्र लोग उसे आहार नहीं दे सकते ? यह समभमे नही त्राता। यदि त्राहार दे सकते हैं तो श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनके श्रिव-कारी न हों यह बुद्धिमे नहीं आता। केवल हठवाटको छोडकर अन्य युक्ति नहीं। धर्म तो श्रात्माकी उस निर्मल परिएतिको कहते हैं

जिसमें श्रधर्मका लेश न हो। उस परिणितिमें तो पुण्यकों भी हेय माना है, क्योंकि पुण्यसे केवल स्वर्गकी प्राप्ति होती हैं श्रीर स्वर्गमें केवल भोगोंकी मुख्यता है—वे चतुर्थ गुण्एस्थानसे उपर नहीं जा सकते। श्राजन्म उसी गुण्एस्थानमें रहते हैं। मनुष्य पर्याय ही संयमका मूल कारण है। संयमके उदयमें ही यह जीव पर वस्तुके त्यागका पात्र हो सकता है। सम्यग्दर्शनके होते ही श्रभिप्राय निर्मल हो जाता है। पर वस्तुसे भिन्न श्रात्माको उसी समय जान जाता है। केवल चारित्रमोहके उदयसे ऐसा संस्कार बैठा हुश्रा है जिससे परको भिन्न जानकर भी यह जीव उसे त्यागनेमें श्रसमर्थ रहता है। श्रस्तु,

समाचार पत्रोंमें बहुत विवाद चला। दोनों पच्चके लोगोंने अपनी अपनी वात लिखी। किसीने किसीको वुरा लिखा और किसीने किसीको। पदार्थका स्वरूप जैसा है वैसा है। लोग अपनी-अपनी कषायसे प्रेरित हो उसे विवादकी भूमि बनाकर दुःखी होते हैं।

## दिल्लीके शेष दिन

श्रासौज वदी ४ सं० २००६ को मेरा जयन्ति उत्सव था जिसमे उद्योगमन्त्री भी पधारे थे। श्रापने समयानुकूल श्रच्छा भाषण दिया। अनेक लोगोंने श्रद्धा अलियाँ दी जिन्हें सुनकर मुक्ते वहुत संकोच उत्पन्न हुन्रा। श्री शान्तिप्रसाद जी साहु प्रसिद्ध नर रत्न हैं। त्र्याप बहुत ही नम्र तथा शान्त हैं। त्र्यापने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको देकर श्रमर कीर्तिका श्रर्जन किया। अब बहुत अशोंमे विद्यालयकी जुटि दूर हो गई। आशा है इनके दानसे समाज भी चेतेगी। महाविद्यालय समाजका महोपकार कर रहा है। श्रीयुत रतनलालजी मादेपुरियाने भी २१००) स्याद्वाद विद्यालयको दिये। ११) मासिक व्याज देते जावेंगे श्रीर रुपये श्रपने यहाँ ही जमा रक्लेंगे। जब विद्यालयको श्राय-श्यकता पड़ेगी, वापिस दे देवेंगे। परन्तु मेरी बुद्धिसे यह वात यथार्थ नहीं, क्योंकि दानका रुपया दे देना ही श्रेयस्कर है। इसमे काल पाकर नकारा भी हो सकता है, क्योंकि द्रव्य श्रपने ही पास तो है। काल पाकर लोग बड़े बड़े बायदे भी तबदील कर देते हैं। मैं इस दानको दान नहीं मानता। दानके मायने दत द्रच्यसे ममत्व त्याग देना है। दान देकर उससे ममता रखना दानके परिणामोंका विघात है। मनुष्य श्रावेगमे श्राकर टान तो कर बैठता है श्रीर लोगोंसे धन्यवाट भी ले लेता है। पश्चात् जर श्रन्तरङ्गसे विचार करता है तव व्यय होने लगता है। यह विचारता है कि मैंने वड़ी गलती की जो रुपया दे आया। रुपयेसे संसारमें मेरी प्रति । है। इसके प्रसादसे वडे वड़े महान् पुरुष मेरे द्वारपर

चक्कर लगाते हैं। कहाँ तक कहे, बड़े बड़े विद्वान् भी इसकी प्रतिष्ठा करते हैं। प्रायः प्राचीन राजाओंकी प्रशंसामे जो काव्य बने हैं वे अधिकांश इसी द्रव्यकी लालचमें पड़कर बने हैं। श्रस्तु,

मैंने तो उत्सवमे यही कहा कि संसारके प्रणिमात्रपर दया करो । हम लोग आवेगमें आकर संसारके प्राणियोंको नाना प्रकारसे निमह करते हैं। हमारे प्रतिकृत हुआ उसे अपना शत्रु और अतु-कूल हुआ उसे मित्र मान लेते हैं। वास्तवमे न तो कोई मित्र हैं श्रीर न कोई शत्रु है। यही भावना निरन्तर त्र्याना चाहिये। वह भी इस उद्देश्यसे कि आत्मा वन्धनसे विनिमु क्त हो जावे। मनुष्य जन्मकी सार्थकता संयमके पालनेमें हैं। संयमका अर्थ कषायसे श्रात्माकी रक्षा करना है। इसके लिये यह पदार्थोंसे संपर्क त्यागो। यद्यपि पर पदार्थ सदा विद्यमान रहेगे, क्योंकि लोकमे सर्व पदार्थ व्याप्त हैं। इस तरह उनका त्यागना किस प्रकार वनेगा यह प्रश्न उठता है तथापि उनमें जो हमारी आत्मीय कल्पना है उसके त्यागनेसे परपदार्थोंका त्यागना वन जाता है। वे यथार्थमें दुःखदायी नहीं, किन्तु उनमें जो ममत्वभाव है वही दुःखदायी है। राग-द्धेष आत्माके सबसे प्रवत शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करनेका प्रयत्न करना चाहिये। 'जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे' इस वाक्यसे संतोषकर लेना अन्य वात हैं और पुरुवार्थकर रागद्वेपका निपात करना श्रन्य बात है। राग-द्वेष कोई ऐसे वज्र नहीं जो भेदे न जा सकें। अपनी भूलसे ये होते और अपनी बुद्धिमत्तासे विलीन हो सकते हैं। कायरतासे इनकी सत्ता नहीं जाती। ये वैभाविकभाव हैं - आत्माके क्लेशकारक हैं। इनके सद्भावमे आत्माको वेचैनी रहती है। उसके श्रर्थ यह नाना प्रकारके उपाय करता है। उससे वेचैनीका हास नहीं होता प्रत्युत वृद्धि होती है।

स्पृश्यास्पृश्यकी चर्चा लोग करते हैं पर जैनधर्म कब कहता है कि तुम ऋस्पृश्योंको नीच सममो । तुम्हीं लोग तो ऋस्पृश्योंको जूं उन खिलाते हो श्रौर यहाँ वड़ी वड़ी वातें वनाते हो। नियम करों कि हम अस्पृश्योंको अपने जैसा भोजन देंगे फिर देखो अपने प्रति उनका हृद्य कितना पृचित्र और ईमानदार रहता है। में अन्यकी वात नहीं कहता पर वाईजीकी कहता हूँ । सागरकी वात हैं, सावन दीपावली आदि पर्वोंके दिन वाईजी जो पेड़ा या पुडी मुक्ते खिलाती थीं वही अपनी मेहतरानीको खिलाती थीं। जब उनसे कोई कहता कि आप इसे पीछेका वचा हुआ रदी पेड़ा क्यों नहीं दे देतीं ? तो वे उसे घुड़ककर उत्तर देती थीं कि क्या मैं इसे रोज देती हूँ ? इसे अच्छा भोजन कव मिलेगा? एक वार संदासमे वाईजीकी सोनेकी चूड़ी गिर गई पर वाईजी-को पता नहीं। दूसरे दिन वह मेहतरानी अपने आप चूडी घर दे गई। हम सबको उसकी ईमानदारी पर आखर्य हुआ। मैं स्वयं एक बार रेशन्दीगिरिके मेलेमें तांगासे गया, साथमे और भी बहुतसे तांगे थे। बाईजीने मुक्ते चार पेड़े रख दिये, रास्तेमे मैंने दो पेड़े तांगावालेको दिये और दो मैंने खाये। कच्ची रास्ताम धूल उड़ने लगी, मुक्ते कष्ट हुआ। मैंने नाकपर कपड़ा लगा लिए। तांगावालेने क्यों ही देखा, मटसे तांगा श्रागे ल गया। इससे साय-वालेने तागेवालोसे आगे ले जानेको कहा और साथमें इस वातकी धमकी दी कि हमने भी तो तुम्हें उतना ही किराया दिया है। तागेवालेने कहा कि आपन किराया दिया सो तो ठीक हैं पर स्वयं भूखा रह कर दो पेड़े तो नहीं दिये १ हृदयपर हृदयका श्रासर पड़ता है। श्राप घोत्रीका धुला कपड़ा उठानेमें दोप सममते हैं पर शरीरपर चर्वीसे सने कपड़े बड़े शांकसे धारण करते है। क्या यही जैनयर्म हें ? जैनधर्म पवित्रताका विरोधी नहीं पर घृणाको वह

कषाय अतएव हेय समभता है। क्या कहे लोग बाह्य आचारमें तो वाघकी खाल निकालते हैं पर अन्तरङ्गको शुद्ध करनेकी श्रोर ध्यान ही नहीं देते। दिन्लीमे हरिजन विषयक चर्चा हमारे श्रन्तरङ्गकी परीचा रही। पर मेरे मनमें जो बात थी वह व्यक्त कर दी। मैं तो इस पत्तका हूं कि प्राणीमात्रको धर्म-साधनका श्रधिकार है। पञ्च पाप त्यागनेका श्रिधिकार प्रत्येक मनुष्यको है, क्योंकि जब उसकी त्रात्मा वुद्धिपूर्वक पाप करती है तव उसे छोड़ भी सकती है। मन्दिरमे त्राना न त्राना इसमें वाधक नहीं। त्राज कल सर्वत्र यही चर्चा हो रही है कि हरिजनोंको मन्दिर नहीं जाने देना चाहिये, क्योंकि वे हरिजन हैं। अपवित्र हैं, पूर्वाचार्योंने उन्हे अन्पृश्य वतलाया है। अस्पृश्यका अर्थ यह है कि उनको स्पर्श कर स्नान करना पड़ता है। यहा प्रश्न होता है कि वे आखिर अरपृश्य क्यों हैं ? ये मिद्रापान करते हैं इससे अस्पृश्य हैं या हम लोगोंके द्वारा की हुई गन्दगीको स्त्रच्छ करते हैं इसलिये अस्पृश्य हैं या शरीरसे मिलन रहते हैं इससे अस्पृश्य हैं या परम्परासे हम उन्हे अस्पृश्य मानते आ रहे हैं इससे अस्पृश्य हैं ? यदि वे मदिरा पानसे अस्पृश्य हैं तो लोकमें बहुतसे उच्चक्रतीन भी मदिरापान आदि करते हैं वे भी श्रस्पृश्य होना चाहिये। यदि गन्दगीको स्वच्छ करनेसे अस्पृश्य हैं तो प्रत्येक मनुष्य गन्दगी साफ करता है, वह भी श्रस्पृश्य हो जावेगा। यदि शरीरकी मलिनता श्रस् । श्या-का कारण है तो वहुतसे उत्तम कुलवाले भी शरीरकी मलिनतासे श्रस्पृश्य हो जावेंगे। यदि उनमें मलिनाचारकी बहुलता उनकी श्ररग्रयतामे साधक है तो यह बहुत उत्तम कुलोमें भी पाई जाती है। विरले विरले उत्तम कुलबाले तो इतना पापाचार करते हैं जितना नीच कुलत्राले भी नहीं कर सकते। इससे सिद्ध होता है कि चाहे ऊँच हो या नीच जिसमे पापाचारमय प्रवृत्ति है वही

कल्याएके मार्गसे दूर है। यदि आज शुद्र पख्च पापका त्याग कर देवें तो वह भी अणुव्रती हो सकते हैं तथा अन्तरङ्ग से जिनेद्रदेवकी भक्तिके पात्र हो सकते हैं। त्राह्मण मर कर नरक जा सकता है श्रौर चाण्डाल मर कर स्त्रर्गमें देव हो सकता है। यह तो अपनी अन्तरङ्ग परिण्तिकी निर्भलताके ऊपर निर्भर हैं। इस निर्मलताको रोकनेका किसीको अधिकार नहीं। खेद इस वातका है कि जो अपनेको • उच वर्णवाले मानते हैं उन्हींने नीच कहे जानेवाले लोगोंकी पवित्रताका अपहरण किया है। इसीका फल है कि उच वर्णवाले ऊपरसे उच वर्ण है पर भीतरसे उनमें उचताके दर्शन नहीं होते । अस्तु, अप्रासिक्षक चर्चा आ गई, परमार्थकी वात तो यह है कि शुद्ध चित्तके लिये शुद्ध श्रात्माको जानो। शुद्ध ज्ञान वहु है जिसमें रागादिभावकी कलुपता न हो। शत्रु रागादिक ही हैं श्रन्य कोई नहीं। रागादिके श्रमुकूल पर पदार्थ होता है तव तो उसकी रश्चाका प्रयत्न होता है ऋौर रागादिके प्रतिकृत होनेसे उसके नाशके लिये प्रयत्न करनेकी सूकती है। इस परणतिको धिक्कार ही देना चाहिये।

जयन्तीका उत्सव समाप्त हुआ, लोग अपने अपने घर गये।
एक दिन साहु शान्तिप्रसादजीने भारतीय ज्ञानपीठ वनारसके
लिये दश लाख रुपयेके शेयर प्रदान किये और उससे सम्बद्ध
कागजोंपर मैंने हस्ताचर कर दिये। हस्ताचर तो कर दिये पर जव
विचार किया तय मुमे लगा कि मेने महती भूल की। उचित यही
था कि चाहे कुछ हो परिमहके विपयमें कुछ भी नहीं करना चाहिये।
अस्तु, जो हुआ सो ठीक हैं अब ऐसे कार्योमे उपयोग नहीं लगाना
चाहिये - यह विचार स्थिर किया। यथार्थमें कल्याणका मार्ग तो
निराकुलतामें है। जहाँ आकुत्रता है वहाँ शान्ति नहीं। हमारी
प्रवृत्ति आजन्म प्रवृत्तिमार्गमें लग रही है, अतः निरीहमार्गकी

श्रीर जाना श्रति कठिन है। धन्य है उन महापुरुपोंको जिनकी प्रवृत्ति निर्दोप रहती है।

चित्तवृत्ति निरन्तर कलुषित रहे यह महान् पापका उदय हैं। जब परिग्रहका सम्बन्ध नहीं तब कलुषित होनेका कोई कारण ही नहीं। वास्तवमें देखा जावे तो हमने परिग्रह त्यागा ही नहीं। जिसको त्यागा है वह तो परिग्रह ही नहीं। वे तो पर पदार्थ है, उनको त्यागा ही भूल है, क्यों कि उनका ख्रात्मासे सम्बन्ध ही नहीं। ख्रात्मा तो दर्शन-ज्ञान-चारित्रका पिण्ड है। उसमें मोहके विपाकसे कलुषितता ख्राती है जो कि चारित्रगुणकी विपरिणति—विरुद्ध परिणति है उसे ही त्यागना चाहिये। उसका त्याग यही है कि वह होवे इसका विषाद मत करो तथा उसमें निजत्व करपना न करो।

चित्तमे न जाने कितने विकल्प आते हैं जिनका कोई भी अयोजन नहीं। प्रत्येक मनुष्यके यह भाव होते हैं कि लोकमे मेरी प्रतिष्ठा हो। यद्यपि इससे कोई लाभ नहीं फिर भी न जाने लोकेपणा क्यों होती है ! सर्व विद्वान् निरन्तर यह घोषणा करते हैं कि संसार असार है। इसमे एक दिन मृत्युका पात्र होना पड़ेगा। पर असारका कुछ अर्थ ही समम्प्रमें नहीं आता। मृत्यु होगी इसमे क्या विशेषता है ! इससे वीतराग तत्त्वको क्या सहायता मिलती है, कुछ ध्यानमे नहीं आता। मुमे तो लगने लगा है कि बहुंत वोलना जिस प्रकार आत्मशक्तिको दुईल करनेका कारण है उसी प्रकार वहुत सुनना भी आत्मशक्तिके हासका कारण है। आगमाभ्यास भी उतना सुखद है जितना आत्मा धारण कर सके। वहुंत अभ्यास यदि धारणासे रिक्त है तो जैसे उदराग्निके बिना गरिष्ठ भोजन लाभदायक नहीं वैसे ही वेद अभ्यास भी लाभ दायक नहीं प्रत्युत हानिकारक है। यद्वा तद्वा

मनुप्योंसे वार्तालाप करना उचित नहीं। धर्मके अर्थ शरीर दण्डन की आवश्यकता नहीं। शरीर न तो धर्मका कारण है और न अधर्मका। इससे उपेचा रखना ही अयस्कर है। संसार आज नाना प्रकारके संकटोंमे जा रहा है, इसका मूल कारण परिग्रह है। सर्व पापोंका मूल कारण परिग्रह ही है। 'मूच्छी परिग्रह:—'ममेदं बुद्धिलच्चणम्' यही परिग्रहका! स्वरूप है। संसारका कारण परिग्रह ही है। वरिग्रहका अर्थ मोह-राग-द्रेष है। यही संसार है और यही दु:खका मूल कारण है।

श्रासौज सुदी ८ का दिन था। दरियागंजमे शान्तिसे स्वाध्याय कर रहा था कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सुनाया कि—श्राचार्य शान्तिसागरजीने कहा है कि यदि वर्णींका मत हरिजनके विषयमे हमारे मन्तव्यानुकूल नहीं तब वे इसमें मौन धारण करें। यदि कुछ वोलेंगे तब उनके हक्कमे श्रच्छा न होगा श्रर्थात् उनको जैन दिगम्बर मतानुयायी श्रपने सम्प्रदायवलसे पृथक् कर देवेंगे'।

इसका तात्पर्य यह है कि दिगम्बर जैन उन्हें आदरकी दृष्टिसे न देखेंगे। मैंने यह विचार किया कि मनुष्योंकी दृष्टिसे कुछ कल्याण तो होता नहीं और न मनुष्योंकी दृष्टिमें आदर पानके लिये मैंने वीतराग जिनेन्द्रका धर्म स्वीकार किया है। मेरा तो विश्वास है कि जैनधर्म किसीकी पैतृक सम्पत्ति नहीं तब धर्म साधनके जो अझ हैं वे क्यों सर्वसाधारणके लिये उपयोगम आनेसे रोके जाते हैं? कल्पना करो, कोई दृर्तिजन जैनधर्मका श्रद्धालु वन गया तब उसे क्या ये लोग श्रावकके अनुकृत किया नहीं करने देंगे? यदि नहीं करने देंगे तो निश्चय ही उन्होंने उमे धर्मसे विश्वत किया यह सममना चाहिये। धर्म तो आत्मा की परिणित है, उसे कोई रोक नहीं सकता। एक दो नहीं सब मिलकर

भी मेरी वीतराग धर्मसे श्रद्धा को दूर नहीं कर सकते। लोकैषणाकी मुफे श्रभिलापा नहीं है। मैंने विचार किया कि श्रच्छा हुश्रा एक श्रभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हुए।

त्रासील सुदीमे प्रात काल ७ वजे चलकर म वजे न्यू दिल्ली गये। निसा जीमें ठहरे। स्थान रन्य है। यहाँसे एक फलाँग दूर पर श्री मन्दिरजी हैं। वहुत ही रम्य मन्दिर है। वीचमे एक वेदिका है। उसमें श्रीजिनेन्द्रदेवका विम्व है। इसके त्रातिरिक्त लगभग १०० गजपर दूसरा जिन मन्दिर है जो खण्डेलवालोंका है। बहुत ही रम्य है। चौकमे नीमका वृक्ष है। वहुत ही ठंडा है। स्थान उत्तम है परन्तु धर्म साधन करनेवाला कोई नहीं। यहाँ पर यदि अनुसन्धान विभाग खोला जावे तो उन्नति हो सकती है, परन्तु न तो कोई महापुरुष ऐसा है जो इस कार्यमें उत्साह दिखावे और न कोई करनेवाला है। एक दिन फिर भी यहाँ आये, प्रवचन हुआ, जनता अच्छी थी, प्रायः सवे अंग्रेजी विद्यामें पटु हैं, साथ ही धार्मिक रुचि अच्छी रखते हैं। हमारे साथ खुले भावोंसे व्यवहार किया तथा यह प्रतिज्ञा ली कि सायंकाल शास्त्र प्रवचन करेंगे।

एक दिन जुल्लक पूर्णसागरजी रुष्ट होकर चले गये। यहाँपर खलवली मच गई कि वर्णांजीसे रुष्ट होकर चले गये। वर्णांजीने कुछ कहा होगा ऐसा अनुमान लोगोंने लगाया। परन्तु मैंने तो कुछ कहा भी नहीं। संसारकी गित विचित्र है, जो चाहे सो आरोप करे! इतना अवश्य था कि इनके समागमसे निरन्तर क्लेश रहता था। आप आहारके वाद आवकोंसे केन्द्रीय समितिके नामपर प्रेरणा कर दान कराते जिसकी लम्बी चौड़ी स्कीम कुछ समभमे नहीं आती। जुल्लककी वृत्ति तो निःस्पृह है। उसे दान आदि कराकर उसके व्यवस्थापक वनना शोभास्पद नहीं है। वास्तवमें

इनकी प्रकृति अपनेसे मिलती नहीं । २ घण्टा वाद पं० चन्द्रमौलि-जी आये तव चित्तको संतोष हुआ ।

श्रासौज समाप्त हुआ। कार्तिक वदी १ को सागरसे सिघई कुन्दनलालजी श्राये। वहुत ही स्नेह जनाया। श्रन्ततो गत्वा नेत्रों-से श्रश्रुपात श्रा गये। प्राचीन स्मृति करते-करते वई घण्टा विता दिये। श्रापका निरन्तर यही कहना था कि सागर चिलये। वहाँ श्रापको सर्व प्रकारसे शान्ति मिलेगी। मुसे उनकी स्नेह दशा देख ऐसा लगा जैसे इस व्यक्तिके साथ जन्मान्तरका स्नेह हो। मैंने उनसे यही कहा कि श्रव सर्व उपद्रवोंका त्याग कर श्रात्महितमे लगो। स्नेह ही संसार वन्धनका कारण है। हमारा श्रौर श्रापका जीवन भर स्नेह रहा। श्रव श्रान्तम समय है, श्रतः स्नेह वन्धन तोड़ कर श्रात्महितकी श्रोर दृष्टि देना ही श्रेयस्कर है।

कार्तिक वदी ३ २००६ को लालमन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ। श्री पं०शीतलप्रसादजीका भाषण बहुत रोचक हुआ। इन्छ हो, जो आनन्द वक्ताको आता है वह श्रोताओंको नहीं आता। वह तो अपनेमे तन्यय हो जाता है। उपदेश देनेकी आकौं ना शान्त होनेपर वक्ताको शान्ति मिलती है। शान्तिका मूल कारण कणयका अभाव है। कषायाग्निके शान्त करनेके लिये आवस्यकता इस वातकी है कि पर पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़ा जावे।

रोहतकसे श्री नानकचन्द्रजी श्राये । श्रापके साय श्रन्य ४ प्रतिष्ठित व्यक्ति भी थे । श्रापका श्राग्रह था कि रोहतक चिलये, परन्तु भैंने उत्तर दिया कि विचार पूर्वकी श्रोर जानेका हैं । गिरिगज श्री सम्मेदिशिखरजी पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा वलवती हैं । उमिलिये वे निराश हो गये । हमारे मनमें वार वार यही भाव श्राता था कि श्रव हमे व्यवहार मार्गमें नहीं पड़ना चाहिये । व्यवहारमें पड़ना ही श्रात्मकल्याणका वाधक है। जहाँ परके साथ सम्बन्ध हुन्त्र: वहीं संसारका पोषक तत्त्व श्रागया, इसीका नाम श्रास्तव है।

एक डिन पं॰ महेन्द्रकुमारजी श्रीर पं॰ फुलचन्द्रजी वनारस-वालोका शुभागमन हुआ। छुछ चर्चा हुई। चर्चामें पं॰ राजेन्द्र कुमारजी तथा स्त्रामी निजानन्दजी भी थे। कुछ निष्कर्प न निकला। ष्प्रागमका प्रमाण ही सह कहते हैं, किन्तु शान्ति पूर्वक वाक्य विन्यास नहीं होता। विवाद हरिजन समस्याका है। एक पन्न तो यह कन्ता है कि हरिजन जैन मन्दिरमे प्रवेश नहीं कर सकता और एक कहता है कि भगवान् महावीरका यह संदेश है कि प्राणीमात्र धर्मधारणका पात्र हैं। मुक्ते इस विव.दसे श्रानन्द नहीं श्राया। श्राज कत्तके मानवोंमे सहनशक्ति नहीं, तत्त्वचर्चामें श्रनापशनाप शब्दोंका प्रयोग करनेमे संकोच नहीं। धर्मको पैतृक सम्पत्ति मान रक्खा है तथा उसमे श्रन्यको प्रवेश करनेका हक्क नहीं। कुछ समफर्में नहीं त्राता। त्रस्तु, लोग त्रपनी त्रपनी दृष्टिसे ही तो पदार्थको देखते हैं। मैंने विचार किया कि यद्वा तद्वा मत वोलो, वहीं बोलो जिससे स्वपरहित हो। यों तो पशु-पत्ती भी बोलते हैं पर उनके वोलनेसे क्या किसीका हित होता है। मनुप्यका बोल बहुंत कठि-नतासे मिलता है।

यहाँ ज्ञुल्लक चिदानन्द्र भी थे। इन्होंने जैन शास्त्रोंको सस्ते मूल्यमे प्रकाशित करानेके लिए एक सस्ती प्रन्थमालाका आयोजन किया और उसके द्वारा कई प्रन्थोंका प्रकाशन भी हुआ। जनताने इस कार्यके लिये द्रव्य भी अच्छा दिया पर कार्य तो व्यवस्थासे ही स्थायी हो सकता है, भावुकतासे नहीं। मेरे मनमे रह रहकर यही विचार घर करता गया कि परसे संसर्ग करना ही पापका मूल है। जब अन्य द्रव्य स्त्राधीन हैं तब परसे सम्बन्ध जोडना ही दुःखका वीज है। अनादिसे आत्माने इसी रोगको अपनाया और

उससे जो जो दुर्दशा इस जीवकी हुई वह किसीसे गुन नहीं— सवको अनुभूत है। परका वेदन ही दुर्दशाका मूल कारण है। जिन्हें इन दुर्दशाओं से अपनेको वचाना है उन्हें उचित है कि इन पर पदार्थों का सम्पर्क त्याग दें, एकाकी होनेका अभ्यास करें। जहां तक मनुष्यकी मनुष्यता पर आंच नहीं आती वहाँ तक पर पदार्थका सम्बन्ध रहे परन्तु निज न माने। मनुष्यता वह वस्तु हैं जो आत्माको संसार वन्धनसे मुक्त करा देती है। अमानुपता ही संसार दुःखोंकी जननी है। मनुष्य वह जो अपनेको संसारके कारणोंसे सुरक्षित रक्ते। मनुष्य वही है जो कुत्सित परिणामोंसे स्वात्मरक्ता करे। केवल गल्पवादसे आत्माकी शुद्धि नहीं। शुद्धिका कारण निर्दोप दृष्टि है। हे भगवान्। (हे आत्मन्) तुम भगवान् होकर भी क्यों पतित हो रहे हो ?

एक दिन नये मन्दिरमें सतघरेकी कन्या पाठशालाका वार्षि-कोत्सव था। चारों ज्ञल्लक वहाँ विराजमान थे। २०० छात्राएँ व महिलाएँ उपस्थित थीं। १ कन्याने बहुत जोरदार शब्दोंमे व्याख्यान दिया। सुनकर सर्व जनता प्रसन्न हुई। पूर्णसागर महाराजने २५००) जो उनके पास भारतवर्षकी स्कीमका है उसमेंसे दिया तथा उन्होंने अपील की जिससे ३०००) श्रोर भी हो गया।

श्रमावस्याके दिन वीर निवाणोत्सव था। जनसमुदाय श्रन्छा था, परन्तु कुछ नहीं निकला श्रोर न निकलनेकी संभावना है। वोलना बहुत श्रोर काम कुछ न करना यह आजके मानवोंकी बन्तु स्थिति है। गल्पवादसे कुछ कल्याण नहीं होता। कर्तव्यवादमें च्युत रहना जिसको उप्र है वही गल्पवादका रिसक है। ध्यागार्मा दिन वीरसेवामन्दिरकी कमेटी हुई जिसमें उसके स्थायित्व तथा दिल्लीमें ध्याने विषय पर विचार हुआ।

दिल्लीके चातुर्मासका यह मेरा अन्तिम दिन था, इसलिये वहुत लोग आये। महासभाके मन्त्री परसादीलालजी आये। आप शान्त पुरुष हैं किन्तु आजकलकी परिस्थिति पर पूर्ण रीतिसे विचार नहीं करते। कुशल हैं और प्राचीनताके अपर बहुत बल देते हैं। प्राचीनता उत्तम है किन्तु उसका जो मार्मिक भाव है उसपर गम्भीर दृष्टिसे विचारना चाहिये। धर्मपर किसी जाति विशेषका अधिकार नहीं। प्रत्येक मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है। जिन्हे हम अस्पृश्य शूरू कहते हैं वे भी पज्र पापोंका मूल जो मिथ्याभाव उसे छोड़ कर पज्र पापका त्याग कर सकते हैं। यदि वे चाहे तो हम लोग जैसा शुद्ध भोजन करते हैं वे भी कर सकते हैं।

हम दिल्लीमें आनन्दसे ३ माह २४ दिन रहे, सर्व प्रकारकी सुविधा रही । यहाँपर जनतामें धर्म श्रवणका ऋच्छा उत्साह रहा । समय-समयपर श्रनेक वक्तात्रोंका यहाँ समागम होता रहता था। दिल्ली भारतकी राजधानी होनेसे व्याख्यान सभात्रोमें मनुष्य संख्या पुष्कल रहती थी। यहाँके व्याख्याता मुख्यमे थे - श्रीनिजा-नन्दजी चुल्लक, श्रीपूर्णसागरजी चुल्लक तथा श्रीचिदानन्दजी ज्ञुल्लक। मै वृद्धावस्थाके कारण बहुत कम भाग ले पाता था। त्यागियोंमे श्रीचांदमल्लजी साहव उदयपुरका भी श्रच्छा प्रभाव था। पण्डितोंमें श्रीराजेन्द्रकुमारजी संघ मंत्रीका व्याख्यान श्रति प्रभावक होता था । दसलच्चणपर्वके ६ दिन वड़ी शान्तिसे वीते । ६ वें दिन न जाने हरिजनकी चर्चाने कहाँसे प्रवेश किया जो सर्व गुड़ मिट्टी हो गया। श्रीर मेरे मत्थे यह टीका मढ़ा गया कि वर्णीजी हरिजन प्रवेशके पत्तपाती हैं। यद्यपि मैं न तो पत्तपाती हू और न विरोधी हू किन्तु श्रात्माने यही साची दी कि जो मनमे हो सो वचनोंसे कहो। यदि नहीं कह सकते तो तुमने श्रवतक धर्मका मर्स ही नहीं सममा। श्रनन्तानन्त श्रात्माएं हैं, परन्तु लक्ष्य सबके नाना नहीं,

एक ही हैं। भगवान् उमास्त्रामीने जीवका लक्षण उपयोग माना है। भेद श्रवस्था प्रयुक्त है, श्रवस्था परिवर्तनशील है। एक दिन हम वालक थे, श्रवस्था परिवर्तन होते-होते श्राज वृद्ध श्रवस्थाको प्राप्त हो गये "यह तो शारीरिक परिवर्तन हुश्रा किन्तु श्रात्मामें भी परिवर्तन हुश्रा। एक दिन ऐसा था जव दिनमे १० बार पानी श्रीर प बार भोजन करते भी संकोच न करते थे पर श्राज १ वार जल श्रीर भोजन प्रहण करके संतोप करते हैं। कहनेका तात्पर्य है कि सामग्रीके श्रवुकूल प्रतिकूल मिलनेपर पदार्थों परिणमन होते रहते हैं। श्राज जिनको हम श्रपवित्र श्रीर नीच सम्बोधनसे पुकारते हैं वे ही मनुष्य यदि उत्तम समागम पा जावें तो उत्तम विचारके हो सकते हैं, श्रन्यथा जो दशा उनकी हो रही है वह किसीसे ग्रम नहीं। श्रागममे गृत्र पचीको व्रती लिखा है। वह मृत्यु पाकर स्वर्णका कल्पवासी देव हुश्रा। देव ही नहीं श्रीरामचन्द्रको मृत भ्रातृका मोह दूर करनेमे निमित्त भी हुश्रा।

कार्तिक सुदी २ को दिनके २ वजे दिल्लीसे सहादराके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमे अत्यन्त भीड़ थी, लोगोंको विशेष अनुराग था। सहस्रों स्त्री पुरुषोंके अश्रुपात आ गया। पुलतक मर्व भीड रही वादमे कम-क्रमसे कम होती गई। हम लोग ५ वजे सहादरा पहुँच गये। भारत वैंकके मैनेजर श्रीराजेन्द्रप्रसादजी भी आये भद्र पुरुष हैं। मोहकी महिमा अपरम्पार है। बहुतसे मानय तो बहुत ही दुःखी हुए। चार माहके संपर्कने मनुष्योंके मनको मोहयुक्त कर दिया। इसीलिये पृथक् होते समय उन्हें दुःपत्रा अनुभव हुआ।

## दिल्लीसे हस्तिनागपुर

प्रातःकालिक क्रियात्रोंसे निवृत्त हो मन्दिरमे शास्त्रप्रवचनके श्रर्थं गये। वहाँपर दिल्लीसे ५० नर नारी श्रा गये। वही रागका श्रालाप, कोई श्रन्य वात नहीं थी। वहुत मनुप्योंका कहना था कि आप दिस्ली लौट चलें, जो कहो सो कर देवें। पर हमको तो कुछ करवाना नहीं, भूलभुलैयामें फॅसकर क्या करता ? यहाँसे चलकर गजियाबाद आये। भोजनके बाद १ वजेसे ३ वजे तक सभा हुई। यहाँपर एक वर्णी शिक्तामन्दिरकी स्थापना हुई। यहाँसे २३ मील चल वेगमावाद स्टेशनसे १ गर्लोड्स सङ्कपर ठहर गये। यहाँपर एक शरणार्थी पंजाबी मनुष्य वड़ा भला श्रादमी था। भोजनादिके लिये त्राग्रह किया । त्रभी त्रन्य मतावलम्बियोंमें साधु पुरुपका महान् त्रादर है। जैनधमे प्राणीमात्रका कल्याण करने-वाला है। जैन कहनेको तो कहते हैं कि हम जिन भगवानके उपा-सक हैं, परन्तु उनके मार्गका श्रादर नहीं करते। यहाँसे ५ मील चल कर मुराद्नगरकी धर्मशालामे ठहर गये। धर्मशाला उत्तम थी, रात्रिको हम लोग तत्त्व विचार करते रहे। वास्तवमे श्रन्तरङ्गकी वासनाकी श्रोर ध्यान देना चाहिये। यदि श्रन्तरङ्ग वासना शुद्ध है तो सव कुछ है। श्रनादि कालसे हमारी वासना पर पदार्थीमे ही निजत्वकी करूपना कर असंख्य प्रकारके परिणामोंको करती है। वे परिणाम कोई तो रागात्माक होते हैं श्रौर कोई द्वेषक्य परिणम जाते हैं। जो रूच गये उनमें राग श्रीर जो प्रतिकृल हुए उनमें द्वेष करने लगते हैं।

मुरादनगरसे ४ मील चलकर मोदीनगर आये। यहाँ पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चलकर एक स्टेशन पर स्कूलमें ठहर गर्ये। वहाँ स्कूलके हेडमास्टर श्रत्यन्त भद्र थे। वहुतसे छात्र यहाँ पर थे उनमे दो छात्र शरणार्थी थे। उनके चेहरे पर इछ च्रीदासीन्य था। पूछने पर कारण माऌ्म हुत्र्या कि जव वे पंजावसे अाये तव उनके कुदुम्बके मनुष्य वहीं पाकिस्तानी मुसलमानोंके द्वारा कत्ल कर दिये गये। हमने एक एक कुरताकी खादी उन्हें श्री हुंकमचन्द्रजी सलावा द्वारा दिला दी तथा हुकमचन्द्रजीने ५) मासिक राजकृष्ण जी द्वारा दिलाया । वे वहुत प्रसन्न हुए । यहाँसे चलकर मेरठसे २ मील पर १ सरोवर था वहीं भोजन किया। तद्नन्तर २ मील चलकर मेरठ पहुँच गये। यहाँ वोर्डिंगमे निवास हुआ। अनेक नर-नारी स्वागतके लिये आये। मनुष्य धर्मका आदर करता है श्रोर धर्मका श्रादर होना ही चाहिये, क्योंकि वह निज वस्तु है तथा परकी निरपेचता ही से होता है। हम अनाटिसे जो भ्रमण कर रहे हैं उसका मूल कारण यह है कि हमने आत्मीय परिगतिको नहीं जाना। वाह्य पदार्थीके मोहमे स्राकर राग द्वेष सन्ततिको उपार्जन करते रहे और उसका जो फल हुआ वह प्रायः सवके ऋनुभवगम्य है।

श्राज कार्तिक सुदी प सं० २००६ का दिन था। प्रातःकाल मेरठके मन्दिरमें शास्त्रप्रवचन हुन्ना। श्री हुकमचन्द्रजी सलावाने भोजन कराया। दिनभर मनुष्योंका समागम रहा, केवल गल्पवादमें दिन गया। दिल्लीसे लाला जैनेन्द्रिकशोरजीका शुभागमन हुन्ना। श्रीप वहुत ही सज्जन हैं, श्री प्रेमप्रसादजीसे वातचीत हुई, वहुत ही सज्जन हैं। श्री लाला फिरोजीलालजी दिल्लीसे श्राये। वहुत उदार स्त्रीर योग्य हैं। श्रापका धर्मप्रेम सराहनीय है। यहाँसे प्रातःकालकी क्रियात्रोंसे निवृत्त हो मिल मन्दिरमे स्वाध्याय किया। यहाँसे

३ मील चल कर तोपखाना आ गये, यहीं पर भोजन किया, यहाँपर मन्दिर वहुत ही सुन्दर है, पत्थरका दरवाजा वहुत मनोहर है, अन्दर भी उत्तम पत्थर लगा है। २ घण्टा यहाँपर विताये। वहुतसे मनुष्य मिलने श्राये। २० श्रादमी श्रौर महिलाएँ गुजरात प्रान्तके त्राये। धार्मिक मनुष्य थे, शिखरजीकी यात्राको जा रहे थे, लोग सरल प्रकृतिके थे, यू॰ पी॰ के मनुष्य चन्नल होते हैं। तोपखानासे ३ मील चल कर एक चक्कीपर ठहर गये। सानन्द रात्रि वीती । प्रातःकाल प्रवचन हुत्रा, भोजनके बाद यहाँसे चल कर ४ मीलपर १ धर्मशालामें ठहर गये। यहाँसे ३ मील चल कर छोटे मुहाना आ गये। स्कूलमे ठहरे, प्रातःकाल प्रवचन हुआ, वहुत कुछ तत्त्व चर्चा हुई। कार्तिक सुदी ११ को प्रातः ६ वजे मवाना त्रा गये, मन्दिरमे प्रवचन हुत्रा, प्रकरण राम श्रीर रावणके युद्धका था। श्रन्यायका जो फल होता है वही हुन्ना। रावण मृत्युको प्राप्त हुत्रा, श्रीरामचन्द्रजी महाराजकी विजय हुई। रावण रावण था पर श्राज रावणके दादा पैदा हो गये हैं। रावण तो सीताके सपकसे दूर रहा, केवल श्रपनी दुर्भावनाके ही कारण क्रगतिका पात्र हुत्र्या पर श्राज तो ऐसे-ऐसे मानव विद्यमान हैं जिन्होंने पर स्त्रीके चक्रमे पड़कर अपना सर्वस्व खो दिया है। यहाँ-से १ वर्जे चल कर ४ मीलपर एक वागमें ठहर गये। वाग १ मीलका था परन्तु ऊजड़ था, कोई प्रवन्ध नहीं। दूसरे दिन प्रातः काल श्रीहस्तिनापुर श्रा गया। स्थान शान्तिका रत्नाकर है परन्तु मेलाकी भीड़ भाड़के कारण उस समय शान्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी।

कार्तिक सुदी १४ -सं० २००६ को उत्तर प्रान्तीय गुरुकुलका उत्सव हुआ किन्तु जब अपील हुई तव विशेष सफलता नहीं हुई। केवल सात आठ हजार रुपया हुआ। इसका मूल कारण इस प्रान्त

में जितने जैन लोक हैं सवकी प्रवृत्ति अंग्रेजी पढ़ानेकी है। आचरण भी प्रायः धर्मके श्रनुकूल नहीं। भोजनादिमे शिथिलता रहती है, वेपभूषा अपनी योग्यता और कुल मर्यादाके प्रतिकूल है। पूर्णिमा-को प्रातःकाल मण्डपमे प्रवचन हुआ। ६ वजेके वाद कमेटीके मेम्बरोंमे कुछ वैमनस्य या वह दूर हो गया। उसके वाद मन्दिर गये, शुद्धि करनेके वाद भोजनके लिये निकले । भोजनगृहमे निर्विष्न प्रवेश किया पर ज्यों ही भोजन करना प्रारम्भ किया त्यों ही दूधका यास लेनेके वाद उसमें तिरूला निकल आया। अन्तराय आ गया। लोगोंको विकलता हुई। श्राज श्रपराह्मकालमे श्रीजीका रथ निकला। वीस हजारके करीव भीड़ थी, वड़ी भक्तिसे रथ निकाला गया, मनुष्योंमे वहुत उमंग थी। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुआ, मनुष्योंका समुदाय अच्छा था। गुरुकुलको कुछ चन्दा भी हो गया। लोगोमें उत्साहकी ब्रुटि नहीं किन्तु योग्य नेताकी कमी है। श्रीमास्टर उप्रसेनजी इसके कार्य करनेमे श्रप्रसर हुए श्रीर संभव हैं इनके प्रयाससे गुरुकुलकी पूर्ति हो जावे।

गुस्कुलका नवीन भवन वनकर तैयार था श्रतः मगसिर वदी २ को ६ वजे उसका उद्घाटन हुआ। मास्टर उप्रसेनजीने अति मार्मिक व्याख्यान दिया। लोगोंके हृद्यमे श्रति उत्साह हुआ, हमारे चित्तमे भी संस्थाके उत्कर्षके श्रथं वहुत उद्देग हुआ परन्तु हम पराधीन थे, क्योंकि हमने यह निश्चित विचार कर लिया था कि एक वार श्रीपार्श्वप्रभुके निर्वाण चेत्रके दर्शन श्रवश्य करना किसीके चक्रमे न श्राना। चाहे २ मील ही क्यों न चला जावे। कल्याणका मार्ग निरीह बृत्ति है। श्राराधना करो परन्तु फलकी इच्छा न करो। धीरे-धीरे जब समुदाय श्रपने-श्रपने घर चला गया श्रतः वातावरण शान्त हो गया। मगासिर वदी ३ को प्रातःकाल सानन्द स्वाध्याय हुआ। भोजन करनेके उपरान्त १ घण्टा श्राराम

कर सामायिक किया तद्नन्तर २३ वजे चलकर ३ मीलके वाद गिएशपुरमें आ गये।

#### इटावा की खोर

सामायिक आदि करके परस्पर कुछ चर्चा हुई। तदनन्तर सो गये। १२३ वजे निद्रा भड़ हो गई है घण्टा कुछ विचार किया पश्चात् कठिनतासे निद्रा श्रायी। उस समय यह विचार मनमे आया कि जिनके पास बख्न नहीं ऐसे गरीव लोग कैसे रात्रि व्यतीत करते होंगे ? तव यही मनसे आया कि उनकी आशा वश हो जाती है। श्राशा ही तो समस्त दुःखोंका कारण है जिसने श्राशापर विजय पा ली उसने जगत् को जीत लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल गर्गेशपुरसे चलकर ५३ वजे मवाना श्रा गये। मन्दिरमे स्वाध्यायके बाद भोजन किया। २ वजेसे संस्कृत कालेजमें प्रिन्सपल साहवके आमहसे गये। बहुत ही योग्य पुरुष हैं 🕏 घंटा आपका व्याख्यान हुआ। आध्यात्मिक शिचाके विना लौकिक शिचा कुछ श्रर्थकरी नहीं। 🖁 घण्टा मैंने भी इसी विषयपर कुछ कहा। पश्चात् यहाँसे चलकर ५ वजे छोटे मुहाना श्रा गये श्रीर स्कूलमें ठहर गये। दूसरे दिन छोटे मुहानेसे ३ मील चल कर एक गाँवमे ठहर गये। दिल्लीवाले छुट्टनलाल मैंदावालोंके यहाँ भोजन किया। वहुत ही योग्य व्यक्ति हैं यहाँसे ५ मील चल कर चक्की पर ठहर गर्ये श्रौर वहाँ रात्रिभर रहे रात्रि सानन्द वीती। मनमें भाव श्राया कि 'श्रन्तरङ्ग की निर्मलताके विना वाह्य निर्मलता वक्षेयके

समान है। तोता, राम राम रटता है परन्तु उसका तात्पर्य नहीं समभता श्रतः जो कुछ रटो उसको समभो। समभोके मायने तव्रुसार प्रवृत्ति करो'। यहाँसे ३ मील चल कर तोपखाना श्रा गये। यहीं पर भोजन किया। मध्यान्होंपरान्त शास्त्र प्रवचन किया लोग शान्ति पूर्वक सुनते रहे।

सर्व मनुष्य सुख चाहते हैं परन्तु सुख प्राप्ति दुर्लभ है इसका मूल कारण उपादान शक्तिका विकाश नहीं। वक्ताओंको यह श्रमिमान है कि हम श्रोताओंको सममा कर सुमार्ग पर ला सकते हैं और श्रोताओंकी यह धारणा है कि हमारा कल्याण वक्ताके आधीन है पर वात ऐसी नहीं है।

तोपखानामे १५ घर जैनियों के हैं प्राय अंप्रेजी विद्याके पण्डित हैं स्वाध्यायमे रुचि नहीं। परन्तु यह सभी चाहते हैं कि येन केन उपायसे संसार बन्धनसे छूटें। इसके अर्थ महान् प्रयास भी करते हैं। मर्यादासे अधिक त्यागियों और पण्डितों की ग्रुश्रुषा करते हैं यही समभते हैं कि त्यागी और पण्डितों के पास धर्म की दुकान है उनका जितना आदर सत्कार करेंगे उतना ही हमको धर्म का लाभ होगा। किन्तु होगा क्या सो कौन कहे १ कहावत तो यह याद आती हैं कि 'फुट्टी देवी क्रंट पुजारी'।

दूसरे दिन मिलमे प्रवचन किया परचात् वहाँसे चलकर वोहिंगमें आये सामायिक की । १२ ई वजे श्री पद्मपुराणका स्वाध्याय किया प्रकरण था श्री रामचन्द्रजीकी विजय हुई। यथार्थमें वात यही है—न्याय मार्गमें जिनकी प्रवृत्ति होती है उनकी अन्तमें विजय होती है। अन्याय मार्गमें जो प्रवृत्त होते हैं वे ही न्याय मार्गम चलनेवालोंसे पराभव प्राप्त करते हैं। अतः मनुष्योंको चाहिये कि न्याय मार्गसे चलें। संसार दुःख मय है उसका कारण आत्मा पर पदार्थको निज मानकर नाना विकल्प करता है। अगले दिन नगरमे प्रवचन हुआ वहीं पर आहार हुआ पश्चात् बोर्डिंगमे आ गये। यहाँ पर निरन्तर भीड़ रहती है स्वाध्याय भी नहीं हो पाता केवल गल्प-वादमें समय जाता है। वस्तुतः मेरे हृदयकी दुर्वलता ही भीड़ एकडी करती है। हृदयकी दुर्वलता कार्यकी वाधक है मोहके कारण यह दुर्वलता है इसका जीतना महान् कठिन है।

मगासिर वदी १० सं० २००६ को यहाँसे १ वजे चलकर ४ मीलकी दूरीपर एक वागमे ठहर गये। यह बाग पहले वहुत ही सुन्दर रहा होगा पर अब तो नष्ट अष्ट हो गया है जिस मकानमे ठहरे वह बहुतही श्रस्वच्छ था—मकड़ी और मच्छरोंका घर था। येन केन प्रकारेण यहाँ रात्रिभर सोये प्रातःकाल ४ मील चल कर फर्जूदा आ गये। फर्जूदा कसवा अच्छा है यहाँ पर गूजर लोगो की वस्ती है, सव सम्पन्न हैं, इन्होंने वहुत सत्कार किया, हमने समाधि शतकका प्रवचन किया परन्तु जो सुख होना चाहिये वह नहीं हुआ। इसका मूल कारण आत्मीक रस नहीं। यहाँसे २ वजे चल कर खरखोंदाके स्कूलमे ठहर गये। स्थान श्रच्छा था रात्रि को स्वाध्याय अच्छा हुआ। स्वाध्यायसे आत्मकल्याण होता है, कल्याणका अर्थ है पर पदार्थीसे ममता त्याग। ममता का कारण अहम्बुद्धि। यहाँसे ४ मील चल कर कौनी प्राममें एक राजपूतके वंगलेमे ठहर गये। वंगला उत्तम था, एक घण्टा स्वाध्याय किया सुनने वाले व्यप्न थे। व्यप्रताका कारण चळ्ळलता हें श्रोर इस श्रोर रुचि भी नहीं। स्वाध्यायके प्रति रुचि नहीं, रुचि न होनेमे मूल कारण कभी इस श्रोर लक्ष्य नहीं। निरन्तर गृहस्थोंको अपने बालकादिके पोपएके अर्थ परिग्रह सञ्चय करनेमें समयका उपयोग करना पड़ता है इस मार्गमे चलनेका उन्हे अवकाश ही नहीं मिलता। प्रात काल ४३ वजे से ५३ तक ' मोक्षमार्गप्रकाशका स्वाध्याय किया उसमे अकरण था कि मोहके

उदयसे यह जीव, पदार्थकी अन्य रूप श्रद्धा करता है इसीसे दुखी होता है। जैसे कोई मनुष्य रज्जुमें सर्पभ्रान्तिसे भयभीत होता है। यह भ्रम दूर हो जावे तो भय नहीं होवे। इसी प्रकार पर पदार्थों में निजत्व बुद्धि त्याग देवे तो सुखी हो जावे। ९ वजे मन्दिर गये वहाँ पद्मपुराएका स्वाध्याय किया उसमें चर्चा थी कि वालीकी दीचाका कारण रावण हुआ। यथार्थमें कारण तो उनकी आन्तरिक विरक्तता थी। रावण उसमें निमित्त हुन्त्रा। वाली मोनको प्राप्त हुए। आज एक मास्टरके घर भोजन हुआ। श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी दिल्लीवाले आये। शामको श्री पतासीवाईजी भी श्रा गईं। रात्रिको चर्चा हुई श्री जैनेद्र किशोरका स्नेह बहुत है उनका भाई भी मुरादावादसे आया ५००) मासिक पाता है उसकी धर्मपत्नी भी साथ थी। सवका अन्तरङ्ग यह था कि आप दिल्ली रह जास्रो कुटिया हम वनवा देंगे। स्राप निर्द्रन्द्र धर्म साधन करिये। यहाँसे चलकर हापुड़ निवास हुआ तद्नन्तर वहाँसे ४ मील चल कर हाफिजनगर आ गये। यहाँ तक दो आदमी हापुड़से आये, लोगोंमें धर्म प्रेम अच्छा है रामचन्द्र वावू यहाँ पर वहुत योग्य हैं आपकी प्रवृत्ति भी अच्छी है। पण्डित परमानन्दजी दिल्लीसे यहाँ आये १ बजे इछ चर्चा हुई चर्चाका सार यही था कि प्राचीन साहित्यका प्रचार होना चाहिए। विना प्राचीन साहित्यके जैन संस्कृतिकी रचा होना कठिन हैं मेरा ध्यान यह है कि प्राचीन साहित्यके प्रचारके साथ-साथ उसके जाता भी तैयार होते रहना चाहिये श्रन्यथा श्रकेला प्राचीन साहित्य क्या कर लेगा ? श्राज लोगोंकी दृष्टि इंग्जिस विद्याके अध्ययनकी ओर ही वलवती होती जा रही हैं क्योंकि वह अर्थकरी हैं तथा संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भापाओंके श्रध्ययनसे विमुख हो रही हैं क्योंकि उससे ऐहिक श्रर्थकी प्राप्ति नहीं होती। यह समाजके हितके लिये श्रच्छी वात नहीं दिखती।

यहाँसे ५ मील चलकर गुलावटी आये प्रामके वाहर स्थानमे ठटर गये, स्थान मनोल या, पानी यहाँका श्रच्छा था, प्रातःकाल स्वाष्याय अच्छा हुआ परचात् गर्मीम दुछ नहीं हुआ। यह विचार अनलगं लानेकी महती आवश्यकता है-जिनके विचारमें मिलनता हैं उनका सर्वे व्यापार लाभप्रद नहीं । सर्व चेष्टा ससार चन्धनसे मुक्त होनेके लिये हैं परन्तु वर्तमानमे मनुष्योंके व्यापार सतारमें फॅसनेके लिये हैं। व्यापारका प्रयोजन पद्धे न्द्रियोंके विपयसे है। यहाँसे ३ मील चल कर एक शिवालयमें ठहर गये स्थान श्रत्यन्त मनोज्ञ है। कृपका जल मिष्ट है श्राज भोजन करनेकी उच्छा नहीं थी फिर भी गये परन्तु श्चन्तराय हो गया। उदर निर्भल रहा। टच्डाको स्याधीन रखना ही कल्याण मार्ग है। यहाँका जो मैनेजर है वह जाट है प्रकृत्या भद्र श्रीर उदार मनुष्य है। यहाँ पर वाहरसे च्यानेवालोको पानी भी पीनेके लिये मिलता है वन्दरोंका निवास भी यहाँ पुष्कल है। कोई-कोई द्यालु उन्हें भी भोजन दें देते हैं। यहाँसे प् मील चल कर बुलन्दशहर श्रा गये। एक वैश्यके मकानमे ठहर गये। उसने सहामें सर्व धन खो दिया। हमको बहुत श्रादरसे ठहराया, पुष्पमाला चढ़ाई तथा १५ मिनट तक पैरों पर लोटा रहा। उसकी यह श्रद्धा थी कि इनके आशीर्वादसे हमारा कल्याए हो जावेगा। लोगोंकी धर्ममें श्रद्धा है परन्तु धर्मका स्वरूप समभनेकी चेष्टा नहीं करते केवल पराधीन होकर कल्याण चाहते हैं। कल्याण-का अस्तित्व आत्मामें निहित है किन्तु जब हमारी दृष्टि उस ओर जावे तव तो काम वने। दो दिन बुलन्दशहरमें रहे सानन्द समय वीता। समयके प्रभावसे मनुप्योंमे धर्मकी रुचिका कुछ हास हो रहा है पर स्त्री गण धर्मकी उच्छा रखता है फिर भी मनुष्योंमें इतनी शक्ति श्रीर दया नहीं जो उनको सुमार्गपर लानेकी चेष्टा करें। यथार्थ वात तो यह है कि स्वयं सन्मार्गपर नहीं परको क्या सन्मार्ग

पर चलावेंगे ? जो स्वयं अपनेको कर्म कलंकसे रक्षित नहीं कर सकते वह परकी रचा क्या करेंगे ?

यहाँसे चलकर मामन आये एक राजपूतके घर ठहरे। रात्रिको यह विचार उठे कि किसीसे कटुक वचन मत बोलो, सर्वदा सुन्दर हितकारी परिमित वचन वोलनेका प्रयास करो श्रन्यथा मौनसे रहो। समागम त्यागो, भोजनके समय अन्यको मत ले जास्रो। भोजनमे लिप्साका त्याग करो । पराधीन भोजनमें सन्तोष रखना ही सुखका कारण है। यदि भिन्ना भोजन अङ्गीकृत किया है तो उसमे मनोवांछितकी इच्छा हास्यकरी है। 'भैदयममृतम्' ऐसा श्राचार्योंका मत है। जो मानव गृहस्थीमे रत हैं उनकी ही लिप्सा शान्त नहीं होती तव अन्यकी कथा ही क्या है ? यहाँ दिल्लीसे जैनेन्द्रकिशोरजी सकुदुम्व त्राये। राजकृष्णजी, उनके भाई, पं० राजेन्द्रकुमारजी, लाला मक्खनलालजी, पं० परमानन्दजी, श्रीमान पं० जुगलकिशोरजी मुख्त्यार, लाला उलफतरायजी तथा श्रीसरदारी-मल्लकीका वालक वा उनकी लड़की सूरजवाई आदि अनेक लोग श्राये। पं० खुशालचन्द्रजी एम. ए. साहित्याचार्य भी पधारे सवका आग्रह यही था कि दिल्ली चलो पर मैं तो गिरिराज जानेका निश्चय कर चुका था श्रत दिल्ली जानेके लिये तैयार नहीं हुआ। सव लोग निराश होकर लौट गये।

यहाँसे चल कर ४ मील बाद मरिपुर श्रा गये। यहाँपर कोरी-का एक वालक ठण्डमे नंगा था उसे मैंने मेरे पास जो ३ गज कपडा था वह दे दिया यह देख लाला खचेडूमल तथा मंगलसेनजी ने भी उसे कपड़ा दिया। गरीवका काम वन गया यह देख मुमे हर्ष हुआ। दया वड़ी वस्तु है, दयासे ही संसारकी स्थिति योग्य रहती है। जहाँ निर्देयता है वहाँ परस्परमे वहुत क्लह रहती हैं। इस समय संसारमे जो कलह हो रही है वह इसी दयाके श्रभावमे हो रही है। वर्तमानमें मनुष्य इतने स्वार्थी हो गये हैं कि एक दूसरेकी द्या नहीं करते। यहाँसे ४ मील चल कर नगलीकी धर्मशालामें ठहर गये श्रीर वहाँसे प्रातः ५ मील चल कर १ धर्मशालामें विश्राम किया। यहाँ भोजन हुआ। यहाँ पर सेठ शान्तिप्रसादजीकी लड़की मिलने श्राई साथमें उसकी फूफी व भावज भी थी। मुसे लगा कि 'सर्व मनुष्य धर्मके पिपासु हैं परन्तु धर्मका मर्भ वतानेवाले विरलताको प्राप्त हो गये। अपने अन्तरङ्गमें यहा तहा जो समम रक्खा है वही लोगोंको सुना देते हैं। श्रीभिप्राय स्वात्मप्रशंसाका है। लोग यह सममते है कि हमारे सदृश अन्य नहीं। धर्मके ठेकेदार वनते हैं पर धर्म तो मोह-होभसे रहित श्रात्माकी परिण्यतिका नाम है। इसपर दृष्टि नहीं।

दूसरे दिन प्रात ३ मील चल कर गवाना आ गये। यहीं पर
भोजन किया पश्चात् ५ मील चलकर भरतरीकी धर्मशालामें ठहर
गये। धर्मलाशामें ही शिवालय है यहाँ से अलीगढ़ मिल हैं।
श्री पं० चाँदमरूलजी यहाँ से चले गये सेठ भौरीलालजी सरियावाले
खुरजासे साथ थे। यहाँ गयासे १ मनुष्य रामेश्वर जैनी तथा १
वर्तन मलनेवाला भी आ गया। इस धर्मशालामें १ साधु या वह
भूला आदमी था। यहाँ से ५ मील चलकर अलीगढ़से ३ मील इसी
ओर आगरावालों के मिलके सामने १ छोटी-सी धर्मशाला थी उसमें
ठहर गये। १० वजे भोजनको गये परन्तु २ शासके वाद ही अन्तराय हो गया। अन्तरायका होना लाभटायक है जो टोप हैं वे
अपगत हो जाते हैं, जुधा परिषहके सहनेका अवसर आता है,
अवभौदर्य तपका अवसर स्वयमेव हो जाता है। आत्मीय परिणामोंका परिचय सहज हो जाता है।'

यहाँसे ३ मील 'चलकर अलीगढ़ आ गये। यहाँ श्री सेठ वैजनाथजी सरावगी कलकत्तावाले मिल गये। छापका अभिप्राय

निरन्तर जैन जातिके उत्कर्षमे मग्न रहता है तथा ययाशक्ति दान भी करते रहते हैं। श्राज कल श्रापका उद्योग वनारसमे ऐसा छात्रा-वास बनानेका है जिसमे २०० छात्र श्रध्ययन करें। तथा एक महान् मन्दिर भी वने, इस कार्यके लिए सर सेठ हुकुमचन्द्रजी इन्दौरवालॉने अस्सी हजारका विपुल दान दिया है। यहाँसे खिरनीसहाय गया। यहाँ दोपहर वाद श्री ज्ञुल्लक चिदानन्द जीका प्रवचन हुआ। मैं १ वागमें चला गया वहीं ४ वजे तक स्वाध्याय किया परचात् यहीं आ गया। एक दिन यहाँ प्रामके वाहर सड़क पर मन्दिर है उसमें गये। श्री वावा चिदानन्दजीने अध्टमूलगुग्पर व्याख्यान दिया पश्चात् मैंने भी है घंटा कुछ कहा। परमार्थसे क्या कहा जावे ? क्योंकि जो वस्तु अनिर्वचनीय है उसे वचनोंसे व्यक्त करना एक तरहकी अनुचित प्रणाली है, परन्तु विना वचनके उसके प्रकाश करनेका सार्ग नहीं। यह सर्वसाधारणको विदित है कि ज्ञान ज्ञेयमें नहीं त्राता, फिर भी उसे प्रकाशित करनेकी चेष्टा मनुष्य करते ही हैं।

पौष वदी १ सं० २००६ को यहाँसे एटाके लिए प्रस्थान किया। ६ मील चलकर चक्की पर ठहर गये। सामायिक करनेके बाद चकीका स्वामी आ गया और अपनी व्यथा सुनाने लगा—सुनकर यही निश्चय हुआ कि संसारमें सर्व दुःखके पात्र हैं। सारांश यह है कि जो संसारमें सुख चाहते हैं वे पर पदार्थोंसे मृच्छी त्यागें। मूच्छी त्याग विना कल्याण नहीं। दूसरे दिन प्रातःकाल ७ वजे चलकर ६ वजे गड़ा। नहर पर आ गये। यहाँ कृतका पानी वहुत स्वादिण्ट था। भोजनोपरान्त कुछ लेट गये। स्थान अतिरम्य था। यहाँसे १२ मील शासनी ठीक दक्षिण दिशामें है। यहाँ पर एक अम है। जिसका नाम पहाड़ी है। वहाँसे म औरने आयों और महान् आप्रह करने लगीं कि आज हमारे प्राममें निवास करो।

हमने वहुत सममाया तव कहीं उन्हें संतोप हुआ। उन्होंने रिववार छीर एकादशीका बहाचर्य बत लिया। उन औरतोंमे एक औरत गरीव थी, उसे एक थान दुसूतीका जो संघके लोगोंको अलीगढ़में एक श्वेताम्बर भाईने दिया था दिलवा दिया। वड़े आप्रहसे उसने लिया। यहाँसे चलकर अकरावादके कुँबर साहवके बागमें ठहर गये। दूसरे दिन ४ मील चलकर गोपीबाजारके स्कूलमे ठहर गये। यहाँ पर छात्रोंकी परीचा ली। ५) पं० भवरीलालजी सरियावालोंके छात्रोंको परितोषिक दिया। सामायिकके बाद ४ मील चलकर सिकन्दराराऊ आ गये। यहाँ २ घर जैनके हैं।

सिकन्दराराऊसे ४ मील चल कर रतवानपुर आ गये। आमवाले वहुत मनुष्य आये, सब साधारण परिस्थितिके थे किन्तु सज्जन थे। यहाँसे १ वजे चल कर भद्रवासके श्राम पंचायत भवनमें ठहर गये। गाँवके अनेक लोग मिलने आये। भद्रवाससे ४ मील चल कर पिलुआ आ गये। यहाँ पर ३ घर पद्मावतीपुर वालोंके हैं १ मिन्द्र है जो सामान्यतया उत्तम है। प्रेमसे भोजन कराया। दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रकिशोरजी तथा राजकृष्णजी आये। इनका अनुराग विशेष है।

पीष वदी ७ सं॰ २००६ को एटा आ गये। यहाँ पर २०० घर पद्मावतीपुरवालों हें, धर्म वत्सल हैं। यहाँ पं॰ पत्नालालजी मथुरा संघसे आये प्रातःकाल मन्दिरमे प्रवचन हुआ। सायंकाल पार्कमे आम सभा हुई। सभामे सभ्य पुरुष आये १ पं॰ पन्नालालजी मथुराका व्याख्यान हुआ, मैंने भी कुछ कहा। यहाँ रात्रिको सिविल सर्जन सपत्नीक आये मिल कर बहुत प्रसन्न हुए। आपने मंगलवारको बहान्यें व्रत लिया। एक दिन बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्योंके चित्तमे कुछ प्रभाव पड़ा। यहाँ पर एक कायस्थ रहते हैं

उन्होंने सवको श्रन्छी तरह फटकारा फलस्वरूप पाठशाला चालू करनेके लिये ६०००) ध्रौव्यफण्ड तथा ५०) मासिकका चन्दा हो गया। लोगोमें परस्पर सौमनस्य नहीं श्रौर श्रन्तरङ्गसे विद्यामें रुचि नहीं।

दूसरे दिन भोजनके पश्चात् सामायिक किया श्रीर १ वजे चल कर ६३ मील छिछैनाके वंगलामें ठहर गये। यहाँ तक एटासे २५ आदमी आये पश्चात् लौट गये कोई प्रामाणिक वात नहीं हुई। यहाँसे चल कर मलावन तथा टटऊ कसवामे ठहरते हुए पौष बद्दी १२ को कुरावली ऋ। गये। यहाँ पर २५ घर जैनियोंके हैं। यहाँ पर जो पण्डित हैं वे उपादानको ही मुख्य मानते हैं निमित्त हाजिर हो जाता है। हाजिर शब्दका श्रर्थ क्या ? शून्य। न्यस्तु, कहाँ तक कहा जावे, विवादके सिवाय कुछ नहीं। श्राजकल ही क्या प्रायः सर्वे कालमें हठवादका उत्तर यथार्थ होना कठिन है। सव यह चाहते हैं कि यदि हमारी बात गई तो छुछ भी न रहा -अतः जैसे वने तैसे अपनी इटकी रचा करना चाहिये तत्व कहीं जावे। यदि मनुष्योमें हठ न होती तो ३६३ पाखण्ड मत न चतते। -आत्माके अभिप्राय असंख्यात हैं अतः उतने विकल्प मतोंके हो सकते हैं संग्रहसे ३६३ वतला दिये हैं। तात्त्विक दृष्टि जब आती है तव सर्व पत्तपात विलय जाते हैं।

यहाँ पर जसवन्तनगरवाले सुदर्शन सेठ भी श्राये श्राप चहुंत सज्जन हैं श्रापके श्रायहसे यन्टरोड़का मार्ग वदल कर इरावा की श्रोर चल दिये। कुरावलीसे ६३ मील चल कर हरिदेवके नगलेमे ठहर गये। यहाँ पर पलालका प्रवन्ध श्रच्छा रहा। देहातमे श्रादमी सरल परिणामोंके होते हैं। वोली साटी होती है परन्तु श्राभिप्राय निर्मल होते हैं नगलासे ७ मील चल कर मैनपुरी श्रा गये। धर्मशालामे ठहर गये स्थान मनोझ है परन्तु जो शान्ति

चाहिये वह नहीं मिलती क्योंकि मनुष्योंका संसर्ग दूर नहीं होता। होपहर बाद सभा हुई पर हमसे बोला नहीं गया। सरदीका प्रकोप था अतः गला वैठ गया । मनुष्य केवल निमित्त च्यादानकी चर्चामें ध्यपना काल विताते हैं। पढ़े लिखे हैं नहीं, परिभापा जानते नहीं, केवल घ्यनाप सनाप कह कर समय खो देते हैं। एक दिन यहाँके कटरा वाजारके मन्दिरमें दर्शनार्थ गये। वहुत विशाल मन्दिर है इस तरहका मन्दिर हमने नहीं देखा। संस्कृत यन्थोंका भण्डार भी विपुल है उसमें गोम्मटसार, मूलाचार, प्रमेयकमलमार्तण्ड, यशस्तिलकचम्पू अ।दि वड़े वड़े अन्थ हैं। २०० के लगभग सब होंगे। - हमने त्रवकाशाभावसे यन्थ नहीं देखे। शास्त्रमे समागम ऋच्छा नहीं । यहाँ वनारससे श्वेताम्बर साधु श्री कान्तिविजयजी आये वहुत ही सज्जन प्रकृतिके थे, मन्दिरोंके दर्भन किये व साम्यभावसे वार्तालाप किया। यहाँसे १ वजे करहलको चल दिये श्रीर ३३ मील चल कर श्रंडसीकी एक धर्मशालामे ठहर गये। वहाँसे १-२ स्थानों पर ठहरते हुए करहल पहुँच गये। यहाँ लमेचू जैनियोंके २०० घर हैं, ४ मन्दिर और २ चैत्यालय हैं, जैनियोंके घर सम्पन्न हैं, १ हाई स्कूल तथा १ औपधालय भी। ऐसे स्थानों पर त्यागी वर्गको रहना चाहिये, बहुत कुछ उपकार हो सकता है। प्राचीन प्रन्थ भण्डार भी है। लोगोंने स्वागतका वहुत आडम्बर किया। वास्तवमे ष्ट्राहम्बरके सामने धर्मकी प्रभावना होती नहीं। जैनधर्मका जो सिद्धान्त था उसे गृहस्थोंने लुप कर दिया, त्यागी वर्ग भी अपने कर्तव्यसे च्युत है। पठन पाठन करनेका श्रवसर नहीं। केवल गल्यवाद रह गया है सो उससे क्या होनेवाला है ? लोक प्रशंसाके अर्थ ही मनुष्यों की चेष्टाएँ रहती हैं। सार तो निवृत्तिमार्गमें है सो वनती नहीं। गल्पवादसे कर्तव्यवाद श्रच्छा होता है। जहाँ तक वने धर्मके श्रर्थ उपयोग निर्मल रखना श्रच्छा है।

पौष सुदी ५ सं २००६ को जसवन्तनगर श्रा गये यहाँ पर जनताने मनः प्रसार कर स्वागत किया। वाहरसे भी वहुतसे मनुष्य श्राये थे। स्त्री समाजकी संख्या भी प्रचुर थी। स्त्री समाजमें पुरुष समाजकी श्रपेचा धर्मकी श्राकांचा बहुत है परन्तु वक्ता महोदय तद्नुकूल व्याख्यान नहीं देते। मेरी सममसे व्याख्यान पात्रके श्रुनुकूल होना चाहिये। भोजनका पाक उदराग्निके श्रुनुकूल होता है। यदि उदराग्निके अनुकूल भोजन न मिले तो उसकी सार्थकता नहीं होती। पौष सुदी ६ सं० २००६ को वड़ा दिन था। स्कूर्जोका , श्रवकाश होनेसे वच्चोंके हृद्योंमे उत्साह था। मेरे मनमें विचार श्राया कि जिस वस्तुका पतन होता है एक दिन वह वृद्धिको प्राप्त होती है। दिनका हास जितना होना था हो गया श्रव वृद्धिका श्रवसर श्रा गया। यहाँ वनारससे पं० कैलाशचन्द्रजी व खुशाल-चन्द्रजी आये। पण्डित कैलाशचन्द्रजीने गुद्धाचरण पर आध घंटा अच्छा व्याख्यान दिया। आज वड़े वेगमें ज्वर आ गया, न वजे तक वड़ी वेचैनी रही उसीमे नींद् आ गई। एक वार खुली अन्तमें कुछ शान्ति त्राई परन्तु पैरोंमे वातकी बहुत वेदना रही। दोनों पर सूज गये। उपचार जिसके मनमे आता हैं सो करता है। मेरा वो यह दृद्तम विश्वास है कि जिसके वहुत सहायक होते हैं उसे कभी साता नहीं मिल सकती। अनेकोंके साथ सम्बध होना यह ही महासकट है। जिसके अनेक सम्बन्ध होंगे उसका उपयोग निरन्तर मंमटोंमे उत्तमा रहेगा। मनुष्य वही है जो परको सबमे हैय सममे। हेय ही न सममे उनमें न राग करे न द्वेप। सबसे वडा दोप यदि हममें है तो यह है कि हम सबको खुश करना चारते हैं श्रीर उसका मृल कारण सब हमको श्रच्छी दृष्टिमे देखें। श्रयीन सव यह कहें देखों कैमा शुद्ध आठमी है। उस लोकेपणाने ही हमें पतित कर रक्ता है। जिस दिन उस लोकपणाको त्याग हैंगे उसी

दिन सुमार्ग मिल जायगा। सुमार्ग अन्यत्र नहीं, जिस दिन राग कलंकका प्रचालन हो जायेगा उसी दिन आनन्दकी भेरी बजने लगेगी।

श्रात्माका स्वरूप ज्ञान दर्शन है श्रार्थात् देखना जानना। जव देखने जाननेमे विकार होता है तव पर पदार्थोंमे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है। राद्वेषका उदय होने पर यह जीव किसीमे इष्ट श्रीर किसीमे श्रानष्ट कल्पना करने लगता है। पश्चात् इष्टकी रचाका श्रीर श्रानिष्टके विनाशका सतत प्रयत्न करता है। यही इस जीवके संसार भ्रमणका कारण है।

प्रात काल मोच्नमार्गप्रकाशकका स्वाध्याय किया। श्रीमान् पं० टोडरमल्लजी एक महान् पुरुष हो गये हैं, उन्होंने गोम्मट-सारादि अनेक प्रन्योंकी इतनी सुन्दर व्याख्या की है कि अल्पज्ञानी भी उनके मर्मका वेत्ता हो सकता है। इससे भी महोपकार उन्होंने मोक्षमार्गप्रकाश प्रनथको सरल भापामें रचकर किया है। उसमे उन्होंने चारों अनुयोगोंकी शैलीको ऐसी निर्मल पद्धतिसे दर्शाया है कि अल्पज्ञानी उन अनुयोगोंके पारंगत विद्वान् हो सकते हैं। तथा भारतमें जो अनेक दर्शन हैं उनकी प्रणालीका भी दिग्दर्शन कराया है। इस प्रनथका जो गम्भीर दृष्टिसे स्व ध्याय करेगा वह नियमसे सम्यग्दरीनका पात्र होगा । पैरोंकी वेदनाका वहुत वेग बढ़ गया। जितना जितना उपचार होता है उतना उतना वेग बढ़ता है। यद्यपि वेदना वहुत तीव होती थी, परन्तु असन्तोष कभी नहीं आया। फिर वेदना होती ही क्यों है ? इसका पता नहीं चलता। इतना श्रवश्य है कि श्रसाताके तीव्र उदयमें ऐसा समागम स्वयमेव जुड़ जाता है। जिससे मोही जीव श्रनेक प्रकारकी कल्पना कर दुःख भोगनेका कर्त्ता वनता है। त्र्रस्तु, यहाँके लोग वेश्यानृत्यमें निरन्तर तत्पर थे। पैरोंकी वेदना ज्यों की त्यों थी श्रीर ज्वर भी यदा कदा श्रा ही

जाता था। इसिलए लोग पाटे पर वैठाकर इटावा ले आये। वहाँ गाड़ीपुराकी धर्मशालामे ठहरे। स्थान अच्छा है। मन्दिर भी इसीमे है। एक कूप भी। यहाँ आने पर असाताका उदय धीरे धीरे कम हुआ तथा उपचार भी अनुकूल हुआ इसिलए आरोग्य लाभ हो गया।

#### इरावा

त्राठ दश दिन वड़ी व्ययतामे वीते। प्रवचन त्रावि वन्द था केवल त्रात्मशान्तिके त्रार्थ दैनंदिनीमें जब कभी दो चार वास्य लिख लेता था। जैसे—

श्रात्मपरिण्तिको कलुपित होनेसे वचात्रो, परकी सहायतामें किसी भी कार्यकी सिद्धि न होगी और न श्रकार्यकी सिद्धि होगी। जैसे शुद्धोपयोग निजत्वका साधक है वैसे ही रागद्धेप संमारके साधक हैं। मेरा न कोइ शत्रु है श्रोर न मित्र है। मे स्वकीय परि- णिति द्वारा स्वयं ही श्रपना शत्रु श्रोर मित्र हो जाता हूं।

'सबसे चमा मांगनेकी अपेचा अन्तरङ्ग कोधपर विजय प्राप्त करो। ऐसा वचन मत वोलो कि जिससे किसीको अन्तरङ्ग वृष्ट पहुँचे। इसका तात्पर्य यह है कि अपने हृदयम परको वृष्ट पहुँचे ऐसा अभिप्राय न हो। वचनकी मधुरता और कटुकतासे उमरा यथार्थ तत्त्व अनुमित नहीं होता।'

'लोक वख्रनाके चक्रमें पड़े मानव उन शब्दोंना व्यवहार करते हैं कि जिनसे लोग समर्फे यह बड़ा विरक्त हैं परन्तु उनमें विरत्तवा का ऋंश भी नहीं। यदि विरक्तताका ऋंश होता तो स्वप्रतिष्ठाके भाव ही न होते।

'संसारमे सुखका उपाय निराकुल परिणित है। निराकुल परि-णितिका सूल कारण अनात्मीय पदार्थोंमे आत्मीय बुद्धिका त्याग है। उसके होते ही रागद्धेष स्वयमेव पलायमान हो जाते हैं। सबसे मुख्य पौरुप यह है कि अभिप्रायमे साधुता आ जाये। जब तक परको निज मानता है तब तक असाधुता नहीं जा सकती। जहाँ असाधुता है वहाँ राग द्धेपकी सन्तित निरन्तर स्वकीय अस्तित्व स्थापित करती है।'

'सवको प्रसन्न करनेकी चेष्टा अग्निमें कमल उत्पन्न करनेकी चेष्टा है। अपनी परिग्रित स्वच्छ रक्खो, संकोच करना अन्छा नहीं। संकोच वहीं होता है जहाँ परके रुष्ट होनेका भय रहता है परन्तु विराग दशामें परके तुष्ट या रुष्ट होनेका प्रयोजन ही क्या है ?'

'गुरुदेवसे यह प्रार्थना की कि हे गुरुदेव । श्रव तो सुसार्ग पर लगात्रो, श्रापकी उपासना करके भी यदि सुमार्ग पर न श्राये तो कत्र श्रवसर सुमार्ग पर श्रानेका श्रावेगा ? गुरुदेवने उत्तर दिया कि श्रभी तुमने मेरी उपासना की ही कहाँ है ? केवल गल्पवादमे समय खोया है। हम तो निमित्त हैं, तुमे उपादान पर दृष्टि पात करना चाहिये। गुरुदेवका श्रर्थ श्रात्माकी शुद्ध परिणति है।

'किसीका सहारा लेना उत्तम नहीं, सहारा निजका ही कल्याण करनेत्राला है। पञ्चास्तिकायमें श्री कुन्दकुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है कि हे आत्मान ! यदि तूँ संसार वन्धनसे छूटना चाहता है तो जिनेन्द्रकी भक्तिका भी त्याग कर', क्योंकि वह भी चन्दन नगसंद्वत दहन की भॉति दु खका ही कारण हैं'। 'निवृत्ति ही कल्याणका मार्ग है अन्ततो गत्वा यही शरण है पर पदार्थका सम्बन्ध छोड़ना ही शान्तिका मार्ग है। शान्तिका उपाय अन्य नहीं किन्तु निजत्व दृष्टि है। जिस प्रकार हमारी दृष्टि परकी ओर है उसी प्रकार यदि आत्माकी ओर हो जाय तो कल्याण सुनिश्चित है। लोग परकी चिन्तामे व्यर्थ ही काल यापन करते हैं'।

'शान्तिका मूल मन्त्र अन्तरङ्गकी कलुषताका नाश है, कलुषताका कारण पर पदार्थीमे ममता चुद्धि है, ममता चुद्धि ही संसारकी जननी है। जब पर पदार्थमें आत्मीय अंश भी नहीं तब उसमे राग करना व्यर्थ है। परन्तु यह मोही जानकरभी गर्तमे पड़ता है उसको दूर करनेका यन करो'।

'श्रात्मतत्वकी यथार्थता प्रत्येक व्यक्तिमें होती है परन्तु उसकी श्रनुभूतिसे विद्यत रहते हैं। इसका मूल कारण हमारी श्रनादिकालीन परानुभूति ही है, क्योंकि ज्ञानमे स्वपर्यायका ही संवेदन होता है किन्तु मिध्यात्वकी प्रवलतामें लोग स्वरूपसे विद्यत हो परको ही निज मान लेते हैं।

१० दिन वाद जिनेन्द्रके दर्शन किये। ये दिन वहुत न्यमताके ये परन्तु अन्तरङ्गमें विकलता नहीं आई। वनारससे श्री सेठ वैजनाथजी सरावगी, पं० कैलाशचन्द्रजी, अधिष्ठाता हरिख्रन्द्रजी, भवेरी लालचन्द्रजी तथा फतहचन्द्रजी साहव आ गये। सवने वहुत ही आत्मीयता दिखलायी। श्री पं० केलाशचन्द्रजीका मिनक प्रवचन हुआ। श्रीयुत ब्र० चांद्मल्लजी साहव भी उदयपुरसे आ गये आप वहुत विवेकी पुरुष हैं अपने कार्यमे सम्रद्ध रहते हैं स्वाध्यायपद्ध हैं प्रवचन समीचीन शैलीसे करते हैं। हमारे शरीरकी दशा देख आपने कहा कि अब आप शान्तिसे काल यापन करो व्यर्थके विकल्पोंसे अपनेको सुरच्चित रक्खो। दिल्लीसे श्री ताराचन्द्रजी तथा राजकृष्णाजी भी आये। राजकृष्णाजी एक कमण्डलु लाये। कमण्डलु

को देख मेरे मनमे विचार श्राया कि परमार्थसे पीछी-कमण्डल वही रख सकता है जिसके अन्तरद्वमें संसारसे भीरुता हो। भीरुता भी उसीको हो सकती है जो इसे दुःखात्मक सममे । दुःखका कारण परमार्थसे पर नहीं हमारी कल्पना ही है। वह इन पदार्थीमें निजत्व मान दुःखकी जननी वन जाती है। दुःखका कारण रागादिक है। जवलपुरसे श्रीटेकचन्द्रजी श्रीर राँचीसे सेठ चाँदमल्लजी साहव भी आये। अव चाँद्मल्लजी अपनी इस पर्यायमें नहीं हैं। आपका बोब सुपुष्ट था त्र्याप त्र्यन्तरङ्गसे विरक्त भी थे त्र्यापका त्राग्रह था कि आप गिरिराज चलें वहाँ पर हमारा भी निवास करनेका अभिप्राय है। सैंने कहा कि इच्छा तो यही है कि गिरिराज पहुँचकर श्रीभगवान् पार्श्वनाथकी शरण ॡूँ पर यह शरीर जव उच्छानुकूल प्रवृत्ति करे तव कार्य वने । सागरसे श्री वालचन्द्रजी मलैया, पं० पन्नालालजी तथा दिल्लीसे श्री जैनेन्द्रिकशोरजी सक्चुटुम्ब श्राये प्रातःकाल श्रानन्दसे प्रयचन हुआ। हमारे प्रवचनके अनन्तर श्री चाँदमल्लजी ब्रह्मचारी का व्याख्यान हुआ। व्याख्यान सामयिक था। लोगोंकी दृष्टि सननेकी खोर तो है पर करनेकी खोर नहीं। करनेसे दूर भागते हैं परन्तु किये विना सुनना श्रौर वोलना-दोनों ही कुछ प्रयोजन नहीं रखते। परमार्थ तो यह है कि कपायपूर्वक मन वचन कायका जो ट्यापार हो रहा है वह रुक जावे तो कल्याणका पथ सुलभ हो जावे। धीरे धीरे शीतकी बाधा कम हो गई श्रौर हमारे शरीरमे वातके कारण जो वाधा हो गई थी वह दूर हो गई। यहाँ स्वर्गीय ज्ञानचन्द्र जी गोलालारेकी धर्मपत्नी धनवन्ती देवीने ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया जैन पाठशालाके ऋर्थ प्रदान किया माघ ग्रुक्ल ५ सोमबार दिनांक २३ जनवरी १९५० को उसका मुहूर्त्त था उद्घाटन मेरे हाथोंसे हुंग्रा। द्वितीय दिन महिला सभाका श्रायोजन हुन्ना श्री धनवन्ती देवीने मुख्याध्यक्षाका पद अङ्गीकार किया हम लोग भी

सभामे गये। जन समुदाय पुष्कल था पं॰ कैलाशचन्द्रजी वनारस का व्याख्यान समयोचित था। पाठशालाका नाम श्री ज्ञानधन जैन सं कृत पाठशाला रक्खा गया। आज सर्वत्र पाश्चात्य शिक्षाका प्रचार है इसलिए लोगोंके संस्कार भी उसी प्रकार हो रहे हैं लोगोंके हृद्यसे अध्यात्म सम्बन्धी संस्कार लुप्त होते जा रहे हैं यही कारण है कि सर्वत्र अशान्ति ही अशान्ति हृष्टि गोचर हो रही है। शान्तिका आस्याद आजतक नहीं आया इसका मृल कारण विरोधी पदार्थीमें तन्मयता है। हम कोधको त्यागनेमे असमर्थ हैं और चमाका स्वाद चाहते हैं यह असम्भव है। संस्कार निर्मल वनानेकी आवश्यकता है हम आजतक जो संसारमे अमण कर रहे हैं इसका मृल कारण अनादि संस्कारोंके न त्यागनेकी ही कुटेव हैं।

२६ जनवरीका दिन आ गया। आजसे भारतमे नवीन विधान लागू होगा अतः सर्वत्र उत्साहका वातावरण था। श्रीयुत महाशय डा० राजेन्द्रप्रसादजी विहारिनवासी इसके सभापित होंगे। आप आस्थामय उत्तम पुरुष हैं। भारतको स्वतन्त्रता मिली परन्तु इसकी रज्ञा निर्मल चारित्रसे होगी। यदि हमारे अधिकारी महानुभाव अपरिमहवादको अपनावें तथा अपने आपको स्वार्थकी गन्धसे अदूषित रक्वें तो सरल रीतिसे स्वपरका भला कर सकते है। श्री हुकमचन्द्रजी सलावावाले आये आप योग्य तथा स्वाध्यायके व्यसनी हैं। एक महाशय कुरावलीसे भी आये उनकी यह श्रद्धा हैं कि उपादानसे ही कार्य होता है। उपादानमें कार्य होता है इसमें किसीको विवाद नहीं परन्तु उपादानसे ही होता है यह कुछ संगत नहीं क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति पूर्ण सामग्रीसे होती है, न केवल उपादानसे और न केवल निमित्तसे। शास्त्रमें लिखा है 'सामग्री जनिका कार्यस्य' अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जननी हं। यदि निमित्तके विना केवल उपादानसे कार्य होता है तो मनुष्य पर्यायरूप निमित्तके विना केवल उपादानसे कार्य होता है तो मनुष्य पर्यायरूप निमित्तके

विना ही श्रात्माको सर्वत्र मोक्ष हो जाना चाहिये क्योंकि मोचका ज्पादान आत्मा तो सर्वत्र विद्यमान है। यदि मनुष्य पर्यायाविष्ट श्रात्मा ही मोचका उपादान है तो मनुष्य रूप निमित्तकी उपेचा कहाँ रही। अतः अनेकान्त दृष्टिसे पदार्थका विवेचन हो तो उत्तम हैं। कानपुरसे भी वहुत लोग श्राये श्रीर श्रायह करने लगे कि कानपुर चिलये परन्तु मैं चल सकूँ इसके योग्य मेरा शरीर नहीं श्रत मैंने जानेसे इनकार कर दिया। मेरे मनमें तो अटल श्रद्धा है कि शान्तिका मार्ग न तो पुस्तकोंमे है, न तीर्थ यात्रादिमें है, न सत्समागमादिमे हैं ऋंर न केवल दिखावाके योग निरोधमे है। किन्तु कपाय नियह पूर्वक सबै श्रवस्थामे है। श्रद्धाकी यह शक्ति है कि उसके साथ ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है श्रीर स्वानुभावात्मक निजरत्रस्वमे प्रवृत्ति हो जाती है। गिरिढीहसे श्रीयुत काल्ह्र्रामजी श्रोर श्री रामचन्द्रजी वावू भी श्राये। श्राप दोनों ही योग्य पुरुष हैं श्रापका अभिप्राय है कि अन मैं श्री पार्श्वभुके चरण कमलोंमें रहकर त्रपनी त्रान्तिम त्रावस्था शान्तिसे यापन करूँ। मेरी त्रावस्था इस समय ७६ वर्षकी हो गई है, शरीर दिन प्रतिदिन शिथिल होता जाता है, स्मरण शक्ति घटती जाती है केवल श्रन्तरङ्गमे धर्मका श्रद्धान दृढ़तम है। किन्तु सहकारी कारणका सदुभाव भी श्राव-रयक है। सेटी चम्पालालजी गयावालोंने भी यही भाव प्रकट किया परन्तु इच्छा रहते हुए भी मैं शरीरकी अवस्था पर दृष्टिपात कर लम्बा मार्ग तय करनेके लिए समन्न नहीं हो सका।

लोग बात तो बहुत करते हैं परन्तु कर्तव्यपथमे नहीं लाते। कर्तव्यपथमे लाना बहुत ही कठिन है। उपदेश देना सरल है परन्तु स्वयं उसपर श्रारूढ़ होना दुष्कर है। मैंने यही निश्चय किया कि श्रात्माकी परिणति जानने देखनेकी है श्रत तुम ज्ञाता दृष्टा ही रहो पदार्थमें जैसा परिणमन होना है हो उसमे इष्टानिष्ट कल्पना

न करो क्योंकि यही संसारकी जड़ है। यदि तुम्हें संसारका अन्त करना है तो परसे आत्मीयता त्यागो। सर्वोत्तम वात यह हैं कि किसीके चक्रमें न आवे, चक्र ही परिभ्रमणका मुख्य कारण है। मनुष्योंसे स्नेह करना ही पापका कारण है संसारका मूल कारण यही है। जिन्हें संसार वन्धनका उच्छेद करना है उन्हे उचित हैं कि वे परकी चिन्ता त्यागें। परकी चिन्ता करना मोही जीवोंका कर्तव्य है।

यहाँ नीलकण्ठ नामक स्थान हैं जिसके कृपका जल अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है, यहाँ रहते हुए मैंने उसीका जल पिया। एकान्त शान्त स्थान है। अधिकांश में दिनका समय यहीं ज्यतीत करता था। फाल्गुनका मास लग गया और ऋतुमें परिवर्तन दिखने लगा भिण्डसे वहुतसे मनुष्य आये और उन्होंने भिण्ड चलनेका आयह किया शरीर तथा ऋतुकी अनुकूलता देख मैंने भिण्ड जानेकी स्वीकृति दे दी। स्त्रीकृति तो दे दी परन्तु आकाशमे मेघकी घटा छाई हुई थी इसलिये उस दिन जाना नहीं हो सका। तीसरे दिन जब आकाश स्वच्छ हो गया तब फागुन कृष्ण ५ को १३ वजे प्रस्थान किया।

#### इटावाके अञ्चलमें

इटावाके पास ही श्रीविमलसागरकी समाधि स्यान है, स्थानकी नीरवता देख १५ मिनट वहाँ विश्राम किया। यह धर्म साधनका उत्तम स्थान है परन्तु कोई ठहरनेवाला नहीं। वातों के वनानेवाले वहत हैं कर्तव्य पालन करनेत्राले कम हैं। यहाँसे ३ मील चलकर गोरेनीका नगरामे ठहर गये। प्रातः यहाँसे २ मील चल कर चम्बल नटीके घाटपर ठहर गये। वहुत सुन्दर दृश्य है नीचे नदी वह रही है अपर सहस्रों टीला है। एक वंगला है, २ फर्लांगपर १ श्राम है जिसका नाम उदी है यहाँपर १ मिडिल स्कूल है। ६ वजे शास्त्र प्रयचन हुआ, अन्य लोग्भी आये स्कूलके मास्टर तथा छात्र गण भी थे। श्रागत जनतासे मैंने कहा कि श्राप वीड़ी पीना छोड़ दें तथा परस्रीका त्याग भी कर दें सुनकर आम जनता प्रसन्न हुई तथा श्रिधिकांशने प्रतिज्ञा ली । यहाँसे चल कर वरहीमे ठहरे श्रीर प्रातः ५ मील चल कर फूफ ब्रा गये। जैन मन्दिरकी धर्मशालामे ठहरे, यहाँ २० घर जैनियोंके हैं लोग भद्र जान पड़ते हैं। श्रीराजारामजी गोलसिंगारेके घर भोजन किया। उन्होंने जो खर्च हो उसपर एक पैसा प्रति रुपया दान करनेका नियम लिया तथा उनकी गृहिग्गीने श्रप्टमी चतुर्दशीको शीलवत लिया। त्राज ईसरीसे पत्र श्राया कि त्र० क्मलापतिजीका स्वर्गवास हो गया। समाचार जानकर पिछली घटनाएँ स्मृत हो उठीं आप वरायठा (सागर) के रहनेवाले थे। सम्पन्न होनेपर भी गृहसे विरक्त थे। आपके साथ बुन्देल-खण्डमे मैंने वहुत भ्रमण् किया था तथा वहाँ प्रचलित कई रूढ़ियाँ वन्द कराई थीं। श्रापको शास्त्रका ज्ञान भी श्रच्छा था। श्रष्टमीका दिन होनेसे सम्यक् प्रकार धर्मध्यानमें दिन बीता । स्वाध्याय अच्छा हुआ, स्वाध्यायका फल स्वपर विवेकका होना है। इससे संवर श्रीर निर्जरा होती है। श्रागमाभ्याससे उत्तम मोत्तमार्गका श्रन्य सहा-यक नहीं। यहाँसे दूसरे दिन ४ मील चलकर दीनपुरामे रात्रि विताई। प्रातः २ मील चलकर भिण्डके बाहर एक सुरम्य स्थानमे ठहर गये। यहाँसे १ फर्लांग मन्दिर है, बहुत विशाल है। मध्याह्रके वाद २ वजेसे निसयामे सभा हुई उन संख्या श्रच्छी थी। श्री पं०

पन्नालालजी कान्यतीर्थ प्रोफेसर हिन्दू विश्वविद्यालयका न्याख्यान समयानुकृत हुँ आ, श्री व्र॰ चॉद्मेल्तजीका भी उत्तम व्याख्यान हुआ तद्नेन्तर मैंने भी कुछ कहा। मेरे कहनेका भाव यह था कि महती त्रावश्यकता विशुद्धिकी है विना भेदज्ञानके विशुद्धि रूप परिएाति होना दुष्कर है। भेदज्ञानका वाधक पर पदार्थमें निजत्व कल्पना है। भेदके होनेमें सव मुख्य कारण श्रात्मीय ज्ञानकी प्राप्ति है। जिस प्रकार हम घट पटादि पदार्थीको जाननेमें मनोष्टति रखते हैं उसी प्रकार श्रात्मज्ञानमे भी हमे चेष्टा करना चाहिये। उपदेशका फल तो यह है कि परलोकके अर्थ प्रयत्न किया जावे। जो मनुष्य त्रात्मतत्त्वकी यथार्थतासे त्रमित्र हैं वे कदापि मोत्त-मार्गके पात्र नहीं हो सकते। यहाँ कभी गोलसिंघारोंके मन्दिरमें श्रौर कभी चैत्यालयमे प्रवचन होता था जनता श्रच्छी त्राती थी। यहाँ पर समयसारकी रुचिवाले बहुत हैं पर विशेषज्ञ गिनतीके हैं। एक दिन प्रवचनमे चर्चा आई कि क्या सम्यग्दृष्टि कुदेवादिककी पूजा कर सकता है ? मेरा भाव तो यह है कि जिसे अनन्त संसारके वन्धनोंसे छुटानेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया वह रागद्वेपसे लिप्त कुदेवादिककी पूजा नहीं कर सकता। वीतराग सर्वज्ञ तथा संभव हो तो हितोपदेशकत्व विना अन्य किसी भी जीवके सुदेवत्व नहीं श्राता। भले ही वह जैनधर्मसे प्रेम रखता हो श्रीर जिन शासनकी प्रभावना = रता हो पर है कुदेव ही। समन्तभद्र स्वामीने इस विपय-में अपना अभिप्राय निम्न प्रकार दिया है।

> भयाशास्तेहलोभाच कुदेवागमलिङ्गिनाम्। प्रणामं विनयं चैत्र न कुर्युः शुद्धदृष्टयः॥

श्रर्थात् सम्यग्दृष्टि पुरुष भय, श्राशा, स्नेह श्रीर लोभके वशीभूत होकर कुदेव, कुश्रागम श्रीर कुलिङ्गयोंको प्रणाम न करे। लोग न

जाने वयो पक्ष च्यामोहमे पड़ इतनी स्पष्ट वातको भी प्रहरण नहीं वरते ? उन्हें देव, अदेवकी परिभाषा भी नहीं जमती ऐसा जान पडता है। एक दिन् गोलालारोंके मन्दिरमे भी प्रवचन हुन्ना जनता श्रन्द्री श्रायी परन्तु प्रवचनका वास्तविक प्रभाव कुछ नहीं हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि वक्ता स्वयं उसके प्रभावमे नहीं आता, श्रन्यको प्रभावमे लाना चाहता है यह प्रवचनकर्तामें महती श्रुटि है। एक सहस्र वक्ता श्रोर व्याख्यान देनेवालों में एक ही श्रमल करनेवाला होना कठिन है। यहाँ लोगोंमे आपसी वैमनस्य अधिक है। एक पाठशाला स्थापित होनेकी वात उठी अवश्य पर कुछ, लोगोंके पारस्परिक संघर्षके कारण काम स्थगित हो गया। धन्य हैं उन्हें जिन्होंने कपायरूपी शञ्जुओं पर विजय प्राप्त करली। एक दिन पुरानी मण्डीमें २ मन्दिरोंके दर्शन किये। मन्दिर वहुत ही रमणीय हैं ५०० मनुष्य इनमें शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। एक मन्दिर भट्टारकजीका वहुत ही स्वच्छ-निर्मल तथा त्रिशाल है। भिण्ड जैनियो की प्राचीन वस्ती है जन संख्या श्रच्छी है यदि सौमनस्य-से काम करें तो जन कल्याणके अच्छे कार्य यहाँ हो सकते हैं। ६-१० दिन यहाँ रहनेके वाद फाल्गुन शुक्लाको चल कर दीनपुरा ष्टा गये और दूसरे दिन दीनपुरासे फूफ आ गये। यहाँ मुरारसे ४ नहिलऍ आई थीं उनके यहाँ हमारा भोजन हुआ। भोजन बड़े भावसे कराया। फूकसे ५ भील चल कर वरही आये यहाँ पर १ मन्दिर प्राचीन वना हुआ है चम्चलके तटसे ३ भील है। ६० हाथ गहरा कूप है फिर भी जल चार है यहाँ पर ३ घर जैनियोके हैं श्रच्छे सम्पन्न हैं, शिचा इस प्रान्तमें कम है। यहाँसे चल कर उड़्याममें ठहर गये। यहाँसे चल कर नगरा थाममें आ गये। यहाँ एक ब्राह्मण महोद्यके घरमे ठहर गये श्राप वहुत ही सज्जन हैं त्रापने त्रादरसे व्यवहार किया। भोजनके उपरान्त १ वजे

चलकर ३ वजे इटावाकी निशयों में आ गये स्थान रम्य हैं यहाँ पर श्री विमलसागरजीकी समाधि हुई थी किन्तु अब यहाँ पर इटावावालों की दृष्टि नहीं। इस तरह इटावाके अब्बलमें अमण कर यही अनुभव किया कि सर्व मनुष्यों के धर्मकी आकांक्षा रहती है तथा सबको अपना उत्कर्ष भी इष्ट है परन्तु मोहके नशामें अन्ध कैसी दशा हो रही है यही अकल्याणका मूल है। मोह एक ऐसी मिदरा है कि जिसके नशामें यह जीव स्व को भूल परको अपना मानने लगता है। यह विभ्रम ही संसार परिभ्रमणका कारण है। जिसके यह विभ्रम दूर होकर स्वका यथार्थ बोध हो जाता है वह परसे यथासंभव शीव ही निवृत्त हो जाता है।

# **अप्टाह्विका**पर्व

फाल्गुन शुक्ला ८ सं० २००६ से आष्टिहका पर्व प्रारम्भ हो गया यह महापर्व है। इस पर्वमे देवगण नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं वहाँपर प्र जिनालय हैं। मनुष्योंका गमन वहाँ नहीं, देवगण ही वहाँ जाते हैं मनुष्य चाहे विद्याघर हो चाहे ऋद्धिधारी मुनि हों, नहीं जा सकते। किन्तु मनुष्योंमें वह शक्ति है कि संयमांशको ग्रहण कर देवोंकी श्रपेचा श्रसंख्यगुणी निर्जरा कर सकते हैं। मन्दिरमे समयसारका प्रवचन हुंश्रा। कुछ वांचो परन्तु वात वही है जो हो रही हे संसारके चक्रमें जीव उलम रहा है श्राहार भय मैथुन परिग्रह इन संज्ञाओंके श्राधीन होकर श्रात्मीय स्वरूपसे श्रपरिचित रहता है। श्रात्मामे ज्ञायक शक्ति है जिससे वह स्वपरको जानता है परन्तु अनादिकालसे मोह मदका ऐसा प्रभाव है कि आपापरकी इप्तिसे विद्धित हो रहा है। संसार एक श्रशान्तिका भण्डार है इसमें शान्ति-का अत्यन्त अनादर है, वास्तवमें अशान्तिका अभाव ही शान्तिका उत्पादक है। अशान्तिके प्रभावसे सम्पूर्ण जगत् व्याकुल है। त्र्यशान्तिका वाच्यार्थ श्रनेक प्रकारकी इच्छाएं हैं। ये ही हमारे शान्ति स्वरूपमे वाधक हैं जब हम किसी विषयकी अभिलाषा करते हैं तब त्राकुलित हो जाते हैं, जब तक इच्छित विषयका लाभ न हो तव तक दुखी रहते हैं। अन्तरङ्गसे यदि यह बात उत्पन्न हो जाय कि प्रत्येक द्रव्य स्वमे परिपूर्ण है उसे पर पदार्थकी आवश्यकता नहीं। जब तक पर पदार्थकी आवश्यकता अनुभवमें आती है तब तक इसे स्वद्रव्यकी पूर्णतामे विश्वास नहीं "तो परकी त्राकांचा मिट जाय श्रौर परकी त्राकांचा मिटी कि त्रशान्तिने कूच किया। जो मनुष्य शान्ति चाहते हैं वे परजनोंके संसर्गसे सुरिचत रहे। परके संसर्गसे वुद्धिमें विकार त्राता है विकारसे चित्तमे त्राकुलता होती है। जहाँ त्राकुलता है वहाँ शान्ति नहीं, शान्ति विना सुख नहीं श्रीर सुखके अर्थे ही सर्व प्रयास मनुष्य करता है। अनादिसे हमारी मान्यता इतनी दूषित है कि निजको जानना ही श्रसंभव है। जैसे खिचडी खानेवाला मनुष्य केवल चावलका स्वाद नहीं वता सकता वैसे ही मोही जीव शुद्ध श्रात्मद्रव्यका स्वाद् नहीं वता सकता। मोहके उदयमें जो ज्ञान होता है उसमे पर ज्ञेयको निज माननेकी मुख्यता रहती है। यद्यपि पर निज नहीं परन्तु क्या किया जावे। जो निर्मल दृष्टि है वह मोहके सम्वन्धसे इतनी मिलन हो गई है कि निजकी त्र्योर जाती ही नहीं। इसीके सद्भावमे जीवकी यह दशा हो रही है उन्मत्तक (धतूरा) पान करनेवालेकी तरह अन्यथा प्रवृत्ति करता है अतः इस चक्रसे वचनेके अर्थ परसे ममता त्यागो केवल वचनोंसे व्यवहार करनेसे ही संतोष मत कर लो। जो मोहके साधक हैं उन्हें

त्यागो। जैसे पञ्चे न्द्रियोंके विषय त्यागनेसे ही मनुष्य इन्त्रिय विजयी होगा कथा करनेसे कुछ तत्त्व नहीं निकलता। वात असलमें यह है कि हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान है इस ज्ञानमें जो पदार्थ भास-मान होगा उसी ओर तो हमारा लक्ष्य जावेगा उसीकी मिद्धिके अर्थ हम प्रयास करेंगे चाहे वह अनर्थकी जड क्यों न हो। अनर्थकी जड़ वाह्य वस्तु नहीं, वह तो अध्यवसानमें विषय पडती है अतएव वाह्य वस्तु वन्धका जनक नहीं श्रीकुन्दकुन्टदेवने लिखा है—

वत्युं पडुच जं पुण श्रज्भवसागां तु होदि जीवाण। गाहि वत्युदो वंधो श्रज्भवसागोगा वंधो दु॥

पदार्थ को निमित्त पाकर जो अध्यवसान भाव जीवों को होता है वही वन्धका कारण है, पदार्थ वन्धका कारण नहीं हैं।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि ऐसा सिद्धान्त है तो वाह्य वस्तुका त्याग क्यो कराया जाता है ? तो उसका उत्तर यही है कि अध्यवसान न होनेके अर्थ ही कराया जाता है । यदि वाह्य पदार्थ के आश्रय विना अध्यवसान भाव होने लगे तो जैसे यह अध्यवसान भाव होता है कि मैं रणमें वीरसू माताके पुत्रको मास्ना वहाँ यह भी अध्यवसान भाव होने लगे कि मैं वन्ध्यापुत्रको प्राण रहित कहूँगा परन्तु नहीं होता क्योंकि मारणिकियाका आश्रयभूत वन्ध्यान सुत नहीं है अतः जिन्हे वन्ध न करना हो वे वाद्य वस्तुका परित्याग कर देवें। परमार्थसे अन्तरङ्ग मूर्छाका त्याग ही वन्धकी निष्टृतिया कारण है। मिथ्या विकल्पाको त्याग कर वयार्थ वस्तु स्वरूपके निर्ण्यमे अपनेको तन्मय करो अन्यथा इसो भवचकके पात्र रहोगे। तुम विश्वसे भिन्न हो फिर भी विश्वको अपनाते हो उनमे मृल उन्मान सिह है जिनके वह नहीं वह मुनि हैं, ये अध्यवस्तान आदि भाग

जिनके नहीं वही महामुनि हैं। वे ही शुभ श्रशुभ कर्भसे लिप्त नहीं होते।

जिस जीवको यह निश्चय हो गया कि मैं परसे भिन्न हूँ वह कदापि परके संयोगमे प्रसन्न और विषादी नहीं हो सकता। प्रसन्नता और अप्रसन्नता मोहमूलक है। मोह ही एक ऐसा महान् शत्रु इस जीवका है कि जिसकी उपमा नहीं की जा सकती उसीके प्रभावसे चौरासी लाख योनियोंमे जीवका भ्रमण हो रहा है अतः जिन्हे यह भ्रमण इष्ट नहीं उन्हे उसका त्याग करना चाहिये।

खेद करो मत आतमा खेद पापका मूल। खेद किये कुछ ना मिले, खेद करहु निमूल।

खेद पाप की जड़ है अतः हे आत्मन १ खेद करना श्रेयस्कर नहीं किन्तु खेदके जो कारण हैं उनसे निवृत्ति पाना श्रेयस्कर है। मैं अनादि कालसे संसारमे भटक कर दुखी हो रहा हूँ ऐसा विचार कर कोई खेद करने वैठ जाय तो क्या वह दुःखसे छूट जायगा ? नहीं दुःखसे तो तभी छूटेगा जव संसार अमणके कारण मोह भावसे जुदा होगा।

लोग प्रवचनोंमें त्राते हैं पर शास्त्रश्रवणका रस नहीं। इसका मूल कारण त्रागमाभ्यास नहीं किया त्रीर न उस त्रीर रचि ही है। लोगोंको बुद्धि न हो सो वात नहीं। सासारिक कार्योमे तो बुद्धि इतनी प्रवल है कि वालकी भी खाल निकाल दें परन्तु इस त्रीर हृष्टी नहीं। कई श्रोता तो रूढ़िसे त्राते हैं, कई वक्ताकी परीचाके त्रार्थ त्राते हैं, कई वक्ताकी वाणी कुशलतासे त्राते हैं त्रीर कई कोत्हलसे त्राते हैं, त्राधिक भाग महिलात्रोंका होता है। त्रात्मकल्याणकी भावनासे कोई नहीं त्राता यह वात नहीं परन्तु ऐसे जीव विरले हैं। यदि यह वात न होती तो शास्त्रश्रवण करते करते

जीवन व्यतीत हो गया पर प्रवृत्तिमें अन्तर क्यों नहीं आया ? यहाँ तो यह वात है कि शास्त्रमें जो लिखा सो ठीक, और वक्ता जा कह रहा सो ठीक पर काम हम वही करेंगे जो करते चले आ रहे हैं। एक कहावत है कि आप कहें सो ठीक और वे कहें सो ठीक पर नरदाका द्वार यहीं रहेगा। अस्तु, पर्वभर लोगोंमें अच्छा उत्साह रहा।

## उदासीनाश्रम और संस्कृत विद्यालयका उपक्रम

चैत्र कृष्ण ३ संवत् २००६ को प्रातःकाल यहाँ उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई। श्री लदमणप्रसाद्जीने १००) मासिक श्रांर वई महाश्योंने मिलकर १५०) मासिक रूपये दिये। ४ उदासीन भाई आश्रममे प्रवृष्ट हुए साथ ही बहुतसे मनुष्योंके भाव इस श्रोर ऋज हुए परन्तु थोड़ी देरकी उफान है घर जाकर भूल जाते हैं। पं० फूलचन्द्रजी बनारससे श्राये थे वे श्राज बनारस वापस चले गये। श्राप स्वच्छ वात करते हैं किन्तु समयकी गतिविधि देखकर व्यवश्हार करें तब उनका प्रयास सफल हो सकता है। पं० पन्नालालजी काव्यतीर्थ भिण्ड गये थे वहाँसे उन्हें वर्णाचेयरके लिए ५०१) मिले थे यह स्थये पं० फूलचन्द्रजीके हाथ भेज दिये। पं० मन्मनलालजी तर्कतीर्थ कलकत्तावाले श्राये। प्रचीन विद्वानोंमेंसे हैं ज्युत्पन्न भी हैं परन्तु प्रकृतिके तीच्छा हैं। ३ छात्रोंने संस्कृत पट्नेका भाव प्रयट किया। संस्कृत भाषा उत्तम भाषा है जनागमका भाव उस भाषा के श्रायवनके विना सुगम रीतिसे लक्ष्य नहीं परन्तु श्राज लोगोंकी हिए पैसेकी श्रोर लग रही है। उस भाषाने श्रायवनमे पैमार्की

प्राप्ति पुष्कल नहीं होती इसलिए धनिकवर्ग अपने बालकोंको इसका अध्ययन नहीं कराते परन्तु इतना निश्चित है कि इस भाषासे हृदयमे जो शुद्धि या निर्मलता आती है वह अन्य भाषाओं से नहीं। ३ छात्रों द्वारा अभ्यन्तरकी प्रेरणासे संस्कृत भाषाके अध्ययनकी वात सुन हृदयमें प्रसन्नता हुई। यहाँ पसारी टोलाके मन्दिरमें प्राचीन साहित्य भण्डार है अन्थोको दीमक और चूहोंने बहुत नुकसान पहुँचाया है लोग शास्त्र भण्डारोंका महत्त्व नहीं सममते इसलिये उनकी रह्माकी और विशेष प्रयत्न शील नहीं रहते। अपने हुन्डी दस्तावेज आदिको लोग जिस प्रकार सुरक्षित रखते हैं उसी प्रकार शास्त्र भी सुरिचत रखनेके योग्य हैं।

श्री ज्ञानचन्द्रजीकी धर्मपत्नीने जो ७५०००) का दान निकाला था उसके ट्रष्ट होनेमे छुछ लोग वाधा उपस्थित कर रहे थे तथा कितने ही लोगोंकी यह भावना थी कि यह रुपये अंग्रेजी स्कूलमें लगाये जावें। मुमें इससे हर्ष विपाद नहीं था परन्तु भावना यह थी कि अंग्रेजी अध्ययनके लिए तो नगरमें छात्रोंको अन्य साधन सुलभ हैं अतः उसीमें द्रव्य लगानेसे वास्तविक लाभ नहीं। संस्कृत अध्ययनके और खास कर जैनधर्म सहित संस्कृत अध्ययनके आंद स्तित्वे उसके अर्थ द्रव्य व्यय करना उत्तम है। अस्तु मुमें इस विकल्पमे नहीं पड़ना ही श्रेयस्कर है यह विचार कर में तटस्थ रह गया।

चैत्र कृष्ण ६ सं० २००६ को शामके समय यहाँसे २ मील चल कर श्री सोहनलालजीके बागमे ठहर गये। प्रातःकाल सामायिक कर चलनेके लिये तैयार हुए। इतनेमें इटावासे वहुतसे सज्जन आ गये। सवने वहुंत आयह किया कि आप इटावा ही रहिये क्योंकि गर्मी पड़ने लगी है अतः मार्गमे आपको कष्ट होगा। मैंने कहा— मुमे कोई आपत्ति नहीं श्री चम्पालालजी सेठीसे पृछिये। अन्तमे उन

लोगोंने कहा कि यदि आप रह जावें तो धनवंतीवाईका ७५०००) पचहत्तर हजार रुपया संस्कृत विभागमे लगा देवेंगे । संस्कृत विभाग का नाम सुन मेरे हृद्यमे वहुत प्रसन्नता हुई। अन्ततो गत्वा यही निश्चय किया कि रहना चाहिये। निश्चयानन्तर हम सोहनलाल-जीके वागसे वापिस आ गये। मनुष्योंके चित्तमे उत्साह हुआ श्री मुन्नालालजीको तो इतना उत्साह हुन्ना कि उन्होंने १२५) प्रतिमास देनेको कहा तथा धनवन्तीके ७५०००) भी पृथक्से इसी कार्यके लिए दिलाये। 'शुभस्य शीव्रम्' के अनुसार चेंत्र कृष्णे ६ सं० २००६ को ही पं० भाग्मनलालजी द्वारा संस्कृत विद्यालयका काम शुरू हो गया। ५ छात्रोंने लघुसिद्धान्तकौ मुदी प्रारम्भ की, सेठ भगवानदास-जीके सुपुत्रने सर्वार्थिसिद्धि प्रारम्भ की । श्री वनवारीलालजी त्यागीने द्रव्य संप्रहका प्रारम्भ किया। श्रन्तमे श्रीपाल वैद्यने मिप्टान्न विवरण किया। सानन्द उत्सव समाप्त हुआ। श्री मुन्नालालजीने इटावा मे ही चातुर्मास करनेका आग्रह किया तो मैंने यह वात समन रक्खी कि यदि चैत्र सुदी १५ तक संस्कृत विद्यालयके लिए १ लच रुपयेकी रजिष्टी हो जायगी तो कार्तिक सुदी २ तक रह जावेंगे। चातुर्मासकी वात सुन जनताको वहुत उल्लास हुआ।

## जैनदर्शन के लेख पर

जबसे हरिजन मन्दिर प्रवेशकी चर्चा चली कुछ लोगोंने छपने स्वभाव या पच्च विशेषकी प्रेरणासे हरिजन मन्दिर प्रवेशके विधि निषेध साधक छान्दोलनोंको उचित-छनुचित प्रोत्साहन दिया। कुछ लोगोंको जिन्हे छागमके छनुकूल किन्तु छपनी धारणाके प्रतिकूल विचार सुनाई दिये उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि 'वर्णीजी हरिजनमन्दिर प्रवेशके पत्तपाती हैं।' इतना ही नहीं दल-विशेष और पत्त विशेषका आश्रय लेकर अपनी स्वार्थ साधनाके लिये यहा तहा आगम प्रमाण उपस्थित करते हुए मेरे प्रति जो कुछ मनमे आया उटपटांग कह डाला। इससे मुमे जरा भी रोष नहीं परन्तु उन सम्भ्रान्त जनोंके निराकरण करनेके लिये कुछ लिखना आवश्यक हो गया। यद्यपि इससे मेरी न तो पत्तपाती वननेकी इच्छा है और न विरोधी किन्तु आत्माकी प्रवल प्रेरणा सदा यही रहती है कि जो मनमें हो सो वचनोंसे कहो। यदि नहीं कह सकते तो तुमने अब तक धर्मका मर्म ही नहीं सममा।

'जैनदर्शन' के सम्पादकने वर्णीं लेख पर शूरोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा है आगम प्रमाण भी दिये हैं। में आगमकी वातको सादर स्वीकार करता हूं किन्तु आगमका जो अर्थ आप लगावें वही ठीक है यह आप जानें। श्री १०० कुन्दकुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है—

तं एयत्तविहत्तं दाएहं श्रप्पणो सिवहवेण । जिद दाएज पमाणं चुिकज छलं ण घेतव्वं ॥

श्रागममें लिखा है कि अस्पृश्य शुद्रसे स्पर्श हो जावे तो स्नान करना चाहिये। यहाँ यह जिज्ञासा है कि अस्पृश्य क्या अस्पृश्य जातिमें पैदा होनेसे हो जाता है? यदि यह वात है तो ब्रह्मादि ३ वर्णीमें पैदा होनेसे सबको उत्तम होना चाहिये परन्तु ऐसा देखा जाता है कि यदि उत्तम जातिका निन्दा काम करता है तो वह चाण्डाल गिना जाता है, उससे लोग घृणा करते हैं, पंति-भोजनमें उसे शामिल नहीं करते और वही मनुष्य जो उत्तम कुलमें पैदा हुआ यदि मुनिधर्म श्रंगीकार कर लेता है तो पूच्य माना

जाता है। देवतुल्य उसकी पूजा होती है तथा उसके वाक्य आर्प-वाक्य माने जाते हैं। अथवा वह तो मनुष्य हैं उत्तम कुलके हैं किन्तु जहाँ न तो कोई उपदेष्टा है और न मनुष्योंका सद्भाव है ऐसे स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्रमें असंख्यात तिर्यक्त मछली मगर तथा स्थलचारी जीव व्रती होकर स्वर्गके पात्र होते हैं। तव कर्मभूमिके मनुष्य यदि व्रती होकर जैनधर्म पालें तो क्या आप रोक सकते हैं। आप हिन्दू न विनये, यह कौन कहता है परन्तु जो हिन्दू उच्च कुलवाले हैं वे यदि मुनि वन जावें तव क्या आपित हैं? हिन्दू शब्दका अर्थ मेरी समममे धर्मसे सम्बन्ध नहीं रखता। जिस प्रकार भारतका रहनेवाला भारतीय कहलाता है इसी तरह देश विशेषमे रहनेवाला हिन्दू कहलाता है। जन्मसे मनुष्य एक सहश उत्यन्न होते हैं किन्तु जिनको जैसा सम्बन्ध मिला उसी तरह उनका परिण्यमन हो जाता है।

भगवान् श्रादिनाथके समय ३ वर्ण थे, भरतने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की यह श्रादिपुराणसे विदित है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन तीन वर्णोंसे ही ब्राह्मण हुए। मूलमे ३ वर्ण कहाँसे आये १ विशेष उहापोहसे न तो आप ही अपनेको वैश्य सिद्ध कर सकते हैं और न मैं ही। क्योंकि इस विपयमें मैं तो पहलेसे ही अपने श्रापको श्रनभिज्ञ मानता हूं। श्रापने लिखा कि श्राचार्य महाराज दयालु हैं तब क्यों वेचारोंपर दया नहीं करते। श्राप लोग श्रपनी श्रुटिको नहीं देखते। श्रापका जो उपकार इन शूरोंसे होता है वह श्रन्यसे नहीं होता। यदि वे एक दिनके लिये भी श्रपनी २ सेवाएं छोड़ देवे तो पता लग जावेगा। श्रापने उनके साथ जो व्यवहार किया यदि उसका वर्णन किया जावे तो श्रश्रुपात होने लगे। वे तो तुम्हारे उन कामोंको करते हैं जिनकी तुम धृणा करते हो पर तुम उसका जो प्रतिकार करते हो सो नीचे वाक्योंसे देखो। जब तुम्हारे

यहाँ पिट्स भोजन होता है तब श्रच्छा-श्रच्छा माल तो तुम उद्रमें स्वाहा कर लेते हो श्रोर उच्छिष्ट पानीसे सिंचित पत्तलें उनके हवाले करते हो बिलहारी इस द्या की। श्रच्छे-श्रच्छे फल तो श्राप खा गये श्रोर काने-काने बचे सो इन विचारोंको सौप विये फिर इसपर बनते हो हम श्राप पद्धतिकी रच्चा करनेवाले हैं।

गृद्ध पक्षी मुनिके चरणोंमे लोट गया, उसके पूर्व भत्र मुनिने वर्णन किये, सीता तथा रामचन्द्रजीको मुनि महाराजने उसकी रत्ताका भार सुपुर्द किया। अय देखिये, जहाँ गृद्ध पत्ती व्रती हो जावे वहाँ गृह शुद्ध नहीं हो सकने यह बुद्धिमे नहीं त्राता। यदि शुद्र इन कार्योंको त्याग देवे श्रीर सद्यादि पान स्रोड़ देवे तो वह व्रती हो सकता है। मन्दिर आने दो मत आने दो आपकी इच्छा। जिस प्रकार त्र्याप उनका विहेष्कार करते हैं यदि वे भी कल्पना करो सर्व सम्मति कर आपके साथ कोई व्यवहार न करें तो आप क्या करेंगे १ घोवी यदि वस्त्र प्रचालन छोड़ दें, चर्मकार मृत पशु न हटावे, वसौरिन सौरीका काम न करे और भिंतन शौचगृह शुद्ध न करे तो संसार में हाहाकार मच जावे । हाहाकार की तो कोई वात नहीं हैजा प्लेग चेचक और क्षय जैसे अनेक भयंकर रोगोंका श्राश्रय हो जावेगा श्रतः वुद्धिसे काम लो, उनके साथ मानवताका न्यवहार करो, जिससे यह भी सुमार्गपर त्रावें। यह देखा जाता है कि यदि वह श्रध्ययन करें तो आपके वालकोंके सदृश वी ए. एम. ए वैरिष्टर हो सकते हैं। संस्कृत पढ़ें तो श्राचार्य हो सकते हैं। फिर जैसे त्राप पञ्च पाप त्याग कर व्रती वनते हो यदि वह भी पञ्च पाप त्यागें तो इसका कौन विरोध कर सकता है ?

में मुरारमें था एक भंगी प्रति दिन शास्त्रश्रवण करता था सुनकर कुछ भयभीत भी होता था। वह हमेशा उत्सुक रहता था कि शास्त्रके समय में अवश्य रहूं। जिस दिन उसका नागा हो जाता था उस दिन वहुत खिन्न रहता था। मांसादिका त्यागी था। एक दिन वह अपने मुखियाको लाया। मुखिया वोला—कुछ कहते हो ? मैंने एक नया उत्तरीय वस्त्र उसे दिया और कहा कि तुम यह वस्न अपने साधु महात्माको देना और उनसे हमारा जयराम कहना तथा जो वह कहें सो उनका सन्देशा हम तक पहुँचाना। दूसरे दिन वह अपने साधुका संदेश लाया कि जो वर्गींजी कहे सो अपनेको करना चाहिये। क्या कहते हो ? मैंने कहा—जो तुम्हारे भोज होनेवाला है उसमें माँस न वनाना। 'जो आजा' कहता हुआ वह चला गया फिर २ दिन बाद आया और कहने लगा कि हमारे जो भोज था उसमे माँस नहीं वनाया गया।

श्राप लोगोंने यह समभ रक्खा है कि जो हम व्यवस्था करें वही धर्म है। धर्मका सम्बन्ध श्रात्मद्रव्यसे हैं न कि शरीरसे। हाँ, यह श्रवश्य है कि जब तक श्रात्मा श्रसंज्ञी रहता है तब तक वह सम्यग्दर्शनका पात्र नहीं होता संज्ञी होते ही धर्मका पात्र हो जाता है। श्राष्ठे वाक्य है—चारों गितवाला संज्ञी पञ्चेंद्रिय जीव इस श्रमन्त संसारके नाशक सम्यग्दर्शनका पात्र हो सकता है। वहाँ पर यह नहीं लिखा कि श्रस्पृश्य श्रूद्र या हिंसक सिंह या व्यन्तरादिक देव या नरकके नारकी इसके पात्र नहीं होते। जनताको श्रममें हाल कर हर एकको वावला कह देना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। श्राप जानते हैं—संसारमे यावत् प्राणी हैं सर्व सुख चाहते हैं श्रोर सुखका कारण धर्म है। यद्यपि धर्मका श्रन्तरङ्ग साधन निजमें ही है तथापि उसके विकासके लिये वाह्य साधनोंकी श्रावश्यकता होती है। जैसे घटोत्पत्ति मृत्तिकासे ही होती है फिर भी कुम्भकारादि वाह्य साधनोंकी श्रावश्यकता श्रोक्षित है एवं श्रन्तरङ्ग साधन तो श्रात्मामे ही है फिर भी वाह्य साधनोंकी श्रपेक्षा रखता है। वाह्य

साधन देव शास्त्र गुरु हैं। खाप लोगोंने यहाँ तक प्रतिवन्ध लगा रक्टा हैं कि प्रस्पृश्य च्ट्रादिको मन्दिर छानेका अधिकार नहीं। उनके प्रानेमे मन्दिरमे छनेक प्रकारके विद्य होनेकी संभावना है। यदि शान्तभावसे विचार करो तो पता लगेगा कि हानि नहीं लाभ ही होगा। प्रथम तो जो हिसादि पाप संसारमे होते हैं यदि वह अस्पृश्य गृष्ट, जैनधर्मको छंगीकार करेंगे तो वह महापाप छनायास कम हो जावेंगे। ऐसा न हो, यदि दैवान् हो जावें तो आप क्या करोंगे? चांहालके भी राजाका पुत्र चमर इलता देखा गया ऐसी क्या प्रसिद्ध है क्या यह गण है ? अथवा कथा छोड़ो श्री समन्तभद्र स्वामीन रत्नकारण्डमें लिखा है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहनम् । देवा देवं विदुर्भस्म गूढाङ्गारान्तरीजसम् ॥

श्रात्मामे श्रचिन्त्य शक्ति है जिस प्रकार श्रात्मा श्रनन्त संसारके कारण मिथ्यात्वके करनेमे समर्थ है उसी प्रकार श्रनन्त संसारके वन्धन काटनेमें भी समर्थ है। श्राप विद्वान हैं जो श्रापकी इच्छा हो सो लिखिये परन्तु इसका यह श्रर्थ नहीं कि श्रन्य कोई लिखे उसे रोकनेकी चेष्टा करें। श्रापकी द्या तो प्रसिद्ध है रहो, हमें इसमे श्रापत्ति नहीं। श्राप सप्रमाण यह लिखिए कि श्रस्पृश्य शूढ़ोंको चरणानुयोगकी श्राज्ञासे धर्म करनेका कितना श्रधिकार है तव हम लोगोका यह वाद जो श्रापको श्रक्तिकर हो शान्त हो जावेगा। श्री श्राचार्य महाराजसे इस व्यवस्थाको पूछकर लिख दीजिये जिसमे व्यर्थ विवाद न हो। केवल समालोचनासे कुछ नहीं, शूढ़ोंके विपयमें जो भी लिखा जावे सप्रमाण लिखा जावे। कोई शक्ति नहीं जो किसीके विचारोंका घात कर सके निमित्त तो श्रपना कार्य करेगा उपादान श्रपना करेगा।

एक महाशयने तो जैनमित्रमे यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारा जुहक पद छीन लिया जावेगा, मानों धर्मकी सत्ता श्रापके हाथोंमे स्त्रा गई हो। यह 'संजद' पद नहीं जो हटा दिया। जैनदर्शनके सम्पादकने जो लिखा उसका उत्तर देना मेरे ज्ञानका विषय नहीं है क्योंकि मैं न आगमज्ञ हूँ और न अव हो सकता हूँ परन्तु मेरा हृदय यह साक्षी देता है कि मनुष्य पर्यायवाला चाहे वह किसी जातिका हो कल्याणमार्गका पात्र हो सकता है। शुद्र भी सदाचार-का पात्र है। हाँ, यह अन्य वात है कि आप लोगोंके द्वारा जो मन्दिर निर्माण किये गये हैं उनमें मत आने दो। गवर्नमेण्ट भी ऐसा कानून त्र्यापके त्र्यनुकूल वना देवे परन्तु जो सिद्ध चेत्र हैं कोई श्रापको श्रधिकार नहीं जो उन्हें वहाँ जाने पर रोक लगा सको। जो त्रापके मन्दिरमे शास्त्र हैं उन्हें न वॉचने दो किन्तु जो पवितक वाचनालय हैं उनमे आप उन्हे नहीं मना कर सकते। यदि वह पञ्च पाप छोड़ देवें और रागादि रहित आत्माको पूज्य मानें अर्हत्का स्मरण करें तो क्या रोक सकते हो ? अथवा जो श्रापकी इच्छा हो सो करो।

मुमे धमकी दी कि पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे छीन लो, सर्व अनुयायी मिल जाओ चर्या वन्द कर दो परन्तु जो हमारी श्रद्धा धर्ममें है उसे भी छीन लोगे ? मेरा हृदय किसीकी वन्दर घुड़कीसे नहीं डरता। मेरे हृदयमे तो हृढ़ विश्वास है कि अस्पृश्य शृद्ध सम्यग्दर्शन और व्रतोंका पात्र है मन्दिर आने जानेकी वात आप जाने या जो आचार्य महाराज कहे उसे मानो। यदि अस्पृश्यताका सम्बन्ध शरीरसे है तो रहों आत्मा की क्या हानि हैं ? यदि आत्मासे है तो जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया किर अस्पृश्यता कहाँ रही ? मेरा तो विश्वास है कि गुण्एथानों की परिपाटीसे जो मिध्यागुण्एथान वर्ती है वह पापी है चाहे वह उत्तम वर्णका क्यों

न हो ? यदि मिध्यादृष्टि है तो परमार्थसे पापी है, यदि सम्यक्त्री है तो उत्तम आत्मा है। यह नियम श्रुद्रादि चारों वर्णों पर लागू है। परन्तु व्यवहारमें सम्यग्दर्शन और मिध्यादर्शनका निर्णय वाह्य आचरणोंसे हैं आतः जिनके आचरण श्रुम हैं वे ही उत्तम कहलाते हैं जिनके आचरण मिलत है वे जघन्य हैं। एक उत्तम कुलवाला यदि अभव्य भवण करता है वेश्या गमनादि पाप करता है तो उसे भी पापी जीव मानो उसे भी मन्दिर मत आने दो क्योंकि वह शुभाचरणसे पितत है और एक अस्पृश्य सदाचारी है तो वह भगवान्के दर्शनका अधिकारी आपके मतसे न हो परन्तु पश्चम गुणस्थानवाला अवश्य हो सकता है।

पापत्यागकी महिमा है, उत्तम कुलमें जन्म लेनेसे उत्तम हो गये यह कदायह छोड़ो। उत्तम कुलकी महिमा सदाचारसे है कदाचारसे नहीं। नीच कुलीन मिलनाचारसे कलंकित हैं, माँस खाते हैं. मृत पशुत्रोंको ले जाते हैं और आपके शौचगृह साफ करते हैं इसीसे तो उन्हे अस्पृश्य कहते हो तथा पंक्ति भोजनमे आप उन्हे उच्छिष्ट भोजन देते हो। तत्त्वसे कहो उन्हे अस्पृश्य बनानेवाले श्राप लोग हैं। इन पापोंसे यदि वे परे हो जावें तव भी श्राप क्या उन्हें अस्पृश्य मानेंगे ? बुद्धिमें नहीं आता। आज एक भंगी यदि ईसाई हो जाता है और पढ़ लिखकर डाक्टर हो जाता है तो श्राप स्तोग उसकी दवा गट गट पीते हैं या नहीं ? क्यों उससे स्पर्श कराते हो ? श्रापसे तात्पर्य बहुभाग जनतासे हैं। श्राज जो पाप करते हैं वे यदि किसी श्राचार्य महाराजके सानिध्यको पाकर पापोंका त्याग कर देवें तो क्या वे साधु नहीं हो सकते ? व्याघीने सुकौशल स्वामी-के उद्रको विदारण किया श्रौर वहीं श्रीकीर्तिधर मुनीके उपदेशसे विरक्त हो समाधिमरण कर स्वर्ग लक्ष्मीकी भोक्ता हुई। अतः सर्वथा किसीका निषेध कर अधर्मके, भागी मत वनो । हम

तो सरल मनुष्य हैं जो श्रापकी इच्छा हो सो कह दो श्राप लोग ही जैनधर्मके ज्ञाता श्रीर श्राचरण करनेवाले रहो परन्तु ऐसा श्रिभमान मत करो कि हमारे सिवाय श्रन्य कोई कुछ नहीं जानता।

पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे यह आचार्य महाराजकी आज्ञा हैं सो पीछी कमण्डलु तो वाह्य चिन्ह हैं इनके कार्य तो कोमल वस्न तथा अन्य पात्रसे हो सकते हैं। पुस्तक छीननेका आदेश नहीं दिया इससे प्रतीत होता है कि पुस्तक ज्ञानका उपकरण है वह आत्माकी उन्नतिमें सहायक है उसपर आपका अधिकार नहीं जैन दर्शनकी महिमा तो वही आत्मा जानता है जो अपनी आत्माको कषाय-भावोंसे रिच्चत रखता है। अस्तु, हरिजन विषयक यह अन्तिम वक्तव्य देकर मैं इस ओरसे तटस्थ हो गया।

#### अज्ञय तृतीया

एक दिन श्रीधनवन्तीदेवीके यहाँ से श्राहार कर धर्मशालामें श्राये। मध्याह्मकी सामायिकके वाद धवल प्रन्थका स्वाध्याय किया। श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोंने जो कि मूलनिवासी इटावाके हैं वनारस विद्यालयका घाट वनवानेके लिये १०००) एक सहस्र स्पया श्रपनी धर्मपत्नीके नाम देना स्वीकृत किया। श्रीसोहन-लालजी बहुत ही भद्र श्रादमी हैं। श्रापने सम्मेदिशाखरजीमें तेरह पन्थी कोठीमें एक विशाल मन्दिर बनवाया है तथा उसमें चन्द्रप्रभ भगवान्की शुश्रकाय विशाल मूर्ति विराजमान कराई है। यदि कोई परिश्रम करता तो घाटके लिये १०००००) एक लन्न स्पया श्रना-

यास हो जाता । यहाँ पंसारी टोलाके मन्दिर मे पुष्फल स्थान है श्रतः श्रधिकांश शास्त्र प्रवचन यहीं होता था।

वैशाख सुदी ३ श्रन्य तृतीयाका दिन था, प्रातःकाल प्रवचनके वाद कुछ कहनेका अवसर श्राया तो मैने कहा कि श्राजका दिन महान् पवित्र ख्रौर उदारताका दिन है। ख्राज श्री ख्रादिनाथ तीर्थंकर को श्रेयान्स राजाने इन्जरसका त्राहार दिया था यह वर्णन श्री त्रादि पुरागुमें पाया जाता है इसी कारण राजा श्रेयान्सको श्री श्रादिनाथके श्रयज सुपुत्र भरत चक्रवर्तीने दानतीर्थके श्रादि विधाताकी पदवी प्रदान की थी। यह पर्व भारतवर्षमें आजतक प्रचलित है और इसके प्रचलित रहनेकी आवश्यकता भी है क्योंकि हमारा जिस चेत्रमें जन्म हुआ है वह कर्मभूमिके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँपर मनुष्य समाज एक सदृश नहीं है। कोई वैभवशाली है तो किसीके तनपर वस्त्र भी नहीं है। कोई श्रामोद प्रमोदमें श्रपना समय यापन कर रहा है तो कोई हाहाकारके शब्दों द्वारा आकन्दन कर रहा है। कोई अपने स्त्री पुत्र भ्राता त्रादिके साथ तीर्थयात्रा कर पुण्यका पात्र हो रहा है तो कोई उसी समय अपने अनुकूल प्राणियोंके साथ वेश्यादि व्यसनोंमे प्रवृत्ति कर पापपु अका उपार्जन कर रहा है। कहनेका तात्पर्य यह है कि कर्म भूमिमें छनेक प्रकारकी विषमता देखी जाती है। यही विषमता 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' इस सूत्रकी यथार्थता दिखला रही है। जो संसारसे विरक्त हो गये और जिन्होंने अपनी क्रोधादि विसाव परि-णितियों पर विजय प्राप्त कर ली है उनका यही उपकार है कि प्रजाको सुमार्ग पर लगावें श्रौर हम लोगोंको उनके निर्दिष्ट मार्गपर चलकर उनकी इच्छाकी पूर्ति करनी चाहिये तथा उनकी वैयावृत्य कर श्रयवा जीवन सफल करना चाहिए। वे श्राहारको श्राव तो यथागम रीतिसे त्राहार दान देकर उन्हे निराकुल करनेका यत्न करना चाहिये। जो विद्वान् हैं उन्हें उचित है कि अपने ज्ञानके द्वारा

संसारका अज्ञान दूर करनेका प्रयत्न करें तथा हम अज्ञानी जनोंको उचित है कि उनके परिवारादिके पोषणके अर्थ भरपूर द्रव्य दें। यदि हमारे धनकी विपुलता है तो उसे यथोचित कार्योमे प्रदान कर जगत्का उपकार करें जगत्का यह काम है कि उसके प्रति कृतज्ञताका भाव रक्खे। यदि संचित धनका उपयोग न किया जावेगा तव या तो उसे दायादगण अपनावेगा या राष्ट्र लेगा। जव संसारकी यह व्यवस्था है तव पुष्कल द्रव्यवाले त्रागे त्राकर वंगाल तथा पंजाव त्रादिके जो मनुष्य गृहविहीन होकर दुःखी हो रहे हैं उन्हें सहायता पहुँचावें। जिनके पास पुष्कल भूमि है उसमें गृह विहीन मनुष्योको वसावें तथा कृषि करनेको देवें। जिनके पास मर्यादासे अधिक वस्त्रादि हैं वे दूसरोंको देवें। मैं तो यहाँ तक कहता हूं कि स्राप जो भोजन अहण करते हैं उसमेंसे भी कुछ स्रंश निकालकर शरणागत लोगोंकी रचामे लगा दो। यदि इस पद्धतिको अपनाया जावेगा तो जनता क्रान्तिसे स्वतः दूर रहेगी अन्यया वह दिन शीव श्रानेवाला है जिस दिन लोग किसीकी श्रनावश्यक सम्पत्तिको सहन नहीं करेंगे उसे वलात् छीनकर जनताके उपयोगमे लांचेंगे। अतः समयके पहले ही अपनी परिणतिको सुधारो और यथेष्ट दान देकर परलोककी रचा करो। धनवन्तीदेवीने आपके सामने एक आदर्श उपस्थित किया है। संचित द्रव्यका यदि अन्तमें सदुपयोग हो जावे तो यह दाताकी भावी उत्तम परिणतिका सूचक है। सव लोग यदि यही नियम कर लें कि हमारे दैनिक भोजन तथा वस्त्रादिमें जो व्यय होता है उसमेसे १) में १ पैसा परोपकारमे प्रदान करेंगे तो मेरी सममसे जैन समाजमे प्रतिवर्ष लाखों रुपये एकत्रित हो जावें श्रौर उनसे समाज सुधारके श्रनेक कार्य श्रनायास यूर्ण हो जावें।

# विद्यालयका उद्घाटन और विद्वत्परिषद्की वैठक

श्री पं॰ कमलकुमारजी व्याकरणतीर्थ जो पहले इन्दौरमे सेठजीके विद्यालयमें थे इस्तीफा देकर यहाँ स्राये। स्राप बहुत ही योग्य त्रोर स्वच्छ हृदयके विद्वान् हैं। श्री ज्ञानधन पाठशालाके लिये सुयोग्य विद्वानकी आवश्यकता थी सो इनके द्वारा पूर्ण हो गयी। पाठशालाका उद्घाटन समारोह करनेका विचार हुआ उसी समय श्राखिल भारतवर्षींय दिगम्बर जैन विद्वन् परिषद्की कार्य-कारिएी समिति बुलानेका भी विचार स्थिर हुआ। सर्व सम्पतिसे इसके लिये ज्येष्ठ शुक्ल ५ का दिन निश्चय किया गया। उत्सवकी तैयारियाँ की गई। धर्मशालाके प्राङ्गण्में सुन्दर मंद्रप बनाया गया। उद्घाटन समारोहके श्रध्यत्त श्री कलक्टर साहव वनाये गये। वाहरसे श्री पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर, पं० कैलाशचन्द्रजी, पं० फूलचन्द्रजी, पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० खुशालचन्द्रजी बनारस, पं दयाचन्द्रजी, प० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं वर्ध-मानजी सोलापुर, पं० वंशीधरजी वीना, पं० द्रवारीलालजी, पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० राजकृष्णजी देहली श्रीर पं० बंशीधरजीके सुपुत्र श्री पं० धन्यकुमारजी इन्दौर श्रादि श्रानेक विद्वान् पधारे।

उत्सवके प्रारम्भमे भी पं० कैलाशचन्द्रजीने ज्ञानधनकी बहुत सुन्दर व्याख्या की । श्रनेक विद्वानोंके उत्तमोत्तम व्याख्यान हुए । श्री कलक्टर साहबने त्यागपर बहुत बल दिया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि त्यागसे ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सकता है श्राजकला दुःखका मूल कारण परियहकी इच्छा है इसका जिसने परित्याग कर दिया उसके मुखका वर्णन कीन कर सकता है ? सम्यक्तानकी उपादेयता पर प्रकाश हालते हुए मैंने भी कुछ कहा। पं० राजेन्द्र कुमारजीने जैनधर्मके वन्ध तत्त्व पर अच्छा प्रकाश हाला। उद्वाटन समारोहके अनन्तर विद्वत्परिपद्की कार्यकारिणीकी बैठक हुई। उसमें खास चर्चांका विषय यह था कि धवल सिद्धान्तके ६३ वें सूत्रमें 'संजद पद आवश्यक है' ऐसा निर्णय सागरमें एकत्रित विद्वत्सम्मेलनने बहुत ही तर्क वितर्क—उहापोहके साथ किया था उसके लगभग ३ साल बाद श्रीमान आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने ताम्रपत्रकी प्रतिसे 'संजद' पद हटानेका आदेश दिया। इस आदेशका विचारक विद्वानोंके हृदय पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। कार्यकारिणीमें इस विषयको लेकर निम्न प्रकार प्रस्ताव पास हुआ—

'फाल्गुन शुक्ला ३ वीर निर्वाण संवत् २४७६ को गजपन्थामें आचार्य श्री १०= शान्तिसागरजी महाराज द्वारा की गई जीवस्थान सत्प्ररूपणाके ६३ वें सूत्रसे ताड़पत्रीय मूल प्रतिमे उपलब्ध 'संजद' पदके निष्कासनकी घोषणापर विचार करनेके वाद भारतवर्षीय दि० विद्वत्परिषद्की यह कार्यकारिणी जून सन् ४७ में सागरमे आयोजित विद्वत्सम्मेलनके अपने निर्णयको दुहराती है तथा इस प्रकारसे ताम्रपत्रीय एवं मुद्रित प्रतियोंमें 'संजद' पद निष्कासनकी पद्धतिसे अपनी असहमति प्रकट करती है।'

वैठक समाप्त होनेपर विद्वान् लोग तो श्रपने श्रपने स्थानपर चले गये पर मेरे मनमे निरन्तर यह विकल्प उठता रहा कि एक ऐसा श्रवसर श्राता जो ५ निष्णात विद्वान् एक निरापद स्थानमें निवास कर जैनधमें के सामिक सिद्धान्तको जनताके समक्ष निर्भीक होकर वचनों द्वारा प्रख्यापन करते तथा यह कहते श्राप लोग इसका निर्णय करें। यदि श्राप महाशयों के परीचा विमर्शमें यह तत्व श्रभान्त ठहरे तो उसका प्रचार करिये यदि किसी प्रकारकी शङ्का रहे तो निर्णय करनेका प्रयास करिये तथा जो सिद्धान्त लिखे जावें वहाँपर अन्यने किस रीतिसे उसे माना है यह भी दिग्दर्शनमे आ जावे। सबसे मुख्य तत्त्व श्रात्माका श्रस्तित्व है इसके उत्तरमें श्रनात्मीय पदार्थी-पर विचार किया जावे। व्याख्यानों द्वारा सिद्धान्तके दिखानेका जितना प्रयास किया जावे उससे श्रधिक लेखबद्ध प्रणालीसे भी दिखाया जावे । इन कार्योंके लिये २५०००) वार्षिक ज्ययकी आव-इयक्ता है। परीच्च एके तौरपर ४ वर्ष यह कार्य करवाया जावे। जो पण्डित इस कार्यको करें उन्हें २००) नकद श्रौर भोजन दिया जावे। इनमे जो मुख्य विद्वान् हों उन्हें २५०) दिये जावें। इस तरह ४ पण्डितोंको प्र००) श्रीर मुख्य पण्डितको २५०) तथा सबका भोजन व्यय २५०) सब मिला कर १३००) मासिक तो विद्वानींका हुआ। इसके बाद ४ श्रंमेजी साहित्यके विद्वान् रक्खे जावें ४००) उन्हे दिया जावे १००) भोजन व्यय तथा २००) भृत्योंको इस तरह २०००) मासिक यह हुआ। वर्षमे २४०००) हुआ, १०००) वार्षिक यात्राका व्यय । इस प्रकार शान्तिपूर्वक कार्य चलाया जावे तो बहुत कुछ प्रश्न सरल रीतिसे निर्णीत हो जावें। एक श्रादमी समभ लेवे ४ गजरथ यही हुआ। इससे वहुत कालके लिये जैनधर्मके ऋस्तित्व-की सामग्री एकत्र हो जावेगी।

एक दिन श्री जुगलिक्शोरजी मुख्त्यार श्रीर पं॰ परमानन्दजी कलकत्तासे लौट कर श्राये श्रीर कहने लगे कि वीरसेवामन्दिर की नींव हदतम हो गई। कलकत्तावाले वावू छोटेलालजी तथा वावू नन्दलालजीकी इस श्रोर श्रच्छी हिष्ट है। श्राप साहित्यके महान् श्रनुरागी हैं। श्राप यह चाहते हैं कि मानवमात्रके हृद्यमें जैनधर्मका विकास हो जावे। जैनधर्म तो व्यापक धर्म है हम किसीको धर्म देते हैं यही वड़ी भारी भूल है। धर्म तो श्रात्माकी वह परिणति विशेष

है जो त्रात्माको संसार वन्धनसे मुक्त करा देती है। वह परिएति शक्तिरूपसे जीव मात्रमें है।""यह संवाद सुनकर हृद्यमें प्रसन्नता हुई।

## अनेक समस्याओंका इल-स्त्री शिक्षा

पुरुपवर्गने स्त्री समाजपर ऐसे प्रतिवन्ध लगा रक्खे हैं कि उन्हें मुखको निरावरण करनेमें भी संकोचना श्रतुभव होना है। कहाँ तक कहा जाने ? मन्दिरमें जन ने श्री देनाधिदेनके दर्शन करती हैं तब मुखपर बखका आवरण रहनेमे व पूर्ण रूपसे दर्शन रा लाभ नहीं ले सकवीं। यद्वा तद्वा दर्शन करनेके अनन्तर यदि शास प्रवचनमे पहुँच गई तो वहाँ पर भी वक्ताके वचनोंका पूर्व रूपने कर्णी तक पहुँचना कठिन है। प्रथम तो कर्णीपर वृत्तका आवाज रहता है नथा पुरुषोंसे दूरवर्ती उनका जेत्र रहता है। देवयोगने किसीकी गोदमें वालक हुआ और उसने जुघानुर हो रोग प्रारम्भ कर दिया तो क्या कहे ? मुनना नो एक खोर रहा कना प्रभृति मनुष्योंके याग्याणोंका प्रहार होने लगता है—चुप नहीं सनी वचोंको ? "क्यों लेकर श्राती हैं ?" मयका नुक्सान कर्णी है, " बाहर क्यों नहीं चली जानी "उन बचनेंको ध्यार का शाक अवग्रंकी जिज्ञामा विकीन हो जानी हैं। अनः पुरा कारो उचित है कि यह जिसमें जन्मा है यह स्वी ही तो है उसरे पी इतना क्रम्याय न करे प्रस्तुत सबसे उनम स्थान करे राजा

प्रवचनमें मुरिच्चित रखें। उनकी श्रशिचा ही उन्हें सदा श्रपमानित करती है।

मेरा तो ख्याल है कि यदि स्तीवर्ग शिचित हो कर सदाचारी हो जावे तो श्राज भारत क्या जितना जगत मनुष्योंके गम्य है वह सभ्य हो सकता है। श्राज जिस समस्याका हत उत्तमसे उत्तम मस्तिष्कवाले नहीं कर सके उसका इल श्रनायास हो जायगा। इस समय सबसे कठिन समस्या 'जनसंख्याकी वृद्धि किस उपायसे रोकी जाय' है। शिच्चित स्त्री वर्ग उस समस्याको अनायास हल कर सक्ता है । जिस कार्यके करनेमें राजसत्ता भी हार मानकर परास्त हो गई उसे सदाचारिणी स्त्री सहज ही कर सकती है। वह अपने पतियोंको यह उपदेश देकर सुमागपर ला सकती हैं कि जब बालक गर्भमें आ जावे तबसे आप और हमारा कर्तञ्य है कि यह वालक उत्पन्न होकर जवतक ५ वर्षका न हो जावे तवतक विषय वासनाको त्याग देवें। ऐसा ही प्रत्येक स्त्री सभ्य व्यवहार करे इस प्रकारकी प्रणालीसे सुतरा वृद्धि रुक जावेगी। इसके होनेसे जो लाखों रूपया डाक्टर तथा वैद्योंके यहाँ जाता है वह वच जावंगा तथा जो टी० वी के चिकित्सागृह हैं वे स्वयमेव धराशायी हो जावेंगे। अन्नकी जो ब्रुटि है वह भी न होगी। दुग्ध पुष्कल मिलने लगेगा। गृहवासकी पुष्कलता हो जावेगी अतः स्त्री समाजको सभ्य वनानेकी श्रावश्यकता है। यदि स्त्रीवर्ग चाहे तो बड़े बड़े मिलवालोंको चक्रमे डाल सकता है। उत्तमसे उत्तम जो धोतियाँ मिलोंसे निकलती हैं यदि स्त्रियाँ उन्हें पहिनना वन्द कर देवें तो मिलवालोंकी क्या दशा होगी ? सो उन्हे पता चल जावेगा । करोड़ोंका माल यों ही वरवाद हो जायेगा। यह कथा छोड़ो श्राज स्त्री कांच की चूड़ी पहिनना छोड़ दे और उसके स्थानपर चौंदी सुवर्णकी चूडी का व्यवहार करने लगे तो चूड़ीवालोंकी क्या दशा होगी ? रोनेको

मजदूर न मिलेगा। आज स्त्री समाज चटक मटकके आमूपणोंको पहिनना छोड़ दे तो सहस्त्रों सुनारोंकी दशा कौन कह सकता है १ इसी तरह वे पौडर लगाना छोड़ दें तो विदेशकी पौडर बनानेवाली कम्पनियोंको अपना पाउडर समुद्रमें फेकना पड़े। कहनेका तात्यर्य यह है कि स्त्री समाजके शिचित और सदाचारसे सम्पन्न होते ही संसारके अनेक व्यापार बन्द हो सकते हैं। पख्लम कालमें चतुर्थकालका दृश्य यदि देखता है तो स्त्री समाजकी उपेचा न कर उसे सुशिचित बनाओ। सुशिचितसे तात्पर्य उस शिचासे है जिससे वे अपने कर्तव्यका निर्णय स्वयं कर सकें।

# इटावामें चातुर्मासका निश्चय

जब मैं ईसरीसे लौटकर सागर गया था तब वहाँकी समाजने हीरक जयन्ती महोत्सव करनेका निश्चय किया था पर कारणवरा उस समय वह श्रायोजन स्थिगत हो गया था। साधारण उत्सव हुश्रा था। तदनन्तर सर्व समाजने 'वर्णी श्रीनन्दन प्रन्थ' समप्णके साथ-साथ हीरक जयन्ती महोत्सव करनेका निश्चय किया। व्यवस्थाके लिये समितिका निर्माण हुश्रा। पं० पत्रालालजी साहित्यचार्य उसके संयुक्त मंत्री हुंए तथा पं० खुशालचन्द्रजी गोरावाला श्रीभनन्दन थ्रन्थके सम्पादक निश्चित हुए। श्रव तक श्रीभनन्दन थ्रन्थ तैयार होनेकी दशामे श्रा गया था इसलिय उसके समप्ण एवं हीरक जयन्ती महोत्सवको सम्पन्न करानेके लिये श्री पं० पत्रालालजी इटावा श्राये। उन्होंने यहाँकी समाजके समस

यह वात रक्खी जिससे समाजको श्रत्यन्त प्रसन्नता हुई। सवने यह निश्चय किया कि दीपावलीके वाद इस उत्सवका श्रायोजन किया जावे। पं० पन्नालालजी बहुत ही श्रद्धालु श्रीर कर्मठ जीव हैं। श्रापकी लोगोंने योग्यता नहीं जानी।

लोगोंकी यह दृष्टि यन गई है कि वर्णीजीने हमारा उपकार किया है इसलिये हमें इनके प्रति कृतज्ञताका भाव प्रकट करना चाहिये। परन्तु यथार्थ वात यह है कि संसारमें सर्व मनुष्य अपने अपने गीत गाते हैं, कोई किसीका उपकारी नहीं। केवल आत्मामें जो कपाय उत्पन्न होती है उसे दूर करनेका प्रयास करते हैं। कपायसे खात्मामे एक प्रकारकी वेचैनी हो जाती है वह वेचैनी ही कार्यमे प्रवृत्ति कराती है। जैसे जिस समय हमको क्रोध उत्पन्न होता है उस समय परका श्रनिष्ट करनेकी इच्छा होती है। उससे हमको कुछ लाभ नहीं परन्तु वह इच्छा जब तक है तव तक वेचैनीसे विकलता होती है। जब परका श्रानिष्ट हो गया तब वह विकलता मिट जाती है। हमारी श्रद्धा तो यह है कि क्रोध-कपायका कार्य ही इसका कारण है। वास्तवमें जो विकलता थी वह क्रोधकषायसे थी, कार्य होनेसे हमारा क्रोध मिट गया। विचार कर देखो--न हम क्रोध करते न विकलता होती अतः क्रोधको न होने देना ही हमारा पुरुपार्थ है। इसका अर्थ यही है कि क्रोध होने पर उसमे आसक्त न होना। यही आगामी क्रोध न होनेका उपाय है। क्रोध यह उपलक्त्या है। मोह कर्मके उदयसे यावत् (जितने) भाव हों उन सवमें श्रासक्त न होना। कहाँ तक कहा जावे १ देखने जाननेमें जो पदार्थ आवें उनके आनेकी रोक टोक नहीं हो सकती। उनमें रागादि नहीं करना यही संसार बन्धनसे मुक्त होनेका श्रपूर्व मार्ग है--श्रद्वीतीय उपाय है। श्रात्मद्रव्यकी परिएति श्रात्मातिरिक्त पदार्थों के सम्बन्धसे ही कलुषित हो जाती है। कलुषितका श्रर्थ

यह है कि उन पदार्थींमें निजत्व कल्पनाकर हम किसी पदार्थमें राग करते हैं श्रोर जो हमारे रागके विरुद्ध होता है उसे पर मानते हैं तथा उसके वियोगका यत्न करते हैं। इस प्रक्रियाकों करते करते श्रन्तमें इस पर्यायका श्रन्त श्रा जाता है श्रनन्तर जिस पर्यायमें जाते हैं वहाँ भी यही प्रक्रिया काममें लाते हैं, इस तरह श्रनन्त संसारके पात्र होते हैं। यथार्थमें न तो श्रन्य पदार्थ हमारा है श्रोर न हम श्रन्यके हैं तब क्यों उनमें निजत्व कल्पना करते हैं श्रिही कल्पना दूर करनेके श्र्य श्रागमाभ्यास है। श्रागममें तो इनका सुन्दर कथन है कि यदि वह हमारे श्रनुभवमें श्रा जावे तो कल्याणमार्ग श्रित सुलभ हो जावे।

आत्मा नामक एक पदार्थ है उसका श्रनादि कालसे श्रजीव पुद्गलके साथ सम्बन्ध है। श्रात्मा चेतना गुणवाला द्रव्य है, पुद्गल जड़ है। उसका लच्चण स्पर्श रस गन्ध रूप है—जहाँ वे पाये जावें उसे पुद्गल कहते हैं। पुद्गलके साथ जीवका ऐसा सम्बन्ध है कि यह जीव उसे निज मान लेता है। निज मान कर उसको सदा रखनेका प्रयास करता है। यदि कोई उसमे वाधा पहुँचाता है तो उसे निज शत्रु मान लेता है। वास्तवमें यह कषाय ही नाना खेल रचता है इसलिये इसके निर्मूल करनेका प्रयत्न करो।

चातुर्मासका समय निकट आ रहा था इसलिए कई स्थानोंके लोग अपने अपने यहाँ चातुर्मास करनेकी प्रेरणा करते थे और में संकोचके कारण किसीको अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। परमार्थ- से यह हमारे हृदयकी बहुत भारी दुर्वलता है। जहाँ चौमासा करना इप्ट नहीं था वहाँके लोगोंको स्पष्ट मनाकर देनेमे हानि नहीं थी परन्तु में ऐसा नहीं कर सका। अन्तमें समाजकी अत्यधिक प्रेरणासे इटावामें ही चातुर्मास करनेका निश्चय कर लिया।

इस वर्ष उटावामें वैसे ही गर्मीका ऋधिक त्रास था फिर दो प्रापाद होगये इससे ठीक 'दूवली श्रीर दो श्रपादवाली' कहावत चरितार्थ हो गई। श्रस्तु, जिस किसी तरह श्रीष्मकाल व्यतीत हुश्रा। श्राकाशमे श्यामल धन-घटा छाने लगी श्रोर जव कभी वूंदा-वादी होनेसे लोगोंको गर्भांकी श्रसहा वेदनासे त्राण मिला। कहाँ तो वे मुनिराज थे जो जेठ मासकी दुपहरियोंमें पर्वतकी चट्टानोंपर आतापन योग धारण करते थे और कहा मैं जो बुद्धि पूर्वक शीतलसे शीतल स्थान खोजकर उसमे श्रीप्मकाल वितानेका प्रयास करता हूँ ? वस्तुतः शरीरसे ममत्वभाव श्रभी दूर हुश्रा नहीं। मुखसे कहना वात दूसरी है और अमलमे लाना वात दूसरी है। यदि शरीरसे ममत्वे छूट गया होता तो क्या सर्दी, क्या गर्मी श्रीर क्या वारिस ? सव एक सदृश ही रहते। चातुर्मासका निश्चय करते समय मनमें यह विधार किया कि श्रन्यत्रकी श्रपेत्ता इट्रावामें रहना ही श्रच्छा है। कारण कि यहाँ जलवायुकी श्रनुकूलता है, जनता भी भद्र है। चार मासमें सानन्द अध्यातम शास्त्रका अध्ययन करो, गपोडावादसे वचो, केवल स्वात्मचिन्तनामें काल लगास्रो। चयो-परामज्ञान है, ज्ञेयान्तरमे जावे जाने दो पर राग-द्वेषकी मात्रा न हो यही पुरुपार्थ करो, व्यर्थ दुःखी मत होस्रो।

### सिद्धचक्रविधान

श्राषाढ़ शुक्रला श्रष्टमी सं० २००७ से सिद्धचक्रविधानका पाठ हुआ। मनोहररूपसे पूजन सम्पन्न हुई परन्तु परिणामों में शान्ति किसीके नहीं। केवल गल्पवादमें ही सर्व परिणमन हो जाता है।

अन्तरङ्गकी निर्मलता होना दूर है। इस समय चिन्तन तो उस वात का होना चाहिये कि हमारे ही समान चतुर्गतिरूप संसारमे परि-भ्रमण करनेवाली श्रनन्त श्रात्माएं ज्ञानावरणादि कर्म मलको दूर कर आत्माकी शुद्ध दशाको प्राप्त हुई हैं। आत्मामें अशुद्धता पर पदार्थके सम्बन्धसे आती है। जिस प्रकार स्वर्णमें तामा पीतल आदि धातुत्रोंके संमिश्रणसे अशुद्धता आती है उसी प्रकार आत्मामें कर्म-रूप पुद्गल द्रव्यके सम्बन्धसे अशुद्धता आती है। इस अशुद्धताका कारण आत्माकी अनादि कालीन मोह तथा रागद्वेषरूप परिएति है। मोहके कारण यह स्वरूपको भूल कर अपनेको पररूप सम-मने लगता है। जिस प्रकार शुगालोंकी मांद्रमे पला सिंहका वालक अपनेको भी शृगाल समभने लगता है। इसी प्रकार मनुष्यादि हप पुदुगलजन्य पर्यायोंके सम्पर्कमें रहनेवाला जीव अपनेको मनुष्यादि सममने लगता है। मनुष्यादि पर्यायोंके साथ इस जीवकी इतनी घनी आत्मीय वुद्धि हो जाती है कि वह उन्हें छोड़नेमे वड़े कप्टका अनुभव करता है। रागके कारण अन्य अनुकूत पदार्थीमें इष्ट वुद्धि करता है और द्वेषके कारण अन्य प्रतिकृत पदार्थीमें अनिष्ट वुद्धि करता है। जिसे इप्ट मान लेता है सदा उसके संयोगकी इच्छा करता है तथा उसके वियोगसे हरता है और जिसे अनिष्ट मान लिया है सदा उसके वियोगकी भावना रखता है तथा उसके संयोगसे हरता है। मोहकी पुट साथमे रहनेसे वह पदार्थके यथार्थ स्वरूपको समभनेमे श्रसमर्थ रहता है उसलिये जिन कारणोंसे मुख होना चाहिये उन कारणों-से यह दुःखका अनुभव करता है। जैसे किसी मनुष्यकी स्त्री मर गई यहाँ विवेकी मनुष्य तो यह सोचता है कि स्त्रीके निमित्तसे गृहस्थाश्रमकी नाना आकुलताओंका पात्र होना पड़ता था अव स्वयमेव वह सम्यन्ध छूट गया ऋतः श्रानन्द्का श्रवसर हाथ श्राया है र्ष्योर मोही जीव सोचता है कि हाय मैं दुःखी हो गया। तत्त्वदृष्टिसे

विचार करो तो यहाँ दुःखका कारण क्या है ? उस जीवके हृदयमे स्त्रीके प्रति जो रागभाव था छौर मोहके कारण जो वह स्त्रीको सुलका कारण मान रहा था वही तो दुखका कारण था। यदि उसके हृदयमे यह भाव हृद् होता कि सुख हमारी आत्माका गुण हैं स्त्री उसका कुछ सुधार विगाड़ नहीं कर सकती तो उसके मरने पर उसे दुःख नहीं होता। इस तरह मोह जन्य कलुषित परिशातिके कारण यह जीव द्रव्य कर्मोंको प्रहश करता है और उसके उदयमे पुनः कलुपित परिएति करता है। जिन्होंने सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान श्रोर सम्यक्चारित्रके द्वारा इस विपरीत परिणतिको दूर कर पर द्रव्यसे श्रपना सम्बन्ध छुड़ा लिया है वे सिद्ध कहलाते हैं। जीवकी यह अचिन्त्य अव्यावाधत्व आदि गुणोंसे युक्त आत्यन्तिक अवस्था है। सिद्ध चक्रका पाठ स्थापित करनेका भाव यही है कि हम उनके गुर्णोंका स्मरण कर इस वातका प्रयत्न करें कि इम भी उनके समान हो जावें। उनके गुए गानमें ही समय यापन किया और उन जैसी श्रवस्था इमारी न हो सकी तो इससे क्या लाभ हुआ ? आठ दिन तक विधि पूर्वक यह पाठ चला, श्रावण कृष्णा प्रतिपदाके दिन इवन पूर्ण हुआ। इस श्रायो-जनमे पुरुपोंकी अपेचा स्त्रियोंका जमाव अधिक रहता था पुरुष वर्गकी श्रद्धा न हो सो बात नहीं परन्तु उन्हे व्यवसाय सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त रहनेके कारण अवसर कम प्राप्त हो पाता था। मैंने इन दिनोंमें प्रवचनके श्रातिरिक्त जन संपर्कसे दूर रहनेका प्रयास किया श्रौर निरन्तर यह विचार किया-

> श्रौर कार्यकी छोड़ो श्राशा श्रातम हित कर भाई रे! यही सार जगतमें है उत्तम श्रन्य सकल भव जाला रे!

परको मान निजातम भूला
सदा भ्रमत मन नासा रे!
कहे सुखी भ्रमसे निजको तूँ
भाँग पियो नौराया रे!
परको दे उपदेश सुखी हुए
मानत निजको साधू रे!
वक वक करत वहुत दिन नीते
करत न निजको नाता रे!
शिव सुत श्रम निजको निज मानो
परका कर निरवारा रे!

# रत्तांवन्धन श्रीर पर्यूषण

श्रावण शुक्ता २ सं० २००७ को १५ श्रगस्तका उत्सव नगरमें था। सिदयों ने वाद भारतवर्ष श्राजके दिन वन्धनसे मुक्त हुआ है इसिलिये प्रत्येक भारतवासी के हृदयमें प्रसन्नताका श्रमुभव होना स्वाभाविक है। श्राजके दिन भारतको स्वराज्य मिला ऐसा लोग कहते हैं पर परमार्थसे स्वराज्य कहाँ मिला १ जब श्रात्मा परपदार्थ के श्रालम्बनसे मुक्त हो श्रात्माश्रित हो जावे तब स्वराज्य मिला ऐसा समभना चाहिये। खेद इस बातका है कि इस स्वराज्यकी श्रोर किसी की दृष्टि नहीं जा रही है, हम लोग श्रपने को नहीं संभालते संसारको उपदेश देते हैं कि कल्याणमार्ग पर चली परन्तु हम स्वयं कल्याणमार्ग पर नहीं चलते। श्रम्यको उपदेश देते हैं कि क्रोध मत करो पर स्वयं समाकी श्रमलेहना देते हैं कि क्रोध मत करो पर स्वयं समाकी श्रमलेहना

करते हैं । इस स्थितिमें पारमार्थिक स्वराज्यकी प्राप्ति होना दुर्लभ है।

श्रावण शुक्ता पूर्णिमा सं २ २००७ को रत्तावन्धन पर्व श्राया। यह पर्व सम्यग्दर्शनके वात्सल्य श्रङ्गका महत्त्व दिखलानेवाला हैं। सम्यग्दृष्टिका स्नेह धर्मसे होता है श्रीर धर्म विना धर्मीके रह नहीं सकता इसलिये धर्मीके साथ उसका स्नेह होता है। जिस प्रकार गौका वछड़ेके साथ जो स्नेह होता है उसमे गौको वछड़ेकी च्चोरसे होनेवाले प्रत्यपकारकी गन्ध भी नहीं होती उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि धर्मात्मासे स्नेद करता है तो उसके बदले वह उससे किसी प्रत्याकारकी त्र्याकांक्षा नहीं करता। कोई माता त्रपने शिशुसे स्नेह इसितये करती है कि यह वृद्धावस्थामे हमारी रज्ञा करेगा पर गौको ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती क्योंकि बड़ा होनेपर वछड़ा कहीं जाता है स्रोर गो कहीं। फिर भी गो बछड़ेकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी भी वाजी लगा देती है। सम्यन्दृष्टि यदि किसीका उपकार करे और उसके वदले उससे कुछ इच्छा रक्खे तो यह एक प्रकारका विनिमय हो गया इसमें धर्मका ऋंश कहाँ रहा ? धर्मका ऋंश तो निरीह होकर सेवा करनेका भाव है। विष्णुकुमार मुनिने सातसौ मुनियोंकी रज्ञा करनेके लिये श्रपने श्रापको एकद्म समर्पित कर दिया-श्रपनी वर्पोकी तपश्चर्यापर ध्यान नहीं दिया श्रीर धर्मानुरागसे प्रेरित हो छलसे वामनका रूप धर वलिका श्रमिमान चूर किया। यद्यपि पीछे चल-कर इन्होंने भी श्रपने गुरुके पास जाकर छेदोपस्थापना की श्रयोत फिरसे नवीन दीचा धारण की क्योंकि उन्होंने जो कार्य किया था वह मुनिपदके योग्य कार्य नहीं या तथापि सहधर्मी मुनियोंकी उन्होंने उपेचा नहीं की। किसी सहधर्मी भाईको भोजन वर्खादिकी कमी हो तो उसकी पूर्ति हो जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

यह लौकिक स्नेह है सम्यग्दृष्टिका पारमार्थिक स्नेह इससे भिन्न रहता है।

सम्यग्दृष्टि मनुष्य हमेशा इस वातका विचार रखता है कि यह हमारा सहधर्मी भाई सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप जो आत्माका धर्म है उससे कभी च्युत न हो जाय तथा अनन्त संसारके भ्रमणका पात्र न वन जाय। दूसरेके विषयमे ही यह चिन्ता करता हो सो वात नहीं अपने आपके प्रति भी यही भाव रखता है। सम्यग्दर्शनके निःशिक्कत आदि आठ अङ्ग जिस प्रकार परके विषयमे होते हैं उसी प्रकार स्वके विषयसे भी होते हैं। रज्ञावन्यन रज्ञाका पर्व है, परकी रज्ञा वही कर सकता है जो स्वयं रिज्ञत हो। जो स्वयं आत्माकी रज्ञा करनेमें असमर्थ है वह क्या परका कल्याण कर सकता है? रज्ञासे तात्पर्य आत्माको पापसे प्रथक् करो पाप ही संसारकी जड़ है। जिसने इसे दूरकर दिया उसके समान भाग्य-शाली अन्य कौन है?

श्राज जैन समाजसे वात्सल्य श्रङ्गका महत्त्र कम होता जा रहा है अपने स्वार्थके समन्न श्राजका मनुष्य किसीके हानि लाभको नहीं देखता। हम और हमारे वच्चे श्रानन्दसे रहे परन्तु पड़ौसकी मोपड़ीमें क्या हो रहा है इसका पता लोगोंको नहीं। महलमें रहने वालोंको पासमें वनी कोपड़ियोंकी भी रन्ना करनी होती है अन्यथा छनमें लगी श्राग उनके महलको भी भस्मसात् कर देती है। एक समय तो वह था कि जब मनुष्य बड़ेकी शरणमें रहना चाहते थे छनका ख्याल रहता था कि बड़ोंके श्राश्रयमें रहनेसे हमारी रक्षा रहेती पर श्राजका मनुष्य बड़ोंके श्राश्रयमें रहनेसे हमारी रक्षा रहेती पर श्राजका मनुष्य बड़ोंके श्राश्रयमें दूर रहनेकी चेष्टा करता है क्योंकि उसका ख्याल वन गया है कि जिस प्रकार एक बड़ा बृक्त श्रयनी छाँहमें दूसरे छोटे पौथेको नहीं पनपने देता है उसी प्रकार वड़ा श्राहमी समापवर्ती—शरणागत श्रन्य मनुष्योंको नहीं

पनपने देता । अस्तु रत्तावन्धन पर्व हमे सदा यही शिक्ता देता है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' अर्थात् सव सुखी रहे ।

में कहनेके लिये ती यह सव कह गया पर सामायिकके वाद श्रम्तरद्भमे जव विचार किया तव यही ध्वनि निकली कि परकी समालोचना त्यागो श्रात्मीय समालोचना करो। समालोचनामे काल लगाना भी उचित नहीं प्रत्युत वह काल उत्तम् विचारोमें लगात्रो । त्रात्माका स्त्रभाव ज्ञाता दृष्टा है वही रहने दो उसमे इष्ट श्रनिष्ट कल्पनासे वचो । श्रनादि कालसे यही उपद्रव करते रहे पर सन्तुष्ट नहीं हुये। त्रात्म परिणतिको स्त्रच्छ रक्खो सो तो करता नहीं संसारका ठेका लेता है। जो मनुष्य आत्मकल्याणसे विद्यत हैं वे ही संसारके कल्याणमे प्रयत्न करते हैं। संसारमे यदि शान्ति चाहते हो तो सबसे पहले परमें निजत्वकी कल्पना त्यागी श्रनन्तर अनादिकालसे जो यह परिग्रह पिचाशके आवेशमे अनात्मीय पदार्थीं से आत्महितका संस्कार है उसे त्यागो । हम आहारादि संज्ञाओंसे श्रात्माको तृप्त करनेका प्रयत्न करते हैं यह सर्व मिथ्या धारणा है इसे त्यागो। संतोपका कारण त्याग है उसपर स्वत्व कल्पना करो। प्रतिदिन जल्पवादसे जगत्को सुलझानेकी जो चेष्टा है उसे त्यागो श्रीर श्रापको सुलमानेका प्रयत्न करो। संसारमे धर्भ श्रीर श्रधर्म तथा खान श्रौर पान यही तो परियह है । लोकमें जिसे पुण्य शब्दसे व्यवहृत करते हैं वह धर्म तुम्हारा स्वभाव नहीं संसारमें ही रखने-वाला है।

धीरे धीरे पर्यूषण पर्व आ गया। चतुर्थों के दिन श्री पंडित मन्मनलालजी आ गये। पं० कमलकुमारजी यहाँ थे ही इसलिये अवचनका आनन्द रहा। वृद्धावस्थाके कारण हमसे अधिक बोला नहीं जाता और न बोलने की इच्छा ही होती है। उसका कारण यह है कि जो बात अवचनमें कहता हूं तद्नुक्प मेरी चेष्टा नहीं। मैं

दूसरोंसे तो कहता हूँ कि रागादिक दुःखके कारण हैं श्रतः इनसे चचो पर स्वयं उनमे फॅस जाता हूँ। दूसरोंसे कहता हूँ कि सर्व प्रकारके विकल्प त्यागो पर स्वयं न जानें कहाँ कहाँके विकल्पोंमे फॅसा हुआ हूँ।

पर्यूपण पर्व सालमे तीन वार आता है—भाइपद, माघ और चैत्रमे, परन्तु भाद्रपदके पर्यूपणका प्रचार ऋधिक है। पर्वके समय प्रत्येक मनुष्य अपने अभिप्रायको निर्मल वनानेका प्रयास करते हैं स्त्रीर यथार्थमें पूछा जाय तो स्रभिप्राय की निर्मलता ही धर्म हैं। असमाकी यह निर्मलता क्रोधादिक कषायोंके कारण तिरोहित हो रही है इसितये इन कषायोंको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्रोध मान माया श्रीर लोभ ये चार कपाय हैं इनमें क्रोधसे चुमा, मानसे मार्दव, मायासे आर्जव और लोभसे शौचगुण तिरोहित हैं। ये चार कषाय निकल जावें और उनके वदले कमा आदि गुण च्यात्मामें प्रकट हो जावें तो च्यात्माका उद्घार हो जावे, क्योंकि मुख्यमें यह चार गुण ही धर्म है। त्रागे जो सत्यत्रादि छह धर्म कहे हैं वे इन्हींके विस्तार हैं—इन्हींके अड़ा हैं। क्रोधको वही जीत सकता है जिसने मान पर विजय प्राप्त करली हो। हम कहीं गये, किसीने सत्कार नहीं किया, हमारी वात पृछी नहीं हमे क्रोय श्रागया। हमने किसीसे कोई वात कही उसने नहीं मानी हमें कीय त्र्या गया कि इसने हमारी वात नहीं मानी इस प्रकार देखते हैं कि हमारे जीवनमें जो क्रोध उत्पन्न होता है उसमे मान प्रायः कारण होता है। इसी प्रकार मायाकी उत्पत्ति लोभसे होती है। हमें श्रापसे किसी वस्तुकी श्राकांचा है तो उसे पानेके लिय हम इच्छा न रहते हुए भी आपके प्रति ऐसी चेष्टा दिखलावेंगे कि जिससे श्रापके हृदयमें यह प्रत्यय हो जावे कि यह हमारे श्रवृङ्ग हैं। जय अनुकूलताका प्रत्यय आपके हृद्यसे हृढ हो जावेगा नभी नो

प्रपनी वस्तु देनेका भाव होगा। इस तरह यह किसीका ठीक है कि 'मानात्कोध प्रभवति माया लोभात्प्रवर्तते' श्रर्थात् मानसे क्रोध इत्यन्न होता है और लोभसे माया प्रवृत्त होती है। जब आत्मासे क्रोध लोभ भीस्त्र तथा हास्यकी परिएति दूर हो जाती है तो मत्य वचनमे प्रवृत्ति प्रपने आप होने लगती हैं। असत्य बोलनेके कारण दो हैं १ ख्रज्ञान छोर २ कपाय । इनमें ख्रज्ञान मूलक ख्रसत्य श्रात्माका घातक नहीं क्योंकि उसमे परिणाम मलिन नहीं रहते परन्तु क्षाय मृलक असत्य आत्माका घातक है क्योंकि उसमे परिणाम मिलन रहते हैं। जय श्रात्मासे क्रोधादि कपाय निक्ल गई तब श्रमत्य वोलनेमे प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्ति हो गई यही संयम है यह निवृत्ति तभी हो सकती है जब लोभ कपायकी निवृत्ति हो जाय तथा यह प्रत्यय हो जाय कि श्रात्मामे सुख़की उत्पत्ति विपयाभिसुखी प्रवृत्तिसे नहीं किन्तु तन्निवृत्तिसे हैं। मानसिक विपयोंकी निवृत्ति हो जाना—इच्छात्रों पर नियन्त्रण हो जाना सो तप है। जब तक मन स्वाधीन नहीं होगा तब तक उसमे इच्छाऍ उठा करेंगी श्रीर इच्छात्रोंके रहते परिणामोंमे स्थिरता स्वप्नमें भी नहीं स्त्रा सकती। जब इच्छाएं घट जावेंगी तब उसके फलस्त्ररूप त्याग स्वतः हो जावेगा । भोजन करते करते जब भोजन विपयक इच्छा दूर हो जाती है तव भोजनके त्याग करनेमे देर नहीं लगती। चुधित अवस्थामें यह भाव होता था कि पात्रसे भोजन जल्दी आवे श्रीर जुधा विषयक इच्छा दूर हो जानेपर भाव होता है कि कोई वलात् पात्रमें भोजन न परोस दे। त्यागके बाद आकि-छ्वन्य दशाका होना स्वाभाविक है। जब पुरातन परिग्रहका त्याग कर दिया श्रीर इन्छाके श्रभावमे नृतन परिग्रह श्रंगीकृत नहीं किया तव त्राकिञ्चन्य दशा स्वयमेव होनेकी है ही। श्रीर जव श्रपने पास श्रात्मातिरिक्त किसी पदार्थका श्रस्तित्व नहीं रहा—उसमे ममता

परिणाम नहीं रहा तब आत्माका उपयोग आत्मामें ही लीन होगा-यही ब्रह्मचर्य है इस प्रकार यह दश धर्मोंका क्रम है। दश धर्मोंका यह क्रम जीवनमें उतर जावे तो आत्माका कल्याण हो जावे। विचार कीजिये त्तमा मादव आदि धर्म किसके हैं और कहाँ हैं! विचार करनेपर ये आत्माके हैं और आत्मामे ही हैं परन्तु यह जीव अज्ञानवश इतस्ततः अमण करता फिरता है। लाखोंका धनी व्यक्ति जिस प्रकार अपनी निधिको भूल दर-दरका भिखारी हो अमण करता है ठीक उसी प्रकार हम भी अपनी निधिको भूल उसकी खोजमे इतस्ततः अमण कर रहे हैं।

परम धर्मको पाय कर सेवत विषय कषाय। ज्यों गन्ना को पायकर नीमहि ऊँट चबाय॥

जिस प्रकार ऊँट गन्नाको छोड़कर नीमको चवाता है उसी प्रकार संसारके प्राणी परम धर्मको छोड़कर विषयकषायका सेवन करते हैं। उनमे सुख मानते हैं। मोहोदयसे इस जीवकी दृष्टि स्वोन्मुख न हो परकी श्रोर हो रही है।

पर्वके समय प्रवचन होते हैं। वक्ता अपने क्षायोपशिमक हान-के आधार पर पदार्थका निरूपण करता है। यहाँ वक्तासे यदि इछ विरुद्ध कथन भी होता है तो अन्य सममदार व्यक्तिको समता भावसे उसका सुधार करना चाहिये, क्योंकि शास्त्र प्रवचन धर्मकथा है विजिगीपु कथा नहीं। धर्मकथाका सार यह है कि दश आदमी एकत्र वैठकर पदार्थका निर्णय कर रहे हैं इसमें किसीके जय-पराजयका भाव नहीं हैं। जहाँ यह भाव हे वहाँ वार्जालापमे विपमता आ जाती है। यह विपमता पापका कारण है। वार्तालापके समय वक्ता या श्रोता किसीको यह भाव नहीं होना चाहिये कि हमारी प्रतिष्ठामे चट्टा न लग जावे। समता भावसे सत्य वातको स्वीकार करना चाहिये श्रौर समता भावसे ही श्रसत्य वातका निराकरण करना चाहिये। यहाँ भाद्रपद शुक्त १० के दिन पण्डितगणोंमें परस्पर कुछ वार्तालापकी विपमता हो गई। विपमताका कारण 'परमार्थसे हमारी प्रतिष्ठामे कुछ वट्टा न लगे' यद भाव था। तत्त्वसे देखो तो श्रात्मा निर्विकल्प है उसमे यशोलिप्सा ही व्यर्थ है। 'यश तो नामकर्मकी प्रकृति है। यशसे कुछ मिलता जुलता नहीं है। जिस वक्ताने शास्त्रप्रवचनमें यशकी लिप्सा रक्ती उसका र घंटे तक गन्नेकी नशें खींचना ही हाथ रहा, 'स्वाध्यायके लामसे वह दूर रहा इसी प्रकार जिस श्रोताने वक्ताकी परीज्ञाका भाव रक्ता या श्रपनी वात जमानेका श्रमिप्राय रक्ता उसने श्रपना समय व्यर्थ खोया। वक्ताका भाव तो यह होना चाहिये कि हम श्रज्ञानी जीवोंको वीतराग जिनेन्द्रकी सुनाकर सुमार्ग पर लगावें श्रौर श्रोताका भाव यह होना चाहिये कि वक्ताके श्रीमुखसे जिनवाणीके दो शब्द सुन श्रपने विषय कपायको दूर करें।

पर्वके वाद श्राश्विन कृष्णा प्रतिपदा चमावणीका दिन था परन्तु जैसा उसका स्वरूप है वैसा हुआ नहीं। केवल प्रभावना होकर समाप्ति हो गई। परमार्थसे अन्तरङ्गमें शान्तिभावकी प्राप्ति हो जाना यही क्षमा है सो इस ओर तो लोगोंकी दृष्टि है नहीं केवल ऊपरी भावसे चमा माँगते हैं. एक दूसरेके गले लगते हैं। इससे क्या होनेवाला है ? और खास कर जिससे चुराई होती है उसके पास भी नहीं जाते उससे वोलते भी नहीं, इसके विपरीत जिससे चुराई नहीं उसके पास जाते हैं. उसके गले लगते हैं, उसे चमावणी पत्र लिखते हैं आदि। यह सब क्या चमावणी उत्सवका प्राण्डून्य ढाँचा नहीं है ?

श्राश्त्रिन कृष्ण ४ सं० २००७ को मेरे जन्मदिनका उत्सव

था । पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य, पं० चन्द्र-मौलिजी, पं० पञ्चरत्नजी. कवि चन्द्रसेनजी, पं० खुशान्नचन्द्रजी तथा राजकृष्णजी श्रादि बाहरसे श्राये। जयन्ती उत्सर्वोमें जो होता है वही हुआ, सवने प्रशंसामें चार शव्द कहे और हमने नीची गरदनकर उन्हें सुना। दूसरे दिन रतनलालजी मादेपुरिया, महा-वीरप्रसादजी ठेकेदार दिखी तथा फीरोजावादसे छदामीलालजी भी आये। छदामीलालजीने आग्रह किया कि आप फीरोजाशद श्रावें। हम कुछ करना चाहते हैं श्रौर श्रच्छा कार्य करेंगे। हम वहाँ एक सुन्दर मन्दिर श्रीर एक उद्योग विद्यालय खोलना चाहते हैं। पं० राजेन्द्रकुमारजी तथा खुशालचन्द्रजीने भी इस पर जोर डाला तथा यह आग्रह किया कि वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थके समर्पणका समारोह यहाँ न हो कर फिरोजावादमें ही हो। मैंने कहा कि श्रमिनन्दन व्रन्थ समर्पणकी वात मैं नहीं जानता पर आप लोगोंका यदि कुछ काम करनेका भाव है श्रीर मेरे वहाँ पहुँचनेमे वह फली-भूत होता है तो दीपावली बाद में चलूँगा। मेरा उत्तर मुन उ हैं प्रसन्नता हुई।

सव लोग श्रपने श्रपने घर गये श्रीर पर्यूषण्पर्व सम्बन्धी चहल-पहल भी जयन्ती उत्सवके साथ समाप्त हुई। मनमें व्ययतान का श्रभाव हुश्रा तथा निम्नाङ्कित भावना प्रकट हुई-

चाहत जो मन शान्ति सुख तजहु कल्पना, जाल।
व्यर्थ भरमके भूतमें क्यों होते वेहाल ॥ १ ॥
यह जगकी माया विकट जो न तजोगे मित्र।
तो चहुँगतिके बीचमें पावोगे दुख चित्र॥ २ ॥

#### इटावासे प्रस्थान

श्राहिवन कृष्णा = सं० २० ७ को राजकोटसे डाक्टर श्रीर मोहन भाई श्राये । तत्त्वचर्चाका श्रच्छा श्रानन्द रहा । निमित्त उपादान की चर्चा हुई । यद्यपि इस चर्चामें विशेष श्रानन्द नहीं परन्तु फिर भी लोग यही करते हैं । 'श्रात्माका कल्याण हो' यह मुख्य प्रयोजन हैं । वह उपादानकी प्रधानतासे हो या निमित्तकी प्रधानतासे हो पर हो यही मुख्य उद्देश्य हैं । मेरी सममके श्रनुसार तो कार्यकी सिद्धिमें न केवल उपादान बुझ कर सकता है श्रीर न केवल निमित्त । जब दोनोंकी श्रनुकूलता हो तभी कार्यकी सिद्धि हो सकती हैं । कुम्भकारके व्यापारसे निरपेच केवल मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नहीं हो सकती श्रीर मृत्तिकासे निरपेच केवल कुम्भकारके व्यापारसे घटकी रचना नहीं हो सकती । दोनों सापेच रह कर ही कार्य उत्पन्न कर सकते हैं ।

श्राहिवन कृष्ण १४ सं॰ २००७ को फिरोजावादसे पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य श्राये। प्रातःकाल ५३ से ६३ तक उनका प्रवचन हुआ। श्रापकी कथनशैली श्रच्छी है, उच कोटिके विद्वान् हैं, श्रापने श्लोकवार्तिकके ऊपर भाषा टीक लिखी है। जिसका प्रथम भाग मुद्रित हुआ है। उसको हमने देखा, ज्याख्या समीचीन प्रतीत हुई। श्रापके द्वारा यह श्रभूतपूर्व कार्य हो गया है।

कार्तिक शुक्ला ६ सं० २००७ के दिन जवलपुरसे वहुतसे मानव आये। सवने आग्रह किया कि जवलपुर चिलये। मैं संकोच वश कुछ निश्चित उत्तर नहीं दे सका किन्तु मनमें यह वात आई कि वहाँ जानेसे जनताका उपकार बहुत हो सकता है अतः जाना

अच्छा है। उस देशमें जानेसे दान अच्छा होगा तथा संस्थाएँ स्थिर हो जावेंगी।

प्रतिदिन प्रातःकाल मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन, मध्यान्हमें स्वकीय स्थान पर स्वाध्याय भ्रौर रात्रिको मन्दिरमे प्रवचन यही क्रम यहाँ पर जब तक रहा चलता रहा। चतुर्मासकी समाप्तिके बाद मार्गशीर्ष कृष्ण पद्धमीको इटवासे भिण्डके लिये प्रस्थान कर दिया। जाते समय अनेक स्त्री-पुरुष आये। १०-११ माह यहाँ रहनेसे लोगोंके हृदयमे मेरे प्रति आत्मीय भाव उत्पन्न होगया था इसलिए जाते समय लोगोंको बहुत दुःख हुआ। मैंने कहा कि यह स्नेह ही संसार वन्धनका कारण है। यदि आप लोगोंने इतने समय तक जैनधर्मका कुछ सार ग्रहण किया है तो उसके श्रनुसार प्रथम तो किसी पर पदार्थमें इप्ट श्रानिष्टकी भावना ही नहीं होना चाहिये और यदि कारण वश किसीमें इष्ट अनिष्ट भावना हो भी गई है तो उसके वियोग तथा संयोगमें हर्ष विषादका अनुभव नहीं करना चोहिए। इस विषम संसारमें श्रनादिसे यह जीव पर पदार्थमें निजत्वकी कल्पना करता है। जिसमें निजत्व मानता है उसे अपनानेकी चेष्टा करता है, उसको किसी प्रकार वाधा न पहुँचे ऐसा प्रयत्न सतत करता है। यदि कोई उसके प्रतिकूल हुआ तो उससे पृथक् होनेकी चेष्टा करता है। वन्धन ही दुःखका मूल हे, वन्धन स्नेह-मोहमूलक है श्रीर मोहपर पदार्थोंको अपना मानना एतन्मूलक है। इस संसार अटवीमें अनन्त काल भ्रमण करते करते त्राज यह त्रलव्य मनुष्य पर्यायका लाभ हुत्रा है। त्रथवा यह कथनमात्र है क्योंकि त्रनन्त वार मनुष्य पर्याय पाया है। पर्याय ही नहीं पाया अनन्तवार द्रव्यमुनि होकर अनन्तवार ग्रेवेयक तक गया जहाँ ३१ सागरकी श्रायु पाई, तत्त्व विचारमें समय गया किन्तु स्वात्मज्ञानसे विञ्चित रहा। श्रव श्रवसर श्रच्छा हे यदि श्रन्तरद्वसे परिश्रम किया जावे तो श्रनायास भेद-ज्ञानका लाभ हो सकता है। भेददान वह वस्तु है जिसके होते ही यह श्रात्मा श्रनन्त संसारके वन्धको छेद सवता है। भेदज्ञानके श्रभावमे जो हमारी दशा हो रही है वह हमको विदित हैं। उसके विना ही हम परको श्रपना मानते हैं श्रौर निरन्तर यही प्रयास करते हैं कि वह पदार्थ हमारे अनुकूल रहे। पदार्थ २ तरहके हैं एक चेतन और दूसरे अचेतन । अचेतन पदार्थ तो जड़ हैं उनमे न तो राग है श्रीर न द्वेप हैं। वह न किसीका भला करते हैं श्रीर न किसीका बुरा करते हैं। हम स्वयं अपनी रुचिके अनुकूल उन्हें काल्पनिक बुरा भला मान लेते हैं। इसमें कारण हमारी रुचि भिन्नता है। यद्यपि यह निर्विवाद है कि सर्व पदार्थ अपने अपने परिएमनसे परिएात होते रहते हैं। कोई कर्ता परिएामन करानेवाला नहीं पर तु तो भी हमारी ऐसी धारणा वन गई है कि श्रमुक निमित्त न होता तो यह न होता, क्योंकि लोकमे जो कार्य देखे जाते हैं वे सर्व ही जपादान श्रौर निमित्तसे ही श्रात्म-लाभ करते हैं। श्राप लोगोंका हित श्रापकी श्रात्मा पर निर्भर है परन्तु श्राप लोगोंने मुमे उसका निमित्त मान रक्ला है इसलिए मेरे वियोगमे आपको दुःखका **अनुभव हो रहा है ।** 

जो संसार समुद्रसे है तरनेकी चाह। मेदजान नौका चढो परकी छोड़ो हाह॥

इटावासे १३ मील चल कर निलयाजी मिली। वहाँ तक बहुत लोगोंका समुदाय रहा। निलयाजीमें दो छोटे छोटे मन्दिर हैं, दर्शन किये। एक मन्दिरमें प्राचीन प्रतिविम्ब है, बहुंत मनोझ है किन्तु हाथ खण्डित हैं। एक समय ऐसा था जब यवनोंके द्वारा अनेक मन्दिर ध्वस्त किये गये। यवन धर्मानुयायी मूर्तितत्त्वको नहीं समभते । मूर्तिपूजा उन्हे पसन्द नहीं । न करें पर संसारकी मूर्तियो श्रीर मन्दिरोंको ध्वस्त करनेमे कौन सा धर्म हैं ? बुद्धिमें नहीं श्राता ।

## फिरोजाबादकी और

श्री जुल्लक वलदेवसाद्जी जिनका दूसरा नाम संभवसागर था तथा चुहक मनोहरलालजी इटावासे ही साथ हो गये थे। भिण्डमे पहुँचने पर वहाँ जनताने संघका श्रच्छा स्वगत किया। श्री नेमिनाथ स्वामीके मन्दिरमें श्रीयुत ज्ञुहक मनोहरलालजीका प्रवचन हुआ। श्रापने अति सरल शब्दोंमे, श्रात्मामें जो रागादिक होते हैं उनका विवेचन किया। इसी प्रकरणमें आपने यह भी कहा कि कार्यकी उत्पत्ति सामग्रीसे होती हैं। सामग्रीमे एक उपादान श्रीर इतर सहकारी कारण होते हैं जो स्वयं कार्यरूप परिणमें वह तो उपादान है श्रीर जो सहायक हो पर तद्रप परिणमन नहीं करता वह सहकारी होता है। सहकारी अनेक होते हैं। जैसे इन्मर्ग उत्पत्तिमें मिट्टी उपादान श्रीर कुम्भकारादि सहकारी होते हैं। रन सहकारियोंने चेतन भी होते हैं श्रीर श्रचेतन भी। सहकारी कारण चाहं चेतन हों चाहं श्रचेतन, वलात्कारसे कार्यको उत्पन्न नहीं करते किन्तु उनकी सहकारिता श्राति श्रावध्यक है। प्रयचन मुन जानता बहुत प्रसन्न हुँई। एक दिन श्रादिनाय स्वामीके मन्दिएन भी प्रवचन हुआ।

पिद्धले समय जब यहाँ श्राये थे तब पाठशाला चार्ख परनेश प्रयत्न कुछ लोगोंने किया या परन्तु परस्परके वैमनस्यसे पर प्रयत्न सफल नहीं हो सका था। श्रव मार्गशीर्ष शुक्ला ६ सं० २००७ को पाठशालाका उद्घाटन श्री पं॰ मन्मनलालजीने मङ्गलाष्टक पूर्वक सानन्द कराया। श्राज श्री राजकृष्णजी, पं॰ राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री छदामीलालजी श्राये । सबका उद्देश्य फिरोजावादमें हीरक जयन्ती महोत्सव तथा वर्णी श्रमि-नन्दन प्रनथ समारोहकी स्वीकृति प्राप्त करना था। राजकृष्ण हृद्यसे वात करते हैं। पण्डित राजेन्द्रकुमारजी चतुर व्यक्ति हैं। समाजका हित चाहते हैं तथा कार्य भी उसीके अनुरूप करते हैं किन्तु श्रान्तरङ्ग उनका गम्भीर है। उसका निश्चय करना प्रत्येक व्यक्तिका कार्य नहीं। कुछ हो, जो वह कार्य करते हैं समाजके हितकी दृष्टिसे करते हैं। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को पं॰ पन्नालालजी साहित्याचार्य सागरवाले आये। यह निश्चय हुआ कि अभि-नन्दन प्रन्थका समारोह फीरोजाबादमें हो। हमने यह निश्चय कर लिया कि फिरोजाबादमें उत्सव होनेके वाद सागर जावेंगे। श्राज ही हम लोग भिण्ड छोड़कर फूफ श्रा गये। यह स्थान भिण्ड-से ७ मील है। दूसरे दिन फूफसे चल कर चम्बल आये। यहाँ एक प्राचीन सन्दिर है। ३ बजे चम्बल पार हुए। ३ फर्लाझ पानीमें चलना पड़ा तद्नन्तर 🤰 मील चल कर उदीमें आ गये। स्कूलमें रात्रिको ठहर गये। प्रातःकाल सामायिकका उद्यमं किया। इतनेमें श्री जुल्तक मनोहरजीने कहा हम खुर्जा जावेंगे। मैंने कहा ठीक है। मनमें विचार श्राया कि मैं संघका श्राहम्बर कर लोगोंके संयोग वियोगके समय व्यर्थ ही हर्षे विपादका पात्र वनता हूँ श्रतः जितने जल्दी बन सके यह संघका श्राहम्बर छोड़ देना चाहिये। परका समागम सुखद नहीं क्योंकि परके समागममें अनेक विकल्प होते हैं। विकल्प ही आकुलताके जनक हैं। आत्मा-मे ज्ञान है उसके द्वारा वह उस विकल्पके अनेक अर्थ स्वरुचिके

अनुकूल लगाता है और कुछ यथार्थ भी लगाता है तथा उनको रखनेकी चेष्टा करता है। समागममें अनिष्ट-इष्ट कल्पना मत करो। इष्टानिष्ट कल्पना अन्तरङ्ग से होती है अतः यदि समागमको नहीं चाहते हो तो अन्तरङ्ग कल्पना त्याग दो। परको इप्ट अनिष्ट मानने की बात छोड़ो। दोष आपमें देखो तथी सुमार्ग मिलेगा।

पौष कृष्ण ८ सं० २००७ सोमवारको ईसवीय नवीन वर्षका प्रारम्भ हुआ। आज दैनंदिनीके प्रथम पृष्ठ पर लिखा कि 'यदि कश्चित् आत्मा संसारसमुद्रादुद्धर्तुमिच्छति तदास्मिन् यावन्तः पदार्थाः सन्ति तैः सह संसर्गों न कार्यः' अर्थात् यदि कार्य आत्मा संसार समुद्रसे उद्धार पानेकी इच्छा करता है तो इसमें जितने पदार्थ हैं उनके साथ संपर्क नहीं करना चाहिये। मनमें विचार आया कि इस वर्षमें यदि शान्तिकी श्रमिलाषा है तो इन नियमोंका पालन करो—

प्रातःकाल ३३ बजे छठो श्रीर १३ घंटा स्वाध्यायमे विताश्रो। तदनन्तर सामायिक करो। स्वाध्यायमे पुस्तकोंकी मर्यादा रक्खों-समयसार, प्रवचनसार, प्रश्लास्तिकाय, नियमसार श्रीर पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय इन पुस्तकोंको एमोकार मन्त्र वनाश्रो। रात्रिमे १ घंटा वोलो, ३ शास्त्रश्रवण करो। प्रातःकाल स्वाध्यायके समय किसी से मत बोलो। यदि बोलो तो जिसका स्वाध्याय कर रहे हो उसी पर वोलो। भोजनकी प्रक्रियाको सरल वनाश्रो। भृत्यका श्रभ्यास छोड़ो श्रात्मीय कार्यका भार परके उपर मत डालो। त्यागका श्र्यं यह नहीं जो श्रन्य समाजको भारभूत बनो। सूत्रमें स्वामीने पर-स्परोपप्रहो जीवानाम् लिखा है तदनुकूल प्रवृत्ति करो। समाज भोजनादि द्वारा तुम्हारा उपकार करती है तो तुमको भी उचित है कि यथायोग्य ज्ञानादि दान द्वारा उसका उपकार करो। यदि

तुम त्यागी न होते तो निर्वाहके श्रर्थ कुछ व्यापारादि करते, उसमें तुम्हारा काल जाता श्रतः जो तुम्हारा भोजनादि द्वारा उपकार करे उसका जानादि उपकार कर उससे उऋग होना चाहिये।

एक वार यहाँ चर्चा उठी कि यह जीव श्रच्छे बुरे संस्कार पूर्व जन्मसे लाता है। मेरा कहना था कि सब संस्कार पूर्व जन्मसे नहीं लाता, बहुतसे संस्कार वर्तमान संपर्कसे भी उत्पन्न होते हैं। उत्पत्तिके समय अनुष्य नग्न ही होता है श्रीर मरणके समय भी नग्न रहती है। मनुष्य जिस देशमें पैदा होता है उसी देशकी भाषांकी जानता है तथा जिसके यहाँ जन्म लेता है उसीका आचार उस बालकका श्राचार हो जाता है। जन्मान्तरसे न तो भाषा लाता है श्रीर न श्राचारादि क्रियाएं। किन्तु जिस कुलमें जो जन्म लेता है उसीके श्रनुकूल उसका श्राचरण हो जाता है श्रतः सर्वथा जन्मान्तर संस्कार ही वर्तमान श्राचारका कारण है यह नियम नहीं। वर्तमानमें भी कारणकूटके मिलनेसे जीवोंके संस्कार उत्तम हो जाते हैं। श्चन्यकी कथा छोड़ो पशुत्रोंके भी मनुष्यके सहवाससे नाना प्रकारकी चेटाएँ देखी जाती हैं श्रीर उन बालकोंमे, जो ऐसे कुलोंमें उत्पन्न हुए जहाँ ज्ञानादिके किसी प्रकारके साधन न थे, उत्तम मनुष्योंके सहवाससे अच्छे संस्कार देखे गये। वे उत्तम विद्वान् और सदा-चारी देखे गये। वर्तमानमें जो डा॰ अम्बेडकर है वह विधानसभा-का सदस्य है। वह जिस कुलमें उत्पन्न हुन्ना यद्यपि उसमें यह सब साधन न थे तो भी श्रान्य उत्तम संपर्क मिलनेक कारण उसकी प्रतिभा चमक उठी। यहाँके जो वालक विलायतमें अध्ययन करने जाते हैं उनके श्राचरण प्रायः जिस देशके शिचकोंके सहवासमें रहते हैं वहींके हो जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जीवके कितने ही संस्कार पूर्व जन्मसे त्राते हैं तो कितने ही इस जन्मके वातावरणसे उत्पन्न होते हैं।

- भौष- कृष्ण ११ -सं० २००७ के दिन इन्दौरवाले यात्री आये। श्रात्म-कल्याणकी लालसासे श्रादमी यत्र तत्र भ्रमण करते हैं। जैसे गर्मीकी ऋतुमें पिपासातुर हरिण दो घूंट पानीसे लिए इधर-उधर दौड़ता है उसी प्रकार जगत्के मानव भी धर्मकी लालसासे जहाँ तहाँ दौड़ रहे हैं। कोई तीर्थचेत्र जाता है तो कोई किसी मुनि ज्ञुल्लक श्रादि उत्तम पुरुषोंकी संगतिमें जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म पदार्थ इतना ज्यापक है कि प्रत्येक ज्यक्ति इसे श्रात्मीय मानता है। जितने मत संसारमें प्रचलित हैं धर्म ही उनका प्राण है। इसके विना कोई भी मत जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार मनुष्यमें इन्द्रियादि प्राण हैं उसी प्रकार मतमतान्तरोंमें धर्म प्राण है। किन्तु उसकी यथार्थताके विना स्राज जगत् स्रनेक संकटोंका पात्र वन रहा है। इसका मूल कारण धर्मके स्वरूपको न सममक्र उठनेवाली नाना प्रकारकी कल्पनाएँ हैं। कोई तो पृथिवी विशेषके स्पर्शमें धर्म मानते हैं अर्थात् विशेष स्थान (तीर्थचेत्र) का स्परी करनेसे आत्मा पवित्र हो जाती है तो कोई पानीके स्परीको ही धर्मका साधन मानते हैं अर्थात् अमुक नदी या तहाग आदिके जलका स्परी करते—उसमें स्नान करनेसे धर्म मानते हैं श्रौर कोई श्रानिको ही धर्मका साधन समम उसकी पूजा करते हैं। परन्तु यथार्थमें धर्म आत्माकी निर्मल परिएति है। निर्मलता कपायके अमाव में श्राती है श्रौर कषायका श्रमाव स्वपरके वास्तविक स्वरूपको समम लेनेसे होता है अतः स्वपरके यथार्थ स्वस्पको सममो। यथार्थ स्वरूपके सामने त्रात्माको छोड़ पुद्गल या उसके निमित्तसे उत्पन्न विकारको आत्मा न मानो और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त-गुणोंका पुञ्ज जो श्रात्मा है उसे पृथिवी श्रादिका विकार मत जानो।

चरणानुयोगके सिद्धान्त अटल हैं। उनका तात्पर्य यही है

कि पर पदार्थोंसे समता हटाक्रो। हम लोग पर पदार्थीका त्याग कर प्रसन्न हो जाते हैं श्रीर मनमें सोचते हैं कि हमने बहुत उत्तम कार्य किया। यहाँ परमार्थसे विचार करो कि जो पदार्थ हमने त्यागे वे क्या हमारे थे ? आप यही कहेगे कि हमसे भिन्न थे तब श्राप जो उनको श्रात्मीय समभा रहे थे यही महती श्रज्ञानता थी। यावत् श्रापको भेदज्ञान न था उन्हें निज मान रहे थे। यही श्रनन्त संसारके वन्धनका भाव था। भेदज्ञान होनेसे आपकी श्रज्ञानता चली गई। फिर यदि आप उस पदार्थको दानकर फल चाहते हैं तो दूसरेको अज्ञान वनानेका ही प्रयास है और तुम स्वयं आत्मीय भेदज्ञानको मिटानेका प्रयास कर रहे हो। यह जो दानकी पद्धति है वह श्राल्पज्ञानियों के लिये हैं। भेदज्ञानवाले तो इससे तट थ रहते हैं श्रतः दान लेने देनेका व्यवहार छोड़ो। वस्तु पर विचार करो। श्रात्मा ज्ञाता दृष्टा स्वयमेव है। उसमें विकार न श्राने दो। विकारका श्रर्थ यह कि ज्ञानदर्शनका कार्य जानना देखना है उसे मोह राग द्वेषसे कलङ्कित मत करो । इसीका नाम मोत्त है, जहाँ राग द्वेष मोह है वहीं संसार है, जहाँ संसार है वहीं बन्धन है और जहाँ बन्धन है वहीं पराधीनता है।

पौष कृष्ण १३ सं॰ २००७ को यहाँ मिल्लिसागर जी दिगम्बर सुनि श्राये। श्रापके श्रानेका समाचार श्रवण कर बहुंत श्रावक श्राविकाएँ श्रापके लेनेको गये। ११३ वजे श्रापका शुभागमन हुत्रा, श्रापने मिन्दरमे दर्शन किये। हम लोग नित्य नियमके श्रानुसार सामायिक करनेके लिये बैठ गये। सामायिकके बाद श्राये मुनि महाराज भी सामायिकके श्रनन्तर बाहर तख्तपर उपदेश देने लगे। लोगोंने चर्याके लिए प्रार्थना की। किर क्या था श्राप कहने लगे कि किसके यहाँ भोजन करें। किसीके शूउ जलका त्याग है श्र दस्सोंके यहाँ भोजन तो नहीं करते श्र परस्पर जातियोंमें विवाह तो

नहीं करते ? यह सुन भिण्डका एक जैनी बोला—मेरे शूर जलका त्याग है। किसके समच लिया ? महाराजने कहा। श्री १००० सूर्य-सागरजी महाराजके पास नियम लिया था ' उसने कहा। मुनिराज बोले—ग्ररे वह तो उत्तरका मुनि है, प्रतिमाको स्पर्शकर नियम ले। वह मन्दिरमे गया श्रीर प्रतिमा स्पर्श करके श्राया, श्रापने यह कार्य कराया। फिर नीचे श्राया, महाराज पड़गाए गये। श्राहार देनेवाली श्रीरतके मुखसे यह नहीं निकला कि दस्सोंके घर भोजन नहीं करूँगी। इतने पर महाराज भोजन छोड़कर चले गये। श्रीर स्टेशनपर सायके मनुष्योंके यहाँ भोजन किया। श्राम श्राममे चन्दा होता है। यहाँसे भी ६०) का चन्दा हो गया। साथमे मोटर है। हर जगह चन्दा होता है। यह दृश्य देख मुक्ते लगा कि पञ्चम कालका चमत्कार है। श्रव यही धर्म रह गया है।

पीप शुक्ता २ सं० २००७ को सहारनपुरसे श्री रतनलालजी आये। आप योग्य व्यक्ति हैं। आपको करणानुयोगका श्रच्छा अभ्यास है। सूदमसे सूदम पदार्थका आप सरल रीतिसे झान करा देते हैं। आपने मुख्त्यारी छोड़ दी है तथा युवावस्थामें ब्रह्मचर्य ले स्वया। आपका स्वभाव सरल है और सरलताके साथ आगमानुक्त प्रवृत्तिपर आपकी दृष्टि रहती हैं। आपके समागमसे हुई हुआ। हम निरन्तर इस प्रकारकी चेष्टा करते रहते हैं कि रागकी सत्तापर विजय प्राप्त कर लेवे परन्तु आज तक हम उसपर विजय प्राप्त न कर सके। इसका मृल कारण यह ध्यानमें आता है कि हमने अभी तक पर परने प्रयानी प्रतिष्टा और अप्रतिष्टा मान रहे हैं। जहाँ किसी व्यक्ति हुद प्रयंना प्रतिष्टा और अप्रतिष्टा मान रहे हैं। जहाँ किसी व्यक्ति हुद प्रयंना मृचक शहदोंका प्रयोग किया वहाँ हम एक दम प्रसन्न हो जाते हैं आर निन्दाके शब्दोंका प्रयोग किया कि एक दम अप्रसन्न हो जाते हैं। इसका मुख्य हेतु हमने यही नममा है कि पर हमारा मना

बुरा कर सकते हैं। संसारमें अधिकांश मनुष्य ईश्वरको ही कर्ता-धर्ता मानते हैं, स्वतन्त्र हम कुछ नहीं कर सकते परन्तु इसपर भी पूर्ण अमल नहीं। यदि कोई काम अच्छा वन गया तो अपनेको कर्ता मान लिया। यदि नहीं वना तो भगवान्को यही करना था" यह कह सव दोप भगवान्के शिर मढ़ दिया। कुछ स्थिर विचार नहीं। यदि इस पिण्डसे छूटे तो अभाग्रुभ परिणामोंसे उपार्जित कर्मका प्रभाव है। हम क्या कर सकते हैं १ ऐसा ही तो होना था""ऐसा विश्वास अनेकोंका है। यदि उन भले मानवोंसे पृष्ठिये कि वह कर्म कहाँसे आये १ तो इसका यही उत्तर है कि वह प्राक्तन कर्मका फल है। इस प्रकार यह संसारकी प्रणाली वरावर चल रही है और चली जावेगी। मोक्तका होना अति कठिन है। मैं तो अपने

> सत्तर छहके योगमे गया न मनका मैल । खाँड़ भरे मुस खात है बिन विवेकके बैल ॥

सर्व पदार्थ श्रपनी श्रपनी सत्ता लिये परिण्मनशील हैं। कोई पदार्थ किसीके साथ तादात्म्य नहीं रखता। जिस पदार्थमें जो गुण व पर्यायें हैं उन्हींके साथ उनका तादात्म्य है। चाहे वह चेतन हो चाहे श्रचेतन हो। चेतन पदार्थका तादात्म्य चेतनगुण पर्यायके साथ है यह निर्णीत है किन्तु श्रनादि कालसे मोहका सम्बन्ध श्रात्माके साथ हो रहा है। मोह पुद्गल द्रव्यका परिण्मन है किन्तु जब उसका विपाक काल श्राता है तब यह श्रात्मा रागादि रूप परिण्मन करता है। श्रात्मामें चेतना गुण है उसका ज्ञान-दर्शन रूप परिण्मन है। जानगुणका काम जानना है। जैसे दर्पणमें स्वच्छता है। उसमें श्रान्नका प्रतिविम्ब पड़ता है किन्तु विहामें जो उपणता श्रीर ज्वाला है वह दर्पणमें नहीं है। एवं ज्ञानगुण स्वच्छ है,

उसमें मोहके उद्यमें रागादिक होते हैं। वे यद्यपि श्रात्माकी उपादान शिक्त हो हुए हैं तथापि मोहजन्य होनेसे नैमितिक हैं। यह जीव उन्हें स्वभाव मान लेता हैं, यही इसकी भूल है। यही भूल श्रनन्त संसारका कारण है। जिन्हें श्रनन्त संसारसे पार होना हो वे इस भूलको त्यागें। संसारको निज मत बनाश्रो श्रीर न कोई न निजको संसार बनाश्रो। न तुम किसीके हो श्रीर न कोई तुम्हारा है किन्तु मोहके श्रावेगमे तुम्हे कुछ सूमता नहीं। यह विचार निरन्तर मेरे मनमें धूमता रहता है।

सेठ सुद्रीनलालजीका ऋत्यन्त आग्रहका था इसलिये,पौष ग्रुका १४ को जसवन्तनगर आ गये। यहाँ श्री ताराचन्द्रजी रपरिया, वैनाड़ा मटरूमलजी तथा श्री ख्यालीरामजी स्रागरा स्राये थे। सौरीपुरके लिये ५५०) का चन्दा हो गया। सौरीपुरमें श्वेताम्बरी तथा दिगम्बरोंके बीच कुछ संघर्ष है। संघर्षकी जड़ परिग्रह है। यद्यपि श्वेताम्बर समाजमे वर्तमान साधुसमागम पुष्कल है और वे लोग पठन-पाठनमे अपना समय लगाते हैं। कई विशिष्ट विद्वान भी हैं किन्तु न जाने दिगम्बर समाजसे इतना वैमनस्य क्यों रखते हैं। धर्म वह भी अपना जैन मानते हैं और यह भी मानते हैं कि सम्यग्दरीन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ही मोखका सार्ग है। चारित्रका लक्त्रण भी रागद्धे पकी निवृत्ति मानते हैं। वस्त्र रखकर भी यही त्र्यर्थ करते हैं कि इस परिग्रहमें हमको मूर्छा नहीं। तब समभमें नहीं श्राता कि दिगम्बर मुद्रासे इतनी घृणा क्यों करते हैं ? भूर्तिको सपरिग्रह वनानेमें कोई प्रयत्न शेष नहीं रखते तथा कहते हैं कि यह वीतरागदेवकी मूर्ति है। यह सव पद्धम कालका महत्त्व है। कल्याणका पथ तो केवल श्रात्मामें है। जहाँ श्रन्यकी श्रणुमात्र भी मूर्च्छा है वहाँ श्रेयोमार्ग नहीं। चन्धावस्था ही संसारकी जननी है, श्रन्यकी कथा छोड़ो परमात्मामे

श्रनुराग भी परमात्मपद्का घातक है तब वस्त्रमे मूच्छी रखकर श्रपनेको वीतरागी मानना क्या शोभा देता है। श्रनादि कालसे इसी मूच्छिनि श्रात्माको संसारका पात्र बना रक्खा है।

श्रात्माकी परिणित दो प्रकारकी हैं—१ विकृति श्रीर २ श्रविकृति । विकृति परिणित ही संसार है । विकृति परिणिति ही यह श्रात्मा परको निज मानता है । श्रीर विकृति परिणिति श्रभावमे परको पर श्रीर श्रापको श्राप मानने लगता है । इसीको स्वसमय कहता है । जिस समय श्रात्मा परसे भिन्न श्रात्माको मानता है उसी समय दर्शन ज्ञानमय जो श्रात्मा उसको छोड़ कर पर पदार्थों में निजत्वका श्रभिप्राय चला जाता है—नष्ट हो जाता है किन्तु चारित्रमोहके सद्भावमें श्रभी उनमे रागादिका संस्कार नहीं जाता । इतना श्रावश्य है कि उन रागादि भावोका कर्व व नहीं रहता । यही ही श्रमृतचन्द्र सूरि ने कहा है—

कतु त्वं न स्वभावोऽस्यचितो वेदयितु त्ववत् । श्रश्रानादेव कर्तायं तदभावादकारक ॥

श्रशीत् श्रात्माका स्वभाव कर्तापना नहीं है। जैसे भोक्तृत्व नहीं है। श्रज्ञानसे श्रात्मा कर्ता बनता है श्रीर श्रज्ञानके श्रभावमें नहीं। चेतना श्रात्माका निज गुण है उसका परिणमन शुद्ध श्रीर श्रशुद्ध के भेदसे दो तरहका होता है। श्रशुद्ध श्रवस्थामें यह श्रात्मा पर पदार्थका कर्ता श्रीर भोक्ता बनता है श्रीर श्रज्ञानके श्रभावमें श्रपने, ज्ञानपनेका ही कर्ता होता है। तदुक्तम्—

'ज्ञानादन्यत्रेदं ममेति चेतना श्रज्ञानचेतना। सा द्विविधा कर्म-चेतना कर्मफलचेतना च।'

श्रर्थात् ज्ञानसे श्रातिरिक्तका कर्त्ता श्रापको मानना यह कर्म

चेतना है श्रीर ज्ञानसे श्रितिरिक्तका भोक्ता श्रिपनेको मानना यही कर्मफलचेतना है। ऐसा सिद्धान्त है कि—

यः परिण्मिति स कर्ती यः परिण्मो भवेतु तत्कर्म। या परिण्ति किया सा त्रयमिष भिन्नं न वस्तुतया॥

इसका तात्पर्य यह है कि श्रात्मा जो परिणाम स्वतन्त्र करता है वह परिणाम तो कर्म है श्रीर श्रात्मा उसका कर्ता है तथा जो परिगाति होती है वही किया है। ये तीनों परस्पर भिन्न नहीं। जिन्होंने श्रात्मतत्त्वकी श्रोर दृष्टि दी उन्होंने पर संयोगसे होनेवाले भावोंको नहीं श्रपनाया । यही वृटी संसार रोगको नष्ट करनेवाली है । वन्धा-वस्था दो पदार्थीं के संयोगसे होती है। इस अवस्थामें होनेवाला भाव संयोगज है। वे पदार्थ चाहे पुद्गल हों चाहे जीव श्रौर पुद्गल हों। जहाँ सजातीय २ पुद्गल होते हैं वहाँपर एक तरहका भी परिणाम होता है श्रौर मिश्र भी होता है। जैसे दाल श्रौर चांवलके संयोगसे खिचड़ी होती है। उसका स्वाद न चांवलका है श्रीर न दालका। एवं हल्दी चूनामे दोनोंका एक तृतीय रंग हो जाता है। यद्यपि चूना हल्दी पृथक् पृथक् हैं परन्तु लाल रंग दोनोंका है। जिस पदार्थमें चाहे वह चेतन हो चाहे अचेतन, जो गुण और पर्याय रहते हैं वे गुण और पर्याय उसीमें तन्यय हो के रहते हैं। इतना अन्तर है कि गुण अन्वयी रूपसे निरन्तर द्रव्यके साथ तादात्म्य रखता है और पर्याय कमवर्ती होनेके कारण व्यतिरेक रूपसे द्रव्यके साथ तादत्त्य रखता है। स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कहा है-

'परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयं ति परणत्तम्।'

जैसे श्रात्मामे चेतना गुण है श्रीर मति श्रुतादि उसकी पर्याय हैं सो चेतना तो श्रन्वयी रूप है श्रीर पर्यायें क्रमवर्ती हैं। पर्याय च्रणभंगुर हैं स्त्रौर गुण नित्य हैं। यदि पर्यायोंसे भिन्न गुण न माना जावे तो एक पर्यायका भंग होनेपर जो दूसरी पर्याय देखी जाती है वह विना उपादानके कहाँसे उत्पन्न होती? श्रतः मानना पड़ेगा कि पर्यायका आधार कोई है। जो आधार है उसीका नाम तो गुण है और उसका जो विकार है वही पर्याय है। जैसे श्राम्र श्रारम्भमें हरित होता है। काल पाकर वही पीत हो जाता है। इससे यह सिद्धान्त निर्गत हुआ कि श्राम्रका रूप हरित श्रवस्थासे पीत श्रवस्थामे परिवर्तित हुश्रा इसीका नाम उत्पाद श्रौर व्यय है। सामान्य रूप गुण ध्रौट्यरूप है ही। इस तरह विवेक पूर्वक विकृति परिणितिको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आज लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं पर धर्मके निकट नहीं पहुँच पाते। वह तो उसके ढाँचेमें ही धर्म बुद्धि कर प्रतारित हो रहे हैं। परमाथसे धर्म वह वस्तु है जो श्रात्माको संसार वन्धनसे मुक्त कर देता है। उसके वाधक पाप श्रीर पुण्य हैं। सबसे महान् पाप मिथ्यात्व है। इसके उद्यमें जीव श्रापको नहीं जानता। पर पदार्थोंमें श्रात्मीयताकी कल्पना करता है। कल्पना ही नहीं उसके स्वत्वमे श्रपना स्वत्व मानता है। शरीर पुद्गल परमाणु पुञ्जका एक पुतला है। मिध्यात्वके चद्यमें यह जीव उसे ही आत्मा मान वैठता है श्रीर श्रहनिश उसकी सेवामें व्यय रहता है। यदि कोई कहे भाई। शरीर तो श्रनित्य है इसके श्रर्थ इतने व्यय क्यों होते हो ? कुछ परलोककी भी चिन्ता करो। तत्काल उत्तर मिलता है कि न तो शरीरातिरिक्त कोई आत्मा है श्रौर न परलोक है। यह तो लोगोंकी वख्रना करनेके श्रर्थ एक जाल पण्डित महोदयों तथा । ऋषिगणोंने बना रक्खा है ! कहा है-

> यावजीवं सुखं जीवेत् ऋगं कृत्वा घृतं पिवेत् । भस्मीभृतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

न जन्मन प्राह न च पञ्चतायाः परो विभिन्नेऽवयवे न चान्तः। विशन निर्यन्न च दश्यतेऽस्माद्भिन्नो न देहादिह कश्चिदात्मा॥

चार्वाकका सिद्धान्त है कि पृथिवी जलादिका समुदाय ही एक श्रात्मा है। जैसे गेहूँ श्रादि सड़कर मादक शक्ति उत्पन्न कर देते हैं ऐसे ही पृथिव्यादि तत्त्व चेतन शक्ति उत्पन्न कर देते हैं। शरीरसे श्रतिरिक्त जीव पदार्थ न तो जन्मसे पहले श्रीर न मरणके पश्चात् किसीने देखा है फिर उसके पीछे क्यों पड़ा जाय ?

यहाँसे चल कर सिमरा तथा सिरसागंजमे खास मुकाम कर माघ शुक्ल ४ सं० २००७ को फिरोजाबाद पहुँच गये। यहाँ पर श्री आचार्य सूर्यसागरजी महाराजका दर्शन हुआ। आप बहुत ही शान्त तथा उपदेश हैं। आपके प्रवचनसे हमको पूर्ण शान्ति हुई। आपका कहना है परसे सम्बन्ध त्यागो, परसे सम्बन्ध रखना ही संसार की जड़ है। जहाँ परसे सम्बन्ध किया वहाँ मोह हुआ और मोहके होते ही उसमें निजत्व की कल्पना हो जाती है। आपके उपदेशका आत्मा पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा किन्तु श्मशान वैराग्यवत् ही दशा रही। वहीं पर महाराजसे मोह करने लगे। केवल वचन की कुशलता और कायकी क्रियासे महाराजको यह प्रत्यय करा दिया कि हमने आपके उपदेश पर अमल किया। देखनेवाले दर्शक भी हमारी क्रियाको देख कर प्रसन्न हुए—शिष्य हो तो ऐसा हो। परन्तु यह सब नाटकका दृश्य था—अन्तरङ्गमे छुछ भी न था। कल्याणका मार्ग यह नहीं ऐसी चेष्टा केवल स्वात्मवञ्चनामे ही परिणत हो जाती है।

### फिरोजावादमें विविध समारोह

श्री छदामीलालजीने फिरोजावादमे वहुत भारी उत्सवका श्रायो-जन किया था। इस प्रान्तका यह वर्तमान कालीन उत्सव सबसे निराला था। क्या त्यागी, क्या व्रती, क्या विद्वान्, क्या सेठ, क्या राजनीतिमे काम करनेवाले—सव लोगोंके लिये मेलामें एकत्रित करनेका प्रयास किया था। मेलाका बहुत श्रधिक विस्तार था। रावटी श्रीर तम्बुश्रोंका नगर श्रपनी श्रलग शान दिखा रहा था। रात्रिके समय विजलीके वत्वोंका श्रनोखा चमत्कार देखनेके लिए श्रनायास जन-समूह एकत्रित हो जाता था। उत्सवका उद्घाटन उत्तर प्रदेशके तात्कालिक प्रधान मंत्री श्री पन्तजीने किया था। श्री श्राचार्य सूर्यसागरजी तथा हम लोगोंका नगर प्रवेशका उत्सव माघ शुक्त ५ सं० २००७ को सम्पन्न हुश्रा था। बहुत श्रधिक भीड़ तथा जुल्लुसकी सजावट थी।

इसी समय यहाँ श्री सूर्यसागरजी महाराजकी अध्यक्षतामें व्रती सम्मेलन, श्री सेठ राजकुमारजी सिंह इन्दौरकी अध्यक्षतामें जैन संघ मथुराका अधिवेशन और श्री काका कालेलकरकी अध्यक्ता में हीरक जयन्ती महोत्सव तथा वर्णी अभिनन्दन अन्य समर्पणका समारोह हुआ था। प्रातःकाल मुख्य पण्डालके सामने धूपमे प्रवचन प्रारम्भ हुआ। मुनिसंघ विराजमान था। बाहरसे ५०-५५ व्रती भी पधारे हुये थे जो यथायोग्य वैठे थे। अपार जनता एकवित थी। महाराजने मुमे प्रवचनके लिये बैठा दिया। मैंने कहा कि प्रवचनका अधिकार तो आचार्य महाराजका है। उनके समन्त मुमे

वोलनेका अधिकार नहीं पर उनकी आज्ञाका पालन करना हमारा कर्तेच्य है—

प्रकरण समयसारके वन्धाधिकारका था। 'रत्तो वंधिद कम्मं सुंचिद्' आदि गाथाका अवतरण देते हुये मैंने कहा कि मिध्यात्म, अज्ञान तथा अविरतहृप जो त्रिविध भाव हैं यही शुभाशुभ कर्मवन्धके निमित्त हैं, क्योंकि यह स्वयं अज्ञानादिहृप हैं। यही दिखाते हैं—

जैसे जब यह अध्यवसान भाव होता है कि 'इटं हिनस्मि' में इसे मारता हूँ तब यह अध्यवसानभाव अज्ञानमय भाव हे क्योंकि जो आत्मा सत् है, अहेतुक है तथा ज्ञित्रस्प एक क्रियावाला है उसका और रागद्वेषके विपाकसे जायमान हननादि क्रियाओंका विशेष भेदज्ञान न होनेसे भिन्न आत्माका ज्ञान नहीं होता अतः अज्ञान ही रहता है, भिन्न आत्मदर्शन न होनेसे मिध्यादर्शन रहता है और भिन्न आत्माका चारित्र न होने से मिध्याचारित्रका ही सद्भाव रहता है। इस तरह मोहकर्मके निमित्तसे मिध्यादर्शन मिध्याज्ञान और मिध्याचारित्रका सद्भाव आत्मामे है। इन्हींके कारण कर्मह्प पुद्गल द्रव्यका आत्माके साथ एक चेत्रावगाद्रह्म वन्व होता है।

यदि परमार्थसे विचारा जावे तो श्रातमा स्वतन्त्र है श्रीर यह जो स्पर्श रस गन्थ वर्णवाला पुद्गलद्रव्य है वह स्वतन्त्र है। इन दोनोंके परिणमन भी श्रनादि कालसे स्वतन्त्र हैं। परन्तु इन दोनोंके परिणमन भी श्रनादि कालसे स्वतन्त्र हैं। परन्तु इन दोनोंमें जीव द्रव्य चेतन गुणवाला है श्रीर उसमें यह शक्ति है कि जो पदार्थ उसके सामने श्राता है वह उसमें फलकता है—प्रतिभागित होता है। पुद्गलमें भी एक परिणमन इस तरहका है कि जिसमें उसमें भी रूपी पदार्थ मलकता है पर मेरेमें यह प्रतिभागित है लगा उसे श्रान नहीं। उसके विपरीत श्रातमाने जो पदार्थ प्रतिभागमान होता है उसे यह भान होता है कि ये पदार्थ मेरे शानमें श्राये। यही

त्रापत्तिका मूल है, क्योंकि इस ज्ञानके साथमे जब मोहका सम्बन्ध रहता है तब यह जीव उन प्रतिभासित पदार्थोंको श्रपनानेका प्रयास करने लगता है। यही कारण श्रनन्त संसारका होता है।

प्रत्येक मनुप्य यह मानता है कि पर पदार्थका एक श्रंश भी ज्ञानमें नहीं त्र्याता फिर न जाने क्यों उसे त्र्रपनाता है १ यही महती अज्ञानता है अतः जहाँ तक संभव हो आत्मद्रव्यको श्रात्मद्रव्य ही रहने दो। उसे श्रन्य रूप करनेका जो प्रयास है वही अनन्त संसारका कारण है। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा ? जो पर द्रव्यको श्रात्मीय द्रव्य कहेगा। ऐसा सिद्धान्त है कि जो जिसका भाव होता है वह उसका स्वधन है। जिसका जो स्व है वह उसका स्वामी है अतः यह निष्कर्ष निकला कि जब अन्य द्रव्य श्रन्यका स्व नहीं तव श्रन्य द्रव्य श्रन्यका स्वामी कैसे हो सकता है ? यही कारण है कि ज्ञानी जीव परको नहीं प्रहरण करता। मैं भी ज्ञानी हूं अतः मैं भी परको प्रहरण नहीं करू गा। यदि मैं पर इन्यको यह ण करूं तो यह अजीव मेरा स्व हो जावे श्रोर में श्रजीवका स्वामी हो जाऊंगा। श्रजीवका स्वामी श्रजीव ही होगा अतः हमे वलात्कार अजीव होना पड़ेगा परन्तु ऐसा नहीं, मैं तो ज्ञाता द्रष्टा हूँ श्रतः पर द्रव्यको प्रह्ण नहीं करूंगा । जब पर द्रव्य मेरा नहीं तव वह छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे अथवा जिस किस अवस्थाको प्राप्त हो, पर मैं उसे बहुण नहीं करूंगा। यही कारण है कि सम्यग्जानी, धर्म अधर्म अशन पान आदिको नहीं चाहता । ज्ञानमय ज्ञायक भावके सद्भावसे वह धर्मका केवल ज्ञाता दृष्टा रहता है। जब ज्ञानी जीवके धर्मका ही परिग्रह नहीं तब अधर्म का परिग्रह तो सर्वथा श्रसंभव है। इसी तरहसे न श्रशनका परिग्रह है श्रीर न पानका परिग्रह है क्योंकि इच्छा परिग्रह है ज्ञानी जीवके इच्छाका परिग्रह नहीं। इनको छादि देकर जितने प्रकारके पर

द्रव्यके भाव हैं तथा पर द्रव्यके निमित्तसे आत्मामे जो भाव हों हैं उन सबको ज्ञानी जीव नहीं चाहता। इस पद्धतिसे जिसने सर्व श्रज्ञान भावोंका वमन कर दिया तथा सर्व पदार्थोंके आलम्बनके त्याग दिया केवल टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावका अनुभव करता है उसके बन्ध नहीं होता। योगके निमित्तसे यद्यपि वन्ध होता है पर वह स्थिति और अनुभागसे रहित होनेके कारण अकिंचित्कर है। जिस प्रकार चूना आदिके श्लेषके बिना केवल ईटोंके समुदायसे महल नहीं वनता उसी प्रकार रागादि परिणामके बिना केवल मन वचन कायके ज्यापारसे बन्ध नहीं होता। अतः प्रयत्न कर इन रागादि विकारोंके जालसे वचना चाहिये।

शरीरादिसे भिन्न ज्ञाता दृष्टा लच्चणवाला स्वतन्त्र द्रव्य हूँ। मेरी जीवनमें जो स्पृद्दा है वही बन्धका कारण है। अनादिकालसे जीव श्रोर पुद्गलका सम्बन्ध हो रहा है इससे दोनों ही अपने अपने स्वरूपसे च्युत हो अन्य अवस्थाको धारण कर रहे हैं।

हेयोपादेय तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान श्रागमके श्रभ्याससे होता हैं परन्तु हम लोग उस श्रोरसे विमुख हो रहे हैं। श्री कुन्दकुन्द स्वामीने तो यहाँतक लिखा है कि—

> त्रागमचक्त् साहू इंदियचक्त् सन्वभूदाणि। देवा हि त्रोहिचक्त्र सिद्धा पुरण सन्वदो चक्ख् ॥

श्रर्थात् साधुका चज्ज श्रागम है, संसारके समस्त प्राणियोंका चज्ज इन्द्रिय हे, देवोंका चज्ज श्रवधिज्ञान है श्रीर सिद्ध परमेष्टीका चज्ज सर्वेदर्शी केवलज्ञान है। इसलिए श्रवसर पाया है तो श्रहनिश श्रागमका श्रभ्यास करो।

ं हमारे प्रवचनके वाद महाराजने भी जीवकी वर्तमान दशाका वर्णन किया और यह वताया कि देखो अनन्त ज्ञानका धनी जीव श्रज्ञानी होकर ज्ञानकी खोजमे इधर-उधर भटक रहा है। यह जीव अपनी श्रोर तो देखता ही नहीं है केवल परकी श्रोर देखता है। यदि अपनी श्रोर भी देख ले तो इसका कल्याण हो जावे। एक श्रादमी था, प्रकृतिका भोला था, त्र्यात्मज्ञानकी इच्छासे किसी विद्वानके यास गया श्रौर श्रात्मज्ञानकी भिन्ना मागने लगा। विद्वान् समभः-दार था इसलिये उसने विचार किया कि यह सीधा है श्रवः इस तरह नहीं सममेगा। उसने कह दिया कि उत्तरमे एक तालाव है। उसमें एक मगर रहता है, उसके पास जास्रो। वह तुम्हें श्रात्मज्ञान देगा । भोला त्रादमी वहाँ गया और मगरसे बोला कि तुम त्रात्म-ज्ञान देते हो १ मुक्ते भी दे दो। मगरने कहा हाँ देता हूँ। अनेको मानवोंको मैंने आत्मज्ञान दिया है। तुम भी ले जाओ पर एक काम करो मुक्ते जोरकी प्यास लग रही है अतः सामनेके कुएसे एक नोटा पानी लाकर पहले मुक्ते पिलाच्यो पश्चात् पियास शान्त होनेपर तुम्हें श्रात्मज्ञान दूंगा । श्रादमीने कहा कि यह मगर रात दिन तो पानीमें रह रहा है फिर भी कहता है कि मैं पिपासातुर हूँ, सामने कूपसे १ लोटा पानी ला दो। यह तो महामृखं है। यह क्या त्रात्मज्ञान देगा १ उस विद्वान्ने मुझे बड़ा धोखा दिया। मगरने कहा जिस प्रकार तुम हमारी चोर देख रहो हो उसी प्रकार अपनी चोर भी तो देखो। जिस प्रकार मैं जलमे रह रहा हूँ उसी प्रकार तुम भी तो श्रमन्त ज्ञानके वीच रह रहे हो। जिस तरह मुझे कूपके ज़लकी पिपासा है उसी तरह तुम्हे भी मुमसे श्रात्मज्ञानकी पिपासा है। भोला श्रादमी समम गया श्रौर तत्काल चिन्तन करने लगा कि त्रहो <sup>!</sup> मैंने श्राजतक श्रपने स्वभावकी श्रोर दृष्टि नहीं दी श्रीर द्रिद वन कर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण किया।

महाराजके प्रवचनके वाद सभा समाप्त हुई। सवने श्राहार ग्रहण किया। माघ शुक्ता ११ सं० २००७ को मध्याहके वाद १ वजेसे श्री महाराजकी अध्यक्तामे व्रती सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमे अनेक विवाद प्रस्त विपर्योपर चर्चा हुई। एक विपय यह था कि यदि कोई त्रिवर्णवाला जैनधर्मकी श्रद्धासे सहित हो और जैनधर्मकी प्रक्रियासे श्राहार तैयार करे तो व्रती उसके घर भोजन कर सकता है या नहीं? पक्त-विपक्की चर्चाके वाद यह निर्णय हुआ कि जैनधर्मका श्रद्धालु त्रिवर्णवाला यदि जैनधर्मकी प्रक्रियासे आहार वनाता है तो व्रती उसे प्रहण कर सकता है।

एक विषय था कि जुहककी नवधा भक्ति होना चाहिये या नहीं ? उस विषय पर भी वहुत वाद-विवाद हुँ आ परन्तु अन्तमें महाराजने निर्णय दिया कि नवधा भक्तिका पात्र मुनि है, जुहक नहीं। जुहकको पड़गाह कर पाटप्रक्षालन कराना तथा मन वचन काय और अन्न जलकी शुद्धता प्रकट कर आहार देना चाहिये।

एक विषय निमित्त उपादानकी प्रवलताका भी था। इम पर लोगोंने अनेक प्रकारसे चर्चा की। वातावरण कुछ अशान्त मा हो गया परन्तु अन्तमे यही निर्णय हुआ कि जनागम अने कात हिंछसे पदार्थका निरूपण करता है अतः कार्यकी सिद्धिके लिये निमित्त और उपादान दोनों आवश्यक हैं। केवल उपादानमें कार्यकी सिद्धि नहीं हो सकती और न केवल निमित्तसे किन्तु दोनोंकी अनुकूलतासे फार्यकी सिद्धि होती है। यह वात दूसरी हैं कि कहीं निमित्त प्रधान और कहीं उपादान प्रधान कथन हो पर उसका यह तात्पर्य नहीं कि दूमरेकी वहीं सर्वथा उपेत्ता हो।

चरणानुयोगके विरुद्ध प्रष्टुति करनेवाले व्रतियों ने महाराजने शान्त भावमे उपदेश दिया कि जैनागममें व्रत न लेनेको प्रपराय नहीं माना है किन्तु लेकर उसमें दोष लगाना या उसे भद्ग करना श्रपराध बताया है श्रतः 'समीच्य व्रतमादेवमानं पान्यं प्रयत्नतः' श्चर्यान् पूर्वापर विचार कर व्रत बहण करना चाहिये श्चीर बहण किये हुए व्रतको प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिये। मनुष्य पर्यायका सबसे प्रमुख कार्य चारित्र धारण करना ही है इसलिये यह दुर्लभ पर्याय पा कर श्रवश्य ही चारित्र धारण करना चाहिये। उन्हींने कहा कि श्रम्तरङ्गकी बात तो प्रत्यक्ष ज्ञानगम्य है पर बाह्ममें हिंसादि पश्च पापोंसे निवृत्ति होना सम्यक्चारित्र है। पापोंकी प्रवृत्तिसे ही श्राज संसार दुःखसे पीड़ित हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ हिंसा भूठ चोरी व्यभिचार श्रीर परिप्रहासिकके उदाहरण देखनेमे श्रा रहे हैं। श्राजका वातावरण ही पश्च पापमय हो रहा है। इसलिये विवेकी मनुष्यको इस वातावरणसे हट कर श्रपनी प्रवृत्तिको निर्मल बनाना चाहिये।

इसी व्रती सम्मेलनमें यह भी चर्चा आई कि आज त्यागी छोटी मोटी प्रतिहा लेकर घर छोड़ देते हैं और अपने आपको एकदम पराश्रित कर देते हैं। इस कियासे त्यागियोंकी प्रतिष्ठा समाजमें कम होती जा रही है। इस विषयपर महाराजने कहा कि समन्तभद्र स्वामीने परिष्रहत्यागका जो कम रक्खा है उसी कमसे यदि परिष्रहका त्याग हो तो त्यागी पुरुषको कभी व्ययताका अनुभव न करना पड़े। सातवीं प्रतिमा तक न्याय पूर्ण व्यापार करनेकी आगममें छूट है फिर क्यों पहली दूसरी प्रतिमाधारी त्यागी व्यापारि छोड़ भोजन वस्त्रादिके लिये परमुखापेन्नी बन जाते हैं। यद्यपि आशाधरजीने गृहिवरत आवकका भी वणेन किण है पर वह अपने पास इतना परिष्रह रखता है जितनेमें उसका निर्वाह हो सकता है। यथार्थमे पर गृह भोजन १० वीं ११ वीं व्रतिमासे शुरू होता है। उसके पहले जो व्रती पर गृह भोजन सापेन होते हैं उन्हे संक्तेशका अनुभव करना पड़ता है। पासका पैसा छोड़ दिया और यातायातकी इच्छा घटी नहीं ऐसी स्थितिमे कितने

ही त्यागी लोग तीर्थ यात्रादिके वहाने गृहस्थोसे पैसेकी याचना करते हैं यह मार्ग अच्छा नहीं है। यदि याचना ही करनी थी तो त्यागका आडम्बर ही क्यों किया १ त्यागका आडम्बर करनेके वाद भी यदि अन्तःकरणमे नहीं आया तो यह आत्मवज्रना कहलावेगी।

महाराजने यह भी कहा कि त्यागीको किसी संस्थावादमे नहीं पड़ना चाहिये। यह कार्य गृहस्थोंका है। त्यागीको इस वल-वलसे दूर रहना चाहिये। घर छोड़ा ज्यापार छोड़ा वाल वच्चे छोडे इस भावनासे कि हमारा कर्ण त्वका श्रहंभाव दूर हो श्रोर समताभावसे श्रात्मकल्याण करें पर त्यागी होने पर भी वह बना रहा तो क्या किया हस संस्थावादके दल-दलमे फॅसानेवाला तत्त्व लोकेपणाशी चाह है। जिसके हृदयमे यह विद्यमान रहती है वह संस्थाशों के कार्य दिखा कर लोकमे श्रपनी ख्याति वढाना चाहता है पर इस थोथी लोकेपणासे क्या होने जानेवाला है ? जब तक लोगोंका स्वार्य किसीसे सिद्ध होता है तब तक वे उसके गीत गाते हैं श्रोर जब स्वार्थमें कमी पड़ जाती है तो फिर टकेको भी नहीं पृहते। इस लिये श्रात्मपरिणामोंपर दृष्टि रखते हुए जितना उपदेश वन सके उतना त्यागी दे, श्रिधककी व्ययता न करे।

एक वात यह भी कही कि त्यागीको ज्ञानका अभ्यास अच्छा करना चाहिये। आज कितने ही त्यागी एसे हैं जो सम्यग्दर्शनका लज्ञण नहीं जानते, आठ मृल गुणोके नाम नहीं गिना पात। एमें त्यागी अपने जीवनका समय किस प्रकार यापन करते हैं वे जान। मेरी तो प्रेरणा है कि त्यागीको कम पूर्वक अध्ययन करनेका अभ्यास करना चाहिये। समाजमे त्यगियोको कमी नहीं परन्तु जिन्हें आगमका अभ्यास है एमें त्यागी कितने हैं ? आगमजानके दिना लोकमे प्रतिष्टा नहीं और प्रतिष्टाकी चाह घटी नहीं उमलिये त्यागी उट पटांग कियाएँ वता कर भोली भाली जनतामें श्रपनी प्रतिष्ठा चनाये रखना चाहते हैं पर इसे धर्मका रूप कैसे कहा जा सकता है ? ज्ञानका श्रभ्यास जिसे है वह सदा श्रपने परिणामोंको तोल कर ही व्रत धारण करता है। परिणामोंकी गतिको समसे विना ज्ञानी मानव कभी प्रवृत्ति नहीं करता श्रतः मुनि हो चाहे श्रावक, सबको श्रभ्यास करना चाहिये। श्रभ्यासकी दृष्टिसे यदि दश बीस त्यागी एकत्र रह कर किसी विद्वानसे श्रध्ययन करना चाहते हैं तो गृहस्थ लोग उसकी व्यवस्था कर दे सकते हैं। पर ऐसी भावनावाले हों तव न। व्रती विद्यालय स्थापित होना चाहिये ऐसी माँग देख श्री छदामीलालजीने कहा कि यदि व्रती विद्यायल कहीं स्थापित हो तो हम १५०) मासिक दो वर्ष तक देते रहेगे। एक दो महाशयोंने श्रीर भी २०) २०) ३०) ३०) रुपया मासिक देते रहनेकी घोपणा की।

महाराजने यह भी कहा कि आजका व्रतीवर्ग चाहे मुनि हो चाहे आवक, स्यच्छन्द होकर विचरना चाहता है यह उचित नहीं है। मुनियोंमे तो उस मुनिके लिये एकविहारी होनेकी आजा है जो गुरुके सान्निध्यमे रहकर अपने आचार-विचारमे पूर्ण दच्च हो तथा धर्मप्रचारकी भावनासे गुरु जिसे एकाकी विहार करनेकी आज्ञा दे हैं। आज यह देखा जाता है कि जिस गुरुसे दीक्षा लेते हैं उसी गुरुकी आज्ञा पालनमें अपनेको असमर्थ देख नवदीचित मुनि स्वयं एकाकी विहार करने लगते हैं। गुरुके साथ अथवा अन्य साथियोंके साथ विहार करनेमें इस बातकी लज्जा या भयका अस्तित्व रहता था कि यदि हमारी प्रवृत्ति आगमके विरुद्ध होगी तो लोग हमे बुरा कहेगे, गुरु प्रायश्चित देंगे पर एकविहारी होने पर किसका भय रहा विनता भोली है इसलिए कुछ कहती नहीं, यदि कहती है तो उसे धर्मनिन्दक आदि कहकर चुप कर दिया जाता

है। इस तरह धीरे धीरे शिथिलाचार फैलता जा रहा है। किसी मुनिको दिच्ण श्रौर उत्तरका विकल्प सता रहा है तो किसीको वीसपंथ त्रोर तेरहपंथका। किसीको ट्रसा वहिष्कारकी धुन है तो कोई शूद्र जल त्यागके पीछे पड़ा है। कोई स्त्री प्रचालके पच्में मस्त है तो कोई जनेऊ पहिराने ख्रोर कटी में धागा वंधवानेमे व्यप हैं। कोई प्रन्थ मालात्रोंके संचालक वने हुए हैं तो कोई प्रन्य छपवानेकी चिन्तामे गृहस्थोंके घर घरसे चन्दा माँगते फिरते हैं। किन्हीं के साथ मोटरें चलती हैं तो किन्हीं के साथ गृहस्य जन दुर्लभ कीमती चटाइयाँ और आसनके पाटे तथा छोलदारियाँ चलती हैं। त्यागी ब्रह्मचारी लोग अपने लिए आश्रय या उनकी सेवामें लीन रहते हैं। 'वहती गङ्गामें हाथ धोनेसे क्यों चूकें' इस भावनासे कितने ही विद्वान् उनके अनुयायी वन आँख मीच चुप वैठ जाते हैं या हाँ में हाँ मिला गुरुभक्तिका प्रमाणपत्र प्राप्त करनेमें संलग्न रहते हैं। ये अपने परिणामोंकी गतिको देखते नहीं हैं। चारित्र श्रीर कपायका सम्बन्ध प्रकाश श्रीर श्रन्धकारके समान है। जहाँ प्रकाश है वहाँ अन्धकार नहीं और जहाँ अन्धकार है वहाँ प्रकाश नहीं। इसी प्रकार जहाँ चारित्र है वहाँ कपाय नहीं श्रीर जहाँ कपाय है वहाँ चारित्र नहीं। पर तुलना करनेपर वाजे वाजे त्रतियोंकी कपाय तो गृहस्योंसे कहीं श्रधिक निकलती है। व्रतीके लिये शालमे नि शल्य वताया है। शल्योंमें एक माया भी शल्य होती है। उसना तात्पर्थ यही है कि भीतर कुछ रूप रखना और,वाहर वृद्ध स्प दिखाना। व्रतीमें ऐसी बात नहीं होना चाहिये। वह तो भीतर बाहर मनसा-त्राचा-कर्मणा एक हो। कहनेका तालर्य यह है कि जिस उद्देश्यसे चारित्र प्रहण किया है इस ख्रोर हिष्टेपान करो ख्रीर श्रपनी प्रमृत्तिको निर्मल यनाश्रो। उत्मृत्र प्रमृतिमे प्रतरी शोभा नहीं।

महाराजकी उक्त देशनाका हमारे हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा। इसी व्रती सम्मेलनमें एक विषय यह आया कि क्या जुल्लक वाहन-पर वैठ सकता है ? महाराजने कहा कि जब चुल्लक पैसेका त्याग कर चुका है तथा ईर्यासमितिसे चलनेका अभ्यास कर रहा है तब वह वाहन पर कैसे वैठ सकता है ? पैसेके लिये उसे किसीसे याचना करना पड़ेगी तथा पैसोंकी प्रतिनिधि जो टिकिट श्रादि है वह अपने साथ रखना पड़ेगी। आखिर विचार करो मनुष्य चुल्लक हुआ क्यों ? इसीलिये तो कि इच्छाएं कम हों ? यातायात कम हो, सीमित स्थानमें विहार हो। फिर ज़ुल्लक बननेपर भी इन सब बातोंमें कमी नहीं आई तो जुल्लक पद किस लिये रखा ? अमुक जगह जाकर धर्मोपदेश देंगे, अमुक जगह जाकर अमुक कार्य करेंगे ? यह सब छल जुल्लक होकर भी क्यो नहीं छूट रहा है ? तुम्हे यह कषाय क्यों सता रही है कि अमुक जगह उपदेश देंगे १ अरे, जिन्हे तुम्हारा उपदेश सुनना ऋपेचित होगा वे स्वयं तुम्हारे पास चले आवेंगे। तुम दूसरेके हितको व्याज बनाकर स्वयं क्यों दौड़े जा रहे हो ? यथार्थमें जो कौतुक भाव ज्ञुहक होनेके पहले था वह अब भी गया नहीं। यदि नहीं गया तो कौन कहने गया था कि तुम जुलक हो जात्रो ? अपनी कषायकी मन्दता या तीव्रता देखकर ही कार्य कराना था। यह कहना कि पख्चम काल है इसलिये यहाँ ऐसे होते हैं यह मार्गका श्रवणवाद है। श्रस्सी तोलेका सेर होता है पर इस पछ्चम कालमें आप पौने अस्सी तोलेके सेरसे किसी वस्तुको ग्रहण कर लोगे ? 'नहीं, यहाँ तो चाहते हो श्रस्सी तोलेसे रत्ती दो रत्ती ज्यादा ही हो पर धर्माचरएामे पच्चम कालका छल ग्रहण करते हो। लोग कहते हैं कि दिचाएक ज्ञल्लक तो बैठते हैं ? पर उनके बैठनेसे क्या वस्तुतत्त्वका निर्णय हो जावेगा ? वस्तुका स्वरूप तो जो है वही रहेगा। दक्षिण और

उत्तरका प्रश्न वीचमे खड़ा कर देना हितकी वात नहीं। श्रस्तु, इसके बाद दूसरे दिन श्री भैया साहव राजकुमारसिंह इन्दौरवालोंकी श्रध्यच्तामे जैनसंघ मथुराका वार्पिक श्रधिवेशन हुत्रा। यह प्रयत्न पं० राजेन्द्रकुमारजीका था। श्रपार भीड़के वीच उत्सव प्रारम्भ हुन्त्रा । श्रध्यच् महोदयका भाषण् हुन्त्रा । शुभ-कामनाएँ आदि अवण कराई गई। दूसरे दिन फिर खुला अधिवेशन हुआ। अनेक प्रस्ताव पास हुए। इसके वाद एक दिन श्री काका कालेलकरकी अध्यत्ततामे हीरक जयन्ती समारोह तथा अभि-नन्द्न प्रन्थ समर्पणका समरोह हुआ। विद्वानोंके वाद श्री कालेल-करने हमारे हाथमें प्रन्थ समर्पण कर त्रपना भाषण दिया। उन्होंने जैनधर्मकी वहुत प्रशंसा की। साथ ही हरिजन समस्या पर वोलते हुए कहा कि यह म्पर्शका रोग जैनधर्मका नहीं हिन्दू धर्मसे त्र्याया है। यदि जैनियोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति रही तो मुक्ते कहना पड़ेगा कि श्राप लोग नामसे नहीं किन्तु परिणामसे हिन्दू चन जावेंगे। जैनधर्म ऋत्यन्त विशाल है। उसकी विशालता यह है कि उसमे चारों गतियोंमे जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी हैं वे श्रनन्त संसारके दुखोंको हरनेवाला सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। धर्म किसी जातिविशेषका नहीं। वर्म तो अधर्मके अभावमे होता है। श्रधर्म श्रात्माकी विकृत श्रवस्थाको कहते हैं। जब तक धर्मका विकाश नहीं तव तक सर्वे आत्माएँ अधर्म रूप रहतीं हैं। चाहं ब्राह्मण हो, चाहे क्षित्रिय हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शृह हो, शृहमें भी चाहे चाण्डाल हो, चाहे भंगी हो, सम्यग्दर्शनके होने ही यह जीव किसी जातिका हो पुण्यात्मा जीव कहलाता है अतः किसीको हीन मानना सर्वया श्रनुचित है।

समारोह समाप्त होनेके बाद श्राप सध्याकाल हमारे निवास स्थानपर भी श्राये। मांसाहार श्राटि विपयोंपर चर्चा होती रही। त्रापने स्वीकृत किया कि समय बड़ा खराब है। सरकार नवीन है। यदि जनताने पूर्ण सहयोग दिया तो देंशकी परिस्थितिको हमारी सरकार संभाल लेगी। अभिनन्दन अन्थके तैयार करने तथा इस विशालरूपमे उत्सव सम्पन्न करानेमें श्री प॰ पन्नालाल जी साहित्याचार्य श्रोर पं॰ खुशालचन्द्र जी साहित्याचार्यको वड़ा श्रम करना पड़ा है। यहां का उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। श्री लाला छदामीलालजीने स्याद्वाद विद्यालयके घाटका जीर्णोद्धार कराने के लिए १०००) दश हजार का दान घोषित किया।

फालगुन कृष्ण १ सं० २००७ को श्रापके यहां हमारा श्राहार हुआ। श्राप ३ भाई हैं। श्रापने श्रपने समले भाईका वालक गोद लिया है। श्रापने २० लाखका दान किया है। एक दो लाखसे अपर, मन्दिर बनानेका भी विचार है, जिसकी नीव गिर चुकी है। श्राप सुशील हैं। जो वादा करते हैं उसे पूर्ण करते हैं। श्रापने जो मेला भराया उसमें बहुत उदारतासे काम लिया। ७५ व्रती महानुभावों का प्रतिदिन भोजन होता था। पं० कैलाशचन्द्र जी, पं० फूजचन्द्र जी, पं० पन्नालाल जी, पं० खुशालचन्द्र जी, राजकृष्ण जी सहेन्द्रकुमार जी श्रादि अनेक विद्वान इस मेलामे श्राये थे। श्रीमन्त वर्ग भी पुष्कल था। मेलाका प्रवन्ध पं० राजेन्द्र-कुमारजी द्वारा बहुत उत्तम रीतिसे हुआ। किसीको कोई कष्ट नहीं होने दिया।

द्वितीयाके दिन श्री पं० माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्यके घर भोजन किया। तदनन्तर श्री निसयाजीके मन्दिरमे आये। थोड़ी देर आरामकर सामायिक किया। तत्पश्चात् १ वजे शिकोहावादके लिए प्रस्थान किया। प्रस्थानके पूर्व श्री आचार्य महाराजके पास गया तो उन्होंने आशीर्वाद देते हुये कहा कि तेरा अवश्य कल्याण होगा, तू भोला है तुक्तसे प्रत्येक मनुष्य अनुचित लाभ उठाना चाहता है। तेरी श्रवस्था वृद्ध है श्रतः श्रव एक स्थानपर रहकर धर्म साधन कर इसीमें तेरा कल्याण है, धर्म निःस्पृहतामे है।

श्री पं॰ राजेन्द्रकुमारजी वा श्री छदामीलालजी श्रादि श्रनेक सज्जन पहुँचानेके लिये श्राये। श्रनेक प्रकारका संलाप हुन्ना। सबके मुखसे श्री छदामीलालकी प्रशंसाके पोषक वाक्य निकले। मेलामें जवलपुरसे श्रनेक सज्जन तथा सागरसे सेठ भगवानदासजी श्रादि श्रनेक महानुभाव पधारे थे और सबने सागर चलनेकी प्रेरणा की थी इसलिये मनमे एकवार सागर पहुँचनेका निश्चय कर लिया।

## स्वर्णगिरिकी ओर

फिरोजावादसे ६ मील चलकर शिकोहावादमे ठहर गये। श्रध्यापिकाके यहाँ भोजन किया। यहाँ पर मन्दिर वहुत सुन्दर श्रौर स्वच्छ है। ५० घर पद्मावतीपुरवालोंके हैं। परस्परमें मैत्रीभाव है। रात्रिको शाखसभा होती है। हम जहाँ पर ठहरे थे वह जैन-पुस्तकालयका स्थान था परन्तु विशेष व्यवस्था नहीं। ज्ञानका श्रादर नहीं, जो छुछ द्रव्य लोग व्यय करते हैं वह मन्दिरकी शोभामें लगाते हैं। ज्ञानगुण श्रात्माका है। उसके विकाशमें न द्रव्य लगाते हैं श्रौर न समयका सदुपयोग करते हैं। केवल वाह्यमें संगममेर श्रादिका फर्स लगाकर तथा वेदीमे सुवर्णका चित्राम श्रादि बनवा नेत्रोंके विपयको पुष्ट करते हैं। श्रात्माका स्प्रभाव ज्ञाता दृष्टा है उसको दृष्टित कर राग श्रौर द्वेपके द्वारा किमीको

इष्ट श्रीर श्रनिष्ट मानकर निरन्तर परको श्रपनाने श्रीर न श्रपनानेमे ही दु:खके पात्र बनते हैं।

फाल्गुन कृष्णा ५ सं० २००७ को बटेश्वर श्रा गये। यहाँ पर भट्टारकजोके मन्दिरमें ठहर गये। मन्दिर बहुत रम्य और विशाल है । नीचेके भागमे ठहरे । स्तान कर ऊपर श्राये तथा मूर्तिके दर्शन कर गद्गद हो गये। काले पाषाणकी ४ फुट ऊँची श्री त्राजितनाथ भगवान्की मूर्ति अत्यन्त मनोज्ञ है। वीतराग भावका उदय जिसके दर्शनसे होता है वह प्रतिमा मोचमार्गमें सहायक है। आचार्योने इसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका बाह्य कारण बताया है। यद्यपि वीतरागता वीतरागका धर्म है श्रीर वीतराग श्रात्मा मोहके अभावमे होता है। किन्तु जिस आत्मामें वीतरागताका उदय होता है, उसकी मुद्रा भी बाह्यमें शान्तरूप हो जाती है-शरीरके अवयव स्वभावसे ही सौम्य हो जाते हैं। यह असम्भव वात नहीं, जिस समय श्रात्मा क्रोध करता है उस समय इसके नेत्र आरक्त और मुख भयंकर आकृतिको धारण कर लेता है, शरीरमे कम्प होने लगता है, दूसरा मनुष्य देख कर भयवान् हो जाता है। इसी तरह जब इस प्राणीके शृङ्गार रसका उदय त्राता है तव उसके शरीरका अवलोकन कर रागी जीवोंको रागका उदय हो जाता है। जैसे कालीकी मूर्तिसे भय और हिंसकता मलकती है तथा वेश्याके श्रवलोकनसे रागादि भावोंकी उत्त्पत्ति होती है वैसे ही वीतरागके दर्शनसे जीवोंके वीतराग भावोंका उदय होता है। बीतरागता कुछ वाह्यसे नहीं आती। जहाँ राग परिएतिका अभाव होता है वहीं वीतरागताका उदय हो जाता है।

वटेश्वरसे ५ मील चल कर वाह आगये तथा मन्दिरकी धर्म-शालामे ठहर गये। थकानके कारण ज्वर हो गया। अव शारीरिक शक्ति दुवेल हो गई, केवल कषायसे भ्रमण करते हैं। १ वार भोजन

करनेत्रालेको मध्याह्नके बाद गमन करना अपध्य है। वैसे तो नीतिमे कहा है 'श्रध्वा जरा मनुष्याणामनध्वा वाजिनां जरा' अर्थान् मार्ग चलना मनुष्योंका बुढ़ापा लाता है। श्रीर मार्ग न चलना घोड़ोंका बुढ़ापा लाता है। यह व्यवस्था प्राचीन ऋषियोंने दी है किन्तु इसका अमल नहीं करते जिसका फल अच्छा नहीं। वाह अच्छा त्राम है। यहाँके जैनी भी सम्पन्न हैं। यदि लोगोंमे परस्पर सौमनस्य हो जावे तो १ अच्छा छात्रावास चल सकता है। लोगोंसे कहा गया तथा उन्होंने स्त्रीकारं भी किया। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रवचन हुन्त्रा । उपस्थिति ४० मनुष्य तथा स्त्रियोंकी थी । त्रागरासे श्र.युत ख्यालीरामजी तथा एक महाशय श्रौर श्रा गये। प्रवचन हुआ। इस वात पर वल दिया कि यदि इस प्रान्तमे एक छात्रावास हो जावे तो छात्रोंका महोपकार हो । इसके श्रर्थ २ वजेसे १ सभा चुलाई गई। उपस्थिति ५० के लगभग होगी। अन्ततो गत्वा २ अपद्मियोंने २ कोठा वनवानेका वचन दिया तथा ५२००) के लग-भग चन्दा हो गया। चन्दा विशेष न होनेका कारण लोगोंकी स्थिति सामान्य थी । फिर भी यथाशक्ति सवने चन्दा दिया । श्री ख्याली-रामजी त्रागरावालोंने कहा कि यदि तुम लोग ७०००) इक्टा करलो तो शेष रुपया इम आगरासे आपको दे देवेंगे। किन्तु यहाँ की जनता श्रभी उसकी पूर्ति नहीं कर सकती। विश्वास होता है कि यह छात्रावास पूर्ण हो जावेगा। जैनियोंमे दानकी शुटि नहीं परन्तु योग्य स्थानोंमें द्रव्यका सदुवयोग नहीं होता । इस प्रान्तमे शिक्षाकी ब्रुटि वहुत है। ऐसे स्थानोंमे छात्रावासकी महती श्रावश्यकता है। यहाँपर प्रामीण जनता बहुत हैं। देहातमे शिक्ताके साधन नहीं। मनुष्य इतने वैभवशाली नहीं कि छात्रोंको नगरोंमे भेज सकें। श्राजकलके समयमे २०) मासिक तो सामान्य भोजनको चाहिये।

तीसरे दिन भी यहाँ प्रवचन हुन्ना। न्नाज उपस्थिति पिछले दिनोसे अधिक थी। तहसीलदार, नायव तहसीलदार तथा वकील त्र्यादि विशिष्ट लोग त्र्याये । वहुतसे पण्डित महोदय भी उपस्थित थे । प्रवचन सुन कर सव प्रसन्न हुए। जैनधर्म तो प्राणीमात्रका कल्याण चाहता है। उसकी वात सुनकर किसे प्रसन्नताका त्रानुभव न होगा ? केवल त्रावश्यकता इस वातकी है कि श्रोता सद्भावसे सुने त्रीर वक्ता सद्भावसे कहे। फाल्गुन कृष्णा ६ को २ वजे बाद जब यहाँसे सामरमऊ चलने लगे तव यहाँके उत्साही युवकोंने कहा कि यहाँ १ कन्याशाला हो जावे तो उनका बड़ा उपकार हो। मैंने कहा कि करना तो तुमको है चन्दा करो। १५ मिनटमे ४३) मासिकका चन्दा हो गया। ६ मासका चन्दा पहले देनेका निर्णय हुआ। सव लोगोंमे उत्साह रहा। ३॥ बजे यहाँसे चल दिये। १५ युवक सामरमऊतक पहुँचाने त्र्राये । यहाँपर १ **बु**ढ़ियाने सबको सायंकालका भोजन कराया। रात्रिको शास्त्रप्रवचन हुत्रा। यहाँपर बुढ़ियाकी एक लड़की विधवा है। ३० वर्षकी श्रायु है। नाम जिनमती हैं, बुद्धिमती है। हमने कहा महावीरजी पढ़ने चली जा। उसने स्वीकार किया कि जाऊँगी। बुढ़िया ने १०) मासिक देना स्वीकार किया। यदापि उसकी इतनी शक्ति न थी तथापि उसने देना स्वीकृत किया। उसका कहना था कि मैं अपनी लड़कीको अनाथ क्यों बनाऊँ ? जब तक मेरे पास द्रव्य है उसे दूंगी। लडकी भी सुशीला है। संसारमें श्रनेक मनुष्य उपकार करने योग्य हैं परन्तु जिनके पास धन है उनके परिणाम यदि तद्नुकूल हों तो काम बने पर ऐसा हो सकना संभव नहीं है। यह कर्मभूमि है। इसमे सर्व मनुष्य सहश नहीं हो सकते।

सागरमऊसे ५ मील चलकर नद्गुवाँ श्रा गये। श्राम श्रच्छा है, मन्दिर विशाल है, भट्टारकका बनाया है। इस श्रान्तमें भट्टारकोंने प्रायः श्रानेक प्रामोंमे मन्दिर वनवाये हैं, वड़े वड़े विशाल मन्दिर हैं। एक समय था कि जब भट्टारकों द्वारा जैनधर्मकी महती प्रभावना हुई परन्तु जबसे उनके पास परिप्रहकी प्रचुरता हुई श्रीर वे यन्त्र मन्त्र तथा श्रीषध श्रादिका उपयोग करने लगे तबसे इनका चारित्र श्रष्ट होने लगा श्रीर तभीसे इनका चमत्कार चला गया। श्रव इनकी दशा श्रत्यन्त शोचनीय होगई है। कई गहियाँ तो टूट गईं श्रीर जो हैं उनके भट्टारक समाजमान्य नहीं रहे।

नद्गुवाँसे ३ मील चलकर अटर आ गये। वीचमे २ मील पर चम्वलनदी थी। २ फर्लाङ्गका घाट था। प्रवचन हुआ, मनुप्य संख्या अच्छी थी। सायंकाल ४ वजे सावजनिक समा हुई, जन अजेन सभी आये। सवने यह स्वीकार किया कि शिक्ताके विना उपदेशका कोई असर नहीं होता अतः सर्वप्रथम हमे अपने वालकोंको शिक्ता देना चाहिए। शिक्षाके विना हम अविवेकी रहते हैं, चाहे जो हमें ठग ले जाता है, हमारा चारित्रनिर्माण नहीं हो पाता है, हम अजाना-वस्थाके कारण पशु कहलाते हैं। यद्यपि हम चाहते हैं कि मंसारमं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें परन्तु वोधके अभावमे हुछ नहीं जानते और सदा परके दास वने रहते हैं। ज्ञान ध्यात्माका गुण है परन्तु कोई ऐसा आवरण है कि जिससे उसका विकाश स्का रहता है। शिक्ताके द्वारा वह आवरण दूर हो जाता है।

दूसरे दिन प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। पाटशालांके लिए जनताने उत्साहसे चन्दा दिया परन्तु कुछ आदमी अन्तरहासे देना नहीं चाहते अतः चन्दा देनेमें वीसों तरहके रोड़े अट्यांत हैं। इंडनकी चेष्टासे सत्कार्यमें बहुत चित होती है। अटेरसे ५ मील चलकर परतापपुर आये। यहाँ १ चेत्यालय है, ४ घर जैनी हैं, बड़े प्रेमसे शास्त्र अवण किया, ३ घर शुद्ध भोजन बना, जिसके यहाँ हमाण आहार हुआ उसने ५१) अटेरकी पाठशालांको दिये। उमरे पर

श्री संभत्रसागरजीका श्राहार हुत्रा । उसने भी २१) दिये । यहाँके मनुष्य वहुत सज्जन हैं। कई मनुष्योंने श्रष्टमी चतुर्दशी श्रष्टाहिका तथा दशलच्राके दिनोंमे ब्रह्मचर्यका नियम लिया। परतापपुरसे ५३ मील चल कर पुरा आये। यह ग्राम १ टीकरी पर वसा है। यहाँ पर १ जिन मन्दिर है। मन्दिरकी मरम्मत नहीं। ४ घर जैनी हैं। सवने श्रष्टमी चतुर्दशीको ब्रह्मचर्यका नियम लिया। कई ब्राह्मणोंने भी रविवार तथा एकादशीको त्रह्मचर्य रखनेका प्रए किया । यहाँसे चल कर लावन आये। यहाँ पर २० घर जैनी हैं। १२ गोलालारे श्रोर म घर गोलसिंगारे हैं। २ जैनमन्दिर हैं। गोलसिंगारे सूरजपाल मन्दिरके प्रवन्धक हैं। त्राप भिण्डमे रहते हैं। मन्दिरकी ञ्चवस्या त्राच्छा नहीं, पूजनका भी प्रवन्ध ठीक नहीं, परस्परमें सौमनस्य नहीं। जो मनुष्य मन्दिरके द्रव्यका स्त्रामी वन जाता है वह शेषको तुच्छ सममने लगता है श्रौर मन्दिरका जो द्रव्य उसके हाथमे रहता है उसे वह अपना सममने लगता है। समय पाकर वह दरिंद्र हो जाता है श्रीर श्रन्तमे जनताकी दृष्टिमे उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती। त्रातः मनुष्यताकी रक्षा करनेवालेको उचित है कि मन्दिरका द्रव्य अपने उपयोगमे न लावे। द्रव्य वह वस्तु है कि इसके वशीभूत हो मनुष्य न्यायमार्गसे च्युत होनेकी चेष्टा करने लगता है। न्यायमार्गका अर्थ यही है कि आजीविकाका इस रीतिसे अर्जन करे कि जिसमे अन्यके परिणाम पीड़ित न हों, श्रात्मपरिणामसे जहाँ संक्लेशताका सम्बन्ध हो जाता है वहाँ पर विशुद्ध परिणामोंका अभाव हो जाता है और जहाँ विशुद्ध परिणामोंका श्रभाव होता है वहाँ शुद्धोपयोगको श्रवकाश नहीं सिलता।

लावनसे चल कर वरासो श्राये। यहाँ पर २ मन्दिर हैं। एक भन्दिर वहुत प्राचीन है। दूसरा उसकी श्रपेन्ना वड़ा है। वहुत सुन्दर बना हुआ है। २० फुट की कुरसी होगी। उसके उपर धर्मशाला है जिसमे २०० आदमी निवास कर सकते हैं। धर्मशाला से ६ फुट ऊँचाई पर मन्दिर है। मन्दिर के चौकमे ५०० मनुष्य सानन्द शास्त्र श्रवण कर सकते हैं। मन्दिर से ३ स्थानों पर दर्शन हैं। विम्य वहुंत मनोहर हैं। १२४४ सम्बत्की प्रतिमा हैं। शिल्पकार वहुत ही निपुण था। विम्बकी मुद्रासे मानों शान्ति टपक रही है। देखते देखते चित्त गद्गद् हो गया। कोई पद्मासन बिम्ब हैं और कोई खड्गासन है। दोनों तरहके विम्य मनोज्ञ हैं। वर्तमानमें वह कला नहीं। मन्दिर मनोज्ञ हैं परन्तु वर्तमानमें कोई जैनी विशेषज्ञ नहीं। सामान्य रूपसे पूजनादि कर लेते हैं। यहाँ पर आवश्यकता १ गुरुकुल की है जिसमे १०० छात्र अध्ययन करें।

वरासौसे बीचमें छैकुरी ठहरते हुए मौ श्रा गये। यहाँ पर ४० घर खरौत्रा गोलालारोंके हैं, इनमें श्री सुक्कीलालजी पुष्कल धनी हैं। श्रापके द्वारा १ मन्दिर सोनागिरिमें निर्माण कराया गया है। १ धर्मशाला भी श्रापने वहाँ निर्माण कराई है। श्राप सज्जन हैं। यदि श्रापकी रुचि ज्ञानमें हो जावे तो श्राप वहुत कुछ कर सकते हैं। परन्तु यही होना कठिन है, हो भी जावे श्रासन्भव नहीं। मोह ऐसा प्रवल है कि श्रपनी उन्नितिके अर्थ समर्थ होते हुए भी यह जीव कुछ नहीं कर सकता। ज्ञान श्राजीन करना प्राणीमात्रके लिये श्रावश्यक है श्रोर श्रवकाश भी प्रत्येकके पास है परन्तु यह मोही उसमे प्रयत्न नहीं करता। इधर उधरकी कथाएँ करके निज समयको विता देना ही इसका कार्य है।

श्राज श्रष्टाहिकाका प्रथम दिवस श्रर्थान् श्रप्टमी थी। मन्दिर में प्रवचन हुत्रा । उपस्थिति श्रच्छी थी। लोगोंमे स्वाध्यायकी प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम हो रही है। जो हैं भी वह व्यवस्थित नहीं इसीलिए जीवनभर स्वाध्याय करने पर भी कितने ही लोगोंको कुछ नहीं श्राता । स्वाध्याय श्रीर उसके फलका विवेचन करते हुए मैंने कहा— वाचना श्रीर पृच्छना यह स्वाध्यायके श्रद्ध हैं । स्वाध्याय संज्ञा तपकी है । तपका लक्ष्यण इच्छा निरोध है अतएव तप निर्जराका कारण है । वैसे देखा जाय तो स्वाध्यायसे तत्त्वबोध होता है तथा सुननेवाला भी इसके द्वारा वोध प्राप्त करता है । बोधका फल न्याय अन्थोंसे हानोपादानोपेन्ना तथा श्रज्ञाननिवृत्ति बतलाया है । जैसा कि श्री समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

> उपेत्ता फलमायस्य शेषस्यादानहानधी । पूर्वी वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥

यहाँ केवलज्ञानका फल उपेन्ना और शेप चार ज्ञानोंका फल हान और उपादान वहा है। अर्थात् हेयका त्याग और उपादेयका महरा है। यहाँ पर यह आशंका होती है कि ज्ञान चाहे पूर्ण हो चाहे अपूर्ण हो उसका फल एक तरहका ही होना चाहिये। तब नो फल केवलज्ञानका है वही फल शेष चार ज्ञानोंका होना चाहिये। इसीसे श्री समन्तमद्राचार्यने शेष चार ज्ञानका फल वही लिखा है—'पूर्वा वा।' यहाँ पर यह बात उठती है कि उपेन्ना तो मोहके अभावमें द्वादश गुणस्थानमें हो जाती है और केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थानमें होता है अतः केवलज्ञानका फल उपेन्ना उचित नहीं और शेष चार ज्ञानका फल अपदान हान भी उचित नहीं क्योंकि आदान और हान मोहके कार्य हैं इससे ज्ञानका फल अज्ञान निवृत्ति ही है।

मौ से ४ मील चलकर असौना आये। यहाँ ३ घर जैनियोंके हैं, १ छोटा सा वरंडा है। उसीमे जिनेन्द्रदेवके ३ छोटे विम्व हैं। आम अच्छा है। यहाँपर गेंहूँ अच्छा उत्पन्न होता है। सब लोग सुखी हैं। हमारे साथ १० आदमी थे, आमवासियों ने सवको

भोजन कराया । यामीण जन वहुत ही सरल व उदार होते हैं। इनमे पापाचारका प्रवेश नहीं होता। ये विषयोंके लोलुपी भी नहीं होते। इसके अनुकूल कारण भी शामवासियोंको उपलव्ध नहीं होते श्रतः उनके संस्कार अन्यथा नहीं होते। यहाँ १ वजेसे प्रवचन हुआ। श्रामके वहुत मनुष्य आये। सुखपूर्वक शास्त्र-श्रवण किया। मेरी बुद्धिमे तो आता है कि इस आत्माके अन्तर्गत अनेक सामर्थ्य हैं परन्तु अपनी अज्ञानतासे यह उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता। यहाँसे चलकर मगरौल ठहर गये श्रौर मगरौलसे प्रातः ६॥ वजे सौड़ा श्रामके लिये चल दिये। मार्गमे दोनों श्रोर गेहूँकी उत्तम कृपि थी। २ मील चलकर १ अटवी मिली। १ मीन बरावर अटवी रही । यहाँपर करदी लकड़ीका घना जंगल था परन्तु दतिया सरकार ने वेच दिया, इससे लकड़ी काट दी गई। अव नाम मात्र अटवी रह गई है। यहाँ अटवीके नीचे बहुत कोयला बनता है। यहाँसे १ मील चलकर काली-सिन्धु नदी मिली। वहुत वेगसे पानी वहता है। १ स्थानपर ऊपरसे जल प्रपात पड़ता है। नीचे एक बहुत भारी कुण्ड है। पत्थरकी वहुलता होनेसे कुण्डके चारों त्रोर दहलानें वनी हैं। कई मन्दिर हैं। एक मन्दिर महादेवजीका है। अनेक घाट वने हुए हैं। पानी अत्यन्त स्वच्छ तथा पीनेमे स्वादिष्ट हैं। शतशः खी श्रीर मनुष्य स्नान करते हैं। स्थान श्रत्यन्त रम्य श्रीर चित्ताकर्षक है। ऐसे स्थान पर यदि कोई धर्मध्यान करे तो वहुत ही उपयोग लगे। परन्तु वर्तमानमे लोगोंकी इस तरहकी विषम परिस्थिति है कि वे अपनी आवश्यकता ओकी पूर्तिमें ही अहिनश निमग्न रहते हें तथा व्ययताके कारण प्रसन्नतासे बिद्धत रहते हैं।

सौंड़ामें १० वजे पहुँच स्नानादिसे निवृत्त हो रामदयात छोटेलांलजी खरौत्राके यहाँ भोजन किया। त्रागामी दिन मेघका प्रकोप त्राधिक था त्रातः प्रातःकालका प्रयाण स्थगित कर सौंड़ामे ही १ घण्टा स्वाध्याय किया। तदनन्तर भोजन कर सामायिक किया और आकाशको निर्मल देख आगेके लिये चल पड़े। बीचमें वस्मी और नहला प्राममें ठहरते हुए रामपुरा आ गये। यहाँ पर १ घर जैसवाल जैनका है। इनके घरमे १ चैत्यालय है। नीचे मकान है, उपर अटारीमें चैत्यालय है। बहुत स्वच्छ है। श्री जीका विम्ब भी निर्मल है। हमारा भोजन इन्हींके घर हुआ। मध्यान्हकी सामायिकके वाद २ मील चल कर १ साधुके स्थान पर ठहर गये। साधु महन्त तो इन्द्रगढ़ गये थे। उनका शिष्य था जो भद्र मनुष्य था। वड़े प्रेमसे स्थान दिया। सुमें अनुभव हुआ कि अन्य साधुओं-में शिष्टता होती है—आतिथ्य सत्कार करनेमें पूर्ण सहयोग करते हैं। जैनधर्म विश्वधर्म है। प्राणीमात्रके कल्याणका कारण है परन्तु उसे आजकलके मनुष्योंने अपना धर्म समस्त रक्खा है। किसीको उच्च दृष्टिसे नहीं समस्तते। धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो आत्मासे बाह्य उसका अस्तित्व पाया जावे। वह तो कषायके अभावमें आत्मामे ही व्यक्त होता है।

रामपुरासे चल कर सेंतरी ठहरे श्रोर वहाँसे ५ मील चल कर इन्द्रगढ़ श्रा गये। श्रामके चारों श्रोर श्राचीन कोट है। श्रामके वाहर शीतला देवीका मन्दिर था उसीमे ठहर गये। इन्द्रगढ़से भड़ोल, केती तथा जुजारपुर ठहरते हुंए चेत्र कृष्ण १ सं० २००७ को सोनागिर श्रा गये। श्रानेमे विलम्ब हो जानेसे श्राज पर्वत पर वन्द्रनाके लिये नहीं जा सके। जनता बहुत एकत्रित थी। सत्यंकाल सामा यकादि कियाके श्रानत्तर जनता श्रा गई। पञ्जास्तिकायका स्वाध्याय किया। बहुत ही श्रपूर्व यन्थ है। इसका श्रमेय बहुत ही उपयोगी है। मूलकर्ता श्री इन्द्रकुन्द महाराज हैं। इस श्रम्थकी यृत्ति श्री श्रमृतचन्द्र सूरि द्वारा बनाई गई है जिससे मनों श्रमृत ही टपकता है। चेत्र कृष्ण २ को श्री १००० विमलसागरजी श्राये।

श्राप वहुत ही उत्तम विचारके मनुष्य हैं। इनके गुरु वहुत ही सरल हैं, इछ पढ़े नहीं हैं परन्तु श्रपने श्राचरणमें निष्णात हैं। मेरा तो यह ध्यान है कि सर्वथा आगमके जाननेसे ही आचरण होता हो यह नियम नहीं। ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं जिन्हें आगमका ऋंशमात्र भी ज्ञान नहीं और ऋहिंसादि व्रतोंका सन्यक् पालन करते हैं। 'प्रमत्तयोगात्प्राण्व्यपरोषणं हिंसा' इस स्त्रको वाँच नहीं सकते परन्तु फिर भी इस हिंसासे अपनी आत्माको रक्षित रखते हैं। इसी प्रकार 'श्रसद्सिधानमनृतम्' इस स्त्रको पढ़ नहीं सकते फिर भी मिथ्याभाषण कभी नहीं करते। 'श्रद्ता-दानमस्तेयम्' इस सूत्रकी व्याख्या त्रादि कुछ नहीं जानते किन्तु स्वप्रमे परायी वस्तुंके बहणके भाव नहीं होते। 'मैथुनमब्रह्म' इसके श्राकारको नहीं जानते किन्तु स्त्रकीय परिणतिमें स्त्रीविषयक भोगका भाव नहीं होता। एवं 'मूच्छी परिप्रहः' इसका अथ नहीं जानते फिर भी पर पदार्थोंमें मूच्छी नहीं करते। इससे सिद्ध हुआ कि आगममें नो लिखा गया है वह आत्माके विशिष्ट परिणामोंका ही शब्द रचनारूप विन्यास है।

श्री ब्रह्मचारी छोटेलालजी तथा भगत सुमेरुचन्द्रजी भी यहाँ श्रा गये जिससे सुमे परम हर्ष हुआ। इनके साथ चतुर्थीको सानन्द वन्द्रना की। यह चेत्र श्रत्यन्त रम्य श्रीर वैराग्यका उत्पादक है। श्री चन्द्रप्रभके मन्दिरके सामने सङ्गममरके फर्ससे जड़ा हुआ एक बहुत बड़ा रमणीय चवृतरा है। सामने सुन्दर मानस्तम्भ है। चवृतरा इतना वड़ा है कि उसपर ५ महस्त्र मनुष्य सानन्द धर्म श्रवण कर सकते हैं। यहाँसे दृष्टिपात करनेपर पर्वतकी अन्य काली-काली चट्टानें बहुत भली माल्यम होती हैं। प्रावःकाल सूर्योदय के पूर्व जब लाल लाल प्रभा सङ्गममरके इवेत फर्सपर पड़ती है तब बहुत सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। मन्दिरके श्रन्दर पूजन

त्रादिकी सुन्दर व्यवस्था है किन्तु यह सब होते हुए भी तीर्थवित्रों पर ज्ञानार्जनका कोई साधन नहीं। केत्रल धनिकवर्ग, त्राना रपया वाह्य सामग्रीकी सजावटमे व्यय करता है। इसीमे वह त्रपना प्रमुत्व मानता है। प्रतिवर्ष मेलामें हजारों व्यक्ति त्राते हें पर किसीके भी यह भाव नहीं हुए कि यहाँ पर १ पण्डित स्वाध्याय करने के लिये रहे, हम इसका भार वहन करेंगे। केत्रल पत्थर आदि करने के लिये रहे, हम इसका भार वहन करेंगे। केत्रल पत्थर आदि जड़वाकर उपरी चमक दमकमें प्राणियोंके मनको मोहित करनेमें रुपयेका उपयोग करते हैं। प्रथम तो इन वाह्य वस्तुत्रोंके द्वारा त्रात्माका कुछ भी कल्याण नहीं होता। द्वितीय कल्याणका मार्ग ज्ञात्माका कुछ भी कल्याण नहीं होता। द्वितीय कल्याणका मार्ग वो कपायकी कृशता है सो इन वाह्य वस्तुत्रोंसे उसकी विपरीतता देखी जाती है। कृशता श्रोर पुष्टतामे श्रन्तर है। विषयोंके सम्बन्धसे क्षाय पुष्ट होती है श्रोर ज्ञानसे विषयोंमे प्रेम नहीं होता सो इन चेत्रोंमें ज्ञान साधनका एक कृपसे श्रभाव है।

पद्धमीके दिन पुनः पर्वतपर जानेका भाव हुआ परन्तु शारीरिक शिक्तिकी शिथिलतासे सब मन्दिरोंके दर्शन नहीं कर सका। केवल चन्द्रप्रम स्वामीके दर्शनकर सुखका अनुभव किया। पश्चात् रै चण्टा वहीं प्रवचन किया। मैंने कहा—मैं तो कुछ जानता नहीं परन्तु श्रद्धा अटल है कि कल्याणका मार्ग केवल आत्मतत्त्वके परन्तु श्रद्धा अटल है कि कल्याणका मार्ग केवल आत्मतत्त्वके यथार्थ भेदज्ञानमें है। भेदज्ञानके फलसे ही आत्मा स्वतन्त्र होती यथार्थ भेदज्ञानमें है। भेदज्ञानके फलसे ही आत्मा स्वतन्त्र होती यथार्थ भेदज्ञानमें है। पारतन्त्र्य निवृत्ति और स्वातन्त्र्योपलिब्ध ही मोत्त है। मोत्त्मार्गका मृल कारण पर पदार्थकी सहायता न ही मोत्त है। कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे चला आया है उसका चहिता है। कर्मका सम्बन्ध अनादि कालसे चला आया है उसका च्याचिक व्यापार नहीं किन्तु आत्मतत्त्वमें जो अन्यथा कल्पना है याचिक व्यापार नहीं किन्तु आत्मतत्त्वमें जो अन्यथा कल्पना है उसको त्यागना ही सच्चा परिश्रम है। त्याग विना कुछ सिद्धि नहीं उसको त्यागना ही सच्चा परिश्रम है। त्याग विना कुछ सिद्धि नहीं अतः सबसे पहले अपना विश्वास करना ही मोत्तमार्गकी सीदी

हैं। विश्वासके साथ ज्ञान और चारित्रका भी उदय होता है क्योंकि ये दोनों गुए स्वतन्त्र हैं अतः उसी कालमे उनका भी परिएमन होता है। हमे आवश्यकता श्रद्धागुएकी हैं परन्तु वह श्रद्धा, सामान्य विशेष रूपसे जब तक पदार्थोंका परिचय न हो तब तक नहीं होती।

सप्तमीके दिन नीचे लश्करवालोंके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। उपस्थिति ऋत्प थी परन्तु जितने महानुभाव थे विवेकी थे। शान्तिसे सव लोगोंने शास्त्रश्रवण किया। पत्रात् स्थानपर श्राये व चर्याके लिये गये। एक स्थानपर चर्या की। लोग निरन्तर चर्या कराने की इच्छा करते हैं परन्तु विधिका वोध नहीं। परमार्थसे चर्या तो उसके यहाँ हो सकती है जो स्वयं शुद्र भोजन करे। जिनके शुद्र भोजन-का नियम नहीं उनके यहाँ भोजन करना आम्नायके प्रतिकृत है। परन्तु हम लोगोंने तो केवल शास्त्र पढ़ना सीखा है उसके अनुकृत प्रवृत्ति करना नहीं अतः हम स्वयं अपराधी हैं। उचित तो यह था कि हम उनको प्रथम उपदेश करते पत्र्यात् उनकी प्रवृत्ति देखते। य दे वह अनुकूल होती तो उनके यहाँ भोजन करते अन्यथा स्याना-न्तर चले जाते। अथवा यह वात विदित हो जाती कि उस घरमें भोजन हमारे उद्श्यसे वनाया गया है तो अन्तराय कर चल जाते। केवल गत्ववाद्से कुछ तत्त्व नहीं। हम गल्पवादके भण्डार हैं -करनेमे नपुंसक हैं। जब हम स्वयं श्रागमानुकूत चलनेमे श्रममर्थ हैं तब अन्यको उपदेश क्या देवेंगे ? अथवा देवें भी ता उनका क्या प्रभाव जननापर हो सकता है ? जो जल स्वयं श्रग्नि मन्द्रन्यमे ज्याग्यस्था धारण किये हैं क्या वह जल शीतलना उत्पन्न करेना ? करापि नहीं ••• सोनागिरिमे आठ दिन रहा।

## वरुत्रासागरमें ग्रीष्म काल

चैत्र कृष्णा ६ संवत् २००७ को १ वजे श्री सिद्धत्तेत्र स्वर्ण गिरिसे दतियाके लिये प्रस्थान कर दिया। ५ वजे डांक वंगलामे ठहर गये । वंगलामे जो चपरासी था वह जातिका ब्राह्मण था, बहुत निर्मेल मनुष्य था, निर्लोभी था। उसने हमारे प्रति शिष्ट व्यवहार किया। वहाँ पर रात्रिभर सुखपूर्वक रहे। यह स्थान सोनागिरिसे **५**३ मील है। धूपका वेग वहुत था त्रातः मार्गमे वहुत ही कष्ट उठाना पड़ा। शरीरकी शक्ति हीन थी किन्तु अन्तरद्गकी वलवत्तासे यह श्रीर उसके साथ चला त्राया। तत्त्वदृष्टिसे वृद्धात्रस्था भ्रमणुके योग्य नहीं । दोलतरामजीने कहा है 'अर्घमृतक सम बृढ़ापनौ कैसे रूप लखे आपनी' पर विचार कर देखा तो वृद्धावस्था कल्यागा मार्गमें पूर्ण सहायक है। युवात्रस्थामे प्रत्येक आदमी वाधक होता है। कहता है-भाई! अभी कुछ दिन तक संसारके कार्य करो परचात् वीतरागका मार्गे प्रहण् करना । इन्द्रियाँ विषय प्रहण्की श्रोर ले जाती हैं, मन निरन्तर श्रनाप सनाप संकल्प विकल्पके चक्रमे फॅसा रहता है। जव अवस्था वृद्ध हो जाती है तव चित्त स्वयमेव विषयोंसे विरक्त हो जाता है।

दूसरे दिन प्रातः ६ वजे डाक वंगलासे ४ भील चलकर एक नदीके पार महादेवजीके मन्दिरमें ठहर गये। पास ही जल कृप था। मन्दिरकी अवस्था कुछ जीर्ण है परन्तु पासमे प्राम न होनेसे इसका सुधार होना कठिन है। यहाँ पर चिरगाँवसे २ आदमी आये और वहाँ चलनेके लियं वहुत आग्रह करने लगे। हमने स्वीकार कर लिया और कहा कि यदि माँसी आ जाओगे

तो त्रापके साथ त्रवश्य चलेंगे। सुन कर वे वहुत प्रसन्न हुए तया घर चले गये। हम लोगोंने भोजन किया तद्नन्तर सामायिकसे निवृत्त हो १ घण्टा वनारसीविलासका श्रष्ययन किया। वहुत ही सुगम रीतिसे पदार्थका निरूपण किया है। पुण्य पाप दोनोंको दिखाया है। पुण्यके उद्यमे ऍठ और पापके उद्यमें दीनता होती है। दोनों ही आत्माके कल्याएमें वायक हैं। श्रतः जिन्हे आत्मकल्याए करना है वे दोनोंसे ममता भाव छोड़ें। काञ्चन कालायसकी वेड़ीके समान दोनों ही वन्धनके कारण हैं। मनुष्य जनमकी सार्थकता न्तो इसीमें है कि दोनों वन्थन तोड़ दिये जावें। दूसरे दिन प्रात:-काल ६ वजे चलकर = वजे करारीगाँवके वनमें सड़कके उपर निवास किया। यहाँ भाँसीसे गुलावचन्द्रजी आ गयं। दन्होंने भक्ति पूर्वक आहार दिया। यहाँसे ३ वजे चल कर ४ मील पर माँसीके वाहर नत्थू मदारीका वॅगला था उसमें ठहर गये। सानन्द रात्रि च्यतीत की । प्रातः ६३ वजे चलकर ८ वजे माँसी श्रा गये श्रीर स्नानादि कर श्री मन्दिरजीमे प्रवचन किया। पश्चान् श्री राज-मल्लजीके यहाँ भोजन हुआ।

यहाँ राजमल्ल एक प्रतिभाशाली विद्वान है। धर्ममें श्रापकी रुचि श्रच्छी है। श्राप मन्दिरमें श्रच्छा काल लगाते हैं। स्वाध्याय करानेमें श्रापकी बहुत रुचि है। श्रापको भाई चाँदमल्ल तो एक प्रकारमे पण्डित ही हैं। श्रापका श्रधिक काल जानाजनमें ही जाना है। श्राप लोगोंने १ मारवाड़ी मन्दिरका जो मारवाड़ी पंचायनके नामसे प्रसिद्ध है निर्माण कराया है। यहाँ पर श्री मक्त्वनलाल जी खण्डेलवाल भी हैं। श्राप १ धर्मशाला बनवा रहे हैं। उनमें १ कला-भवन भी खोल रहे हैं। श्रापका विचार विशेष टान करनेका है। एक कोठी जिसकी श्रामहनी २५०) मासिक है दानमें देना चाहते हैं। श्रापका विचार श्रिक कार्यमें परिणान नरीं

हुआ। अनेक मनुष्य इस कार्यमें विघ्नकर्ता भी हैं परन्तु मक्खनलाल जी हृदयके स्वच्छ हैं। आपने जो प्रतीज्ञा की है उसे पूर्ण करेंगे ऐसी मेरी धारणा है। होगा वही जो वीरप्रभुने देखा है।

चैत्र कृप्ण १२ सं० २००७ को सीपरी गये। वहीं प्रवचन हुआ जनता अल्प संख्यामे थी। यहाँपर श्री स्त्र० मृलचन्द्रजीका एक बड़ा वाड़ा है। जिसमें ५००) मासिक भाड़ा आता है आप बहुत ही विवेकी थे। यहाँ आते ही पिछले दिन स्मरणमें आगये जब हम महीनों उनके सम्पर्कमें रहते थे। अस्तु, अब आपके २ नाती हैं। पुत्र श्रेयांसकुमार बहुत ही भद्र तथा योग्य था परन्तु वह भी कालके गालमें चला गया। पुत्रकी धर्मपत्नी बहुत कुशल है। उसने यहाँ धर्मसाधनके लिए एक चैत्यालय भी वनवा लिया। प्रतिदिन पूजा स्त्रय करती है। २ वालक हैं, उन्हे पढ़ाती है—दोनों योग्य हैं। आशा है थोड़े ही कालमें घरकी परिस्थित संभाल लेगे। संभव है काल पाकर इनकी प्रभुता सर्राफके सहश हो जावे।

अगले दिन ७ वजे चलकर ८ वजे सदर वाजार आगये। यहाँपर है घण्टा स्त्रागतमे गया। कन्याओं द्वारा स्त्रागत गीत गाया गया, एक छात्राने वहुत ही सुन्दर तवला वजाया। उसका कण्ठ भी मधुर था। पश्चात् श्री जिनालयमे जिनदेवके दर्शन कर चित्तमें शान्ति रसका आस्त्राद किया। मूर्ति वहुत ही सुन्दर और योग्य संस्थान विशिष्ट थी। तदनन्दर १ घण्टा प्रवचन हुआ। जनताने शान्त चित्तसे श्रवण किया। अपनी अपनी योग्यतासे सवने लाम उठाया। हम स्त्रयं जो कहते हैं उसपर अमल नहीं करते फिर सुननेवालोंको क्या कहे १ जिस वृद्धमें छाया नहीं वह इतरको छाया देनेने असमर्थ है। आजतक वह शान्ति न आई जिसको हमने आगममे पढ़ा है। बास्तविक वात यह है कि आगममें शान्ति नहीं हैं और न अशान्ति ही है। आगम तो प्रतिपादन करनेवाला है। इसी प्रकार

न तीर्थमे शान्ति-अशान्ति है और न सत्समागममे शान्ति-अशान्ति है। वह तो आत्मामे है। वहाँ हम खोजते नहीं, उसके प्रतिवन्धक कारणोको हटाते नहीं, केवल निमित्त कारणोंको पृथक करनेकी चेष्टा करते हैं। उसके प्रतिवन्धक कारण क्रोधादिक कषाय हैं। हम उनको तो हटाते नहीं किन्तु जिन निमित्तोंसे क्रोधादिक होते हैं उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। एक दिन गुदरीके मन्दिरमे भी प्रवचन हुआ।

चैत्र कृष्ण त्रामावस्या सं० २००७ के दिन प्रातः भाँसीसे ३ मील चलकर श्री परशुरामजीके वागमे ठहर गये। स्थान रम्य था परन्तु ठहरनेके योग्य स्थान था। दहलानमे भोजन हुऋा, मिन्खयाँ वहुत थीं। भोजन निरन्तराय हुआ। ४ आदमी उनके उड़ानेमें संलग्न रहे। यहीं पर श्री फिरोजीलालजी दिहीसे आ गये। आप वहुत ही सरल और सजन प्रकृतिके हैं। आप गरमीके मौसमका चहर लाये। प्रायः आप निरन्तर श्राया करते हैं। जवसे मैंने दिल्लीसे प्रस्थान किया तवसे १० स्थानोपर त्राये त्रीर हर स्थान पर त्राहार दान दिया। आपके कुटुम्बका वहुत ही उदार भाव है। राजकृष्ण-जीसे त्रापका घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजकृष्णकी धर्मपत्नी त्रापकी भगिनी है। वह तो साचात् देवी है। श्रापके यहाँ जे। पहुँच जाता है उसका श्राप बहुत ही श्रातिथ्य सत्कार करते हैं। फिरोजीलालजी काँसी चले गये और हम वागसे २ मील चलकर परग्रामके वंगला पर ठहर गये। स्थान रम्य था। १ छोटी कुईया वा १ नाला है। चारों तरफ करोंदाका वन है। यहाँ पर धर्मध्यानकी योग्यता है परन्तु कोई रहना नहीं चाहता। आजकल धर्मका समी दस्भमे रह गया है इसीलिये दम्भी पूजे जाते हैं।

चैत्र शुक्त १ विक्रम सं० २००८ का प्रथम दिन था। आज आतः परशुरामके वंगलासे ३ मील चलकर वेत्रवती नदीको छोटी नोका द्वारा पार किया। १ नाविक मेरा हाथ पकड़ शनेः शने मुक्ते स्थल पर पहुँचा आया। उसका हृदय दयासे परिपूर्ण था। मैंने उसे उपकारी मान अपने पास जो २ गज खादीका दुपट्टा था वह दे दिया। उसे लेकर वह वहुत प्रसन्न हुआ तथा धन्यवाद देता हुआ चला गया। वहाँपर जो मानव समुदाय था वह भी प्रसन्न हुआ। यद्यपि मेरी यह प्रवृत्ति विशेष प्रशंसाकी पोषक नहीं परन्तु मैं प्रकृति पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता। संसारमे वही मनुष्य उस संसारसे मुक्त होनेका पात्र है जो परपदार्थका संपर्क त्याग दे। परपदार्थका न तो हम कुछ उपकार ही कर सकते हैं और न अनुपकार ही। संसारके यावन्मात्र पदार्थ आत्मीय-आत्मीय गुणपर्यायोंसे पूरित हैं उनके परिणमन उनके स्वाधीन हैं। उस परिणमनमें उपादान और सहकारी कारणका समूह ही उपकारी है परन्तु कार्यस्प परिणमन उपादानका ही होता है।

यहाँसे १ मील चलकर श्री स्वर्गीय फूलचन्द्रकीके वागमे श्रा गये। वाग रम्य है परन्तु श्रवस्था श्रवनित पर है। यहीं पर भोजन किया। भोजनके श्रनन्तर सामायिकसे सम्पन्न हो बैठे ही थे कि वावू रामस्वरूपजी श्रा गये। ३ बजे चलकर ५ बजे वरुश्रासागर श्रा गये। श्री मन्दिर जी के दर्शनके श्रनन्तर श्री बाबू रामस्वरूप जी द्वारा निर्मापित गणेश वाटिका नामक स्थानपर निवास किया। रात्रि सानन्द बीती। प्रातः मन्दिर जी गये। दर्शनकर चित्त प्रसन्न हुश्रा। १ घण्टा प्रवचनके श्रनन्तर श्री वावू रामस्वरूपजींके यहाँ भोजन हुश्रा। श्राप वहुत ही मद्र व्यक्ति हैं। मध्याह्मकी सामायिकके वाद २ घण्टा स्वाध्याय किया। स्वाध्यायका फल केवल ज्ञानवृद्धि ही नहीं किन्तु स्वात्मतत्त्वको स्वावलम्बन देकर शान्तिमार्गमे जाना ही उसका मुख्य फल है। श्राजकल हमारी प्रवृत्ति इस तरहसे दृषित हो गई है कि ज्ञानार्जनसे हम जगत्की प्रतिष्ठा चाहते हैं

श्रयोन् संसारसे मुक्त नहीं होना चाहते। श्रन्यको तुच्छ श्रोर श्रपने को महान् वनानेके लिये उस ज्ञानका उपयोग करते हैं जिस ज्ञानसे भेदज्ञानका लाभ था। श्राज उससे हम गर्वमे पड़ना चाहते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरजीमे पुनः प्रवचन हुआ।

श्रीकुन्दकुन्द देवका कहना है कि शुभोपयोगसे पुण्यवन्ध होता है और उससे आत्माको देवादि सम्यक् परकी प्राप्ति होती है जो तृष्णाका आयतन है अतः शुभोपयोग और अशुभोपयोगको भिन्न सममना गुद्धोपयोगकी दृष्टिम कुछ विशेषता नहीं रखता। दोनों ही वन्धके कारण हैं। लौकिक जन शुभ कमकी सुशील और अशुभ कर्मको कुशील मानते हैं परन्तु कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं कि शुभकर्म सुशील कैसे हो सकता है वह भी तो श्रात्माको संसारम पात करता है। जिस प्रकार लोहेकी वेड़ी पुरुषको वन्धनमें हालती हैं उसी प्रकार सुवर्णकी वेड़ी भी पुरुषको वन्धनमें डालती है एतावता उन दोनोंमें कोई भिन्नता नहीं। लोकमें कोई पुरुष जब किस्त.की प्रकृतिको स्वविरोधिनी समम लेता है तो उसके संपर्कसे यथाशीव दूर हो जाता है। इसी तरह जब कर्म प्रकृति त्र्यात्माको संसार वन्यनमें हालती है तब ज्ञानी बीतराग, उद्यागत शुभाशुभ प्रकृतिके साय राग नहीं करता। सम्बग्दृष्टि मनुष्यके भी शुभाशुभ प्रशस्ता-प्रशस्त मोहोदयमें होते हैं। विषयोंसे श्रणुमात्र भी विरक्ति नहीं तथा मन्द्र कषायमे दानादि कार्यभी शुभोपयोगमें करता है परन्तु इसे परिणाममें अनुराग नहीं। जिस प्रकार रोगी मनुष्य न चाहता हुआ भी श्रोषय सेवन करता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी पुण्य पापादि कार्योंको करता है, परमार्थसे दोनो को हेय समम्ता है। ज्यादेयता और हेयता यह दोनों मोही जीवोंके होते हैं। परमार्थसे न कोई उपादेय हैं और न हेय हैं किन्तु उपेचणीय हैं। उपेक्स्मीय व्यवहार भी श्रोपचारिक होता है। मोहके रहते हुए

जिन पदार्थोमें उपादेयता और हेयताका व्यवहार था मोह जानेके वाद वे पदार्थ उपेक्षणीय सुतराँ हो जाते हैं। फिर यह विकल्प ही नहीं उठता कि वे पदार्थ अमुक रूपसे हमारे ज्ञानमे अति। मोहके वाद ज्ञान जिस पदार्थको विषय करता है वही उसका विषय रह जाता है। मोहका अभाव होते ही ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय ये तीन कर्म रचकके अभावमे अनन्यशरण हो अन्तर्भु हूर्तमें नष्ट हो जाते हैं। इनका नाश होते ही ज्ञान गुणका शुद्ध परिणमन हो जाता है। जो ज्ञान पहले पराश्रित था वही अब केवलज्ञान पर्याय पा कर आदित्य प्रकाशवत स्वयं प्रकाशमान होता हुआ समस्त पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है श्रीर कभी स्वरूपसे च्युत नहीं होता। अतएव धनंजय किवने विषापहार स्तोत्रके प्रारम्भमें लिखा है।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः । प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेएयः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥

उसकी महिमा वही जाने, हम संसारी परके द्वारा श्रपनी उन्नति ज्ञात कर पर पदार्थों के संग्रह करनेमें श्रपनी परिएाति को लगा देते हैं श्रीर श्रमन्त संसारके पात्र बनते रहते हैं। वैषयिक सुखके लिये स्त्री पुत्र मित्र धनादि पदार्थों का संग्रह करनेमें जो जो श्रम्याय करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं। यहाँ तक देखा जाता है कि इस तरह प्राणियों का जीवन भी श्रापत्तिमें श्राता हो श्रीर हमारा निजका प्रयोजन सिद्ध होता हो तो हम उस श्रापत्तिको मङ्गलरूप श्रमुभव करते हैं। श्रस्तु।

दूसरे दिन नगरमे आहारके लिये गये। श्री जैन मन्दिर की वन्दना की। दर्शन कर चित्त प्रसन्न हुआ। मन्दिर जानेका यह प्रयोजन है कि वीतरागदेवकी स्थापना देख कर वीतराग भाव

की प्राप्तिके लिये स्वयं द्रव्य निक्षेप वनों। वीतरागके नाम पाठ करनेसे वीतराग न हो जावेगे। उन्होंने जिस मार्गका अवलम्यनकर वीतरागताकी प्राप्ति की हैं उस मार्गपर चलकर स्वयं वीतराग होनेका पुरुपार्थ करों। क्या पुरुपार्थ हमारे हाथकी वात है ? अवश्य है। जो रागादिक भाव तुममे हों उनका आदर न करों। आने दो, क्योंकि उन्हें तुमने अर्जिन किया, अव उनसे तदस्य रहों। दर्शनके प्रधान् १ घण्टा प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी परन्तु उपयोग नहीं लगा। अनन्तर आहारको निकले। हृदयमें अनायास कत्यना आई कि आज स्व० पं० देवकीनन्द्रनजीके घर आहार होना चाहिये। उनके गृहपर कपाट वन्द्र थे, वहाँसे अन्यत्र गये, वहाँ पर कोई न था, उसके वाद तीसरे घर गये तव वहाँ स्वर्गीय पण्डितजी की धर्मपत्नी द्वारा आहार दिया गया। उससे सिद्ध होता है कि झुद्ध परिणाममें जो कल्पना की जाती है उसकी सिद्ध अनायाम हो जाती है।

चैत्र शुक्ता १० सं० २००५ को यहाँकी पाठशालाके छात्रों के यहाँ भोजन हुआ। वड़े भावसे भोजन कराया। भोजन क्या या १ स्त्रम्त था। इसका मूल कारण उन छात्रोंका भाव था। स्त्रम्त और अस्त्रच्छ भाव ही शुभाशुभ कर्मका कारण होता है। इन दोनोंसे भिन्न जो सर्वया शुद्ध है वह संसार वन्धनके उन्हेदस्य कारण है। संसार सन्तितिका मूल कारण वामना है। वासना आतमान में ही होती है और उसका उत्पादक मोह है।

चंत्र शुक्ला १३ सं०२००८ को भगवान महावीर स्वामीन जन्म दिवसका उत्सव था। श्रनेक व्याख्यान हुये। मैंने तो केपन यह कहा कि श्रात्मीय परिश्वतिको कनुपित न होने दो। कनुपित परि शामोंका श्रन्तरत कारण मोह-राग-द्वेप हैं तथा वास कारण पर्यो निद्रयों के विषय हैं। विषय निमित्त कारण हैं परन्तु ऐसी व्याप्ति नहीं जो परिणितिको वलात् कलुषित वना ही देवे। विषय तो इन्द्रियों के द्वारा जाने जाते हैं। उनमे जो इष्टा-निष्ट कल्पना होती है वह कषायसे होती है। कषाय क्या है? जो आत्माको कलुपित करता है। यह स्वयं होती है। अनादिसे आत्मामें इसका परिण्मन चला आ रहा है। हम निरन्तर इसका प्रयास करते हैं कि आत्मामें स्थच्छ परिणाम हों परन्तु न जाने कौनसी ऐसी शक्ति आत्मामें है कि जिससे जो भाव आत्माको इष्ट नहीं वे ही आते हैं। इससे यही निश्चय होता है कि आत्मामे अनादिसे ऐसे संस्कार आ रहे हैं कि जिनसे उसे अनन्त वेदनाओं का पात्र वनना पड़ता है। यदि हमने आत्माको पहिचानकर विकारोंपर विजय प्राप्त कर ली तो हमारा महावीर जयन्तीका उत्सव मानना सार्थक है।

सागरसे श्री 'नीरज' श्राये । श्राप श्री तद्मग्एप्रसादजी रीठीके सुपुत्र हैं। श्रापके पिताका स्वर्गवास होगया । श्रापके श्रच्छा व्यापार होता था परन्तु श्रापने व्यापार त्याग दिया श्रव श्राप प्रेसका काम करते हैं। कवि हैं हँसमुख हैं होनहार व्यक्ति हैं। मुक्तसे मितनेके तिए श्राये थे। एक दिन रहकर चले गये।

श्री नाथूरामजी वजाज मवईवाले आये। २ घंटा रहे पश्चात् चले गये। आपने अपने यहाँ सिद्धचक्र विधानका आयोजन किया है। उसी समय पपौरा विद्यालयके लिये २५०००) देनेका वचन दिया है। मुक्ते आमन्त्रण देने आये थे। विद्यादानकी वात मुन मैंने गरमीकी तीव्रता होने पर भी जाना स्वीकृत कर लिया परन्तु अन्तमे शारीरिक दुर्वलताके कारण हम जा नहीं सके। नरेन्द्रकुमार आया था। वह ज्येष्ठ कृष्णा ७ को सागर गया। स्वाभिमानी है, जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धा है, उद्योगी है, परोपकारी भी है, लालची नहीं, किसीसे कुछ चाहता नहीं, स्कालिशंपको आदरके साथ लेता है,

प्रत्येक मनुष्यसे मेल कर लेता है। श्रभी श्रायु विशेष नहीं श्रतः स्वभावमें वालकता है। ऐसा बोध होता है कि काल शकर यह बालक विशेष कार्य करेगा। आजकल विज्ञानका युग है। इसमें जो पुरुषार्थ करेगा वह उन्नति करेगा। जो मनुष्य पुरुषार्थी हैं वे त्रात्मीय उन्नतिके पात्र हो जाते हैं। जो आलसी मनुष्य हैं वे दुःखके पात्र होते हैं। मनुष्य जन्म पानेका यही फल है। स्वपरका हित किया जाय । वैसे तो संसारमे स्वान भी श्रपना पेट पालन करते हैं। मनुप्यकी उत्कृष्टता इसीमें हैं कि श्रपनेको मनुष्य वनावें, मनुष्यका ज्ञान श्रौर विवेक इतर योनियोंमें जन्म लेनेवाले जीवोंकी श्रपेत्ता उत्कृष्ट है। तिर्यञ्जोंमें तो पर्याय सम्बन्धी ज्ञान होता है। यद्यपि देव नारकी विशिष्ट ज्ञानी होते हैं परन्तु उनका ज्ञान भी मर्यादित रहता है तथा वे देव नारकी संयम भी धारण नहीं कर सकते। तिर्येश्च देशसंयमका पात्र हो सकता है परन्तु इतना ज्ञान उसका नहीं कि श्रन्य जीवोंका कल्याण कर सके। मनुष्यका ज्ञान परोपकारी है तथा उसका संयम गुगा भी ऐसा निर्मल हो सकता है कि इतर मनुष्य उसका अनुकरण कर अपनेको संयमी वनानेके पात्र हो जाते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ता ३ सं॰ २००८ को लिलतपुरसे बहुतसे प्रतिष्ठित सज्जन श्राये श्रीर श्रामह पूर्वक कहने लगे कि श्रापको चेत्रपाल-लिलतपुरका चातुर्मास्य करना चाहिये। हमने उनके प्रस्तावको स्वीकृत किया तथा निश्चय किया कि वर्षामें लिलतपुर रहना ही उत्तम है। वहाँ रहनेसे प्रथम तो सागर सिन्नहित है। यहाँवाले विरोध करते हैं—यह स्त्रामाविक बात है। जहाँ रहो वहाँ समुदायसे स्नेह हो जाता है तथा व्यक्ति विशेषसे भी घनिष्ठता बढ़ जाती है परमार्थसे यह स्नेह ही संसारका कारण है। यद्यपि लोग इसे धार्मिक स्नेह कहते हैं परन्तु पर्यवसानमें इसका फल उत्तम नहीं। जहाँ श्री श्राहेदनुरागको चन्दननगसंगत श्राग्निकी तरह दाहोत्पादक कहा है वहाँ श्रन्य स्नेहकी गिनती ही क्या है ? मेरा निश्चय पाकर लिलपुरके लोग प्रसन्न हो चले गये।

## श्रुत पश्चमी

ज्येष्ठ शुक्ला पद्धमी सं० २००८ को श्रुतपद्धमीका उत्सव था। पं॰ मनोहरलालजीने सम्यग्दरीन की महिमाका दिग्दरीन कराया। मैंने कहा कि त्राजका पर्व हमको यह शिचा देता है कि यदि कल्याणकी इच्छा है तो ज्ञानार्जन करो । ज्ञानार्जनके बिना मनुष्य जन्मकी सार्थकता नहीं। देव स्थीर नारकियोंके यद्यपि ३ ज्ञान होते हैं परन्तु उनके जो ज्ञान होते हैं उन्हें वे विशेष वृद्धिगत नहीं कर सकते। जैसे देवोंके देशाविध है, वे उसे परमाविध या सर्वाविध रूप नहीं कर सकते। हाँ इतना श्रवश्य है कि मिध्यादर्शनके उदयमें जिनका ज्ञान मिध्याज्ञान कहलाता था सम्यग्दर्शन होने पर उनका वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। परन्तु देव पर्यायमें संयमका उदय नहीं इसलिये त्रापर्याय वही श्रविरतावस्था रहती है। मनुष्य पर्यायकी ही यह त्रिलच्छा महिमा है कि वह सकलसंयम धारण कर संसार वन्धनको समूल नष्ट कर सकता है। यदि संसारका नाश होगा तो इसी पर्यायमें होगा। इस पर्यायकी महत्ता संयमसे ही है, यह निरन्तर ससार को यह उपदेश देते हैं कि मनुष्य जन्मकी सार्थकता इसीमें है कि फिर संसार वन्धनमें न श्राना पड़े। इस उपदेशका तात्पर्य केवल

सम्यग्दर्शनसे नहीं क्योंकि सम्यग्दर्शन तो चारों गितयोंमे होता है। यदि इस ही को प्राप्त कर संतोप धारण किया तो मनुष्य जन्मकी क्या विशेषता हुई ? श्रतः इससे उत्तम संयम धारण करना ही इस पर्यायकी सफलता है।

श्राजकल बड़े बड़े विद्वान यह उपदेश देते हैं कि स्त्राध्याय करो । यही आत्मकल्याणका मार्ग है । उनसे प्रश्न करना चाहिये-हे महानुभाव ! त्रापने त्राजनम विद्याभ्यास किया, सहस्रों को उपदेश दिया श्रौर स्वाध्याय तो श्रापका जीवन ही है श्रतः हम जो चलेंगे सो आपके उपदेश पर चलेंगे परन्तु देखते हैं कि आप स्वयं स्वाध्यायके करनेका कुछ लाभ नहीं लेते अतः हमको तो यही श्रद्धा हैं—स्त्राध्यायसे यही लाभ होगा कि अन्य को उपदेश देनेमे पदु हो जावेंगे सो प्रातः जितनी वातोंका आप उपदेश करते हैं हम भी कर देतेहैं प्रत्युत एक बात आप लोगोंकी अपेचा हममे विशेप है। वह यह कि हम अपने वालकोंको यथाशक्ति जैनधर्मके जानपनेके लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु त्रापमे यह वात नहीं देखी जाती। त्रापके पास चाहे पचासों हजार रूपया हो जावें परन्तु आप उसमेसे दान न करेंगे। अन्यकी कथा छोड़िये, आप जिन विद्यालयोंके द्वारा विद्वान् हो गये कभी उनके अर्थ १००) भी नहीं भेजे होंगे। अथवा निजकी वात छोड़ो अन्यसे यह न कहा होगा—भाई! हम अमुक विद्या-लयसे विद्वान् हुए उसकी सहायता करना चाहिये। तथा जगत्को धर्म जाननेका उपदेश देंगे, अपने वालकोको एम. ए. वनाया होगा परन्तु धर्मशिचाका मिडिल भी न कराया होगा। अन्यको मद्य, मांस, मधुके त्यागका उपदेश देते हैं पर आपसे कोई पूं छे—अप्ट मूल गुण हैं ? हॅस देवेंगे । व्याख्यान देते-देते पानीका गिलास कई वार त्रा जावे, कोई वड़ी वात नहीं। हमारे श्रेतागण इसीमे प्रसन्न हैं कि पण्डितजी ने संभाको प्रसन्न कर जिया ।

त्यागियोंकी वात कौन कहे ? वह तो त्यागी हैं, किसके त्यागी हैं सो दृष्टि ढालिये, पता चलेगा। यदि यह पण्डित वर्ग चाहे तो समाजका वहुत कुछ हित कर सकता है। जो पण्डित हैं वे यह नियम कर लेवें कि जिस विद्यालयमें हमने प्रारम्भसे विद्या अर्जित की हे श्रौर जिसमें श्रन्त स्नातक हुए, श्रपनेको कृतज्ञ वनानेके लिये उन्हे २) प्रति मास हेंगे। १) प्रारम्भ विद्यालयको श्रौर १) श्रान्तम विद्यालयको प्रतिमास भिजवावेंगे। यदि २००) मासिक उपार्जन होगा तो २॥ २॥) प्रतिमास भिजवावेंगे तथा एक वर्षमे २० दिन दोनों विद्यालयोंके श्रर्थ देवेंगे। श्रथवा यह न दे सकें तो कमसे कम जहाँ जावें उन विद्यालयोंका परिचय तो करा देवें। जिन्हे १००) से कम श्राय हो वे प्रांत वर्ष ५) ५) ही विद्याजननीको पहुँचा देवें तथा यह सब न वने तो एक वर्ष कमसे कम जिस ग्रामके हों वहाँ रहकर लोगोंमें धर्मका प्रचार तो कर देवें।

त्यागीवर्गको यह उचित है कि जहाँ जार्वे वहाँपर यदि विद्यालय होवे तो ज्ञानार्जन करें, केवल हल्दी धनिया जीरेके त्यागमे ही अपना समय न वितावें। गृहस्थोंके वालक जहाँ अध्ययन करते हैं वहाँ अध्ययन करें तथा शास्त्रसभामे यदि अच्छा विद्वान हो तो उसके द्वारा शास्त्र प्रवचन प्रणालीकी शिक्षा लेवें। केवल शिक्षा प्रणाली तक न रहें किन्तु संसारके उपकारमें अपनेको लगा दें। यह तो व्यवहार है, अपने उपकारमें इतने लीन हो जावें कि अन्य वात ही उपयोगमें न लावें। कल्याणका मार्ग पर पदार्थोंसे मिन्न जो निज द्रव्य है उसीमें रत हो जावें। इसका अर्थ यह है कि परमें जो राग द्वेष विकल्प होते हैं उनका मूल कारण मोह है। यदि मोह न हो तो यह वस्तु मेरी है यह भाव भी न हो। तव उसमे राग हो यह सर्वथा नहीं हो सकता। प्रेम तभी होता है जव उसमे अपना अधितत्व माना जावे। देखो—मनुष्य प्रायः कहते हैं कि हमारा

विश्वास श्रमुक धर्मसे हैं, हमारी तो प्रीति इसी धर्ममें हैं। विचार कर देखो-प्रथम उस धर्मको निज माना तभी तो उसमें प्रेम हूँ श्रा श्रीर यदि धर्मको निज न माने तो उसमें श्रमुराग होना श्रसम्भव है। यही कारण है कि १ धर्मवाला श्रन्य धर्मसे प्रेम नहीं करता श्रतः जिनको श्रत्म-कल्याण करना है वे संसारके कारणोंसे न राग करें न द्वेष करें।

श्रात्मा एक स्त्रतन्त्र द्रव्य है, ज्ञान दर्शनवाला है श्रयत्रा वाला क्यों ज्ञान दर्शनरूप है क्योंकि निश्चयसे गुण-गुणीमे श्रमेद हैं। उसका वोध होनेसे यह जीव संसारसे मुक्त हो जाता है—

> श्राप रूपके वोधसे मुक्त होत सब पाप। ज्यों चन्द्रोदय होत ही मिटत सकल संताप॥

कहनेका भाव यह है कि विवेकसे कार्य करो, विना विवेकके कोई भी मनुष्य श्रेयोमार्गका पथिक नहीं वन सकता। प्रथम तो विवेकके वलसे श्रात्मतत्मकी दृढ़ श्रद्धा होना चाहिये फिर जो भी कार्य करो उसमें यह देखों कि इस कार्यके करनेमें हमको कितना लाभ है कितना श्रलाभ है ! जिस लाभके श्र्थ मैंने परिश्रम किया वह परिश्रम सुख पूर्वक हुआ या दुःख पूर्वक हुआ ! यदि उस कार्यके करनेमें संक्लेशकी प्रचुरता हो तो उस कार्यके करनेमें कोई लाभ नहीं। जब प्रथमतः ही दुःख सहना पड़ा तव उसके उत्तरमें सुख होगा कुछ ध्यानमे नहीं श्राता। दो प्रकारके कार्य जगनमें देखे जाते हैं, एक लौकिक श्रीर दूसरे श्रलौकिक। लौकिक कार्य किन्हें कहते हैं ! जिनसे हमको लौकिक सुखका लाभ होता है उसे हम पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं । परन्तु परमार्थसे वह सुख नहीं क्योंकि सुख तो वह वस्तु है जहाँ श्राकुलता न हो। वहाँ तो श्राकुलताकी वहुलता है । श्राकुलताकी परिभाषा कुछ वना लो

परन्तु श्रनुभवसे इसका परिचय सहज ही होजाता है। जब हम किसी कार्य करनेका प्रयत्न करते हैं तब हमें भीतरसे जबतक वह कार्य न हो जावे चैन नहीं पड़ती यही श्राकुलता है। इसके दूर करनेके श्रर्थ हम जो व्यापार करते हैं उसका उद्देश्य यही रहता है कि नाना प्रकारके उपायों द्वारा कार्यकी सिद्धि हो। कहाँतक लिखें? प्राण जावें परन्तु कार्य सिद्धि होना चाहिये।

श्रुतपञ्चमीके दिन हम लोग शास्त्रोंकी सम्भाल करते हैं पर माड़ पोछकर या धूप दिखाकर अलमारीमें रख देना ही उनकी सम्भाल नहीं हैं। शास्त्रके तत्त्वको श्रध्ययन श्रध्यापनके द्वारा ससारके सामने लाना यहीं शास्त्रोंकी संभाल है। श्राज जैन-मन्दिरोंमें लाखोंकी सम्पत्ति रुकी पड़ी है, जिसका कोई उपयोग नहीं। यदि उपयोग होता भी है तो सङ्गमर्गरके फर्श लगवाने तथा सोने चांदीके उपकरण बनवानेमे होता है पर वीतराग जिनेन्द्र-की वाणीके प्रचार करनेमें उसका उपयोग करनेमें मन्दिरोके श्रिधिकारी सकुचाते हैं। यदि एक-एक मन्दिर एक एक प्रत्य प्रकाशनका भार उठा ले तो समस्त उपलब्ध शास्त्र एक वर्षमें प्रकाशित हो जावें। मन्दिरोंमे वहुमूल्य उपकरण एकत्रित कर चोरोंके लिये स्वयं आमन्त्रण देंगे और फिर हाय हाय करते फिरेंगे। यदि श्रापकी श्ररहन्तदेवमे भक्ति है तो उनकी वाणी रूप जा शास्त्र हैं उनमे भी भक्ति होना चाहिये श्रीर उनकी भक्तिका रूप यही हो कि वे श्रच्छेसे श्रच्छे रूपमे प्रकाशित हो संसारके सामने लाये जावें । प्रसन्नताकी वात है कि इस समय लोगोंना धार्मिक संघर्ष वहत कम हो गया है। एक समय तो वह था जब कोई किसी श्रन्य धर्मकी वातको अवण ही नहीं करना चाहना या पर प्राजके मानवमें इतनी सहन शीलता । श्रा गई है कि यदि उसे कोई 'प्रपनी वात प्रेमसे सुनाना चाहता है तो वह उसे सुननेके

लिये तैयार है। जब आपके धर्मकी वातको दुनियाँ सुननेके लिये तैयार है, जाननेके लिये उत्सुक है तव श्राप ज्ञानके साधन जो शास्त्र हैं उन्हें सामने क्यों नहीं लाते ? शास्त्रसंग्रह करनेकी प्रवृत्ति आप लोगोंमे क्यों नहीं जागृत होती। एक-एक महिलाकी पेटियोंमे वीस २ पचीस २ साड़ियाँ निकलेंगी पर शास्त्रके नामपर २, रुपयेका शास्त्र भी उसकी पेटीमे नहीं होगा। हमारा पुरुपवर्ग भी अपनी शान शौकत या वैभव वतानेके लिये नाना प्रकारकी सामग्री इकड़ी करता है पर मैने देखा है कि अच्छे अच्छे लखपितयोंके घर दश वीस रुपयके भी शास्त्र नहीं निकलते। क्या वात है ? इस श्रोर रुचि नहीं । यदि रुचि हो जाय तो जहाँ सालमे हजारों खचे करते हैं वहाँ सौ पचास रुपये खर्च करना कठिन नहीं । गृहस्य लोग शास्त्र खरीद कर संप्रह करने लगें तो छपानेवाले अपने आप सामने आ जावें। श्रस्तु, भैया। वुराई न मानना मेरे मनमें तो जो वात आती है वह कह देता हूं पर मेरा श्रमिप्राय निर्मल है मैं कभी किसी जीवका श्रहित नहीं चाहता।

# वस्वासागरसे प्रस्थान

च्येष्ठ शुक्ला ११ मं० २००८ के दिन श्री सि० धन्यहमारजी मटनीवाले श्राये। बहुत ही महदय मनुष्य हैं ३ घण्टा रहे। श्रापके विचार प्रोढ़ श्रीर गन्भीर हैं। श्रापका कहना है कटनी श्राकर रहिये। जवलपुरकी व्यवस्था भी श्रापने श्रवण कराई। मैने कहा श्रभी फटनी तो बहुत दूर है। यह मुनकर चुप रह गये। मुभे श्रन्तरामें

लगा कि यदि कल्याएकी श्रमिलाषा है तो इन संसर्गीको त्यागो। जितना संसर्ग वाह्यमें अधिक होगा उतना ही कल्याण मार्गका विरोध होगा। कल्याण केवल आत्मपर्यायमें है जो परके निमित्तसे भाव होते हैं वे सव स्वतत्त्व परिएातिकी निर्मलतामें वाधक हैं। निर्मलता वह वस्तु है जहाँ परकी श्रपेत्ता नहीं रहती। यद्यपि ज्ञायक सामान्यकी अपेक्षा सर्वदा आत्माकी स्वभावमे अवस्थिति है परन्तु श्रनादिकालसे श्रात्मा श्रीर मिथ्यात्वका संसर्ग चला त्रा रहा है इससे कर्मजन्य जो मिथ्यात्वादि भाव हैं उनको निज मानता है, उन्हींका अनुभव करता है अर्थात् उन्हीं भावोंका कर्ता वनता है। ज्ञानमे जो ज्ञेय त्राते हैं उन रूप परिराति कर उनका कर्ता वनता है। जिस कालमें मिथ्यात्व प्रकृतिका अभाव हो जाता हैं उस कालमें आपको आप मानता है उस कालमें ज्ञानये जो ज्ञेय श्राते हैं उन्हे जानता है परन्तु ज्ञेयके निमित्तसे ज्ञानमें जो ज्ञेयाकार परिएामन होता है उसे ज्ञेयका न मान ज्ञानका ही परिएामन मानता है, यही विशेषता श्रज्ञानीकी श्रपेद्मा ज्ञानीके हो जाती है।

ज्येष्ठ शुक्ला १२ सं० २००८ के शास्त्र प्रवचनके समय चित्तमें कुछ त्रोभ हो गया। त्रोभका कारण यही था कि आजकल मनुष्य जैनधमें की प्रक्रियाको जाननेका प्रयास नहीं करते। जैनधमें की प्रक्रिया इतनी स्वाभाविक है कि इसका अनुसरणकर जीव ऐहिक और पार-लों किक दोनों प्रकारके सुखोंसे विद्यत न हों। देखिये-जैनधमें यह कहा है कि संसारमें जितने पदार्थ हैं वे सब भिन्न-भिन्न सत्ताकों लिये हुए हैं अत. जब दूसरा पदार्थ हमारा है नहीं तब उसमें हमारा ममत्व परिणाम न होगा। ममता परिणाम ही वन्धका जनक है, यह पर पदार्थमें निजत्व कल्पना न हो तो हिंसा असत्य चोरी व्यभिचार परिग्रह आदि भाव स्वयमेव विलय जावें। हम दूसरे पदार्थकों तुच्छ देखते हैं, उससे घृणा करते हैं। इसका मृल कारण यही है

कि हमने श्रपने स्वरूपको नहीं जाना। परमार्थसे कोई पदार्थ न तो बुरा है और न अच्छा है हम अपनी रुचिके अनुसार ही उनके विभाग करते हैं। जैसे देखो जिस मलको धोकर हम मृत्तिकासे हस्त प्रचालन करते हैं। शूकर उसी मलको वड़े प्रेमसे खा जाता है। क्या वह जीव नहीं है ? है, परन्तु उस पर्यायमें इतना विवेक नहीं कि वह उसे त्यागे। वही जीव यदि चाहे तो उत्तम गतिका भी पात्र हो सकता है। ऐसी कथा आई हैं कि एक सिंह मुनिको मारनेके अर्थ चला और शुकरने मुनि रत्ताके लिये सिंहका सामना किया, दोनो मर गये, शूकर स्वर्ग और सिंह नरक गया। यथार्थमें शान्तिका मार्ग कहीं नहीं आपमें ही है। आपसे तात्पर्य आत्मासे है। जो हम परसे शान्ति चाहते हैं यही महती अज्ञानता है क्योंकि यह सिद्धान्त है कि कोई द्रव्य किस द्रव्यमें नवीन गुण उत्पन्न नहीं कर सकता। पदार्थों की उत्पत्ति उपादन कारण श्रीर सहकारी कारणोंसे होती है उपादान एक श्रीर सहकारी श्रनेक होते हैं। जैसे घटकी उत्पत्तिमें उपादान कारण मृत्तिका और सहकारी कारण दण्ड चक्र चीवर कुलालादि हैं। यद्यपि घट की उत्पत्ति मृत्तिकामें ही होती है अतः मृत्तिका ही उसका उपादान कारण है फिर भी कुलालादि कारण कूटके अभावमें घट रूप पर्याय मृत्तिकामें नहीं देखी जाती श्रतः ये कुतालादि घटोत्पत्तिमें सहकारी कारण मान जाते हैं इसीलिये प्राचीन त्राचार्योंने जहाँ कारणके स्वरूपका निर्वचन किया है वहाँ 'सामग्री जनिका कार्यस्य नैकं कारणं श्रयीन् सामग्री ही कार्यकी जनक है एक कारण नहीं यही तो लिखा है। अतः इस विषयमें कुतर्क करना विद्वानों को उचित नहीं। यहाँ पर मुख्य-गौग्यन्यायकी आपन्य-कता नहीं । वस्तु स्वरूप जाननेकी स्त्रावश्यकता है 'स्रान्यय व्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः' ऋर्यान् कार्यकारणभाव

श्रन्वय श्रोर व्यतिरेक दोनोंसे जाना जाता है श्रतः दोनों ही मुख्य हैं। जब उपादानकी श्रपेत्ता कथन करते हैं तब घटका उपादान मिट्टी है श्रीर निमित्तकी श्रपेत्ता निरूपण किया जावे तो कुलालादि कारण हैं। यदि इस प्रक्रियाको स्त्रीकार न करोगे तो कदापि कार्यकी सत्ता न वनेगी। इस विषयमे वाद विवाद कर मस्तिष्कको उन्मत्त वनाने की पद्धति है। इसी प्रकार जो भी कार्य हों उनके उपादन श्रौर निमित्त देखो, व्यर्थके विवादमे न पड़ो। निमित्तमे ही यह प्राणी न उत्तम जाय कुछ मूल तत्त्वकी श्रोर भी दृष्टि करे इस भावनासे प्रेरित हो कर कह दिया जाता है कि सिद्धि उपादानसे होती है। जब तक उपादान की श्रोर दृष्टि पात न होगा तव तक केवल निमित्तोंमें उलमे रहनेसे काम नहीं होता। श्रीर जव कोई उपादानको ही सब कुछ समम प्राप्त निमित्तका उपयोग करनेमे श्रकर्मण्य हो जाता है तब निमित्तकी प्रधानतासे कथन होता है श्रीर कहा जाता है कि विना निमित्त जुटाए कार्य नहीं होता ।

श्राकाशमें काली काली घनावली श्राच्छादित होने लगी तथा जब कभी जल वृष्टि होनेसे प्रीष्मकी भयकरता कम हो गई इसिलये बरुश्रासागरसे प्रस्थान करने का निश्चय किया। श्राषाढ शुक्ल १० सं० २० न के दिन मध्यान्हकी सामायिकके बाद ज्यों ही प्रस्थान करने को उद्यत हुश्रा कि बहुतसे स्त्री पुरुष श्रा गये श्रोर स्नेहके श्राधीन संसारमें जो होता श्राया है करने लगे। सवकी इच्छा थी कि यहाँ पर चातुर्मास्य हो पर मैं एक वार लितिपुरका निश्चय कर चुका था इसिलये मैंने रुकना उचित नहीं सममा। लोगोंके श्रश्लपात होने लगा तब मैंने कहा—

संसार एक विशाल कारागृह है। इसका संरक्षक कौन है ? यह हिंगोचर तो नहीं फिर भी अन्तरङ्गसे सहज ही इसका पता चल

जाता है। वास्तवमें इसका संरचक मोह है। उसके दो मंत्री हैं एक राग और दूसरा द्वेष । उनके द्वारा आत्मामें क्रोध मान माया और लोभका प्रकोप होता है। क्रोधादिकोंके आवेगमें यह जीव नाना प्रकारके अनर्थ करता है। जब कोधका आवेग आता है तब परको नानाप्रकारके कष्ट देता है, स्वयं श्रानिष्ट करता है तथा परसे भी कराता है अथवा उसका स्त्रयं अनिष्ट होता हो तो हर्पका अनुभव करता है। यद्यपि परके अनिष्टसे इसका कुछ भी लाभ नहीं पर क्या करे ? लाचार है। यदि परका पुण्योदय हो और इसके अभिशायके अनुकूल उसका कुछ भी वांका न हो तो यह दाहमे दुः शी होता रहता है। यहाँतक देखा गया है कि अभिप्रायके अनुकूल कार्य न होने पर मरण तक कर लेता है। मान के उदयमें यह इच्छा होती है कि पर मेरी प्रतिष्ठा करे, मुमे उच माने। अपनी प्रतिष्ठाके लिए यह दूसरेके विद्यमान गुणींको आच्छादित करता है और अपने अविद्यमान गुणोंको प्रगट करता है। परकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करता है। मानके लिए वहुत कप्टसे उपार्जन किये हुये धनको ञ्यय करनेमे संकोच नहीं करता। यदि मानकी रचा नहीं हुई तो वहुत दुःखी होता है। अपघात तक कर लेनेमें संकोच नहीं करता। यदि कोईने जैसी आपने इच्छा की थी वैसा हो मान लिया तो फूलकर कुप्पा होजाता है। कहता है हमारा मान रह गया। पर मूर्ख यह विचार नहीं करता कि हमारा मान नष्ट होगया। यह नष्ट न होता तो वह भाव सर्वदा वना रहता। उसके जानेसे ही तो त्र्यानन्द श्राया परन्तु विपरीत श्रद्धामें यह मानता है कि मानकी रत्तासे श्रानन्द श्रागया।

एवं माया कषाय भी जीवको इतने प्रपद्धोंमें फँमा देती है कि मनमे तो घौर है, वचनसे कुछ कहता है छौर कायके हारा भून्य ही करता है। मायाचारी आदमीके द्वारा महान् महान् स्नर्य होने हैं। मायावी श्रादमी अपरसे तो सरल दीखता है श्रौर भीतर . श्रत्यन्त वक परिणामी होता है। जैसे वगुला ऊपर तो शनैः शनैः पैरों द्वारा गमन करता है श्रीर भीतरसे जहाँ मछलीकी श्राहट सुनी वहीं उसे चोंचसे पकड़ लेता है। मायाचारके वशीभूत होकर जो न करे सो अलप है। इसी तरह लोभके वशीभूत होनेसे संसारमे जो जो अनथें होते हैं वे किसीसे अविदित नहीं। आज सहस्राविध मनु-ज्यांका संहार हो रहा है वह लोभकी ही वदौलत तो है। आज एक राज्य दूसरेको इड़पना चाहता है। वर्षींसे शान्ति परिषद् हो रही हैं लाखों रुपया वर्वाद हो गये परन्तु टससे मस नहीं हुआ। शतशः नीतिके विद्वानोंने गंभीर विचार किये। श्रन्तमें परिग्रही मनुष्योने एक भी विषय निर्णीत न होने दिया - लोभ कषायकी प्रबलता कुछ नहीं होने देती। सव ही मिल जावें परन्तु जब तक अन्तरद्गमे लोभ विद्यमान है तव तक एक भी वात तय न होगी। राजाओंसे प्रजाका पिण्ड छुड़ाया परन्तु ऋधिकारी वर्ग ऐसा मिला कि उनसे वद्तर दशा मनुष्योंकी हो गई। यइ सव लोभकी महिमा है, लोभकी महिमा अपरम्पार है अतः जहाँ तक बने लोभको कृश करो। क्रोध मान माया लोभ यं चार कपाय ही आत्माके सबसे प्रवल शत्रु हैं। इनसे पिण्ड छुड़ानेका प्रयत्न करो । हमें यहाँ रोककर क्या करोगे। ३ माह रोकनेसे तो यह दशा हो गई कि नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा श्रव चार माह श्रीर रोकोगे तो क्या होगा। स्नेह दुः खका कारण है श्रतः उसे दूर करनेका प्रयास करो। इतना कह कर हम चल पड़े लोग बहुत दूर तक भेजने श्राये। श्राज वरुवासागरसे चल कर नदी पर विश्राम किया !

## ललितपुरकी ओर

सूर्यकी सायंकालीन सुनहली किरणोंसे श्रनुरिजत हरी भरी माड़ियोंसे सुशोभित वेत्रवतीका तट वड़ा रम्य मालूम होता था। सन्ध्याकालीन सामायिकके वाद रात्रिको यहीं विश्राम किया, यहाँ पर जो मुन्शी रहता है वह योग्य है दूसरे दिन प्रातः ८ वजे वाद नौका चली ६ के वाद नदीके उस पार पहुँच सके। मल्लाह वड़े परिश्रमसे कार्य करते हैं मिलता भी उन्हें अच्छा है परन्तु मद्यपानमें सब साफ कर देते हैं। कितने ही मल्लाह तो दो दो रुपये तककी मदिरा पी जाते है अतः इनके पास द्रव्यका संचय नहीं हो पाता । यद्यपि राष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री आदि इनकी उन्नतिमें प्रयत्नशील हैं परन्तु इनका वास्तविक उद्धार कैसे हो इस पर दृष्टि नहीं। जो लोग वर्तमानमें श्रेष्ठ हैं उनसे कहते हैं कि इनके प्रति घृणा न करो परन्तु जव तक इन लोगोंमें मद्य मांसका प्रचार है तव तक न तो लोग इनके साथ समानताका व्यवहार करेंगे श्रीर • न इनका उत्कर्ष होगा। देशके नेता केत्रल पत्रोंमें लेख न लिख कर या वड़े वड़े शहरोंमें भाषण न देकर इन गरीवोंकी टोलियोंमें त्राकर वैठें तथा इन्हें इनके हितका मार्ग दिखलावें तो ये सहज ही सुग्य पर आ सकते हैं। स्वभावके सरल हैं परन्तु अज्ञानके कारण अपना उत्कर्प नहीं कर सकते।

राज्यकी श्रोरसे मद्यविक्री रोकी जावे, गांजा चरस श्रादिका विरोध किया जावे। राज्य सरकार भी.तभी रोक सकती हैं जब वह इनके कारण होनेवाली श्रायसे श्रपनी इच्छा घटा ले। उनसे करोडों स्मयेकी श्राय सरकारको होती है परन्तु इनके सेवनसे होनेताले

रोगोंको दूर करनेके लिये श्रस्पतालोंमे भी करोड़ों रुपये व्यय करना पड़ते हैं। राज्य चाहे तो सब कर सकता है क्यों कि उसके पास सत्ताका वल है। स्रथवा सत्ताका वल ही सर्वोपिर वल नहीं है। श्राज राजकीय अनेक कानूनोंका प्रतिवन्ध होने पर भी लोग अन्याय करते हैं। उसका करण यही है कि राजकीय कान्नोसे लोगोंका हृद्य आतंक युक्त तो होता है पर उस पापसे घृणा नहीं होती। राजके जो अधिकारी वर्ग हैं वे भी स्त्रयं इन पापोंमे प्रवृत्ति करते हैं। कीमतीसे कीमती मदिरा इन्हींके उपयोगमे आती है। सिगरेट पीना तो आजकी सभ्यताका नमूना हो गया है। जैसे अधिकारियोंसे लोगोंके हृद्य नहीं वदलते बल्कि उस पापके करनेके लिये अनेक प्रकारकी छल जुद्रताएं लोग करने लगते हैं। कहीं-कहीं तो यहाँतक देखा गया है कि अध्यापक लोग कत्तात्रोंमे वैठकर सुकुमारमति वालकोंके समत्त सिगरेट या वीड़ीका सेवन करते हैं। इसका क्या प्रभाव उन वालकोंपर पड़ता होगा यह वे जाने। अस्त्र.

श्रापाढ़ छुष्णा १२ सं० २००८ को भाँसी पहुँच गये तथा सेठ मक्खनलालजीके यहाँ ठहर गये। मन्दिरमे प्रवचन हुश्रा। मनुष्य- संख्या पर्याप्त थी। धर्मश्रवणकी इच्छा सबको रहती है—सब मनोयोग पूर्वक सुनते भी हैं परन्तु उपदेश कर्तव्य पथमे नहीं श्राता। इसका मूल कारण वक्तामे श्राभ्यन्तर श्राद्रता नहीं है।

गरजनेवाले मेघ श्रीर निरर्थक उपदेश देनेवाले वक्ता सर्वत्र सुलभ हैं। ये वृथा ही सामने श्रा जाते हैं परन्तु जिनका श्रन्तरङ्ग श्राई है तथा जो जगत्का उद्घार करना चाहते हैं ऐसे मेघ तथा उपदेशक नर दुर्लभ हैं। यदि वक्ता चाहता है कि हमारे वचनोंका प्रभाव लोगों पर पड़े तो उस कार्यको उसे स्वयं करना चाहिये। मुनिधर्मकी दीन्ना मुनि ही दे सकते हैं तथा जिस पद्धतिसे मुनि- धर्मका निरूपण मुनि करनेमें समर्थ होते हैं विद्वान् अविरित्त सम्यग्दृष्टि उस पद्धितसे निरूपण नहीं कर सकते। आजकल सिद्धान्त के ज्ञाता तो वहुत हो गये हैं परन्तु उसपर आचरण नहीं करते। इससे उनके उपदेशका कोई प्रभाव नहीं होता। पदार्थका ज्ञान होना अन्य वात है आर उस पदार्थक्य हो जाना अन्य वात है। हम अपनी कथा कहते हैं—जितनी कथा कहते हैं उसका शतांश भी पालन नहीं करते। यही कारण है कि शान्तिके स्वादसे बिखत हैं। शान्तिका आना कोई किठन नहीं। आज शान्ति आ सकती है परन्तु शान्तिके वाधक जो रागादि दोष हैं उनको हम त्यागते नहीं। रागादिकके जो उत्पादक निमित्त हैं सिर्फ उन्हें त्यागते हैं परन्तु उनके त्यागसे रागादिक नहीं जाते। उनका अभाव तो उनकी उपेक्षासे ही हो सकता है।

त्रयोदशीको प्रात काल चलनंका विचार था परन्तु मूसलाधार वर्षा होनेसे चल नहीं सके। ११ बजेतक वर्षा शान्त नहीं हुई। ऐसा दिखने लगा कि अव लिलतपुर पहुँचनेमें विघ्न आ रहा है परन्तु मध्याह्न वे बाद आकाश स्वच्छ होगया जिससे १ वजे भाँसीसे निकल घर ४ बजे विजीली पहुँच गये। स्थान रम्य था। एक स्कूलमें ठहर गये। यह स्थान सदर (भाँसी) से ६ मील दूर है। वीचमें ४ मीलपर एक डेयरीफार्म दिखा। महिपी और गायोंकी स्वच्छता देख चित्त प्रसन्नतासे भर गया। दूसरे दिन विजीलीसे २ मील चल कर १ उपवनमें निवास किया। शौचादिसे निवृत्त हो पाठ किया तदनन्तर सर्वार्थसिद्धि प्रन्थका प्रवचन किया। उपवनका शान्तिमय वातावरण देख चित्तमें बहुत प्रसन्नता हुई और हृदयमें विहारके निम्नांकित लाभ अनुभवमें आये।

विहारमे अनेक गुण हैं। प्रथम तो एक स्थान पर रहनेसे प्राणियोंके साथ जो स्नेह होता है वह नहीं होता तथा देशाटन

करनेसे अनेक मनुष्योंके साथ धर्मचर्चा करनेका श्रवसर श्राता है। अनेक देशोंके वन उपवन नदी नाले आदि देखनेका सुअवसर प्राप्त होता है, शरीरके श्रवयवोंमे संचलन होनेसे ज्ञुधा श्रादिकी शक्ति क्षीण नहीं हो पाती, अन्नका परिपाक ठीक होता रहता है, त्रालस्यादि दुगुंगोंसे त्रात्मा सुरक्षित रहती है, त्रानेक तीर्थ चेत्रादि के द्रीनका अवसर मिलता है, किसी दिन अनुकूल स्थानादि न मिलनेसे परीषह सहन करनेकी शक्ति त्राजाती है, कभी दुर्जन मनुष्योंके समागमसे कोधादि कषायके कारणोंके सद्भावमें क्षमाका भी परिचय हो जाता है। इत्यादि अनेक लाभोंकी विहारमें सम्भावना है। यह स्थान झाँसीके सुन्दरलाल सेठका है। २०००) वार्षिक व्यय है। उपवनमे आम्रादिके वृत्त हैं। उनसे विशेष आय नहीं। यह रूपया यदि विद्यादानमें खर्च किया जाता तो प्रामीए जनताको बहुत लाभ होता परन्तु लोगोंकी दृष्टि इस स्रोर नहीं। श्राज भारतवर्ष श्रयनी पूर्व गुण-गरिमासे गिर गया है। जहाँ देखो वहाँ पैसेकी पकड़ है। पश्चिमी देशकी सभ्यताको अपनाकर लोगोंने श्रपने व्ययके मार्ग वहुत विस्तृत कर लिये हैं इसीलिए रात-दिन व्ययकी पूर्तिमें ही इन्हें संलग्न रहना पड़ता है। पश्चिमी सभ्यतामे केवल विषय पोषक कार्योंको भारतने अपनाया है। जहाँ प्रथमा-वस्थामें मद्य मांस मधुका त्याग कराया जाता था वहाँ श्रव नीनों अमृतरूपमें माने जाने लगे हैं। इनके विना गृहल्थोंका निर्वाह नहीं होता । थोड़े दिन पहले कोई साबुनका स्पर्श नहीं करता था पर आज उसके विना किसीका निर्वाह नहीं। श्रंत्रेजोंमे जो गुगा थे उन्हें भारतने नहीं अपनाया। वह समयका दुरुपयोग नहीं करते थे, ऊन्होंने भारतवर्षकी महिलात्रोंके साथ सम्बन्ध नहीं किया। प्राचीन वस्तुश्रोंकी रत्ता की, विद्यासे प्रेम वढ़ाया, स्वच्छताको प्रधानता दी इत्यादि । मुसलमानोमें भी वहुतसे गुरण हैं । जैसे एक वादशाह

भी अपनी जातिके अद्ना आदमीके साथ भोजनादि करनेमें संकोच नहीं करता। यदि किसीके पास १ रोटी हो और १० मुसलमान आ जावें तो वह एक एक दुकड़ा खाकर संतोप कर लेंगे। नमाजके समय कहीं भी हों वहींपर नमाज पढ़ लेंगे, परस्परमे मैत्री भावना रक्लेंगे, एक दूसरेको अपनाना जानते हैं इत्यादि। परन्तु हमारे देशके लोग किसीसे गुण प्रहण न कर अधिकांश उसके दोप ही प्रहण करते हैं।

वागसे चल कर ववीना ग्राममे आ गये। यहाँ पर २५ घर जैनियोंके हैं । ५ स्थानो पर दर्शन हैं । दूसरे दिन ३ वजे जब वहाँ-से चलने लगे तव ५० मनुष्य और ५० महिलाएँ आ गईं। इन्छ जपदेश हुआ। पाठशालाके लिये ४०) मासिकका चन्दा हो गया। यहाँ १ मनुष्यको पञ्चायतने १२ माससे जाति च्युत कर दिया था। उसने जो अपराध किया था उसकी चमा माँगी। लोगोंने चमा दी। यदि इतनी नम्रता पहले ही व्यवहारमें लाता तो उतना परेशान क्यों होता परन्तु कपायका वेग भी कुछ चीज है। ववीनासे ४ मील चलकर घिसोली आये, यहाँपर सड़कके किनारे एक जैन मन्डिर हैं। उसीकी दहलानमें ठहर गये। मन्दिरमें भगवानके दर्शन किये। यहाँपर कोई जैनी नहीं रहता। इस शाममे ठाकुर ( च्रत्रिय ) लोग रहते हैं। उनका द्वद्वा है अतः कोई रहना नहीं चाहता। फिर वैश्य जाति स्वभावसे भीरु हैं। यह द्रव्य उपार्जन करना जानते हैं परन्तु श्रन्य गुणोंसे भयभीत रहते हैं। लोभके वशीभृत हो श्रात्मीय प्रतिष्टासे च्युत रहते हैं। यह दान करनेमें शूर हैं परन्तु मर्वोपयोगी कार्योमें व्यय नहीं करेंगे। यही कारण है कि सामान्य जनतानी श्राकर्पित नहीं कर पाते । व्यापार उनकी श्रायका साधारण निमिन हें कृषि करनेको हैय मानते हैं। यद्यपि वैश्यका कृषिकर्म आगम विहित हैं परन्तु उसे हिंसाका कार्य वनाकर दयाका पालन करते हैं

परन्तु ऐसे ऐसे व्यापार करेंगे जिनमे हजारों मन चर्चीका उपयोग होता है, उससे नहीं हरते। अस्तु, संसार स्वार्थों है। यहाँसे चलकर पुलिस चौकीके समीप एक कूप था वहींपर ठहर गये। ववीनासे एक चौका आया था उसीमे निरन्तराय आहार हुआ। यहाँ २ फर्लांगपर वेत्रवती नदी है। घाट अकृत्रिम है। उस पार जानेको २ नौकायें रहती हैं, विना किरायेके पार उतार देते हैं। बीचमे पत्यरोंकी चट्टानें हैं, नौका वड़ी सावधानीसे ले जाते हैं, ३ घण्टा नदी पार करनेमे लगता है, पहाड़ी नदी है, पानी अत्यन्त निर्मल है, स्थान धर्मध्यानके अनुकूल है।

प्रातः ५३ नदीके घाटसे चल कर ७३ वजे कडेसरा पहुँच गये। यहाँ १० घर गोलालारे जैनोंके हैं। मन्दिरके पास हम लोग ठहर गये। यहाँसे पवाचेत्र २३ मील है। श्रामीण जनतामें धर्मका प्रचार हो सकता है परन्तु प्रचारक हों तब वात बने। अगले दिन कडेसरासे चलकर प्याचेत्रमें श्राये। यहाँ पर पृथिवीके १० फुट नीचे जिन मन्दिर है जिसमें काले पत्थरकी ४ मूर्तियाँ हैं। १ मूर्ति श्रादिनाथ स्वामी, १ पार्चनाथ भगवान् की तथा १ नेमीनाथ भगवान् की है। सभी प्रतिमाएँ श्रातिमनोज्ञ चमकदार काले पत्थर की हैं। आदिनाय भगवान् की मूर्ति वि० सं० १३४५ में भट्टारक द्युभकीतिँदेवके द्वारा प्रतिष्ठापित है। यहाँ पर १ नया मन्दिर नयेगाँवकी सिंधेनने बनवाया है। उसमे १ वेदिका संगमर्मरकी हैं तथा उस वेदिका पर सुवर्णका चित्राम हो रहा है। मूर्ति ऋत्यन्त मनोज्ञ है। मन्दिरमें संगमर्भरका पत्थर लग जानेसे वहुत ही सुन्दरता श्रा गई है। मन्दिरके चारों तरफ एक प्राकार है। पूर्व दिशामे १ महान् द्वार है। उसके वगलमें १ वंगला बना हुआ है। पूर्व दिशामें यात्रियोंके निवासके लिये द्रवाजेके दोनों श्रोर कोठा वने हुए हैं। पूर्व प्रवेशद्वारसे थोड़ी दूर पर १ वड़ा क्रूप है जिसका

जल अविशय मधुर है। मन्दिरके चारों खोर रमणीय अटवी है। उत्तरकी स्रोर पवा ग्राम है जहाँ ७ घर जैनियोंके हैं। यह स्थान यदि श्रावक घरसे उदासीन हो, परिग्रह की मूच्छी न हो श्रीर स्वतन्त्र भोजन बना सकता हो तो रह कर घर्मसाधन करनेके योग्य है। विद्याध्ययनके उपयुक्त भी है परन्तु वर्तमान जैन जनताकी इस श्रोर दृष्टि नहीं। दृष्टि जाती भी है तो लौकिक शिचाकी श्रोर ही जाती है, उसका कारण लौकिक शिचामे अर्थ प्राप्तिका विशेष सम्बन्ध है किन्तु जिस शिचासे पारमार्थिक हित होता है उस श्रोर ध्यान नहीं और न हो भी सकता है। प्रत्यच सुखके साधन धनकी प्राप्ति जिसमे हो उसे छोड़ लोग अन्य साधनामे अपनेको नहीं लगाना चाहते। इसका कारण अनादि कालसे आहार, भय, मैथुन श्रौर परिग्रह संज्ञाके जालमे इतने उलमे हैं कि उससे निकलना कफमें उलमी मक्खीके सदृश कठिन है। जिसका महाभाग्य हो वही इस जालसे अपनी रक्ता कर सकता है। यह जाल अन्य द्वारा नहीं वनाया गया है किन्तु हमने स्वयं इसका सृजन किया है।

प्रातःकाल प्रवचन हुआ। २५ मनुष्य थे। इस पवा चेत्र पर जपयोग निर्मल रहता है। दूसरे दिन यहांसे प्रातःकाल ५२ वजे चल कर पुनः कड़ेसरा आगये और अपरान्ह समय यहांसे ४ मील चल कर तालवेहट आगये तथा मन्दिरकी धर्मशालामें ठहर गये। प्रातःकाल मन्दिरजीमें जिनदेवका दर्शन किया। स्वच्छ स्थान था। चित्त प्रसन्न हुआ। यहाँ पर खेतसिंहजी मिठ्या बहुत सजन हैं, धनी भी है तथा पुत्रादिसे संपन्न हैं। यहाँ एक रामस्वरूप योगी सस्कृतके अच्छे विद्वान हैं, साहित्यके आचार्य हैं। आप योगी हैं अतः ब्राह्मण लोग उनसे वह प्रेम नहीं रखतं जा

सजातीय ब्राह्मण्से रखते हैं। श्राप हाईस्कूलमे संस्कृत श्रध्यापक हैं। १२०) मासिक मिलता है। एक संस्कृत पाठशाला प्राइवेट चलाते हैं। उसमें कई हरिजनोंको विशारद मध्यमा तक परीक्षा उत्तीर्ए करा चुके हैं। श्रापका यह सब काम उच्चत्रर्णवालोंको श्रप्रिय प्रतीत होता है। न जाने लोगोंने इतनी संकीर्णता क्यों अपनाई है ? विद्या किसी व्यक्ति विशेषकी नहीं, फिर भी इतनी संकीणता क्यों ? यह सव मोहका कार्य है, मोहमे ही यह भाव होता है कि हम ही उच कहलावें, चाहे कितना ही नीच कार्य क्यों न करें ? श्रन्य ऋषियोंने तो यहाँ तक लिख दिया है कि 'स्रीशृद्रौ नाधीयेयाताम्' श्रयात् स्त्री श्रौर शूद्रको नहीं पढ़ाना चाहिये। यह श्रन्याय नहीं तो क्या ? न जानें इन मनुष्योंने कितने प्रतिबन्ध लगा रक्खे हैं ? अन्य कथा छोड़ो, यहाँ तक आज्ञा दे डाली कि एकान्तमे अपनी माँसे भी मत वोलो । मा यह उपलच्या है अतः स्त्रीमात्रका प्रह्या है। वास्तविक वात यह है कि परिणामोंकी मलिनता जैसे जैसे वृद्धिको प्राप्त होती गई वैसे वैसे यह सर्व नियम वनते गये। तालवेहटमें तालाव बहुत सुन्दर है, तालाबके जलसे एक प्रपात पड़ता है जो बहुत ही मनोहर है, एक छोटी पहाड़ी भी पासमे हैं।

श्रपाढ़ शुक्ला ६ सं० २००८ को यहाँ से चल कर बीचमें जमालपुर ठहरते हुए बाँसी श्रागये। यह बड़ा कसवा है। ३००० के करीव मनुष्य संख्या होगी। यहाँ २ घर गोलालारे जैनोके हैं जिनमे १ घर सम्पन्न है। २ घर विनेकावाल जैनोंके भी हैं। २ मिन्दर विशाल हैं। इस समय ऐसे मिन्दर वनवानेमें लाख रूपयेसे कम नहीं लगेगा। एक मिन्दरकी शिखर जीर्ण है। उसकी मरम्मतके लिये एक जैनी माईने १००) तथा ५ बोरी सीमेंट दी श्रीर भी कई लोगोंने यथाशक्य दिये। २१) सिं० कुन्दनलालजी सागरवालोंने दिये। यह शाम किसी समय सम्पन्न रहा होगा। यहाँकी

जैनेतर जनता भी श्राई। उसके समक्ष मैंने सुमाव रक्खा कि यहाँ १ मिडिल स्कूल हो जावे तो श्रात उत्तम होगा। लोगोके मनमें श्रागई। श्री शिवप्रसाद भट्ट, गोकुलदास तमोली तथा केशवदास दुवे श्रादिने प्रयत्न किया। हमने कहा—यदि यहाँ मिडिल स्कूल हो जावे तो हम सागरसे सिंघई कुन्दनलालजी द्वारा १०१) भिजवा देवेंगे। लोगोने वताया कि सरकारने श्रादेश दृदिया है कि यदि प्रामके लोग १७००) एकत्रित कर लेवें तो यहाँ सरकार मिडिल स्कूल स्थापित कर देवेगा। जनता प्रयत्नशील है श्रतः श्राशा है १७००) कोई वड़ी वात नहीं।

यहाँसे वीचमें देवरान ठहरते हुए लिलतपुरके निकट एक शाममें पहुँच गये। यहाँ पर १ चैत्यालय तथा ३ घर जैनियोंके हैं। ३ घर होते हुए भी इन्होंने आधित्यसत्कार अच्छा किया। यहाँ लिलतपुरसे करीव २०० पुरुष आगये। आज यहाँ विश्राम करनेकी इच्छा थी पर लोगोंके आप्रहसे विश्राम नहीं कर सका। ४ वजे यहाँसे चल दिया। यद्यपि घामका पूर्व प्रकोप था परन्तु समुदायमें परस्पर वार्ताल करते सुए १३ मील चलकर १ चोंकी सघन छायामें वैठ गये। तद्नन्तर वहाँसे चलकर ६ वजे लिलतपुर पहुँच गये। लिलतपुरमें प्रवेश नहीं कर पाये थे कि स्त्रियों और पुरुपोकी वहुत भारी भीड़ एकत्रित हो गई। जाकर वड़े मन्दिरकी धर्मशालामे ठहर गये। यहाँपर धर्मशालाका विशाल चौक स्त्री और पुरुपों द्वारा पहलेसे ही भर गया था। पं० परमेष्ठीदासजीने व्याख्यान देकर शिष्टाचार पूर्वक वर्णीको योगी वना दिया। इस प्रकार आपाढ़ शुक्ला १२ सं० २००५ को संध्या समय लिलतापुरमें आकर चार माहके लिये अमग्र सम्वन्धी खेदसे मुक्त हो गये।

### त्तेत्रपालमें चातुमीस

श्रावाद शुक्ला १३ सं० २००५ को प्रातःकाल ७३ बजेसे ६३ बजेतक मन्दिरके चौकमें प्रवचन हुआ। प्रथम श्री पं० लक्ष्मीचन्द्रजी का प्रवचन हुआ। फिर ध्वित विस्तारक यन्त्रके आनेसे ३ घंटा मेरा प्रवचन हुआ। जनता अच्छी थी। ५०० के ऊपर स्त्री पुरुष थे। प्रायः सवने मनोयोग लगाकर प्रवचन सुना। ४ आद्मियोंने ४ मासतक ब्रह्मचर्यका नियम लिया। अष्टभी चतुर्दशी अष्टाहिका पर्वमें तो प्राय सबने नियम लिया। सन्तोषसे सभा विसर्जित हुई। तदनन्तर श्री नये मन्दिरजीमे दर्शनार्थ गये। यहाँपर भी रम्य वेदिकाएँ हैं। उनमे विराजमान मनोज्ञ प्रतिमाओंके दर्शन किये। पश्चात् जहाँ शास्त्रप्रवचन होता है वहाँपर जनता वैठ गई। १५ मिनट तत्त्व चर्चा होती रही।

प्रश्चात् भोजनके लिए गये। टड़ैयाके घर भोजन हुआ। दो भाई हैं, सुशील हैं, धर्ममें रुचि है। यहाँ ४ वजे शामको समारोहके साथ चलकर त्तेत्रपाल आगये। १००० के लगभग आदमी थे। पं श्यामलालजी और पं० परमेछीदासजीका समयोचित भाषण हुआ। प्रश्चात् ५ मिनट मेरा भी भाषण हुआ, मेरा तो भाषणकर्ताओं से सर्व प्रथम यही कहना है कि जो श्राभिप्राय है उसे ही व्यक्त करो। व्यक्ति प्रशंसासे कुछ लाभ नहीं, प्रत्युत हानि है। दूसरे दिन समयसारका स्वाध्याय किया। जनता प्रसन्न थी। सेठ अभिनन्दनकुमारजी टहैयाके यहाँ भोजन हुआ। कुछ त्यागधर्मका विचार हुआ। मध्यान्ह सामायिकके बाद परस्पर तत्त्वचर्चा करते रहे। ३ वजे प्रतिक्रमण किया

तथा कार्तिक सुदी प्रतिपदा तक लिलतपुरमें रहनेका नियम किया। साथ ही यह भी नियम किया कि प्रातःकाल शास्त्र प्रवचनके वाद गल्पवादमें नहीं पड़ना, मध्यान्हकी सामायिकके वाद श्रध्ययनमें काल लगाना और रात्रिको प्रायः नहीं बोलना। प्रायः का अर्थ श्रावश्यकता पड़ने पर बोलनेकी छूट थी। यहाँ पर ५ बजे सब स्कूलोंके छात्र आये। उन्हें यहाँवाले भाइयोंने लाहू बाँटे। वालक प्रसन्न थे। १००० से अपर होंगे। यह श्रवसर सवके लिए मनोहर था—सब ही प्रसन्न चित्त थे। यदि ऐसे उत्सव जिनमें निज और परका भेद न हो, होते रहे तो नागरिक जनताका पारस्परिक सौहाई बना रहे।

च्रेत्रपाल ललितपुरका सर्वोधिक मनोरम स्थान है। एक श्रहातेके अन्दर भव्य मन्दिर है। श्री श्रभिनन्दन स्वामीकी मनोज्ञ प्रतिमाके द्शीन करनेसे चित्त आल्हादित हो उठता है। यह प्रतिमा यहाँ महोवासे लाई गई थी ऐसा सुना जाता है। मन्दिरोंके साथ एक धर्मशाला तथा एक विशाल वाग भी संलग्न है। यहाँ पहले संस्कृत पाठशाला चलती थी जो अब टूट चुकी है। यह स्थान शहरसे १ मील स्टेशनके करीव है। सामने हरा भरा पुरकल मैदान पड़ा है। ललितपुर स्थान भी वुन्देलखण्ड प्रान्तका प्रमुख नगर है। जैनियोंके सात सौ श्राठ सौ घर है। प्रायः सम्पन्न हैं। श्री स्रतिशय चेत्र देवगढ़ तथा पर्पाराजीका रास्ता यहाँसे होनेके कारण लोगोंका प्रायः त्रावागमन जारी रहता है। व्यापारका श्रच्छा स्यान है। लोगोंमें धर्म-कर्मकी रुचि भी श्रच्छी है। यही नहीं इस प्रान्तके सभी लोग सरल तथा संसारसे भीरु रहते हैं। श्री पं० श्यामलालजी न्याय —कान्यतीर्थ तथा पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ अच्छे विद्वान् हैं। श्री हुकमचन्द्रजी तन्मय वुखारिया और हरिप्रसादनी 'हरि' अच्छे कवि हैं।

इनकी किवतामें माधुर्य तथा श्रोज रहता है। केन्द्र स्थान होनेसे यहाँ विद्वानोंका समागम होता रहता है। जनताके श्राप्रहवश बनारससे पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री भी श्रा गये। श्राप बहुत ही स्वच्छ तथा विचारक विद्वान् हैं। किसी कामको उठाते हैं तो उसके सम्पन्न करने करानेमें श्रपने श्रापको तन्मय कर देते हैं। किसी प्रकारका दुर्भाव इनमें देखनेमे नहीं श्राया। प्रातःकालके प्रवचनमें शहरसे १ भील दूर होने पर भी श्राधिक संख्यामे जनता दौड़ी श्राती थी। हमारा भी उद्दे स्य रहा कि जनताके हाथ कुछ तो भी लगे। इसी उद्दे स्यसे सागारधर्मामृतका प्रवचन श्रुक्त कराया। प्रवचन स्थानीय विद्वान् तथा श्रन्य श्रागन्तुक विद्वानोमेसे कोई विद्वान् करते थे श्रीर उसके बाद हम भी कुछ थोड़ा कह देते थे। स्त्री पुरुष दोनो ही श्रवणमे उपयोग लगाते थे।

सभी स्त्री-पुरुष आत्महित चाहते हैं परन्तु उस और लच्य नहीं देते। केवल कथा कर या अवण कर आत्महित चाहते हैं। आत्महित क्या है यह कुछ कठिन नहीं परन्तु प्राप्त नहीं होता इसलिये कठिन भी है। अनादिसे यह जीव शरीरको निज मानता आता है। आहार, भय, मैथुन और परिप्रह इन चार संज्ञाओं में ही इस जीवका समप्र समय निकल जाता है। आत्महितकी और इसका लच्य ही नहीं जाता। संज्ञाओं की परिपाटी से निकल जाना किसी विरले निकट भव्यका कार्य है। संसारके यावन्मात्र प्राणी आहारकी अभिलापासे संत्रस्त है। आहारके अर्थ ही उसके समस्त उपाय हैं। यदि आहार प्राप्तिकी आकाक्षा मुनिके हृदयमें न होती तो वन छोडकर शहरके दूपित वातवरणमें क्यों आते? भय होने पर जीव भागनेकी इच्छा करते हैं। वृद्धावस्थासे शरीर जर्जर है। अनेक रोगोंकी असहा वेदना भी उठा रहा है, फिर भी

इस जीवको भय लगा रहता है कि मर न जाऊँ यह पर्याय छूट न जाय। मैथुन संज्ञामें विषय रमणकी उच्छा होती है। विषयेच्छासे जो अनर्थ होते हैं वे किसीसे गुप्त नहीं। यह विषय लिप्सा इतनी भयंकर है कि यदि इसकी पूर्ति न हो तो यह प्राणी मृत्यु तकका पात्र हो जाता है। इसका लोभी मनुष्य निन्चसे निन्च कार्य करनेमे भी सकोच नहीं करता। यहाँ तक देखा गया है कि पिताका सम्बन्ध साज्ञात् पुत्रीसे होगया। उत्तमसे उत्तम राजपत्नी नीचोंके साथ संसर्ग करनेमें संकोच नहीं करती। जिसने इस संज्ञापर विजय प्राप्त करली वही महापुरप है। वैसे तो सभी उत्पन्न होते हैं श्रौर मरते हैं। परिमहकी संज्ञा भी इस जीव को उन्मत्त वना रही हैं। श्राज कल तो मनुष्य इसके पीछे पागल होकर पड़ा है। त्यागी, व्रती, विद्वान, अपिद्वान जो देखो वही इसके पीछे चक्र लगा रहा है। सागारधर्मामृनके प्रारम्भमें ही पं॰ श्राशाधरजी ने सागारका लचण लिखते हुए कहा है कि जो उक्त चार संज्ञारूपी व्यरसे श्रातुर हैं, जिम प्रकार ज्वराकान्त मनुष्य दुखी हो जाते हैं उसी प्रकार इन संज्ञाणी के द्वारा जो दुखी होरहे हैं और इनसे दुःखी होनेके कारण जो निरन्तर स्वज्ञान-स्रात्मज्ञानसे विमुख रहते हैं, उन 'मंगार्थां' भी चपेट से जो यह विचार भी नहीं कर पात कि मेरा म्य क्या है? उसका स्त्रहरूप क्या है ? और इसी कारण जो त्रिपयोंने उन्सर रहते हैं उन्हें ही सुखका कारण मान रात दिन उनके एक्ट्रिन करनेमें लीन रहते हैं व सागार कहलाते हैं। इन मंगाओं रायण भी पं॰ श्राशाधरती ने उसी इलोकने बता दिया है 'प्रनागितगा-दोपोत्य' श्रर्यात् 'श्रनादि कालीन मिध्याज्ञानरूपी योपोंसे उनस हैं। जिस प्रकार चर बात पित्त कफ इन दोरोंसे उत्पन्न है। उन्हें इसी प्रकार चार भंद्यारूपी ज्वर मिध्याद्यानम्पी देशिये उत्तर

हुआ है। परमार्थसे पं० आशाधरजी ने सागारका जो लच्चण दिखाया है वह गृहस्थोंमे पूर्ण रूपसे घटित हो रहा है। उन्होंने प्रथम रुलोकमे मोही—मिध्यादृष्टि गृहस्थका लच्चा वतलाया है श्रीर उसके श्रनन्तर दूसरे श्लोकमें सम्यग्दृष्टि गृहस्थका लच्चा वतलाया है। सम्यग्दर्शनके होनेसे जिसे आत्माका भान तो हो गया है परन्तु चारित्रमोहके उदयसे जो परियह संज्ञाका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं है श्रीर उसी कारण जो प्रायः विषयोंमें मूर्चिञ्जत रहते हैं। मिथ्यादृष्टि गृहस्थ तो निरन्तर विपयोन्मुख रहते हैं पर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मिथ्यात्वरूपी तिमिरके दूर हो जानेसे इतना समभने लगता है कि विषय प्राप्ति इमारे जीवनका लच्य नहीं परन्तु चारित्रमोहके उदयसे उनका त्याग नहीं कर पाता इस लिये प्रायः उनमे मूर्छित रहता है। देखो मिध्यात्व श्रौर सम्यक्त्वकी महिमा। मिथ्यात्वके उदयमे तो यह मनुष्य विषयोंको ही सुलका कारण मान श्रहनिश उन्हींमे उन्मुख रहता है पर सम्यक्त्वके होने-पर इसकी दृष्टिमे यह बात त्राजाती है कि विषय सुखके कारण नहीं अतः उनमें उसकी मूर्छा पूर्ववत् नहीं रहती। पं० श्यामलालजीकी प्रवचन करनेकी शैली उत्तम है। अधिकाश सागरधर्मा-मृतका प्रवचन वही करते थे।

लोगोंके हृदयमे धर्मके प्रति श्रद्धा है परन्तु उन्होंने जो लीक पकड़ ली है या जिन कार्योंको उन्होंने धर्म मान रक्खा है उससे भिन्न कार्यमे वे श्रपना योग नहीं देना चाहते। उससे भिन्न वात सामने श्राने पर उन्हें रुचिकर नहीं होती। वर्तमानमे यथार्थ वात कहनेकी श्रावश्यकता है, क्योंकि लोग जिन कार्योंमे धर्म मानते श्रा रहे हैं उनसे भिन्न कार्योंमे श्रावश्यकता होने पर भी )। पैसा व्यय नहीं करना चाहते। देखा गया है कि मन्दिरमें नवीन वेदिकाकी श्रावश्यकता नहीं फिर भी उसमे वेदी जड़वा देगें। उसमे

१००००) तक व्यय कर देवेंगे। पड़ोसमें जैनी आजीविकासे रहित होगा, उसे १०) भी पूँ जीको न देवेंगे। सिद्ध किविधानमें हजारों रुपया व्ययकर देवेंगे किन्तु १ छात्रको पढ़ानेमें १००) भी न देवेंगे। कल्याणककी आवश्यकता न होने पर ५००००) व्यय करनेमें विलम्ब न करेंगे। परन्तु ग्राममें वालकोंको धर्मशिक्षा देनेक अर्थ १ अध्यापकको ५०) देनेमें इनका हृदय द्रवीमूत न होगा। देशमें लाखों मनुष्य अन्नके कष्टसे पीड़ित होने पर भी लोग विवाहादि कार्योंमें लाखों रुपया वारूदकी तरह फूँक देनेमें संकोच न करेंगे परन्तु अन्न-बस्न विहीनोंकी रक्षामें ध्यान न देवेंगे। देवदर्शनादि करनेमें समय नहीं मिलता ऐसा वहाना कर देवेंगे परन्तु सिनेमा आदि देखनेमें ऑख भले ही खराब हो जावे इसकी परवाह भ करेंगे।

लोग शान्ति शान्ति चिहाते हैं और मैं भी निरन्तर उसीकी खोजमें रहता हूं पर उसका पता नहीं चलता। परमार्थसे शान्ति तो तव आवे जब कषायका कुछ भी उपद्रव न रहे। कषायातुर प्राणी निरन्तर पर निन्दाके श्रवणमे आनन्द मानता है। जिसे परकी निन्दामें प्रसन्नता होती है उसे आत्मनिन्दामें स्वयमेत्र विपाद होता है। जिसके निरन्तर हर्ष-विपाद रहते हों वह सम्यग्जानी कैसा? यद्यपि आत्मा झान दर्शनका पिण्ड है फिर भी न जाने क्यों उसमे राग द्वेष होते हैं? वस्तुतः इनका मूल कारण हमारा संकल्य है अर्थात् परमे निजत्व कल्पना है। यही कल्पना राग द्वेपका कारण है। जब परको निज मानोगे तव अनुकूलमें राग और प्रतिकृलमें द्वेष करना स्वाभाविक ही है। अतः स्वरूपमें लीन रहना उत्तम वात है। अपना उपयोग वाहर अमाया तो फंसे। होलीके दिन लोग घरमें छिपे वैठे रहते हैं। कहते हैं कि यदि वाहर निकलेंगे तो लोग कपड़े रंग देंगे। इसी प्रकार विवेकी मनुष्य सोचता रहता है कि मैं

अपने घरमे—अपने स्वरूपमे लीन रहूँगा तो बचा रहूँगा, अन्यथा संसारके राग-रंगमें फॅस जाऊँगा।

> जगमें होरी हो रही बाहर निकले कूर। जो घरमें बेठा रहे तो काहे लागे धूर॥

#### विविध विद्वानोंका समागम

लिलितपुरकी समाजका निमन्त्रण पाकर एं० फूलचन्द्रजी वनारससे यहाँ श्राचुके थे यह भीं पहले लिख श्राया हूं। इनके सिवाय अन्यान्य विद्वानोंका समागम भी यहाँ होता रहा । विद्वानोंने श्रपने प्रवचनोंके द्वारा यहाँकी समाजको यथाशक्य लाभान्वित किया। श्रावरा शुक्ल १ के दिन श्री पं० हीरालालजी शास्त्रीने प्रातः-काल प्रवचन करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान श्रौर सम्यक् चारित्रका विशद वर्णन किया। श्रापने सम्यग्ज्ञानको तराजू श्रीरे सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्रको तराजूके दो पलड़े वताकर मोक्ष-मार्गका श्रच्छा विवेचन किया। श्रापकी वाचनारौली उत्तम है। श्रोतागए प्रसन्न हुए। सम्यग्दर्शनका विवेचन करते हुए श्रापने खास बात यह वताई कि सम्यग्दृष्टि मूल कारण को पकड़ता है श्रौर मिथ्यादृष्टि वाह्य कार्गोंमे उलमता है। सम्यग्दृष्टिकी प्रवृत्ति सिंहके समान है अर्थात् जिस प्रकार सिंह वन्दूककी स्रोर न म्हपट कर मारनेवालेकी श्रोर भपटता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि वाह्य कारगोंमें उलम कर उनसे रागद्वेष नहीं करता किन्तु श्रन्तरङ्ग कारण जो कर्मीदय है उसकी श्रीर दृष्टि देता है। मिध्यादृष्टि की

प्रवृत्ति कुक्कुरके समान है अर्थात् जिस प्रकार कुक्कुरको कोई लाठी मारे तो वह लाठीको चवाने लगता है। मारनेवालेसे कुछ नहीं कहता इसी प्रकार किसीके द्वारा इप्ट या श्रनिष्ट होने पर सिध्यादृष्टि जस पर राग द्वेप करता है। जस इप्ट या श्रनिष्टका मूल कारण जो कर्मोद्य है जस पर दृष्टि नहीं देता।

श्रावरा शुक्त ४ सं० २००५ को पं० फूलचन्द्रजीका प्रवचन वहुत मनोहर हुआ। आपने कहा कि आत्माको संसारमें रखनेवाली यदि कोई वस्तु है तो पराधीनता है श्रीर ससारसे पार करनेवाली कोई वस्तु है तो स्वाधीनता है। हम स्वतन्त्र चैतन्य पुष्त त्रात्मद्रव्य हैं। हमारा त्रात्मद्रव्य त्रपने श्रापमे परिपूर्ण है । उसे परकी सहायताकी श्रपेका नहीं है। फिर भी यह जीत्र अपनी शक्तिको न समम पद पद पर पर द्रव्यके साहाय्यकी अपेका करता है और सोचता है कि इसके विना हमारा काम नहीं चल सकता। यही इसकी पराधीनता-है। जिस समय परकी सहायताकी श्रपेचा छूट जावेगी उस दिन मुक्ति होनेमें देर न लगेगी। अविवेकी मनुष्य, खी पुत्रादिकको श्रपना हितकारी समभकर उनमें राग करता है परन्तु विवेकी मनुष्य 'सममता है कि यह स्त्री पुत्रादिका परिकर संसारचक्रमें फसाने-वाला है इसलिये उसमे तटस्य रहता है। मनुष्य पुत्रको वहुत प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं किन्तु यथार्थ वात इसके विपरीत है। मनुष्य सवसे ऋधिक प्रेम स्वस्त्रीसे रखता है। इसीसे उसने स्त्रीका नाम प्राणिप्रया रक्खा है। स्त्री भी इसकी श्राज्ञाकारिणी रहती हैं। वह प्रथम पतिको भोजन कराती है पश्चात् श्राप भोजन करती है। पहले पतिको शयन कराती है। पत्रान् आप शयन करती है। उसकी वैयावृत्त्य करनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं करती। यह सब है परन्तु पुत्रके होने पर यह वात नहीं रहती।

यदि भोजनमें विलम्ब हो गया तो पित कहता है—विलम्ब क्यों हुआ ? स्त्री कहती है कि पुत्रका काम करूँ या आपका। पुत्र क्यों क्यों वृद्धिको प्राप्त होता है त्यों त्यों पिता हासको प्राप्त होता है। समर्थ होने पर तो पुत्र समस्त सम्पदाका स्त्रामी वन जाता है। अब आप स्वयं निर्णय कीजिये कि पुत्रने उत्पन्न होते ही आपकी सर्वाधिक प्रेमपात्र स्त्रीके मनमें अन्तर कर दिया, पीछे आपकी समस्त संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया तो वह पुत्र कहलाया या शत्रु श आपकी संपत्तिकों कोई छीन ले तो उसे आप मित्र मानेंगे या शत्रु श परन्तु मोहके नशामें यथार्थ बातकी और दृष्टि नहीं जाती है। यह मोह दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इन तीनों गुणोंको विकृत कर देता है इसलिये हमारा प्रयत्न ऐसा होना चाहिये कि जिससे सर्व प्रथम मोहसे पिण्ड छूट जावे।

श्रावण शुक्ला १३ सं० २००८ को बं॰ सुमेरुचन्द्रजी भगतका व्याख्यान हुं हो । श्रापने पुद्गलसे भिन्न श्रात्माको दर्शाया । परमाथसे सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं । कोई द्रव्यके साथ तन्मय नहीं होता । फिर भी जीव श्रोर पुद्गल ये दो द्रव्य पृथक् पृथक् होने पर भी परस्पर इस प्रकार मिल रहे हैं कि जिनसे श्राविल विश्व दृष्टिपथ हो रहा है । यह विश्व न तो केवल पुद्गलका कार्य है श्रोर न केवल जीवका किन्तु उभय द्रव्य मिल कर यह खेल दिखा रहे हैं । चूना श्रपने श्रापमें सफेद पदार्थ है श्रोर हल्दी श्रपने श्रापमें पीली है परन्तु दोनों मिल कर एक तीसरा लाल रंग उत्पन्न कर देते हैं इसी प्रकार जीव श्रोर पुद्गलके सम्बन्धसे यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न हुत्रा है । श्राज जो मानवीय शरीर श्रपनेको छपलच्य है इसकी तुलना देवोंका शरीर भी नहीं कर सकता फिर नारकी श्रोर तिर्यञ्च की तो वात ही क्या है ? इस मानव शरीरमें वह योग्यता है कि श्रन्तर्भुहूर्तमे संसारसे वेड़ा पार करादे पर

देवोंके शरीरमें यह वात नहीं। श्रतः हमें उचित है कि इस मानव शरीरसे ऐसा कार्य किया जाय कि जिससे श्रात्मा संसारके वन्धनसे मुक्त हो जाय।

श्रावण शुक्ला १४ सं० २००८ को चेत्रपालमे रक्षवन्धनका उत्सन हुआ। श्री पं० फूलचन्द्रजीका प्रकचन हुआ। श्रानन्तर पं० रयामलालजी और श्री सुमेरुचन्द्रजी भगतके रज्ञावन्धनपर व्याख्यान हुये। सवका सार यही था कि अपराधीसे अपराधी व्यक्तिकी भी उपेत्ता न कर उसके उद्धारका प्रयत्न करना चाहिए। श्री अकम्पनाचार्यने बलि आदि मन्त्रियोंके द्वारा घोर कष्ट भोगकर भी उनकी श्रात्माका उद्धार किया है। जैनधर्मकी ज्ञमा वस्तुतः अपनी उपमा नहीं रखती। पूर्णिमाके दिन शहरके बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। पं० राजधरलालजीने रज्ञावन्धनकी मनोहर गाथा सवको सुनाई। सवका चित्त प्रसन्न हुआ।

भाद्रपद कृष्णा ४ सं० २००५ को पं० वंशीधरजी व्याकरणा-चार्य बीनाका सम्यग्दर्शनपर सुन्दर विवेचन हुआ। आपने समय-सारकी व्याख्या सुन्दर की। समय शब्दका अर्थ आत्मा है। उसका जो सार है वह समयसार है। इस तरह समयसारका अर्थ सिद्ध पर्योय है। उसकी प्राप्ति हो जाय इसीके लिए मनुष्यके प्रयत्न हैं। इसी तरह भाद्रपद कृष्णा ७ के दिन आपने बहुत वारीकीसे धर्म, अर्थ, काम और मोच्च इन चार पुरुषार्थोंका वर्णन किया। वर्णन रोचक था।

भारपद कृष्णा ५ सं० २००५ को महरौनीके पं० गोविन्ददास जीका व्याख्यान हुं आ । आपने सत्समागम पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया। सत्समागमसे ही मनुष्यमें मनुष्यता आती है। श्रतः उचित है कि ज्ञानादिगुणोंसे मनुष्य वृद्ध है उनकी सेवा करें। श्रापने कुरल काव्यका हिन्दी तथा संस्कृत श्रनुवाद किया है। व्युत्पन्न विद्वान है परन्तु कर्मींदयकी विपरीततासे नेत्रविहीन हो गये।

भाद्रपद कृष्ण १४ स॰ २००८ को पण्डित शीतलप्रसाद जी शाहपुरवार्लोका व्याख्यान हुआ। आपका प्रवचन बहुंत ही मनोहर था। श्रापने जनताके हृद्यमें समीचीन रूपसे धर्मकी भावना भर दी। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमे धर्मका वास्तविक परिचय हो गया। श्रापने बताया कि धर्म कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कहींसे भिचामें मिल जाय। इम स्वयं इतने कातर हो गये हैं कि उसके होते हुए भी परसे याचना करते हुंए लज्जित नहीं होते। धर्मका घातक अधर्म है। श्रथर्मके सद्भावसे धर्मका विकाश नहीं हो सकता। जैसे श्रन्धकारके प्रभावमें प्रकाश नहीं क्योंकि श्रन्धकार श्रौर प्रकाश ये दोनों परस्पर विरोधी हैं किन्तु जब रात्रिका अन्त आता है तथा सूर्योदय होता है तब श्रन्धकार पर्याय स्वयमेव विलय जाती है। इसी प्रकार हमारी प्रवृत्ति श्रनादि कालसे परमें निजत्व कल्पना कर मिथ्याज्ञानका पात्र वन रही है और इसीके द्वारा अन्य पदार्थों को निज मान त्रात्मचारित्रको कोध मान माया लोभरूप बना रही है। निरन्तर इन्हींमें तन्मय हो रही है। इनमें तन्मय होनेसे श्रात्मीय चमा, मार्दव, श्राजीव श्रीर शीचका घात कर रही है। जव ज्ञमादिक पर्यायोंका उदय नहीं तव आप ही बताओ शान्तिरसका श्रास्त्राद कैसे मिले।

भाइपद कृष्णा ३० सं॰ २००८ को पं॰ मुन्नालालजी सम-गौरया सागरने शास्त्र प्रवचन किया। भक्तिपर सम्यक् विवेचन किया। परमार्थसे विचार किया जाय तो भक्ति के ही श्रात्मात्रात्म-गुणोंके विकासमें कारण होती है। गुणोंमे श्रनुराग होना भक्तिका तत्त्रण है।

भाद्रपद शुक्ला १ को श्री पं॰ शीलचन्द्रजी साद्रमलका प्रवचन हुन्त्रा। स्त्राप प्रकृत्या शान्त तथा सुनोध विद्वान् हैं। स्त्रापने सम्यक् प्रकार यह सिद्ध किया कि मनुष्यको भावना निर्मल वनाना चाहिये। भावना ही भवनाशिनी है। अनन्त संसारका कारण श्रसद्भावना श्रौर श्रनन्त संसारका विध्यंस करनेवाली सद्भावना है। जो श्रात्माकी यथार्थतासे अनिभज्ञ हैं वे श्रात्मस्वरूपसे विद्यत हैं। परमें निजत्वका व्यामोह कर निरन्तर दुःखके पात्र रहते हैं। दुःखका लक्ष्य श्राकुलवा है। श्राकुलवा जहाँ होती है वहाँ अशान्ति अवश्य रहती है। श्रात्मा भीवरसे शान्ति चाहता है परन्तु शान्तिका अनुभव तभी हो सकता है जब किसी प्रकारकी व्ययता न हो। इस जीवको सबसे महती व्ययता शारीरिक स्वास्थ्यकी रहती है। यह शरीर पुद्गल समुदायसे निष्पन्न हुआ हैं परन्तु हम इसे अपना मानते हैं। प्रथम तो यह मान्यता मिथ्या है फिर जब इसे त्रात्मीय माना तव इसके रक्त्याकी चिन्ता रहने लगी। रच्च एके लिये अनेक पदार्थीका संग्रह करना पड़ता है। उस संग्रहमें अनेक प्रकारके अनथौंका आश्रय लेना पड़ता है। इसके लिये ही यह जीव हिंसा, श्रसत्य, चोरी, व्यभिचार तथा परिग्रह इन पञ्च पापोंसे अपनेको नहीं बचा सकता। शरीरके अर्थ वड़े-वड़े प्राणियोंका घात करता देखा जाता है तथा अनेक प्राणियों का मांस खा जाता है। जिनके द्वारा अल्प भी भय हुआ तो जहें शीच ही नष्ट करनेका उपाय करता है। इस तरह विचार किया जाय तो संसारका मूल कारण शरीरमें निज्ञत्वकी कल्पना है। इसे नष्ट करनेका प्रयत्न सबसे पहले करना चाहिये। किसी वृज्को उखाड़ना है तो उसकी जड़ पर प्रहार होना चाहिये। केवल पत्तोंके लोंचनेसे वृत्त नहीं उखाड़ा ना सक्ता ।

इस चातुर्मास्यके समय सागरसे सिंघई डालचन्द्र जी सराफ

श्राये। श्राप एक धार्मिक पुरुष हैं। श्रापका तत्त्वज्ञान निर्मल हैं। श्रापकी धर्ममें अधिक प्रवृत्ति रहती है। दिल्लीसे लाला मक्खन-लालजी ठेकेदार जो कि वर्त्तमानमे गृहवाससे पूर्णरीत्या उदासीन हैं, श्राये। टीकमगढ़से पं० ठाकुरदासजी बी. ए. श्राये। श्राप संस्कृत तथा श्रंयेजीके योग्य विद्वान हैं। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द्र जी वकील श्राये। श्राप बहुत ही विद्वान हैं। करणानुयोगके श्रच्छे ज्ञाता हैं। श्रल्प श्रवस्था होने पर भी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। श्री जैनेन्द्रिक्शोर जी दिल्ली तथा राजकृष्ण जी दिल्ली सकुटुम्ब श्राये। जानसरसे श्री तहसीलदार साहब श्राये। इस प्रकार श्रनेक विद्वानों तथा श्रन्य विशिष्ट भहानुमावोंके समागमसे वर्षाकालका समय सम्यक् रीत्या ज्यतीत हुआ। जल वायु उत्तम तथा शरीरके श्रनुकूल रहा।

### इंटर कालेजका उपक्रम

लिलतपुर बुन्देलखण्ड प्रान्तका केन्द्र स्थान है, जैनियोंकी अच्छी वस्ती है और ज्यापारका अच्छा स्थान है। यहाँपर शिचाका आयतन न होना हृदयमें चोट करता रहता था। एक पाठशाला पहले चेत्रपालमें थी जिससे प्रान्तके छात्रोंको लाभ होता था परन्तु अब वह वन्द हो चुकी है। इच्छा थी कि यहाँ पर झानका एक अच्छा आयतन स्थिर हो तो प्रान्तके वालकोंका वहुत कल्याण हो। आज कल लोगोंकी रुचि अंग्रेजी विद्याकी और अधिक है, अतः उसीके आयतन स्थापित करना चाहते हैं। मुक्ते इसमे हर्ष विपाद नहीं। भाषा उन्ततिका साधन है। यदि हृदयकी पवित्रताकों न

छोड़ा जाय तो किसी भाषासे मनुष्य श्रपनी उन्नति कर सकता है। मुम्ते यह जान कर हर्प हुआ कि पं० फूलचन्द्रजी की विशिष्ट प्रेरणा से नगरके लोगोसे इण्टर कालेज खोलनेकी चर्चा धीरे धीरे जोर पकड़ती जाती है। वे इस विषयमें बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। उनके प्रयत्नसे श्री सर्राफ मुन्नालाल भगवानदासजीने १०१०१) श्रोर श्री निहालचन्द्रजी टड़ैयाने ७०१०१) देना स्वीकृत किया है। अन्य महानुभावोंने भी रकमें लिखाई। भादों तक १०००००) का चन्दा हो जावेगा और कालेजकी स्थापना हो जावेगी। इसी प्रकरणको लेकर चेत्रपाल कमेटीके सदस्योंका यह विचार हुत्रा कि कमेटीको मकनोंके किरायेसे जो आमदनी होती है उसे मन्दिर सम्बन्धी कार्योंसे वचनेपर कालेजके लिए दे देंगे। ज्ञानप्रचारमे सम्पत्तिका व्यय हो इससे वढ़कर क्या उपयोग हो सकता है ? संगमर्भरके पत्थर जड़वानेकी श्रपेचा मन्दिरोंकी सम्पत्ति का उपयोग शास्त्र प्रकाशन तथा ज्ञान प्रचारमे होने लगे तो यह मनुष्योंकी वुद्धिका परिचा-यक है। कमेटीके इस विचारसे नवयुवकोंको वहुत हुए हुआ और व कालेजके लिये भरसक प्रयत्न करने लगे जिससे बहुत कुछ संभावना हो गई कि यहाँ कालेज खुलकर ही रहेगा।

पर्यूषण पर्व आगया। पं० फूलचन्द्रजी यहाँ थे ही। श्रतः सूत्रजीपर उनका सारगभित व्याख्यान होता था। उनके व्याख्यान के बाद मैं भी कुछ कह देता था। मेरे कहनेका सार यह था कि यह श्रात्मा स्त्रभावतः शुद्ध-निरञ्जन होनेपर भी मोहके द्वारा निर्देश स्त्रनाको प्राप्त हो रहा है—

श्रहो निरखन शान्तो वोघोऽह प्रकृतेः परः। एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विटिम्प्तः॥

कैसे आख्रर्यकी बात है कि मैं निरश्वन हूँ, रागादि उपद्रयोंसे रहित हूँ, शान्त हूँ, बोधस्वरूप हूँ, फिर भी इतना काल मैंने मोहके द्वारा व्यर्थ ही विता दिया। अनादि कालसे जो पर्याय पाई उसीमें अपनत्वकी कल्पना कर ली। यद्यपि यह मनुष्य पर्याय असमान जातीय पुद्गल और जीवके सम्वन्धसे उत्पन्न है तो भी मोहजन्य विडम्बनाके कारण में अपने स्वरूपको न जान इस संयोगज पर्यायको अपनी मानता रहा। कभी अपनेको ब्राह्मणादिक माना, कभी श्राप्तमवासी माना, कभी किसी रूप माना और कभी किसी रूप। परन्तु इन सबसे परे जो आत्मा शुद्ध-विविक्त जात्यजाम्बू-नद्वत् उज्बल स्वरूप है उसकी और दृष्टि नहीं दी।

न त्वं विप्रादिको वर्णों नाथमी नाक्षगोचरः। असंगोऽसि निराकारो विश्वसाक्षी सुखी भव॥

वास्तवमे विचारकर देखा जावे तो आत्मा न ब्राह्मण है, न चित्रय है, न वैश्य है, न शूद्र है और न किसी ब्रह्मचर्य. गृहस्थ, बानप्रस्थ तथा संन्यासी आश्रमका धारक है। यह सब तो शरीर के धर्म हैं—शरीरकी अवस्थायें हैं। इन रूप आत्माको मानना मोहका विलास है। 'यह मैं हूं' इत्यादि अहंकार ममकारके द्वारा ठगाया गया चेतनाके विलाससे परिपूर्ण जो आत्मा उसके च्यवहारसे च्युत होकर अन्य कार्योमे उलम रहा हूं।

शान्तिसे पर्वके दिन व्यतीत हुंए। पर्वके अनन्तर जयन्ती उत्सवका आयोजन हुआ जिसमें बाहरसे श्री पं० बंशीधरजी इन्दौर, पं० राजेन्द्रकुमारजी दिल्ली, पं० दयाचन्द्रजी सागर, पं० पन्ना लालजी साहित्याचार्य सागर आदि विद्वान् भी पधारे। सागर तथा अन्य अनेक स्थानोंसे महानुमाव आये। मुम्ते चेत्र गलसे जुद्धस द्वारा नगरमे ले जाया गया। वहाँ जयन्ती उत्सव हुआ। मैन शिर भुका कर श्रद्धा जलिके शब्द सुने। अन्तमे जब मेरे कहनेका अवसर आया तब मैंने कहा कि संस्कृतमे एक श्लोक है।

जिसका भाव यह है—चन्द्रमाका उदय होने पर कमल वन्द हो जाता है। क्यों हो जाता है ? इसकी कल्पना एक कविने की हैं। लोग कमलको लदमीका घर कहते हैं। इसी प्रसिद्धिसे चन्द्रमाने - अपना कर अर्थात् हाय कमलके पास प्रसारित किया कि इसके पाससे कुछ लदमी मुमें भी मिल जायगी पर कमलने देखा कि मेरे पास लक्सी तो है नहीं। लोग मुमे व्यर्थ ही लक्सीका निवास कहते हैं। मैं द्विजराज-चन्द्रमा को क्या दे दूं "इस संकोचके कारण ही मानों कमल चन्द्रोदय होने पर वन्द हो जाता है। सो यह तो कवियोंकी वात रही पर जब में अपनी ओर देखता हूं तो यही अवस्था अपनी पाता हूं। आप लोग वढ़ा वढ़ा कर गुएगान करते हैं पर मेरेमें वह गुगा अंशमात्र भी नहीं अतः नीचा मुख कर बैठ जाता हूं। संसार की बात क्या कहूं ? वहाँ तो लोग पत्थरको देवता वना कर उससे अपना कल्याएँ कर लेते हैं फिर मैं तो सचेतन प्राणी हूँ। यह निश्चित है कि आपका कल्याण इमारे क्या साक्षात् जिनेन्द्रदेवके गुणगान करनेसे भी नहीं होगा। कल्याणका मार्ग तो आत्मामेसे विकार परिणति को दूर कर देना हैं। जब तक इस विकार परिणतिको आप दूर न करेंगे तब तक कल्याणकी वात दूर है। स्वर्गादिकका वैभव भले ही मिल जावे पर इससे कल्याण नहीं। कल्याण तो जन्म-मरणके संकटसे दूर हो जाने पर ही हो सकता है। जन्म-मरणका कारण मिध्या-दुर्शन, मिथ्याज्ञान, श्रौर मिथ्याचारित्र हैं। इनसे श्रपने श्रापकी रज्ञा करो। जिस समय इनसे श्रात्मा निवृत्त हो जायगी उस समय श्रन्यके गुणगान करनेकी श्रावश्यकता नहीं रहेगी। श्रस्तु,

श्रव तक कालेज खोलनेका दृढ़ निश्चय हो गया या श्रीर उसकी इस उत्सवमें घोषणा कर दी गई। कालेजका नाम 'वर्णी इन्टर कालेज' रक्खा गया। उत्सवमें श्रागत जनताने भी ययायोग्य सहायताके वचन दिखे। एक दिन रात्रिको कवियोंके कविता-पाठ भी हुए। यहाँ किव वहुत हैं। अच्छी किवता करते हैं। आहिवन शुक्ला ६ के दिन सागरवालोंके यहाँ आहार हुआ। मैं सागर वहुत समय तक रहा हूं इसिलये यहाँके लोग मेरे साथ आत्मीयके सहश व्यवहार करते हैं। उत्सवमें आगत विद्वान् यथास्थान चले गये। केवल पं० वंशीधरजी इन्दौर रह गये। आपके २-३ प्रवचन हुए। आप जैन वाङ्मयके उच्च कोटीके ज्ञाता है तथा पदार्थका विवेचन वहुत सूद्म रीतिसे करते हैं। विवेचन करते करते आप इतने तन्मय हो जाते हैं कि अन्य सुध बुध भूल जाते हैं। उस समय आपकी ध्विन गद्गद् हो जाती है। तथा नेत्रोंसे अशु-धारा वहने लगती है। सुनकर जनता भी द्रवीभूत हो जाती है।

दिहीसे श्री जैनेन्द्रिकशोरजी सकुदुन्य श्राये। श्रापका न जाने क्यों हमारे साथ इतना श्रात्मीय मान हो गया है कि श्राप यथासमय हमारे पास श्राते रहते हैं। श्राश्वन कृष्णा श्रमावस्याके दिन श्रापके यहाँ श्राहार हुश्रा। श्रनेक प्रकारकी सामग्री थी। इसमें उनका श्रपाध नहीं। श्रपराध हमारी जालसाका है। यदि मैं जालसा पर विजय प्राप्त कर सीधा साधा मोजन महण करने लगू तो यह सब प्रपञ्च श्राज दूर हो जावे। रागादि निवृत्तिके श्रथे जो वात हम श्रन्यसे कहते हैं, यदि उसका शतांश भी स्वयं पालन करें तो हमारा कल्याण हो जावे। दो तीन दिन रह कर श्राप चले गये। विजया दशमीके दिन श्रापका पत्र श्राया कि श्री छुड़क निजानन्दजी (कर्मोनन्दजी) देहलीके वेदान्त श्राश्रममें चले गये हैं। इस घटनासे बहुतसे मनुष्योंको खेद हुश्रा परन्तु इसमे खेदकी बात नहीं। प्रत्येक जीवके श्रमिप्राय भिन्न-भिन्न होते हैं। श्राज तक उन्हें जैनधमेंसे प्रेम था। श्रव उनका विश्वास वेदान्त पर हो गया। मोहकी सत्ता

तवतक आत्मामे विद्यमान रहती है जवतक इस आत्माकी परिण्ति नाना प्रकारकी होती रहती है। यदि यह व्यक्ति भावावेशमे आकर जुल्लकपद यहण न करता और शक्तिके अनुसार चारित्रका पालन करता रहता तो यह अवसर न आता। मनुष्य वही है जो किसी वातको श्रवणकर उसपर पूर्वापर विचार करे। संसार एक विचित्र जाल है। इस जालमें श्रायः सभी फंसे हैं। जो इससे निकल जावे, प्रशंमा उसीकी है। जालमे फंसनेका सबसे प्रवल कारण श्रहंबुद्धि और समबुद्धि है। इस जीवको श्रनादि कालसे यह श्रहंकार लगा हुआ है कि मैं एक विशिष्ट व्यक्ति हूँ, मेरे समज्ञ श्रन्य सब तुच्छ है। यह श्रहंकार ही मनुष्यकी प्रगतिमें सर्वाधिक वाधक है।

कार्तिक कृष्णा ७ सं० २००० से श्री नये मन्दिरमें सिद्धचक विधानका पाठ हुआ। विधि करानेके लिए श्रीयुत पण्डित मुन्नालालजी इन्दौरसे त्राये। श्राप उत्तम विधिसे कार्य कराते हैं। पहले ज्याख्यान देते हैं, फिर क्रिया कराते हैं। आपका उचारण स्पष्ट और मधुर होता है। जनता प्रसन्न रहती हैं। मैं भी प्रारम्भके दिन १३ घण्टा मन्दिरमें रहा। पाठ सुनकर चित्त वहुत प्रसन्न हुआ। यदि ज्यवहार धर्मका प्रयोजन यथार्थ दर्शाया जावे तो उसका श्रोतागणोंपर उत्तम प्रभाव पड़ता है। जो वक्ता तत्त्वको यथार्थ नहीं दिखा सक्ते वह श्रोताओं के भी समयको लेते हैं और अपना भी समय प्रायः खो देते हैं। श्राजकल व्यवहारधर्मकी प्रभुता है। श्रन्तरङ्गकी श्रोर श्रणुमात्र भी दृष्टि नहीं, श्रन्यथा उस श्रोर लच्च श्रवश्य जाता। वाह्य द्रव्यसे श्राजतक किसीका कल्याण न हुश्रा और न होगा। जवतक हमारी निर्वलता है तवतक यह पर द्रव्य हमारे लिए जो जो श्रनर्थ न करे श्रल्प है।

#### तीव्र वेदना

कार्तिक कृष्णा ११ सं० २००८ को शारीरिक श्रवस्था यथोचित नहों रही-एक फोड़ा उठनेके कारण कुछ रहा। फिर भी स्त्राध्याय किया। स्त्राध्याय थोड़े ही समय हुआ। उसका सार यह था कि मनुष्य अपना हित चाहते हैं परन्तु अनुकूल प्रवृत्ति नहीं वरते। पर पदार्थों के संग्रह करनेमें निरन्तर ज्यम रहते हैं श्रौर इसी व्यत्रताके आवेगमं पूर्ण आयु व्यय कर देते हैं। कल्याणकी लालसासे मनुष्य परका समागम करता है परन्तु उससे कल्याण तो दूर रहा श्रकल्याण ही होता है। प्रथम तो परके समागममें श्रपना समय नष्ट होता है। द्वितीय जिसका समागम होता है उसके श्रमुकूल प्रवृत्ति करना पड़ती है। श्रमुकूल प्रवृत्ति न करने पर अन्यको कष्ट देनेकी सम्भावना हो जाती है अतः परका समागम सर्वथा हेय है। जिस समय श्रात्मा श्रपनेको जानता है उस समय निज स्वरूप ज्ञान—दर्शनरूप ही तो रहता है। दर्शन-ज्ञानका काम देखना-जानना है। इससे श्रतिरिक्त मानना श्रात्माको ठगना है। श्रात्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। उसे रागी द्वेपी मोही वनाया यह कार्य श्रात्मासे सर्वेया स्वयमेव नहीं होता। यदि परकी निमित्तता इसमे न मानी जावे तो श्रात्मा ही उपादान हुआ और आत्मा ही निमित्त । इस दशामे यह सतत होते रहेगे । कभी भी श्रात्मा इनसे श्रालप्त न होगी श्रातः किसी भी श्रात्मामे ये जो रागादि भाव हैं वे विकारी भाव हैं। जो विकारी भाव होता हैं वह निमित्तके दूर होने पर स्वयमेव पृथक हो जाता है। जैसे

श्राग्निका सम्बन्ध पा कर जलमें जो उष्ण्वा श्रा जाती है वह उसका स्वामाविक भाव नहीं किन्तु श्रीपाधिक भाव है श्रातः श्राग्निका सम्बन्ध दूर होने पर स्वयमेव विलीन हो जाती है इसी प्रकार मोह दूर होने पर श्रात्मासे रागादि भाव स्वयमेव विलीन हो जाते हैं — दूर हो जाते हैं।

द्वादशीसे पीड़ा अधिक वढ़ गई अतः स्वाध्यायमें समर्थ नहीं हो सका। शरीर यद्यपि पर है और हम तथा अन्य वक्ता भी यही निरूपण करते हैं। श्रद्धा भी यही है कि यह पर है परन्तु जब कोई आपत्ति आती है तव ऊपरसे तो वही वात रहती है किन्तु अन्त-रङ्गमें वेदन कुछ श्रौर ही होने लगता है। श्रद्धा तथा ज्ञान मात्रसे कल्याण नहीं। साथमें चारित्र गुणका भी विकाश होना चाहिये। हम अन्तरङ्गसे चाहते हैं। हम भी क्या प्रायः अधिकतर प्राणी चाहते हैं कि रागादि दोषोंकी उत्पत्ति न हो क्योंकि ये समान आकुलताके उत्पादक हैं। आकुलता ही दुःख है। ऐसा कौन है की दुःखके कारणको इष्ट मानेगा ? किन्तु लाचार है। जब रागा-दिक होते हैं श्रीर तब्जन्य पीड़ा नहीं सहन कर सकता तव चाहे किसीसे प्रतिकूल हो चाहे अनुकूल हो उन्हें शान्त करनेके लिये यह जीव चेष्टा करता है। जैसे पिता जव पुत्रके कपोलोंका चुम्बन करता है तब उसकी कड़ी मूछोंका स्परी पुत्रको यद्यपि कष्टप्रद होता है तो भी वह क्योलोंका चुम्बनकर प्रसन्न होता है।

इसी फोड़ाके रहते हुए ५ वर्ष वाद हमारे श्रत्यन्त प्राचीन मलेरिया मित्रने दर्शन दिया। उसने कहा तुम भूल गये हमको। तुमने कितने वादे किये पर एकका भी पालन नहीं किया। उसीका यह फल है कि आज मैंने तो तुन्हें दर्शन दिया। चार दिन पहले यह फल है कि आज मैंने तो तुन्हें दर्शन दिया। चार दिन पहले मैंने श्रपने लघु मित्र फोड़ाको भेजा था और उसके हाथ आदेश मैंने श्रपने लघु मित्र फोड़ाको भेजा था श्रीर उसके द्वार आदेश जावो परन्तुं तुमने श्रवहेलना की श्रौर एक दम श्राह्मा देदी कि हम श्रपने वादाके श्रनुसार टीकमगढ़ जावेंगे। कितना निराधार साहस १ यदि प्रतिज्ञा ही करना थी तो यह करता कि यदि नीरोग रहा तो श्रापके उत्सवमें सम्मिलत हो जाँगा। परन्तु तुमको पुरूषार्थका इतना मद कि व्यर्थकी प्रतिज्ञा लेकर श्रपने श्रापकी वल्लना की। मलेरियाकी प्रवलता तथा फोड़ाकी तीव्र वेदनासे चित्तमें बहुत खिल्लता हुई। उपचारके लिये फोड़ा पर सिट्टीकी पट्टी वाँधी पर उससे पीड़ामें रख्न मात्र भी कमी नहीं हुई। हमारी वेदना देख सब लोग दुःखी थे।

द्रीकमगढ़से डाक्टर सिद्दी साहव श्राये। फोढ़ा देखकर उन्होंने कहा कि फोड़ा खतरनाक है। विना श्राप्रेशनके श्रच्छा होना श्रमंभव है श्रीर जल्दी श्राप्रेशन न किया गया तो इसका विष शरीरमें श्रन्यत्र फैल जानेकी संभावना है। डाक्टरकी वात सुनकर सब चिन्तामें पड़ गये। सब लोगोंने श्राप्रेशन करानेकी प्ररणा की परन्तु मैंने हढ़तासे कहा कि छुछ हो मांसभोजीसे में श्राप्रेशन नहीं कराना चाहता। डाक्टरने मेरी वात सुनी तो उसने वड़ी प्रसन्नतासे कहा कि मैं जीवन पर्यन्तके लिए मांसका त्याग करता हूँ। श्राप्रेशनकी तैयारी हुई तो डाक्टर वोला कि श्राप्रेशनमें समय लगेगा। विना इछ सुँघाये श्राप्रेशन कैसे होगा? मैंने कहा कि कितना समय लगेगा? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा कि कितना समय लगेगा? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा कि कितना समय लगेगा? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा कि कितना समय लगेगा? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा कि कितना समय लगेगा? उसने कहा कि १५ मिनट। मैंने कहा कि कितना समय लगेगा शाप्रेशन की जिये, सुँघानेकी चिन्ता न करें। यह कह कर मैं निश्चल पड़ रहा। १५ मिनटमे श्राप्रेशन हो गया। फोड़ाके भीतर जो विकृत, पदार्थ था वह निकल गया इसलिये शान्तिका श्रनुभव हुआ। श्राप्रेशनके समय पं १ फूलचन्द्रजी पासमें थे।

दीपावलीके बाद मनोहरलालजी वर्णी भी स्नागये थे।

श्रापके श्रानेसे श्रानन्द रहा। लोगोंका प्रवचनका काम चलता रहा। आपके ज्ञान और चारित्रकी निरन्तर वृद्धि रहती है किन्तु समागम जितना उत्तम चाहिये उतना नहीं। प्रायः जितने श्रादमी मिलते हैं सर्व प्रशंसा द्वारा साधुको उत्तम रूप देना चाहते हैं। मेरा यह अनुभव है कि प्रशंसासे आदमीकी गुस्ता लघुताम परिएत हो जाती है। जहाँ प्रशंसा हुई वहाँ उसे सुन आदमी प्रमन्न हो जाता है श्रौर जहाँ निन्दा हुई वहाँ दुखी हो उठता है। यस्तुतः प्रशंसा श्रीर निन्दा दोनों ही विकृत रूप हैं। इन्हें निज मानना ही भयंकर श्रम है, इस श्रमका फल संसार है. संसार ही दुःगमय है। संसारमें प्राणीमात्रके स्निग्ध परिणाम होते हैं। जितन प्राणी हैं। प्रायः वे सब परको निज मान श्रपनानका प्रयत्न करते हैं। डाक्टर ताराचन्द्रजी वहुत ही सज्जन श्रोर योग्य पुरूप हैं। टीरम-गढ़से कम्पोटरके श्रानेम विलन्य देख श्रापने उत्तम रीतिसे पट्टी वींध दी। पट्टी वाँधनेके वादमे मन्टिर गया। वहाँसे आरर स्वाध्याय किया पत्रात् भोजन कर वैठा था कि इतनेमं टीनमगडमे कम्पोटर त्रागया त्रीर वलात्कार फिर पट्टी वॉय दी। बहुन गपं खड़ाई । प्रयोजन केवल इतना या कि इत्य हाय त्रावे । मंसारमें इच्यरे अर्थ तो तो अनर्थ न हों थोड़े हैं। इसके वशीभृत होदर मनुष्य धान्म स्वरूपको भूल जाता है। अयवा आत्मस्वरूपकी कथा छोटो, स्नाज जितने मनुष्य रण्यतेत्रमें जाते या जानेकी चेष्टा करते हैं ये के उन एक अर्थार्जनके लिए ही प्रयास करते हैं। इस अर्थके लिए श्रामी अदालतमें मिध्या सादी दे आता है। इस प्रथंके लिए भार भाई के लिए विप देकर मारनेका प्रयास करता है, इन स्पर्धे नि सनुष्य गरीबोंकी रोटी तक छीन लेता है, इस खर्बरे नियं छाउ हजारों स्थलों पर पण्डा लोग जनकी पृजा करातर तुम नहीं है दे इस श्रर्थके लिये हजारों स्थान वीर्थम्यमें परिणत होगये, उस श्रित

लिये ही प्रचार किया जाता है कि श्रमुक स्थानपर धन देनेसे सीधा स्वर्ग मिल जाता है। श्रस्तु,

फोड़ामें श्राराम तो श्रापरेशनके दिनसे ही होने लगा था परन्तु श्रावके भरनेमें एक मासके लगभग लग गया। इस बीचमें दिल्लीसे राजकृष्ण, सागरसे वालचन्द्र मलैया. पं० पन्नालाल, बस्व।सागरसे वावू रामस्वरूप तथा पं० मनोहरलालजी श्रादि स्नेही लोग श्राये। न जाने संसारमें स्नेह कितनी वला है। इसके श्राधीन होकर यह प्राणी परको प्रेम दृष्टिसे श्रवलोकन करता है। केवल श्रवलोकन ही नहीं करता परको श्रपनाना चाहता है। जब कि यह श्रपनानेका श्रभिप्राय सिध्या है। कोई पदार्थ किसीका नहीं होता। जितने पदार्थ जगत्में हैं सब श्रपनी सत्ता लिये भिन्न भिन्न हैं। धीरे धीरे मार्गशीर्षका मास श्रा गया। मनोहरलालजी वर्णी मेरठ चले गये। केवल जुल्लक संभवसागरजी हमारे साथ रह गये। फोड़ा श्रच्छा होगया। चलनेमें कोई प्रकारकी बाधा नहीं इसलिए हमने मार्गशीर्ष ३० को लिलतपुरसे जानेका निश्चल कर लिया।

इसके एक दिन पूर्व चौधरीजीके मन्दिरमें प्रातःकाल जनताका सम्मेलन हुआ। समूह अच्छा रहा किन्तु सव प्रयोजनकी वात कहते हैं, तात्त्विक वात नहीं। मनमें और, वचनमे और यह लोगोंकी वात करनेकी आज परम्परा वन गई है परन्तु हमारा तो यह विचार है कि मनमे हो सो वचनसे कहिये और जो कहिये उसे उपयोगमें लाइये। केवल वचनमें लानेसे कल्याणका मार्ग विशद न होगा। जवतक अमल (चारित्र) में न आवेगा तवतक कल्याण होनेका नहीं। पं० फूलचन्द्रजीका भी व्याख्यान हुआ और आपने इस वातका प्रयास किया कि सव सौमनस्यके साथ कालेजका काम आगे वढ़ावें।

जव ललितपुरसे प्रस्थान करनेका समय आया तव लोग वहुत

दु खी हुए। ५३ माहके करीब एकत्र वास करनेसे लोगोंका स्नेह वदु गया इसलिये जाते समय दुःख होने लगा । मैंने कहा-संसारमे सव पदार्थीका परिण्मन अपनी अपनी योग्यताके श्रनुसार होता हं। हम चाहते हैं कि यहाँसे पपौरा जावें। आप चाहते हैं कि वर्णी-जी यही रहें। स्रापका परिएमन श्रापके स्राधीन, हमारा परिएमन हमारे आधीन। दोनोंका परिणमन सदा एकसा नहीं रहता। कदाचित् निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध जुटनेपर हो भी जाता है। जव यह प्राणी दूसरे पदार्थके परिणमनको अपनी इच्छानुसार परिणत करानेका प्रयास करता है श्रौर श्रन्य पदार्थका परिणमन उसकी इच्छाके अनुरूप होता नहीं तव यह दुःखी होने लगता है-अशान्ति-का अनुभव करने लगता है इसलिये मोहकी परिणति छोड़ो और शान्तिसे अपना समय यापन करो। कालेजका आपने जो उपक्रम किया है वह प्रशस्त कार्य है। यह आगे बढ़ता रहे ऐसा प्रयास करें। ज्ञान आरमाका धन है। आपके वालक उसे प्राप्त करते रहें यह भावना त्र्यापकी होना चाहिये। "इतना कहकर मैं श्रागे वह गया। वहुत जनता भेजने आयी पर क्रम-क्रमसे निवृत्त हो गई।

# पपौरा और अहार चेत्र

कचरोंदा लिलतपुरसे ११ मील है। वहीं पर मड़ातरात्राले राजधर सोंरयाके पुत्रकी स्त्रीने श्राहार दिया। यहाँसे ११ मील चल कर वानपुर श्राये। यहाँ पर एक मन्दिर महान् है। वर्तमानमे तो कई लाख रुपया लगाकर भी नहीं वन सकता। यहाँ पर रात्रि विवाई। प्रातःकाल १ मील महरोनीके मार्गमें होत्रपाल हैं। वहाँ जिनेद्रदेवके दर्शन किये। स्थान बहुत प्राचीन है परन्तु जैन जनताकी विशेष दृष्टि नहीं इससे जीर्ण अवस्थामे हैं। यहाँ पर अहार चे की मृतिके सहरा एक विशाल मृति है परन्तु जिस स्थान पर है वह जीर्ण हो रहा है। यहाँसे चल कर प्राममें मन्दिरके चबूतरे पर बैठ गये। कई सज्जन प्रामवाले आये। विद्यादानकी चर्चा की गई। कई जैन बन्धुओंने दान देनेका विचार किया और यहाँ तक साहस किया कि इतर समाज भी इनके सहश दान देवे तो यहाँ एक हाईस्कूल हो सकता है परन्तु लोग इस और दृष्टि नहीं देते। यहाँके मास्टर गहोई बैश्य हैं। बहुत ही निर्मल परिणामवाले हैं।

यहाँसें टीकमगढ़ं पहुँचे। मन्दिरमें प्रवचन किया। संख्या श्रच्छी थी। भोजनं किया। पश्चात् पं० ठाकुरदासजीके यहाँ गया। उनका स्वास्थ्य खराब था। योग्य व्यक्ति हैं। धर्मकी श्रद्धा श्रटल हैं। वीमारीका वेग थम गया है। श्राशा है जल्दी श्रच्छे हो जावेंगे। मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सं० २००९ को पपौरा गये। स्नानादिसे निवृत्त हो कर पाठ किया। तदनन्तर श्री चुहक चेमसागरजीके साथ समस्त जिनालयोंकी वन्दना की। मेलाका उत्सव था त्रातः बाहरसे जनता बहुत आई थी। पण्डित जगन्मोहनलालजी कटनी और पं॰ फूलचन्द्रजीके पहुँच जानेसे मेलाकी बहुगुरणी उन्नति हुई। पपौराका उत्सव हुआ। बीचमें मन्दिरोंके जीर्णाद्वारकी चर्चा को श्रवसर मिल गया। सागरसे समगौरयाजी भी पहुँच गये थे। श्रापने बहुत ही उत्तम व्याख्यान दिया। जनता पर श्रच्छा प्रभाव पड़ा। सभापति महोदयने १००) जीर्णोद्धारमें दिया। श्रन्य लोगोंने भी दिया जिससे चन्दा श्रच्छा हो गया। इसके बाद समयकी म्ब्रुटि होनेसे विद्यालयका उत्सव नहीं हुआ। अगले दिनके लिये स्थगित कर दिया गया।

यह चेत्र श्रित उत्तम है परन्तु यहाँ के मानव गण उत्साहसे दान नहीं करते, श्रन्यथा जहाँ ७५ गगनचुम्बी मन्दिर हैं वहाँ स्वर्ग लोक की छटा दिखती। दूसरे दिन विद्यालयके उत्सवके समय बताया गया कि यहाँ स्वर्गाय मोतीलालजी वर्णी एक विद्यालय खोल गये जिसके द्वारा बहुसंख्यक विद्वान् समाजमें कार्य कर रहे हैं जिनमे साहित्याचार्य व्याकरणाचार्य तथा न्यायनीर्थ काव्यतीर्थ हैं। वर्तमानमें विद्यालयका कोष बहुत श्रन्थ है। इसका दिग्दर्शन कराया गया। जनता पर श्रच्छा प्रभाव पड़ा जिससे १००००) दस हजारका चन्दा हो गया। श्रभी समाजमें कर्मठ व्यक्ति नहीं तथा एक यह महान् दोप है कि एक ही साथ श्रनेक उत्सवोंकी संयोजना कर लेते हैं जिससे एक भी कार्य पूर्णक्रमसे नहीं हो पाता।

मार्गशिषे शुक्ला प सं० २००५ मेलाका अन्तिम दिवस था। आज पण्डालमें परवारसभाका अन्तिम उत्सव था। अच्छा हुआ, प्००) के करीव परवारसभाको आय हुई। लोग वहुत ही प्रसन्न हुए। प्रचार बहुत ही उत्तम हुआ। यदि इन जातीय सभाओं वदले प्रान्तीय सभाएं होतीं और उनमे प्रान्तमे वसनेवाले सव जातियों के लोग सम्मिलित रहते तथा सौमनस्य भावसे काम करते तो वहुत ही उत्तम होता। इस चेत्रकी उन्नति तव हो सकती हैं जब कोई दानी महाशय एक लच् १०००००) लगावे। आज कल नवीन मन्दिर निर्माणकी लोग इच्छा करते हैं पर प्राचीन मन्दिरों का उद्धार नहीं कराते। नवीन मन्दिर निर्माणमें उनका निर्माताके उद्धार नहीं कराते। नवीन मन्दिर निर्माणमें उनका निर्माताके उद्धार नहीं कराते। चवीन मन्दिरों के उद्धारमें नहीं। यही प्रतिशक्ती आकाचा लोगोंको इस कार्यकी ओर प्रवत्त नहीं होने देती। प्रतिशकी आकाचा लोगोंको इस कार्यकी ओर प्रवत्त नहीं होने देती। इस चेत्रपर एक ऐसा उच्च कोटिका औपधालय होना चाहिय इस चेत्रपर एक ऐसा उच्च कोटिका औपधालय होना चाहिय जिससे प्रान्तके मानवोको विना मृत्य औपध मिले तथा एक ऐमा

विद्यालय हो जिसमे १०० छात्र श्रध्ययन कर सकें। पठनकम नवीन पद्धितसे होना चाहिये जिसमे धर्मका शिक्षण श्रनिवार्य रहे।

मेला समाप्त होनेपर जनता चली गई। वातावरण शान्तिमय हो गया। प्रातःकाल संवरका स्वरूप वाचा। वास्तवमें मोत्तमार्ग संवर ही है। श्रनादिकालसे हमने मोहके वशीभूत होकर श्रास्रवको ही श्रपनाया है। श्रात्मतत्त्वकी श्रद्धा नहीं की। इसीका यह फल हुआ कि निरन्तर पर पदार्थों के अपनानेमें ही समय गमाया। यद्यपि यह पदार्थ आत्माके स्वरूपसे भिन्न है पर मोही जीव उसे निज मानकर श्रपनानेकी चेष्टा करता है। श्रात्माका स्वभाव देखना जानना है परन्तु क्रोधादि कषाय उसके इस स्वभावको कलुपित करते रहते हैं। इस क्लुपतासे यह त्रात्मा निरन्तर व्यय रहती है। ज्ञानका कार्य इतना है कि पदार्थको प्रतिभासित कर दे। ज्ञान पदार्थरूप त्रिकालमें नहीं होता। जिस प्रकार दुपेंग घट-पटादि पदार्थको प्रतिभासित कर देता है परन्तु घट-पटादि रूप नहीं होता। द्रपें एमें जो घट-पटादि प्रतिभासित हो रहे हैं वह दर्पणका ही परिएामन है, दर्प एकी स्वच्छताके कारण ऐसा जान पड़ता है इसी अकार आत्माके ज्ञानगुणमें उसकी स्वच्छताके कारण घट-पटादि पदार्थ प्रतिभासित होते हैं परन्तु ज्ञान तद्रुप नहीं होता । मेला-के वाद ४-५ दिन पपौरामें निवास किया। परिणाम अत्यन्त उज्ज्वत रहे।

मार्गशिषे शुक्ला १३ सं ० २००८ को २ बजे यहाँसे चलकर ३ बजे टीकमगढ़ पहुँच गये। श्राज यहाँके कालेजमें प्रवचन था। कालेज बहुत ही भव्य स्थानपर बना हुआ है। सामने महेन्द्रसागर सरोवर है तथा उसके वाद श्रटवी। ३ मीलपर ७५ जिन मन्दिरोंसे रम्य पपौरा चेत्र है। यह सब पूर्व दिशामे है। पश्चिममे महेन्द्र बाग है, उत्तरमें टीकमगढ़ नगर है श्रीर दिल्लामें कुण्डेश्वर चेत्र है। विद्यालय कालेजका भव्य भवन ५ खण्डोंसे शोभित है। इसमें २००० छात्र अध्ययन कर सकते हैं। कालेजके प्रिंसपल महोदय वहुत ही भव्य और विद्वान् हैं। आप वंगाली हैं। एम॰ ए॰ हैं। आपकी आयु ४० वर्षसे अपर होगी फिर भी बहाचारी हैं। वहें दयालु और तत्त्ववेत्ता हैं। आपकी विचारधारा अति पवित्र है। व्यवहार निष्कपट है। मूर्ति सौम्य है। ऐसे मनुष्य चाहे तो वे जगत्का उत्थान कर सकते हैं।

श्राजकल जो शिचापद्धति है उसमे भौतिकवादको खूव श्रोत्सा-हन मिलता है। साइंसका इतना प्रचार है कि वालकी खाल निकालते हैं। यहाँतक श्राविष्कार विज्ञान (साइन्स) ने किया है कि विना चालकके वायुयान चला जाता है तथा ऐसा श्रणुत्रम वनाया है कि जिसके द्वारा लाखों मनुष्योका युगपद् विध्वंस होजाता है। ऐसी चीर-फाड़ करते हैं कि पेटका वालक निकालकर वाहर रखके पेटका विकार निकाल देते हैं पद्मात् वालकको उसी स्थानपर रख देते हैं। यदमा रोगवालेकी पसली वाहर निकाल देते हैं किन्तु ऐसा त्राविष्कार किसीने नहीं किया कि यह त्रात्मा शान्तिका पात्र हो जावे। अशान्तिका मूल कारण परिग्रह है और सबसे महान् परियह मिथ्यादर्शन है क्योंकि मिथ्यात्वके उदयमे यह जीव विपरीत अभिशाय पोषण करता है। श्रजीवको जीव मानता है। शरीरमें श्रात्मवुद्धि करता है। जैसे कामला रोगवाला शद्भको पीला मानने लगता है। एकवार मुक्ते श्री कुण्डलपर चेत्रपर चीमासा करनेका सुअवसर आया था। उस समय मुक्ते वड़े वेगसे मलिरिया ज्वर आगया और विगड़ते विगड़ते पित्त ज्वर होगया। एक वैद्यने कहा तुम गन्ना चूसो, व्यर शान्त हो जायगा। मैंने चूमा किन्तु चिरायता व नीमसे भी श्रिधिक कड़वा लगा। मैंने उसे फेंक दिया। वाईजीने कहा—घेटा चृम लो। मैंने उत्तर दिया—फैसे धृंमू?

यह तो चूसा ही नहीं जाता। यद्यपि गन्नाका रस मीठा था परन्तु मेरे रोग था इसलिये वह कटुक लगता था। इसी प्रकार जिनके मिध्यात्वरूपी रोग है उन्हें मोत्तमार्गका उपदेश देना हितकर नहीं होता। मोत्तमार्गमे तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। उसमें परको निज माननेका अभिप्राय मिट जाता है तथा पश्चात् सर्वको त्याग स्वात्मामें लीन होजाता है अतः जिनके यह होगया उनका सर्व कार्य सम्पन्न होगया। आत्माका हित मोक्ष है। मोक्षका उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है अतः सर्व द्वन्द्वको छोड़ इसीमें लगो।

टीकमगढ़से चलकर पौष कृष्ण ६ सं० २००८ को छहार चेत्र पहुँच गये। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। श्रीशान्तिनाथ और इन्थु-नाथ भगवान्की मूर्ति है। अरहनाथ भगवान्की भी मूर्ति रही होगी पर वह उपद्रवियों के द्वारा तष्ट कर दी गई। उसका स्थान रिक्त है। श्रीशान्तिनाथ भगवान्की मूर्ति वहुत ही सौम्य तथा शान्तिदायिनी है। इसके दर्शन कर श्रवणवेलगोलाके बाहुवली स्वामीका स्मरण हो त्राता है। यहाँ किसी समय अच्छी वस्ती रही होगी। प्राचीन मूर्तियाँ भी खण्डित दशामें वर्हुत उपलब्ध हैं। संग्रहालय वनवाकर उसमे सबका संग्रह किया गया है। मुख्य मन्दिरके सिवाय एक छोटा मन्दिर और भी है। पास ही मदनसागर नामका विशाल तालाव है। एक पाठशाला भी है। पं० वारेलालजी पठावाले निरन्तर इस चेत्र तथा पाठशालाके लिये प्रयत्न करते रहते हैं। यदि साधन श्रमुकूल हों तो यहाँ शान्तिसे धर्मसाधन किया जा सकता है।

पौष कृष्णा ८ सं॰ २००८ को प्रातःकाल श्रीशान्तिनाथ स्वामी का श्रभिषेक हुआ। यथाशक्ति चन्दा किया गया। श्राज कल केवल द्रव्य प्राप्तिके निये ही धर्म कार्य होते हैं। जिसने द्रव्य दिया उसकी प्रशंसा होने लगी। तीर्थस्थानोंपर श्रायके श्रन्य साधन नहीं श्रतः

व्यवस्थापकोंको इस रीतिसे विवश होकर द्रव्य एकत्र करना पड़ता है। यथार्थमें तीर्थस्थान धर्मसाधनके आयतन थे। यहाँ आकर मन्द कषाय होती थी। जो कोई स्वाध्यायमें शंका होती थी वह पण्डितोंके द्वारा निर्णीत हो जाती थी तथा नवीन पदार्थ श्रवणमे श्राते थे। कई त्यागी महाराय मेलामे त्राते थे। उन्हें पात्रदान देनेका त्रवसर मिलता था। एक दूसरेको देखकर जो कुछ अपने चारित्रमें शिथिलता होती थी । वह दूर हो जाती थी । कई महानुभाव व्रतादिक यहुण करते थे। परस्परके कई मनोमालिन्य मिट जाते थे। इसके सिवाय लौकिक कार्य भी वहुतसे वन जाते थे परन्तु अव आज कल मेला इस वास्ते होता है कि जनतासे रुपया त्रावे। सभामे १५ मिनट भी धामिक व्याख्यानके लिये त्रवसर नहीं मिलता। रूपयेकी अपील होने लगती है। यह भी होता, कोई हानि नहीं थी किन्तु विद्या-लयको छोड़ चेत्रकी व्यवस्थाका कुछ दिग्द्रीन कराके उसके अर्थ द्रव्य संचय करनेकी अपील होने लगती है। वीचमे कई दुर्दशापात्र व्यक्ति श्राजाते हैं जो वीच वीचमे तंग करते रहते हैं।

मन्दिरोंके पास ही अहार नामका छोटा सा गाँव है। २ घर जैनियोंके हैं। एक दिन पं० गोविन्ददासजीके यहाँ आहार हुआ। मेला सानन्द हुआ। मथुरासे पं० दयाचन्द्रजी व भैयालालजी भजन-सागर आये थे। ये लोग जहाँ जाते हैं वहाँ च्याख्यानों द्वारा जनताको प्रसन्न कर लेते हैं। मेलाम २००० हजार जनता आई होगी। प्रवन्ध अच्छा था। यहाँपर पाठशालामे २० छात्र अध्ययन करते हैं। पं० प्रेमचन्द्रजी पं० गोविन्ददासजी तथा पं० मोजी-लालजी योग्य व्यक्ति हैं।

## द्रोणगिरि और रेशन्दीगिरि

श्रहारसे ५ मील चल कर लार श्रा गये। मार्गमें बहुत कण्टक हैं किन्तु यहाँके मनुष्य इसी स्थानमे रहते हैं श्रतः उन्हे श्राने जानेमें आपत्ति नहीं होती। लार में १ मन्दिर है। यहाँ आते ही प्रामीण जनता इकट्टी हो गई। श्री नाथूरामजी वर्णीने समयो-पयोगी व्याख्यान दिया। श्रापने जनताको समीचीन पद्धतिसे सममाया कि संसारमें ज्ञानके विना कोई कार्य नहीं चलता। यदि हमको ज्ञान न हो तो हम अपना हित नहीं जान सकते। हमारा क्या कर्तव्य है ? क्या अकर्तव्य है ? तथा यह भक्त्य है, यह श्रमच्य है, यह माँ है, यह बहिन है, यह श्राता है, यह सुत है, यह पिता है इत्यादि जितने व्यवहार हैं सर्व लुप्त हो जावेंगे। श्रतः श्रावश्यकता ज्ञानार्जनकी है। ज्ञानका श्रर्जन गुरुद्वारा होता है। इसीसे उनकी शुश्रूपा करना हमारा कर्तव्य है। विना गुरुकी कृपाके हमारा अज्ञानान्धकार नहीं मिट सकता। जैसे सूर्योदयके बिना रात्रिका श्रन्थकार नहीं जाता वैसेही गुरुके उपदेश विना हमारा त्रज्ञान नहीं जाता। यही कारण है कि हम गुरुको माता. पितासे अधिक मानते हैं। माता पिता तो जन्म देनेके ही अधिकारी हैं किन्तु गुरु हमको इस योग्य बना देते हैं कि हम संसारके सर्व कार्य करनेमें पटु वन जाते हैं। आज संसारमे गुरु न होता तो हम पशुतुल्य हो जाते ।

यहाँ शान्तिनाथ भगवान् की संवत् १८०२ की प्रतिष्ठित प्रतिमा वहुत मनोहर है। मन्दिर भी बहुँत विस्तारसे है। २ मन्दिर हैं। २० घर जैनियोंके हैं। प्रायः सम्पन्न हैं। १ धर्मशाला है। उसमें १ कूप भी है। लोगोंमें ज्ञान की न्यूनता है क्योंकि उसके साधन नहीं। श्रव जबसे विन्ध्यप्रदेश हुआ है तबसे एक प्रायमरी स्कूल हो गया है अतः कुछ समय वाद पठन-पाठन होने लगेगा। कुछ मनुष्य स्वाध्याय करते हैं परन्तु विशेष ज्ञान नहीं। यहाँके कुछ वालक पपौरामें पढ़ते हैं। इन गावोंमें कोई त्यागी रहे तो बहुत उपकार हो सकता है परन्तु इस प्रान्तमें प्रथम तो त्यागी नहीं फिर जो हैं वे विशेष पढ़े नहीं। इसका मूल कारण जैन जनतामें विद्याका प्रचार नहीं। इस प्रान्तके जैनी प्रायः पूजा आदिमें द्रव्य व्यय कर देते हैं। जो कुडुम्व निर्धन हैं उनकी कोई सहाय करानेवाला नहीं। छात्रोंको भी कोई सहायता नहीं देता। इनका उद्धार वही कर सकता है जो दृष्पतिज्ञ हो, ज्ञानी हो, सद्वृत्त हो तथा कुछ कल्याण करनेकी भावनासे युक्त हो।

लारसे चलकर वड़ेगाँवमें रहे। भोजनके पश्चात् सव महाशय एकत्र हुए। यहाँ एक श्रोषधालयकी स्थापनाके श्रर्थ ३००) का चन्दा होगया। यहाँके श्रादमी भद्र हैं। यहाँ श्रमृतलाल गोलापूर्व तथा उनका भाई-दोनों ही कर्मठ व्यक्ति हैं। राजनैतिक कार्यमें संलग्न हैं। भाव देशकल्याएके हैं किन्तु जितना वोलते हैं उसका श्रंश भी कार्य यदि करें तो वहुत ही श्रच्छा हो। न जाने क्या कारए। है कि वर्तमान युगमें परका कल्याए। करनेकी भावना तो प्रायः सवमें रहती है परन्तु हमारा भी कल्याए। हो इसका ध्यान नहीं रहता। राजनैतिक कार्य करनेवाले प्रायः धर्मकी श्रद्धासे च्युत हो जाते हैं। धर्मको ढोंग वताने लगते हैं। ऐसे लोग यदि महात्मा गाँधीसे कुछ श्रहण करते तो उत्तम होता।

वड़ेगाँवसे चलकर घुवारा श्रागये । यहाँके लोग अच्छी स्थितिमें हैं। १ पाठशाला है जिसमें प्रथम परीन्ना उत्तीर्ण श्रध्यापक है। यथाशक्ति वालकोंको अध्ययन कराता है। शिच्नक बहुत ही योग्य होना चाहिये परतु वर्तमानमें शिच्ना बहुत महंगी होगई है। १००) के बिना उत्तम अध्यापक नहीं मिलता। लोग यथाशक्ति चन्दा नहीं देते। जिनके पास पुष्कल द्रव्य है वे विवेकसे व्यय नहीं करते और जिनके पास नहीं है वे बातोंके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं? ऐसे लोग प्रायः यह कहते देखे जाते हैं कि यदि हमारे पास पुष्कल धन होता तो हम ऐसा करते वैसा करते परन्तु धन पानेपर उनके परिणाम भी धनिकोंके ही समान हो जाते हैं। इसीसे किसी कविने बहुत ही समयोपयोगी दोहा कहा है—

कहा करूँ धन है नहीं होता तो किस काम। जिनके है तिन सम कहा होते नहि परिग्राम॥

पौप कृष्णा १४ सं० २००८ को दोपहरके बाद एक अत्यन्त प्राचीन खड़्शासन प्रतिमाका, जो कि काले पत्थर की बहुत ही मनोझ है, अभिषेक हुआ। जनता अच्छी एकत्रित हुई। कलशाभिषेक, फूलमाल तथा ज्ञानमालमें १००) के करीब आय हो गई। तदनन्तर व्याख्यान हुए। हमको भी व्याख्यान देनेके लिये कहा गया। व्याख्यान देना कुछ कठिन नहीं परन्तु तारतम्यसे कहना कठिन है। परमार्थसे हमको व्याख्यान देना आता नहीं और न उसके लिये हम परिश्रम ही करते हैं। इसका कारण प्रथम तो हमने किसी शास्त्रका साङ्गोपाङ अभ्यास किया नहीं और न ही व्याख्यान कलाका अभ्यास किया अतः यदि कोई महाशय हमको किसी विषय पर व्याख्यान देनेका आग्रह करे तो हम खड़े तो हो जावेगे परन्तु निर्वाह नहीं कर सकेंगे। 'कहींकी ईट कहीं का रोरा भानुमतीने कुरमा जोरा' वाली कहावतके अनुसार कुछ कह कर समय पूरा कर देंगे। अस्तु, इसका हमको कुछ भी हर्ष-विषाद नहीं

किन्तु अपने समयका हम् दुरुपयोग करते हैं इसका खेद रहता है। यह हमारी मोह निमित्तक महती जड़ता है। यदि आज हम लोक प्रशंसाको त्याग देवें तो अनायास सुखी हो सकते हैं परन्तु लोकेपणाके प्रभावसे विक्रित हैं यही हमारे कल्याणमें वाधक है। यहाँ ३ दिन रहे।

तदनन्तर घुवारासे ४ मील चल कर भोंहरे ग्राम आ गये। यहाँ पर ८ घर जैनियोंके हैं व १ मन्दिर है। मन्दिर में अन्धकार था श्रत उसके सुधारक लिये ४००) का चन्दा हो गया। प्रवचनमें यामके ब्राह्मण चित्रय वैश्य खादि सभी लोग आये व सुन कर प्रसन्न हुए। जैन धर्म तो प्राणीमात्रका कल्याण चाहनेवाला है। उसे सुनकर किसे हर्ष न होगा ? भोजनके उपरान्त यहाँसे चल कर गोरखपुर श्रा गये। गाँवके सव लोगोंने स्वागत किया। श्रीनाथू-रामजी ब्रह्मचारी तथा श्री चुहक च्रेमसागरजीका व्याख्यान हुन्ना। श्रापलोगोंने यह बताया कि धर्मका मूल दया है श्रतः सभी को उसका पालन करना चाहिये। यहाँ १ मन्दिर है। उसमे पार्श्वनाय भगवान् की एक वहुत ही मनोज्ञ प्रतिमा है। शास्त्र प्रवचन हुन्ना। एक छोटी सी पाठशाला है जिसमें पं॰ रामलालजी दुरगुवाँवाले छात्र-छात्राश्चों को श्रध्ययन कराते हैं। वहुत सुशील मनुष्य है। परिश्रमी भी हैं। यहाँसे चलकर धनगुवाँ आये। प्राम साधारण है पर लोग इत्साही हैं। नरेन्द्रकुमार वी॰ ए॰, जो निर्भीक वक्ता व लेखक है, यहींके हैं। श्री लद्मणप्रसादनी जो सागर विद्यालयमें काम करते हैं वे भी यहींके हैं। शास्त्रप्रवचन हुआ जिसमें प्रामके सव लोग सम्मिलित हुए । देहातके लोगोंमे सौमनस्य अच्छा रहता है। यहाँसे चलकर श्री द्रोणगिरि चेत्रपर पहुँच गये। बहुत ही रमणीय व उज्ञ्चल चेत्र हैं। यहाँ पहुँचने पर न जाने क्यों अपने श्राप हृद्यमें एक विशिष्ट प्रकारका आह्नाद उत्पन्न होने लगता है। प्रामके

मन्दिरमें श्री ऋषभनाथ भगवान्के दर्शन कर चित्तमे श्रत्यन्त हर्प हुत्रा।

पौष शुक्ला ५ संवत् २००८ को श्री द्रोणगिरि सिद्धक्तेत्रकी वन्दना की। यद्यपि शारीरिक शक्ति दुर्वेल थी तो भी अन्तरङ्गके उत्साहने यात्रा निर्वि**ष्टन सम्पन्न करा दी। साथमे श्री १०५** ज्ञुल्लक क्तेमसागरजी व ब्रह्मचारी नाथूराम तथा वालचन्द्र थे। यात्राके वाद गुफाके त्रागे प्राह्मरामे शान्त चित्तसे वैठे। सामने गाँवका तथा युगल निद्योंका संगम दिख रहा था। दूर दूर तक फैली हुई खेतोंकी हरियाली दृष्टिको वलात् अपनी ओर आक्षित कर रही थी। व्र॰ नाथूरामने प्रश्न किया कि शान्ति तो त्रात्मासे त्राती है पर अशान्ति कहाँसे आती है ? इसके उत्तरमे मैंने कहा – शान्तिवत् अशान्ति भी वाहरसे नहीं आती, केवल निमित्तका भेद है। ज्यादान कारण दोनोंका ज्ञात्मा है। जिस तरह समुद्रमे उत्तरङ्ग श्रोर निस्तरङ्ग श्रवस्था होती है। उसमें समीरका संचरण श्रौर श्रसंचरण निमित्त है। इसी तरह श्रात्मामें पुद्गल कर्मके विपाकका निमित्त पाकर अशान्ति और उसके अभावसें शान्तिका लाभ होता है। अतः जिनको शान्तिकी अभिलाषा है उन्हे पर पदार्थोंसे सम्बन्ध त्याग देना चाहिये क्योंकि सुख श्रीर शान्ति केवत अवस्थामे ही होती है। परके आधीन रहना सर्वथा दुःखका वीज हैं।

द्रोगिगिरिमे पं॰ गोरेलालजी सज्जन व्यक्ति हैं। द्रोगिगिरिसे चलकर भगवाँ गये। यहाँ एक असाटी अच्छे सम्पन्न हैं। सामान्य रीतिसे उनका व्यवहार अच्छा है। यह जैनधर्मसे प्रेम रखते हैं। जब चन्दाका समय होता है तब कुछ न कुछ दे ही देते हैं। यहाँसे चलकर वरेठी पहुँचे। पद्मपुराग्यका स्वाध्याय किया। रोचक कथा है। यहाँ ६ घर जैनियोंके हैं। सबने यथाशक्ति द्रोगागिरिकी पाठशालाको दान दिया। इनके पास विशेष विभूति नहीं, श्रन्यथा यह बहुंत कुछ दे सकते हैं ? यहाँ सतपारासे हीरालाल पुजारी तथा ४ श्रादमी श्रोर श्रागये जिससे भोजनके वाद वहाँ गये। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर पद्मपुराणका स्वाध्याय किया। राम-रावणके संग्रामकी चर्चा थी। रावणने श्रमोध शक्तिका प्रयोग कर लद्मणके उरस्थलमें श्राधात किया। श्रीरामने बहुत ही शोक किया। बहुत ही मार्मिक उद्गार उनके हृद्यसे निकले। यह सब मोहका प्रताप है कि एक मोज्ञामीके हृद्यसे इस प्रकारके वाक्य निकले। मोहके उद्यमें श्रात्माकी यही दशा हो जाती है। ठीक है, परन्तु जिनके हृद्यमें विवेक है वे बाह्यमें कुछ श्रालाप करें परन्तु अन्तस्तलमें उनकी श्रद्धामें श्रणुमात्र भी श्रन्तर नहीं श्राता। होणगिरिके श्रद्धामें श्रमणकर पुनः द्रोणगिरि श्रागये।

पौष गुक्ला १२ सं० २००८ को पं० दुलीचन्द्रकी वाजना तथा मलहरासे कई सज्जन शास्त्रसभामे आगये। धनगुवांसे भी वर्ड सज्जन आये। मलहरा जानेका विचार था परन्तु मेघवृष्टिके कारण जा नहीं सके। निश्चिन्ततासे प्रवचन किया। प्रवचनका सार यह या कि यद्यपि संसारमें प्रेमकी वहुत प्रशंसा होती है परन्तु संसारमें चक्रवत् परिश्रमण करानेवाला यही प्रेम है। सर्वे वन्यनोंमें किन चन्यन प्रेम-स्नेहका है। इसपर विजय प्राप्त करना नरसिंहका काम है। स्याल प्रकृतिके मनुष्य आप कायर होते हैं तथा अन्यको कायर वनाते हैं। अनादि कालीन प्रकृतिका निवारण करना अति दुर्लम है। कहना सरल है परन्तु कार्यमें परिणत करना अति दुर्लम है। कहना सरल है परन्तु कार्यमें परिणत करना कठिन है प्रायः वपदेश देनेका प्रत्येक व्यक्ति प्रयन्त करता है किन्तु उस पर अमल करनेवाला ही शूर होता है। ऐसे मनुष्यकी ही गणना उत्तम मनुष्योंमें होती है। प्रथम तो सिद्धान्त यह है कि कोर्ड किमीन स्वप्तार नहीं कर सकता क्योंकि सव द्व्योंके परिणमन क्यांय

स्वीय इत्यादि चतुष्टयके अनुरूप होते हैं। इतर तो निमित्त मात्र होते हें। जिसमे अचेतन पदार्थ तो उदासीन ही होकर कार्य करते हें। उदासीनसे तात्पर्य अभिप्राय शून्यसे हे। जिनके अभिप्राय है वे चेतन हें। वह चेतन जो कार्य करते हें वह भी कपायके अनुरूप ही करते हें। आत्मा नामक एक द्रव्य हे। इसमे ही चेतना गुण है। इस चेतना गुणके द्वारा ही यह पदार्थों को देखता जानता है। परमार्थसे न देखता है, न जानता है। केवल अपने स्वरूपमे मगन रहता है किन्तु आत्मामे अनादि कालसे मोहकी संगति है जिससे आत्मामें विपरीताभिप्राय होता है। उस विपरीताभिप्रायके कारण यह पर पदार्थों निजल्वका अनुभव करता है। अथवा पर और निज यह कल्पना भी मोहके प्रभावसे ही होती है। जिस दिन यह कल्पना मिट जावेगी उसी दिन शान्तिका साम्राज्य अनायास हो जावेगा।

पौप शुक्ला १४ सं० २००८ को प्रातःकाल ४ मील चल कर मलहरा त्रा गये। गुरुकुलमें ठहर गये। यहाँ सिघई वृन्दावनलाल वहुत ही विवेकी, उदार तथा हृदयके स्वच्छ हैं। त्रापके प्रतापसे यहाँ गुरुकुल वन गया। प्रान्तमे क्रिशिचाका प्रचार बहुत है। पहले देशी रजवाड़े थे इसलिये प्रजाकी उन्नतिके विशेष साधन राज्यकी त्रोरसे नहीं थे। त्रव विन्ध्यप्रदेशसे यह सब स्थान त्रा गये हैं तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। त्राशा है तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। त्राशा है तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। त्राशा है तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। त्राशा है तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जुटाये जा रहे हैं। त्राशा है तथा राज्यकी क्रोरसे शिचाके साधन भी जिन्नति करेगी। यहाँ १६ दिन रहे। प्रातःकाल प्रवचन हुए। इसीके बीच एक दिन माध कृष्णा १४ को गंज गये। वहाँ एक बाईके यहाँ एंकि भोजन था। २०० त्रादमी त्राये होंगे। श्री जीका जल हैविहार हुआ। प्रान्तमे सरलता वहुत है।

मलइरासे ६ मील चलकर माघशुक्ला ४ को दरगुवाँ श्रागय ।

यह ब्र० नाथूरामका प्राम है। दूसरे दिन इन्होंके यहाँ भोजन हुआ। यहाँपर जो व्यय हो उसपर )। एक पैसा रूपया विद्यादान में देना लोगोंने स्वीकृत किया। यहाँपर दिल्लीसे लालामक्यन लालजी आगये। विरक्त मनुष्य हैं, गृहसे उदासीन हैं सर्व सम्पन्न होकर भी विरक्त होना ऐसे ही शूरका काम है। दरगुवाँसे चलकर हीरापुर आगये। मन्दिरके सामने धर्मशाला है, उसीमें ठहरे। सामने कूप है। उसके वाद चौक है। फिर मन्दिर है। मन्दिर स्वच्छ है। मूर्तियाँ स्वच्छ हैं। रात्रिको शास्त्र होता है। यहाँपर तिगोड़ासे पण्डित पद्मकुमारजी आगये। आप त्यागी कमलापति सेठ वरायठाके पुत्र हैं, सुबोध हैं, अन्तरसे आई है। रात्रिको अठ नाथूरामने सबको शास्त्र अवग कराया।

हीरापुरसे चलकर शाहगढ़ श्राये। बड़ा श्राम है। जनसंख्या श्रच्छी है ? लोगोंमें सौमनस्य भी है। मन्दिरमें प्रवचन हुआ। जनता श्रच्छी उपस्थित थी। ज्ञानार्एवमे श्रन्यत्व श्रीर एकत्व भावनाका विपय था। एकत्व भावनाका यह ऋर्थ है कि मनुष्य स्वकृत कर्मके अच्छे बुरे फलको अकेला ही भोगता है। किसीके सुख दुःखमे कोई शामिल नहीं होता स्रतः परके पीछे स्रात्म-परिगामींको विकृत नहीं होने देना यही बुद्धिमत्ता है। श्रन्यत्व भावनाका अर्थ यह है कि आत्मा शरीरसे भिन्न है अतः शरीरके विकारको आत्माका विकार मान व्यर्थ ही रागी द्वेपी मत वनो। यहाँ २ मन्दिर हैं। रात्रिको शास्त्र प्रवचन होता है। शाहगढ़से वमीरी गये। यह श्री १०५ चुल्लक च्रेमसागरजीका श्राम है। लोगोंमें धार्मिक रुचि है। एक मन्दिर है। प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनका सार यह था कि भूल अज्ञानसे होती है। यइ श्रात्माका मोह जन्म विकार है। जैसे भ्रमज्ञान मिथ्या है वैसे ही श्रज्ञान मिथ्या है। इस भूलको त्यागनेवाला ही मनुष्यताका

पात्र है। श्रनादिकालसे हम जिस पर्यायमे गये उसे ही श्रपनाया। यद्यपि उसे श्रपनाना पर्यायापेच्या सर्वथा मिथ्या नहीं परन्तु उसे ही सर्वथा निजस्वरूप मान लिया इसलिये शुद्र द्रव्यसे विमुख हो श्रमादिकालसे पर्यायोंमे ही उलमते रहे।

वमौरीसे १ मील चलकर वेरखेरी छाये। यहाँ एक च्रियं महाशय रहते हैं जो वहुत ही सरल परिणामी हैं। मांसके त्यागी हैं। इनके वंशमें शिकारका भी त्याग है। यहाँसे ५ मील चलकर सिद्ध चेत्र नैनागिरि (रेशन्दीगिरि) छागये। सुन्दर स्थान है। पाठ-शालाके छात्रोंने स्वागत किया। यहाँ पर्वतपर पार्वनाथ समवसरणके नामसे एक विशाल मन्दिरका निर्माण हो रहा है। श्री पार्वनाथ भगवान्की छुञ्रकाय विशाल मृर्तिकी प्रतिष्ठा होनेवाली है। माध छुक्ला १५ को श्री १०८ चोरसागरजी सुनि यहाँ छाये।

### रेशन्दीगिरिमें पश्च कल्याणक

फाल्गुन कृष्णा ३ सं० २००८ से पञ्चकल्याणकका मेला रेशन्दीगिरिजीमें था। नाला पार करके मैदानमें विशाल पण्डाल बनाया गया था। एक छोटा पण्डाल नीचेके मन्दिरोंके पास भी बना था। धीरे धीरे मेला भरना ग्रुरू हो गया। विद्वत् परिषद् की कार्यकारिणीकी बैठक थी छातः विद्वन्मण्डली उपस्थित थी। खास कर पं० वंशीधरजी इन्दौर, पं० कैलासचन्द्रजी, खुशालचन्द्रजी जगन्मोहनलालजी, दयाचन्द्रजी छादि सभी प्रमुख विद्वान् थे। प्रतिष्ठाके कार्यके लिये श्री पं० वारेलालजी पठा तथा समगौरयाजी छाये हुए थे। डेरा तम्बुर्झोंका भी श्रच्छा प्रवन्ध था।

पञ्चकल्याण्क उस महान् श्रात्माका होता है जो पूर्व जन्ममें दर्शन विशुद्ध आदि सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन करवा है तथा श्रपायविचय नामक धर्मध्यानमे वैठकर लोक कल्याणकी सातिशय भावना भाता है। ऐसे जीव भरत चेत्रमें दश कोड़ा कोड़ी सागरके एक युगमें केवल २४ ही उत्पन्न हो पाते हैं। समय अढ़ाई द्वीपमें एक साथ १७ में अधिक ऐसे व्यक्ति नहीं हो पाते। तीर्थंकर प्रकृति सातिशय पुण्य प्रकृति है। इसका जिसके वन्ध होता है उसके जन्म लेते ही 'तीनों लोकोंमें चोभ मच जाता है। फागुन कृष्णा ३ को भगवानका गर्भ कल्याणक हुन्ना ४ को जन्म कल्यां एक हुन्ना ' इन्द्र इन्द्राणी जब भगवान को ऐरावत हाथी पर विराजमान कर टेकड़ी पर चढ़े तब वड़ा सुन्दर दृश्य था। रात्रिको विद्वानोंके सार गर्भित भाषण होते थे। प्रातःकाल नीचेके मन्दिरोंके पास जो पण्डाल बना था उसमें शास्त्र प्रवचन होता था। मुनि क्षीरसागरजीका भी व्याख्यान हुआ। सामयिक व्याख्यान था परन्तु आपने एक तत्वार्थ सूत्र प्रकाशित कराया जिसके वीच वीचमें श्रानेक पाठ मिला दिये। उमास्त्रामीकी रचनाको प्रक्षिप्तकर दिया तथा यह त्रालोचनाकी कि त्राचार्य उमास्वामी इस त्रावश्यक बातको छोड़ गये। महाराजकी यह कृति विद्वानोंको पसन्द नहीं आई। उनका कहना था कि आपको यदि कोई वातकी ब्रुटि माल्म होती है तो उसे अलगसे दें। एक ऐसे आचार्यकी रचनाको जिसे पूज्यपाद अकर्जन, विद्यानन्द, श्रुतसागर आदि आचार्योने परिपूर्ण मान अपनी टीकाओं तथा भाष्योंसे अलंकृत किया है, प्रक्षिप्तकर दूषित न करें। परन्तु महाराज दूसरेकी वात या श्रिभिप्रायको न सुननेका प्रयास करते हैं और न सममने का।

पञ्चमीको पंडालमें राच्यगदीका उत्सव होनेके वाद वट वृक्षके नीचे दीक्षाकर्त्याणकका उत्सव हुआ। समारोह श्रच्छा था। वती

सम्मेलन होनेसे मेलाम अनेक व्रती पधारे थे श्रतः उन्होंने तथा श्रन्य श्रनेक लोगोंने व्रत प्रहण किये। हमन कहा कि यह संसार हैं छोर हमारे ही प्रयत्नका फल है। इसका श्रन्त करनेमे हम ही कारण हैं। इसका बनानेवाला यदि कोई है तो श्रन्त करनेवाला भी वही होगा। हम उभयथा निर्दोप हैं ऐसा मानना न्यायसंगत नहीं। इम निर्दोप भी हो सकते हैं और सदोप भी। अतः तत्त्वज्ञ वनो श्रीर श्राजतक जो परमे संसार तथा मोच्चके माननेका श्रज्ञान हं उसे त्यागो । यथार्थ पथपर ऋाश्रो । ससारमे वही महापुरुष वन्दनीय होते हैं जिन्होंने ऐहिक श्रीर पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ होकर श्रात्मकल्याएके श्रर्थ स्वकीय परिएतिको निर्मल वना दिया हैं। विषयका मार्ग ऊपरसे मनोरम दिखता है पर उसका अन्तस्तल वहुत ही कण्टकापूर्ण है। इससे जो वच निकले उनका चेड़ा पार हो गया। यदि विपय सुखमे श्रानन्द होता तो भगवान् श्रादि जिनेन्द्र ही उसे क्यों त्यागते ? जवतक चारित्रमोहका उदय था तवतक वे भी अन्य संसारी प्राणियोंके समान विपयके गर्तमे पड़े रहे । तीर्थंकर प्रवर्तक पुरुप कहलाते हैं । इन्हे तीर्थंकी प्रवृत्ति करना होती है। फिर यदि यही संसारके अन्य प्राणियोंके समान विषयमे निमग्न रहे तो तीर्थकी क्या प्रवृत्ति करेंगे ? यह विचार कर सौध-र्भेन्द्र इनके वैराग्यके निमित्त जिसकी आयु अत्यल्प रह गई थी ऐसी नीला अनाको नृत्य करनेके लिये खड़ा कर देता है। थोड़ी देरमें उसकी श्रायु समाप्त हो जाती है जिससे उसका शरीर विद्युत्के समान विलीन हो गया। रसमें भंग न हो इस भावनासे इन्द्रने भटसे दूसरी देवी उसीके समान रूपवाली खड़ी कर दी परन्तु भगवान् उसके श्रन्तरको समम गये। इस घटनासे भगवानके ज्ञानमें श्रा गया कि संसार च्रांगंगुर है। इमने अपनी आयुके =३ लाख पूर्व व्यर्थ ही खो दिये। कहाँ तो हम पूर्व भवमें यह चिन्तवन करते थे

कि त्रिलोकके जीवोंको श्रपायसे कैसे मुक्त करें श्रीर कहाँ हम स्वयं ही श्रपायमें फॅस गये। भगवान्के ऐसा चिन्तवन करते ही लोकान्तिक देव श्रा गये श्रीर उन्होंने वारह भावनाश्रोंका पाठकर भगवान्की श्लाघा की। कैसा वह समय होता होगा कि जव जरासा निमित्त मिलनेपर श्रादमी विरक्त हो जाते थे श्रीर ऐसे श्रादमी जिनके वैभवके साथ स्वर्गका वैभव भी ईच्या करता था। श्राज तो वैभवके नामपर फटी लंगोटी लोगोंके पास है पर उसे भी त्यागनेका भाव किसीका नहीं होता।

रात्रिको परवारसभामें एकीकारण वावत जो प्रस्ताव पपौरामें हुआ था उसपर पं० जगन्मोहनलालजीने प्रकाश हाला। चर्चा बहुत हुई परन्तु लोगोंका कहना था कि यदि वास्तवमें एकीकरण चाहते हो तो इन जातीय सभाओंको समाप्त करो। इन सभाओंने जनताके हृदयमे फूट हालनेके सिवाय कुछ नहीं किया है। इन सभाओंके पहले जहाँ लोग आपसमे एक दूसरेसे मिल जुलकर रहते थे वहाँ अब अपने परायेका भेद होगया। अन्तमे कुछ हुआ नहीं। इतना उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनानेके लिये लोगोंमे चमता नहीं।

श्रागामी दिन मध्याहके वाद ज्ञानकल्याणकका उत्सव हुत्रा। कृत्रिम समवसरणके वीच भगवान् श्रादि जिनेन्द्र विराजमान थे। विद्वानोंने दिव्य ध्वनिके रूपमे जैनागम सम्मत तत्त्वोंका वर्णन किया। जिसका जनतापर अच्छा प्रभाव पड़ा। रात्रिको यहाँकी पाठशालाका अधिवेशन था। पं० कैलाशचन्द्रजीने पाठशालाकी श्रपील के। चेत्र तथा प्रान्तकी स्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला जिससे लोगोंके परिणाम द्वीभूत होगये। कुछ चन्दा भी होगया परन्तु विद्याकी श्रोर जैसी रुचि लोगोंकी होनी चाहिये वह नहीं प्रकट हुई। इसका कारण विद्याका रस अभी इनके जीवनमे श्राचा नहीं। काल्युन शुक्ला ७ को निर्वाण कल्याणकका दृश्य प्रातःकाल पंडालकी

वेदीपर दिखाया गया। इन्द्र समय पूर्व कैलाशपर्वतपर योग निरोध किये हुए भगवान् विराजमान थे पर कुछ ही समयके अनन्तर उनका प्रतिविन्य वहाँसे उठा लिया गया श्रीर चन्दनकी सिमधाश्रों में कपूर द्वारा श्रग्नि प्रज्वित कर यह दृश्य दिखाया गया कि भगवान् मोच चले गये। यह दृश्य देखकर जनता मुखसे तो जयध्यनिका उचारण करती थी परन्तु नेत्रोंसे उसके श्रश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। मेरा परिणाम भी गद्गद् होगया जिससे अधिक तो नहीं कह सका पर इतना मैंने श्रवश्य कहा कि जन्मापाय ही मोक्ष है। जन्मके कारएोंके स्त्रभावमे जीव स्वयं मुक्त होजाता है। जन्मका कारण त्रायु है। जिस जीवका मोन्न होना है उसके त्रायु वन्ध नहीं होता। जो आयु है उसका श्रन्त होनेपर जीवका मोक्ष होजाता है। वात सरल है परन्तु यह जीव मोहपदसे इतना उन्मत्त हो रहा है कि श्रापको जानता ही नहीं। जो वात करेगा वह विपरीत श्रभित्रायसे रिक्त नहीं होती। पण्डालकी समस्त व्यवस्था पं० पत्रालालजी सागर सम्हाले हुये थे जिससे समयानुकूल सव कार्य होनेमे रुकावट नहीं होती थी। मेलामें लगभग १५-२० हजार जैन जनता आई होगी। किसीकी छुछ हानि नहीं हुई और न वर्षा श्रादिका किसीको कुछ कष्ट हुआ। सव सानन्द अपने अपने घर गये। मैं भी यहाँसे चलकर दलपतपुर श्रागया।

#### सागर

फाल्गुन कृत्णा १० सं० २००० को दलपतपुरसे ७ मील चल कर वण्डा आ गये। यहाँ पर ५५ घर जैनियों के हैं। प्रायः सर्व सम्पन्न हैं। थक गये इसिलये रात्रिमे प्रवचन नहीं किया। श्री कुझीलालजी सराफ आदि सागरसे कई महानुभाव आये जिनने सागरके समाचार श्रवण कराये। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरमे शास्त्रप्रवचन हुआ। जनताकी उपस्थित अच्छी थी। पाठशालाके लिये अर्थका प्रयास किया। ४०००) का चन्दा हुआ। यहाँ पर एक प्रभुदयाल दरोगा, जो कि वर्तमानमे रिटायर्ड है, योग्य मनुष्य है। आप प्रत्येक कार्यमे योगदान देते हैं। श्री १०५ जुल्लक नेमसागर जीने चन्दामे हृदयसे योग दिया। आप जहाँ भोजनको गयं वहाँसे प्ररेणा कर ५७०) पाठशालाको दिलाया। यहाँसे चलकर भड़राना आ गये और वहाँसे ६ मील चल कर शाहपुर पहुँच गये।

यहाँ कलशारोहणका उत्सव हो रहा था। वाहरसे करीव ५०० जनता आई होगी। रात्रिको पाठशालाका उत्सव हुआ। अपील होने पर १००००) दश हजारका चन्दा हो गया। शाहपुरके मनुष्योंमें देनेका उत्साह वहुत था। सवके परिणाम उदार थे। सबने मर्यादासे अधिक द्रव्य दिया। इस कार्यमे भैयालाल भजन-सागर और द्याचन्द्रजीने वहुत परिश्रम किया। द्वितीय दिन मध्यान्होपरान्त पाठशालाका पुनः उत्सव हुआ। श्री हरिश्चन्द्रजी मोदीका उत्साह एकदम उमड़ा। उन्होंने ५०००) पाँच हजार पाठशालाको देना स्त्रीकृत किया, २०००) दो हजार उनके भाई टीकारामजीने दिये और उनके वड़े भाई घप्पेरामजीने २५१) दिये

समगौरयाजी, भजनसागरजी तथा पं दयाचन्द्रजीने सवको मधुर शब्दोंमे धन्यवाद दिया और सिंघई लद्मगणप्रसादजी हरदीत्रालोंने सिंघई पदका तिलक किया तथा सब भाईयोंने भेंट की। वड़ा त्रानन्द रहा। श्रमात्रास्याके दिन पण्डालमे श्रीमान् ब्रह्मचारी कस्तूरचन्द्रजी नायक जवलपुरवालोंने स्वरचित रामायणमेसे दशरथ वैराग्यका प्रकरण जनताको श्रवण कराया। श्रवण कर जनता बहुंत प्रसन्न हुई। मेरे चित्तमें बहुत उदासीनता त्राई परन्तु स्थायी शान्ति न आई। इसका मूल कारण भीतरकी दुर्वलता है। श्रनादि कालसे परमे निजल्की कल्पना चली श्रा रही है। उसका निकलना सहज नहीं। संसार स्थिति श्रव्य रह जाय तो यह कार्य श्रनायास हो सकता है। कलशारोहणका समारोह समाप्त हो गया। लोग श्रपने श्रपने घर गये श्रौर हम शान्त भावसे १६–१७ दिन यहाँ रहे। भगवानदास भायजी तत्त्वज्ञ तथा श्रासन्न भव्य पुरुष हैं। इनके साथ स्वाध्याय करते हुए शान्तिसे समय यापन किया।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा सं० २००८ के दिन सागरसे सिंघईजी श्रादि श्राये श्रौर सागर चलनेकी प्रेरणा करने लगे। हमने मना किया परन्तु अन्तमे मोहकी विजय हुई, हम पराजित हुए। सागर जाना स्वीकृत करना पड़ा। मुक्ते अनुभव हुआ कि संकोची मनुष्य सदा दुखी रहता है। सवको खुश करना असंभव वात है। प्रथम तो कोई ऐसा उपाय नहीं जो सबको प्रसन्न कर सके। द्वितीय सबकी एक सहश भावना करना कठिन है। अतः एक यही उपाय है कि सबको खुश करनेकी अभिलाषा त्याग दी जाय। अभिलाषा ही दुखदायिनी है।

चैत्र कृष्णा ३ सं० २००८ को १ वजे शाहपुरसे चले। धर्मशालासे चल कर श्री अनन्दीलालकी दुकान पर विश्राम किया। यहाँ सव जैन जनता त्रा गई। वालिकात्रोंने मंगल गान गाया। पश्चात् पं० श्रमरचन्द्रजीने गान पढ़ा। उसके उपरान्त पं० श्रुतसागरजीने ५ मिनट व्याख्यान दिया। सुनकर लोग गट्गद् कण्ठ हो गये। पश्चात् वहुत कठिनतासे चल पाये। श्राधा भील तक जनता श्राई। यहाँसे ६ मील चलकर सानोधा श्रा गये। यहाँ पर ८-१० घर जैनी हैं। १ मिन्द्र है। श्रगले दिन भोजन कर सागरके लिये प्रस्थान कर दिया श्रीर शामके ६ बजे तक गोपालगंज (सागर) पहुंच गये।

चैत्र कृप्णा ५ को गोपालगंजमे आहार किया। ३ वजे प्रचुर जनताके साथ गोपालगंजसे चले और ४ वजे कटरा वाजार पहुँच गये। यहाँपर २ दो मन्दिर हैं। उनके दर्शन किये। मन्दिर रउन्छता पूर्ण तथा निर्मल हैं, विस्तृत भी है परन्तु जनसंख्या वहुत होनेम स्थानमे कमी पड़ जाती है। एक मन्दिर प्राचीन है। हुसरा स्व० सि॰ अनन्तरामजी दलालकी धर्मपत्नीने अपने मकानको मन्दिर रूपमें परिणतकर कुछ समय हुआ बनवाया है। मन्दिरोंके दर्शनकर वेदान्तीपर श्री गुलावचन्द्रजी जोहरीका जो वाग है उनमें निवास किया। आपने यह वाग उदासीनाश्रमके लिये प्रवान किया है। उदासीनाश्रम संस्था इसीमे हैं। राविको स्थागत समागहर्वे उद्देश्यसे मोराजी भवनमें सभा एकत्रित हुई।

सागर बड़ी वस्ती है। जैनियों के हजारसे उपर घर है। वं बड़े १६ मन्दिर हैं। संस्कृत विद्यालय है ही। महिलाश्रम भी गुन चुका है। लोगोंमे सरलता है। यहाँ हमारा बहुन समय दर्गता हाला है। बाईजीका भी यही निवास था खनः बूम फिल्कर में यही खा जाता था। यहाँ का जलवायु हमारे शरीरके अनुकून पड़ना है। लोगोंने भद्रता भी खिषक है। यहाँ खाकर कुछ समयन लिंग पमा। सम्बन्धी खाकुलतासे मुक्त हो गया। यहाँकी समय जनताको लाभ मिल सके इस उद्देश्यसे आठ आठ दिन समस्त मन्दिरोंमें प्रवचनका क्रम जारी किया। पहले कटराके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। फिर चौधरनवाईके मन्दिरमें, फिर सिंघईजीके मन्दिरमें। इसी क्रमसे सब मन्दिरोंमे यह क्रम चलता रहा। यहाँ तारण समाजका भी चैत्यालय है। उस आम्नायके लोगोंमें प्रमुख सेठ भगवानदासजी शोभालालजी वीड़ीवाले, मुन्ना-लालजी वैशाखिया तथा मथुराप्रसाद जी आदि है। इन सबके आप्रहसे चैत्यालयमें भी प्रवचन हुए।

चैत्र शुक्ला १३ सं० २००६ को वर्गी भवन ( मोराजी भवन ) में महावीर जयन्तीका उत्सव था। पं० दयाचन्द्रजी, माणिकचन्द्रजी, पन्नालालजी त्र्यादि के व्याख्यान हुए। कुछ इतर समाजके वक्ता भी वोले। जनता श्रधिक थी। समारोह अच्छा हुत्रा। दूसरे दिन सर्वधर्मसम्मेलनका आयोजन था जिसमे जैन हिन्दू मुसलमान श्रीर ईसाई धर्मवालोंके च्याख्यान हुये। श्रन्तमे मैंने भी वताया कि धर्म तो आत्माकी निर्मल परिएतिका नाम है। काम क्रोध लोभ मोह श्रादि विकार श्रात्माकी उस निर्मल परिएतिको सलिन किये हुए हैं। जिस दिन यह मिलनता दूर हो जायगी उसी दिन आत्मामें धर्म प्रकट हुचा कहलावेगा। किसी कुल या जातिमे उत्पन्न होनेसे कोई उस धर्मका धारक नहीं हो जाता। कुलमें तो शरीर उत्पन्न होता हैं सो इसे जितने परलोकवादी हैं सब श्रात्मासे जुदा मानते हैं। शरीर पुद्गल है। उसका धर्भ तो रूप रस गन्ध स्पर्श है। वह त्र्यात्मामे कहाँ पाया जाता है ? त्र्यात्माका धर्म ज्ञान दर्शन क्षमा मार्टव अर्जिव आदि गुण हैं। ये सदा आत्मामे पाये जाते हैं। श्रात्माको छोड़कर श्रन्यत्र इनका सदुभाव नहीं होता।

इतना तो सव मानते हैं कि इस समय संसारमे कोई विशिष्ट ज्ञानी नहीं। विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने-अपने ज्ञानके

श्रनुसार पदार्थको सममनेका प्रयास करते हैं। जिस प्रकार सूर्यके श्रभावमें घर-घर दीपक जल जाते हैं, कोई विजलीका वड़ा वल्व जलाता है तो कोई मिट्टीका छोटा-सा टिमटिमाता हुन्रा दीपक ही जलाता है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है वह उतना साधन जुडाता है। इसी प्रकार सर्वज्ञ-विशिष्ट ज्ञानीके अभावमे लोग अपने अपने ज्ञानके दीपक जलाते हैं। फिर भी एक सूर्य संसारका जितना श्रध-कार नष्ट कर देता है उसको पृथिवीके छोटे वडे सव दीपक भी मिल कर नष्ट नहीं कर सकते। ज्ञान थोड़ा हो, इसमे हानि नहीं परन्तु मोह मिश्रित ज्ञान हो तो वह पच खडाकर देता है। यही कारण है कि इस समय उपलब्ध पृथिबीपर नाना धर्म नाना मत-मतान्तर प्रचलित हैं। यह कलिकालकी महिमा है। उस कालका यही स्यभाव है। आज लोगोंसे इतनी तो समभ आई है कि विभिन्न धर्मगले एक स्थानपर वैठकर एक दूसरेके धर्मकी वात सुनते हैं, सुनात हैं। जैनधर्मका अनेकान्तवाद तो इसीितये अवतीर्ण हुआ है कि वह सव धर्मोंका सामञ्जस्य वैठाकर उनके पारस्परिक संघर्षको कमकर सके। आयोजक समितिने सव वक्ताओं के लिये एक-एक वर्णी श्रभिनन्द्न प्रन्थ भेंट किया।

### समय यापन

पं० फूलचन्द्र जी बनारसवाले छाये हुए थे। वैशाय कृष्णा ३-४ छोर ५ को छापका शास्त्र प्रवचन हुछा। इन निधियोमें प्रवचनकी व्यवस्था तालावके मन्दिरमें थी। मन्दिर होता है। परन्तु व्यवस्थित हैं। पण्डिनजीके प्रयचन मार्मिक होते हैं। श्रापका कहना था कि मनुष्यका कल्याण निज ज्ञानमे होता है, पुस्तक ज्ञानसे नहीं । खाली पुस्तकीय ज्ञान तो वैलपर लदी शक्कर के समान है। श्रर्थान् जिस प्रकार पीठपर लटी हुई शक्करका स्याद वलको नहीं मिलता उसी प्रकार केवल पुस्तकीय ज्ञानका स्वान निज ज्ञानसे शून्य मनुष्योको नहीं मिलता । श्रात्मज्ञानके साथ पुस्तकीय ज्ञान श्रिधिक न हो तो भी काम चल जाता है परन्तु आत्मज्ञानके विना अनेक शास्त्रोंका ज्ञान भी वेकार है। प्रत्येक मानवको यदि शरीरादि पर पदार्थीसे भिन्न आत्माका ज्ञान हुम्रा है तो उसे उसका सदृपयोग करना चाहिये। ज्ञानका सदुपयोग यही है कि उसमें मोह तथा राग-द्वेपका सम्मिश्रण न होने दे। जाता-दृष्टा त्र्यात्माका स्वभाव है। जब तक यह जीव ज्ञाता रुष्टा रहता है तव तक स्वस्थ कहलाता है स्त्रीर जब ज्ञाता-रुष्टा के साथ साथ रागी द्वोपी तथा मोही भी हो जाता है तव श्रस्यस्थ कहलाने लगता है। संसारमें श्रस्यस्य रहना किसीको पसन्द नहीं श्रतः ऐसा प्रयत्न करो कि सतत स्वस्थ श्रवस्था ही वनी रहे। कल्याएका मार्ग उपेचामे है। उपेचाका ऋर्थ राग-द्वेषका श्रप्रशिधान है। श्रर्थात् उस श्रोर उपयोग नहीं जाने देना। रागादि कारणोंके द्वारा कल्याण मार्गकी श्रकाचा करना सर्पको दुग्ध पिलानेके समान है। संसारका आदि कारण आत्मा ही तो है। वही उसके अन्तका कारण भी है। छोटे छोटे वच्चे मिद्टीके घरोंदे वनाकर खेलते हैं और खेलते खेलते अपने ही पदायातसे उन घरोंदोंको नष्ट कर देते हैं। इसी तरह मोही जीव मोहवश नाना प्रकारके घरोंदे बनाता है, पर पदार्थको अपना मान अनेक मंसूचे वनाता है परन्तु मोह निकल जानेपर उन सबको नष्ट कर देता है।

श्री १०८ मुनि त्रानन्दसागरजी भी बिहार करते हुए सागर

पधारे। निःस्पृह व्यक्ति हैं, तत्त्रज्ञानकी श्रमिलापा रखते हैं, संस्कृत जानते हैं, निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखते हैं। श्रापके दर्शन कर मेरे मनमे यह भाव उत्पन्न हुश्रा कि इस कितकालमे दिगम्बाद्यकी रत्ता करना सामान्य मनुष्यका काम नहीं। धन्य है श्रापके पुरुप्तर्थकों जो इस विपम कालमें सात्तात् मोत्तमार्गकी जननी दिगम्बर मुद्राका निरितचार निर्वाह कर रहे हैं। श्रापकी शान्तिमुद्रा देखकर श्रन्य जन्तु भी शान्त भावको धारणकर मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं।

सागरमें वालचन्द्र मलैया श्रद्धालु जीव हैं। सम्पन्न होनेपर भी कोई प्रकारका व्यसन आपको नहीं। श्रावकके पट् कर्ममें निरन्तर आपकी प्रशृति रहती हैं। आपने सागरसे २ मील दूर दिन्त प्रिय तिलीयामसे एक विस्तृत तथा सुन्दर भन्नन वनवाया है। पृजाक लिये चैत्यालय भी निर्माण कराया है। एकान्त प्रिय होनेमें अपिकांश आप वहीं पर रहते हैं। आपका आप्रह कुछ दिन हे लिये अपने वागसे ले जानेका हुआ। मैने स्वीकृत कर लिया अतः वंशाप ग्रुन्ता १३ को श्रीजुल्लक लेमसागरजीके साथ वहाँ गया। बहुत ही रम्य स्थान है। सर्व तरहके सुभीते हैं। यदि कोई यहाँ तस्य प्रिणाण करना चाहे तो कोई उपद्रव नहीं। ३ दिन यहाँ रहा। पण्डित प्रभालालजी साथ रहते थे। शान्तिसे समय व्यतीत हुआ। उन्हों स्था प्रभालालजी साथ रहते थे। शान्तिसे समय व्यतीत हुआ। उन्हों स्थान आतर दिनमें गरमी अधिक पडती थी अतः भोजनोपरान्त ५ यजे तर्ज श्री भगवान्दासजीकी हवेलीके नीचे भागमें रहता था। यहाँ न्या आतापनहीं पहुँच पाता था उम्लिये शान्ति रहनी थी। ५ यजे शान्ति आतापनहीं पहुँच पाता था उम्लिये शान्ति रहनी थी। ५ यजे शान्ति निकेतन—उदासीनाश्रममें चला जाता।

सागरमें अनेक मन्दिर है तथा विद्यालय और महिलानम इन प्रकार २ संस्थाएं हैं। सबकी व्यवस्थायक नमितियां जुरी-जुरी हैं इसलिये अपनी अपनी और लोगोंका विचान रहा कम्स है।

हमने सुमाव रक्खा कि समस्त सागर समाजकी एक प्रतिनिधि सभाका निर्माण होना चाहिये। वही सव मन्दिरों तथा संस्थात्रों-की न्यवस्था करे । अलग,अलग खिचड़ी पकानेमे शोभा नहीं। जनता को सुमाव पसन्द आ गया और ८४ प्रतिनिधियोकी एक प्रतिनिधि सभा वन गई। परन्तु देखनेमें यह आया कि कार्यकर्ताओं के हदय स्वच्छ नहीं अतः विश्वास नहीं वैठा कि ये लोग आगे चलकर सम्मिलितरूपसे व्यवस्था वनाये रखेंगे। सवसे जटिल प्रश्न मन्दिरों सम्बन्धी द्रव्यके सदुपयोग तथा उसकी सुव्यवस्थाका है। परिप्रह एक ऐसा मद्य है कि वह जहाँ जाता है वहीं लोगोके हृदयमे मद उत्पन्न कर देता है। परिग्रह चाहे घरका हो चाहे मन्दिर का, विकार भाव उत्पन्न करता ही है। जब तक मनुष्य परिग्रहको श्रपनेसे भिन्न श्रनुभव करता रहता है तव तक इसका बन्धन नहीं होता परन्तु जिस च्या वह उसे श्रपना मानने लगता है उसी च्या वन्धनमे पड़ जाता है। सरकारी खजानेमे कार्य करनेवाला ट्यक्ति श्रपनी ड्यूटीके अवसर पर खजानेका स्वामी है पर वह उसे अपना नही मानता। यदि कदाचित् सी पचास रुपयेमे उसका मन ललचा जावे श्रौर उन्हे वह निकाल कर जेवमे रखले—उनके साथ ममत्वभाव करने लगे तो तत्काल उसके हाथमें वेड़ी (हथकड़ी) पड़ जाती है।

कण्डया वंशमें श्री ताराचन्द्रजीका एक विस्तृत मकान, जो कि इतवारा वाजारमे था, विकनेवाला था। लोगोंने सुमाव रक्खा कि यह मकान महिलाश्रमके लिये खरीद लिया जाय क्योंकि महिलाश्रम श्रमी तलावके मन्दिरके पीछे किरायेके मकानमे हैं, जहाँ संकीर्णता बहुत है तथा मच्छरोंकी श्रधिकता हैं। मकानकी कीमत २२०००) वाईस हजारके लगभग थी। महिलाश्रमके पास इतना फण्ड नहीं कि जिससे वह स्वयं खरीद सके। मकान निजका होनेसे संस्थामें स्थायित्व आ जाता है श्रत मंत्री चाहता था कि मकान महिला- असका हो जाता तो उत्तम था। परन्तु कहा किससे जाने ? कुछ लोग फुटकर चन्दा करनेके लिये निकले तो दो चार हजारसे अधिक के वचन न मिलं। सागरमें सिंघई कुन्दनलालजी एक सहदय तथा आवश्यकताका अनुभव करनेवाले व्यक्ति हैं। उन्होंने पिछले समयमे महिलाश्रमको ११०००) ग्यारह हजार नकट दान दिये थे। उन्होंने कहा कि यदि महिलाश्रमकी कमेटी ग्यारह हजार रूपये हमारे पहलेके मिला दे तो में ग्यारह हजार और देता हैं। इन वाईस हजारसे उक्त मकान खरीद लिया जावे। 'भूखेको क्या चाहिये ? दो रोटियाँ' वाली कहावतके अनुसार महिलाश्रमकी कमेटी ने उक्त वात स्वीकार कर ली जिससे २२०००) हजारमे उक्त मकान खरीद कर सिंघेन दुर्गावाईके नामसे महिलाश्रमको साँप दिया गया। श्रीष्टमावकाशके वाद जब आश्रम खुला तब वह अपने निज के मकानमे पहुँच गया। इस मकानमें इतनी पुष्कल जगह ह कि यदि व्यवस्थित रीतिसे वनाई जावे तो ५०० छात्राणं सानन्य अध्ययन कर सकती हैं।

क्येष्ठ शुक्ला पद्धमीको गोरावाई जैन मन्दिर क्टरामे श्रुनपद्धमी का उत्सव था। भीड़ वहुत थी। पं० पन्नालालजीने शास प्रवचन द्वारा पर्वका पूर्ण परिचय जनताको करा दिया श्रोर इस वानार वल दिया कि मन्दिरोंमे जो चांटी श्रादिके व्यर्थ उपनरण हैं इहें गलाकर शास्त्र भण्डारोंकी पूर्णता होनी चाहिये तया जो शास श्रद्धाविध प्रकाशमे नहीं श्राये उनका जनताके समन्त श्राना वर्ट् श्रावश्यक है। " वात मार्मिक थी, परन्तु यह हो नव मन्दर्ग । जब जनताके नेत्र खुलें। श्राजकल तो मन्दिरोंना द्रव्य मगनमंग पत्थर या चीना इंटोंक जडवानमें जाता है। लोगोंने हदयमें श्रान समाया हुश्रा है। शास्त्रज्ञानकी श्रोर उनकी मिन नहीं।

कटरामें एक मन्दिर कारे भायजीता या जो जीवें हो उन्हें

कारण गिरा दिया गया था तथा उस स्थानपर नवीन मन्दिर निर्माण करानेका त्रिचार था। मन्दिरके नीचेका भाग वड़ा मन्दिर के श्राधीन श्रौर उत्पर श्रटारी पर मन्दिर था। वड़ा मन्दिरके प्रवन्धकांने मन्दिरके वनानेमे आपत्ति की जिससे मन्दिर गिरा हुआ बहुत दिनोंसे पड़ा रहा। कारेभायजीके मन्दिरमें जो रूपया या उन्होंने वह रूपया वड़ा मन्दिरके व्यवस्थापक श्री लक्सीचन्द जी मोदीको दे दिया और कहा कि आप ही वनवा दो। बहुत समयसे काम रका था और लोग प्रेरणा भी बहुत करते थे इसलिये ज्येष्ठ शुक्ला ६ को नवीन मन्दिर वनवानेका मुहूर्त किया गया। मुमें भी लोग ले गये। जन समुदाय बहुत था। लोगोको प्रसन्नता थी कि अब मन्दिर वन जावेगा परन्तु लोगोंकी परिणति निर्मल नहीं श्रतः मुम्मे विश्वास नहीं हुंत्रा कि यह मन्दिर शीघ्र वन जावगा। धर्मायतनोंके विषयमें जो छल-छुद्रताका व्यवहार करते हैं वे त्रात्मवञ्चना करते हैं श्रीर उसका कटुक परिपाक उन्हे भोगना पड़ता है। इस पापके करनेवाले कभी फलते फूलते नहीं देखे गये।

श्री १०५ ज्ञुल्लक चेमसागरजी चतुर्मास करनेके लिए जवलपुर चले गये। हमारा भी विचार था परन्तु हम लोगोंका संकोच नहीं तोड़ सके श्रीर सागरमे ही रह गये। श्राधाढ़ शुक्ला १४ के दिन हमने सागरमें चातुर्मासका नियम ग्रहण किया तथा कार्तिक सुदी २ तक दुग्ध घृत नमक तथा वादामका रोगन मात्र इतने रस लेनेका नियम किया।

श्राषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा सं॰ २००६ को विद्यालयमें गुरुपूर्णिमा का उत्सव था। समस्त छात्रचृन्द तथा श्रध्यापकरण एकत्रित थे। मुमे भी बुलाया गया। छात्रोंके किवता पाठ तथा व्याख्यान श्रादि हुए। श्रध्यापकोंके भी भाषण हुए। मुमे यह दृश्य देख वहुत

असन्नता हुई। मैंने कहा कि गुरुका द्यर्थ तो दिगम्बर मुद्राके वारी तपोधन मुनि हैं। श्रावण कृष्णा १ से चातुर्मास प्रारम्भ होनाता है अतः पृणिमा तक जहाँ जिनका चातुर्मास सम्भव होता वहीं सब गुरु पहुँच जाते थे और गृहस्थ लोग उनके आगमनका समारोह मनाते थे। परन्तु आज दिगम्बर मुद्राधारी लोगोकी कमी हो गई इसलिए गुरुका अर्थ विद्यागुरु रह गया। यह भी बुरा नहीं क्योंकि एक अक्षरके देनेवालेके प्रति भी मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिंग। 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति' किये हुये उपकारको साधुजन भूलते नहीं। माता पिताकी अपेन्ना विचार करो तो गुरुका स्थान सर्वोपरि है क्योंकि उसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्बन्धी हितकी प्राप्ति होती है।

छात्रका हृद्य जितना अधिक निर्मल होगा वह उतना ही अधिक ज्युत्पन्न वनेगा। छात्रको निर्हुन्द्र होकर अध्ययन करना चाहिये। आजका छात्र पढ़ना अधिक चाहता है पर पढ़वा विलक्ठल नहीं है। अनेक शाखोंका अध्ययन करनेके वाद भी आज छात्र उस योग्यताको नहीं प्राप्त कर पाते जिस योग्यताको पहले छात्र एक दो पुस्तकोंको पढ़कर प्राप्त कर लेते थे। कितने ही छात्रोमें बुद्धि स्वभावतः प्रवल होती है पर उन्हे अनुकूल साधन नहीं मिल पाते इसलिये वे आगे वढ़नेसे रह जाते हैं। जिन्हें साधन अनुकूल प्राप्त हो जाते हैं वे आगे वढ़ जाते हैं। इस समय उन्हें चिन्ता ही किस वातकी है, आरामसे वना वनाया भोजन प्राप्त होता है और गुरुजन तुम्हारे स्थानपर आकर पढ़ा जाते हैं। एक समय वह था कि जव हम विद्याध्ययन करनेके लिए मीलों दूर गुरुओंके स्थानपर जाया करते थे, हाथसे रोटी वनाकर खाते थे, गुरुओंकी गुश्रूषा करते थे तव कहीं कुछ हाथ लगता था पर आज तो सव सुविधाएं हैं, फिर भी अध्ययन न हो तो हुर्भाग्य ही समम्भना चाहिए।

'ज्ञानं सुखस्य कारणम्' ज्ञान सुखका कारण है परन्तु परिपक्य ज्ञानसे ही सुख होता है यह निश्चय रखना चाहिए। जिसका ज्ञान श्रमिपक्य है वह 'न इधरका न उधरका'—कहींका नहीं रहता। उसे पद पदपर त्रास उठाना पडता है। श्रतः जिस विपयका पढ़ो, सनोयोगसे पढ़ो श्रौर खूब पढ़ो। श्रानेक विपयोंकी श्रमेक्षा एक ही विपयका परिपक्य ज्ञान हो जावे तो उत्तम है।

श्रावण कृष्णा १० सं० २००९ को समाचार मिला कि डालमियाँ नगरमे श्रावण कृष्णा म सोमवारकी रात्रिको १० वजकर
१५ मिनटपर श्री सूरिसागरजी महाराजका समाधिपूर्वक देहावसान
होगया। समाचार सुनते ही हृदयपर एक श्राघात सा लगा। श्राप
एक विशिष्ट श्राचार्य थे, फीरोजावादके साचात्कारके श्रनन्तर तो
श्रापमे हमारी श्रत्यन्त भक्ति होगई थी। इसके पहले जब श्रापकी
रुग्णावस्था के समाचार श्रवण किये थे तब मनमें श्राया था कि एक
वार उनके चरणोंमें पहुँचकर उनकी वैयावृत्त्य करें परन्तु बाह्य त्याग
के संकोचमें पढ़ गये। हमारा मनोरथ मनका मनमें रह गया। श्री
१०८ मुनि श्रानन्टसागरजीके नेत्रोंसे तो श्रश्रधारा बहने लगी
क्योंकि श्रापने उन्हींसे दीचा ली थी। मुनिमहाराज तथा हमने
श्राज उपवास रक्खा। कटरामे मन्दिरके सामने शोकसभा हुई
जिसमे बहुत भारी जनता श्राई। विद्वानोंने समाजको उनका परिचय
कराया तथा उनका गुणगानकर उनके प्रति श्रद्धाञ्चलि श्रपित की।

दिहीसे श्रीराजकृष्णजी, जैनेन्द्रिक्शोरजी तथा लाला मुंशी-लालजी श्रादि श्रीर कलकत्तासे छोटेलालजी श्राये। सब वर्णीभवन-के हालमें ठहरे। रचाबन्धनका पर्वकी श्राज चर्या श्रीराजकृष्ण तथा जैनेन्द्रिक्शोरके यहाँ हुई किन्तु भाग्यवश कटोरी भर भी दुग्धपान न कर पाया कि कटोरीमें मृत मिक्षका निकल गई। भोजनमें श्रन्त-राय हो गया। इसके पूर्व चतुर्दशीका उपवास किया था। लोगोंको

बहुत दुःख हुआ। द्वितीय दिन श्रीराजकृष्णजीके यहाँ भोजन हुआ। श्रीजैनेन्द्रिकशोरजी ने अनारका रस दिया। २ दिनके वाद श्राज पारणा हुआ। लोगोंको श्रत्यन्त आनन्द हुआ। इसी समय श्रीछोटेलालजी (कलकत्ता) ने १०००) विद्यादानमे अपित किये, जिनमें मैंने विद्यालयको ६००) विधवाश्रमको ३००) श्रौर उदासी-नाश्रमको १००) दिला दिये। श्रीमुंशीलालजी देहलीवालोंने एक लाख रुपया समन्तभद्र विद्यालयको दिया । यह विद्यालय हिस्तीमे श्रनाथाश्रमके पास सामने जो भूमि है उसीपर वनेगा। चाधरन वाईके मन्दिरमें उनके १ लाखके दानकी घोपणा हुई। उन्हें समाजकी श्रोरसे पगड़ी वंधायी गई । श्रीसिघई कुन्दनलालजीके द्वारा पगडीका कार्य सम्पन्न हुआ। सेठ भगवानदासजीने पुष्पमाला पहिनाई। श्रीछोटेलालजीने अच्छा न्याख्यान दिया। श्राप १ पुरादनवेत्ता हैं। श्रापने पुराने तीर्थक्तेत्रॉ तथा प्रतिमात्रोंकी फिल्म ली है। एक दिन रात्रिको उनका प्रदर्शन किया। सिं॰ डालचन्द्रजीन नव श्रागन्तुकोको भोजन कराया। प्रसन्नतासे सव लोग श्रपने स्प्रने स्थान गये। हम शान्तिसे समय यापन करते रहे।

पर्यूपण पर्व आनेवाला था इसलिये समप्र समाजमे उत्माह भर रहा था।

## पर्व प्रवचनावली

यहाँ श्री चौथरनवाईके मन्दिरमे पुष्फल स्थान है इसलिये प्रातः-कालके प्रवचनकी व्यवस्था इसी मन्दिरमे रहती थी। प्रातः न।। वजेसे श्री मुनि ञ्चानन्दसागरजीका प्रवचन उसके वाद पं० द्वारा तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ, ञ्चौर उसके वाद धर्मपर हमारा प्रवचन होता था। प्रवचनोंकी कापी पं० पत्रालाल जी साहित्याचार्य ने की थी। जन कल्याणकी दृष्टिसे उन प्रवचनोको यहां दे देना उपयुक्त समभता हूँ।

श्राज पर्वका प्रथम दिन है ३५० दिन वाद यह पर्व श्राया है। ज्ञान सबसे उत्तम धर्म है। जिसके ज्ञामा धर्म प्रकट हो गया उसके मार्द्व, श्राज्व श्रोर शौच धर्म भी अवश्यमेव प्रकट हो जावेंगे। कोधके श्रभावसे श्रात्मामें शान्ति गुण प्रकट होता है। वैसे तो श्रात्मामें शान्ति सदा विद्यमान रहती है क्योंकि वह श्रात्माका स्त्रभाव है—गुण है। गुण गुणीसे दूर कैसे हो सकता है १ परन्तु निमित्त मिलनेपर वह कुछ समयके लिए तिरोहित हो जाता है। स्कटिक स्त्रभावत स्त्रच्छ होता है पर उपाधिके संसर्गसे श्रन्य रूप हो जाता है। हो जाश्रो, पर क्या वह उसका स्त्रभाव कहलाने लगेगा १ नहीं, श्रान्तका संसर्ग पाकर जल उष्ण हो जाता है पर वह उसका स्त्रभाव तो नहीं कहलाता। स्त्रभाव तो शीतलता ही है। जहां श्रान्तका सम्त्रन्ध दूर हुश्रा कि फिर शीतलका शीतल। क्या बतलावें १ पदार्थका स्त्ररूप इतना स्पष्ट श्रोर सरल है परन्तु श्रनादि कालीन मोहके कारण वह दुरूह हो रहा है।

वहुत दुःख् हुआ। द्वितीय दिन श्रीराजकृष्णजीके यहाँ भोजन हुआ। श्रीजैनेन्द्रिकशोरजी ने अनारका रस दिया। २ दिनके वाद श्राज पारणा हुआ। लोगोंको श्रत्यन्त आनन्द हुआ। इसी समय श्रीछोटेलालजी (कलकत्ता) ने १०००) विद्यादानमे अपित किये, जिनमें मैंने विद्यालयको ६००) विधवाश्रमको २००) श्रीर उदासी-नाश्रमको १००) दिला दिये। श्रीमुंशीलालजी देहलीवालोंने एक लाख रपया समन्तभद्र विद्यालयको दिया। यह विद्यालय दिल्लीमे श्रनाथाश्रमके पास सामने जो भूमि है उसीपर वनेगा। चाधरन वाईके मन्दिरमे उनके १ लाखके दान्की घोषणा हुई। उन्हें समाजकी श्रोरसे पगड़ी वंधायी गई । श्रीसिघई कुन्दनलालजीके द्वारा पगडीका कार्य सम्पन्न हुआ। सेठ भगवानदासजीने पुष्पमाला पहिनाई। श्रीछोटेलालजीने अच्छा न्याख्यान दिया। आप १ पुरातनवेत्ता हैं। स्रापने पुराने तीर्थनेत्रों तथा प्रतिमात्रोंकी फिल्म ली है। एक दिन रात्रिको उनका प्रदर्शन किया। सिं॰ डालचन्द्रजीने सव श्रागन्तुकोको भोजन कराया। प्रसन्नतासे सव लोग अपने-श्रपने स्थान गये। हम शान्तिसे समय यापन करते रहे।

पर्यूपण पर्व आनेवाला था इसलिये समप्र समाजमे उत्साह भर रहा था।

## पर्वं प्रवचनावली

यहाँ श्री चौधरनवाईके मन्दिरमे पुष्फल स्थान है इसलिये प्रातः-कालके प्रवचनकी व्यवस्था इसी मन्दिरमें रहती थी। प्रातः द्रा। बजेसे श्री मुनि त्रानन्दसागरजीका प्रवचन उसके बाद पं० द्वारा तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ, त्रौर उसके बाद धर्मपर हमारा प्रवचन होता था। प्रवचनोंकी कापी पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने की थी। जन कल्याएकी दृष्टिसे उन प्रवचनोंको यहां दे देना उपयुक्त सममता हूँ।

श्राज पर्वका प्रथम दिन है ३५० दिन वाद यह पर्व श्राया है। चिमा सबसे उत्तम धर्म है। जिसके चमा धर्म प्रकट हो गया उसके मार्द्व, श्राजंव श्रोर शौच धर्म भी श्रवश्यमेव प्रकट हो जावेंगे। कोधके श्रभावसे श्रात्मामे शान्ति गुण प्रकट होता है। वैसे तो श्रात्मामे शान्ति सदा विद्यमान रहती है क्योंकि वह श्रात्माका स्वभाव है—गुण है। गुण गुणीसे दूर कैसे हो सकता है १ परन्तु निमित्त मिलनेपर वह छुझ समयके लिए तिरोहित हो जाता है। स्फटिक स्वभावत स्वच्छ होता है पर उपाधिके संसर्गसे श्रन्य हम हो जाता है। हो जात्रो, पर क्या वह उसका स्वभाव कहलाने लगेगा १ नहीं, श्रान्तका संसर्ग पाकर जल उपण हो जाता है। जहां श्रान्तका सम्बन्ध दूर हुंत्रा कि फिर शीतलका शीतल। क्या वतलावें १ पदार्थका स्वरूप इतना स्पष्ट श्रोर सरल हें परन्तु श्रनादि कालीन मोहके कारण वह दुक्ह हो रहा है।

कोधके निमित्तसे आदमी पागल हो जाता है और इतना पागल कि अपने स्वरूप तकको भूल जाता है। वस्तुकी यथार्थता उसकी दृष्टिसे लुप्त हो जाती है। एकने एक को घूँ सा मार दिया। वह उसका घूँ सा काटनेको तैयार हो गया पर इससे क्या ? घूँ सा मारनेका जो निमित्त था उसे दूर करना था। वह मनुष्य कुक्कुर वृत्ति पर उतारू हुआ है। कोई कुत्तेको लाठी मारता है तो वह लाठीको दातोंसे चवाने लगता है पर सिंह वन्दूक की श्रोर न भपट कर वन्दूक मारनेवालेकी श्रोर मपटता है। विवेकी मनुष्यकी दृष्टि सिंहकी तरह होती है। वह मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है। श्राज हम क्रोधका फल प्रत्यन्त देख रहें हैं। लाखों निरपराध प्राणी मारे गये श्रोर मारे जा रहे हैं। क्रोध चारित्रमोहकी प्रकृति है। उससे श्रात्माके संयम गुणका घात होता है। क्रोधके श्रमावमे प्रकट होनेत्राला नमा गुण संयम है, चारित्र है। राग द्वेपके श्रमाव को ही तो चारित्र कहते हैं।

हानसूर्योद्य नाटककी प्रारम्भिक भूमिकामे सूत्रधार नटीसे कहता है कि आजकी यह सभा अत्यन्त शान्त है उसिलय कोई अपूर्व कार्य उसे दिखलाना चाहिये। वास्तवमें शान्तिक समय कौनसा अपूर्व कार्य नहीं होता ? मोचमार्गमें प्रवेश होना ही प्रपूर्व कार्य है। शान्तिके समय उसकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। आप लोग प्रयत्न कीजिये कि मोचमार्गमें प्रवेश हो ख्रांग समार्ग आप लोग प्रयत्न कीजिये कि मोचमार्गमें प्रवेश हो ख्रांग समार्ग अवादि वन्धन खुल जाँच। आजके दिन जिसने चमा धारण नहीं की वह अन्तिम दिन चमावणी क्या करेगा ? 'में तो ख्रांज चमा चाहता हैं' उस वाचिनक चमाकी ख्रांज्यकता नहीं हैं। हार्विक चमासे ही ख्रांत्माका कन्याण हो सकता है। चमाक ख्रांजमं ख्रांचें व्यादमी वरवाद हो जाने हैं।

में निव्या (नवडीप) में दुलारकार पास न्याय पटना था।

वे न्यायशास्त्रके बड़े भारी विद्वान् थे। उन्होंने अपने जीवनमें २५ वर्ष न्याय ही न्याय पढ़ा था। वे व्याकरण प्रायः नहीं जानते थे। एक दिन उन्होंने किसी प्रकरणमे अपने गुरुजीसे कहा कि जैसा 'वक्ति' होता है वैसा 'व्रीति' क्यों नहीं होता ? उनके गुरु उनकी मूर्खता पर बहुत क्रुद्ध हुए और बोले कि तूं वैल है, भाग जा यहाँसे। दुलार का को बहुत बुरा लगा। उनका एक साथी था जो व्याकरण अच्छा जानता था और न्याय पढ़ता था। दुलार काने कहा कि यहाँ क्या पढ़ते हो ? चलो हम तुम्हे घर पर न्याय बढ़िया पढ़ा देंगे। साथी इनके गाँवको चला गया। वहाँ उन्होंने उससे एक सालमें तमाम व्याकरण पढ़ हाला और एक साल बाद अपने गुरुके पास आकर कोधसे कहा कि तुम्हारे वापको धूल दी, पूछले व्याकरण कहाँ पूछना है ? गुरु ने हसकर कहा—आओ बेटा। मैं यही तो चाहता था कि तुम इसी तरह निर्भीक बनो। मैं तुम्हारी निर्भीकतासे बहुत संतुष्ट हुआ पर मेरी एक वात याद रक्खो—

स्रपराधिनि चेत्कोधः कोधे कोघ' कथ न हि । धर्मार्थकाममोत्ताणा चतुर्णां परिपन्थिनि ॥

दुलारमा अपने गुरुकी क्षमाको देखकर नतमस्तक रह गये। चमासे क्या नहीं होता श अच्छे-अच्छे मनुष्योंका मान नष्ट हो जाता है। दरमंगामें दो भाई थे। दोनों इतिहासके विद्वान् थे। एक वोला कि आला पहले हुआ है और दूसरा वोला कि उत्ल पहले हुआ है। इसीपर दोनोंमे लड़ाई हो गई। आखिर मुकदमा चला और जागीरदारसे किसानकी हालतमें आ गये। चमा सर्व गुणोंकी भूमि है। इसमें सब गुण सरलतासे विकसित हो जाते हैं। चमासे भूमिकी शुद्धि होती है। जिसने भूमिको शुद्ध कर लिया। एक गाँवमे दो आदमी थे—

एक चित्रकार और दूसरा द्यचित्रकार। अचित्रकार चित्र वनाना तो नहीं जानता था पर था प्रतिभाशाली। चित्रकार बोला कि मेरे समान कोई चित्र नहीं बना सकता। दूसरेको उसकी गर्वोक्ति सहा नहीं हुई अतः उसने मटसे कह दिया कि मैं तुमसे अच्छा चित्र बना सकता हूँ। विवाद चल पड़ा। अपना अपना कौशल दिखानेके लिये दोनों तुल पड़े। तय हुआ कि दोनों चित्र वनार्वे फिर अन्य परीचकोंसे परीचा कराई जावे। एक कमरे-की श्रामने सामनेकी दीवालों पर दोनों चित्र बनानेको तैयार हुए। कोई किसीका देख 'न ले इसलिये बीचमे परदा डाल दिया गया। चित्रकारने कहा कि मैं १५ दिनमे चित्र तैयार कर र्द्धगा। इतने ही समयमे तुझे भी करना पड़ेगा। उसने कहा-में पौने पन्द्रह दिनमें कर दूंगा, घनड़ाते क्यों हो ? चित्रकार चित्र बनानेमें लग गया और दूसरा दीवाल साफ करनेमें । उसने १५ दिन मे दीवाल इतनी साफ कर दी कि काचके समान स्वच्छ हो गई। १५ दिन बाद लोगोंके सामने बीचका परदा हटाया गया। चित्रकारका पूरा चित्र उस स्वच्छ दीवालमे प्रतिविम्वित हो गया श्रीर इस तरह कि उसे स्वयं श्रपने मुंहसे कहना पड़ा कि तेरा चित्र अच्छा है। क्या उसने चित्र बनाया था ? नहीं, केवल जमीन ही स्वच्छ की थी पर उसका चित्र वन गया और प्रतिद्वन्द्वीकी अपेचा अच्छा रहा। आप लोग चमा धारण करें, चाहे उपवास एकाशन आदि न करें। चमा ही धर्म है और धर्म ही चरित्र है। कुन्दकुन्द स्वामीका वचन है-

चारित्त खलु धम्मो धम्मो जो सो समो ति गिहिट्टो।
मोहक्खोहिवहींगो परिगामो श्रप्पगो हु समो॥
यह जीव श्रनादि कालसे पर पदार्थको श्रपना समम कर

व्यर्थ ही सुखी दुखी होता है। जिसे यह सुख सममता है वह सुख नहीं है। वह उंचाई नहीं जहां से फिर पतन हो। वह सुख नहीं जहां फिर दुखकी प्राप्ति हो । यह वैषयिक सुख पराधीन है, वाधा सहित है, उतने पर भी नष्ट हो जानेवाला है श्रीर श्रागामी द्रुः खका कारण है। कौन समभदार इसे सुख कहेगा ? इस शरीर से त्राप स्नेह करते हैं पर इस शरीरमें है क्या १ त्राप ही बतात्रो। माता पिताके रज-वीर्यसे इसकी उत्पत्ति हुई। यह हड्डी, मास, रुधिर आदिका स्थान है। उसीकी फुलवारी है। यह मनुष्य पर्याय साटेके समान है। सांटेकी जड़ तो सड़ी होनेसे फॅक दी जाती है, वांड़ भी वेकाम होता है और मध्यमें कीड़ा लग जानेसे वेस्वाद हो जाता है। इसी प्रकार इस मनुष्यकी वृद्ध श्रवस्था शरीर शिथिल हो जाने से वेकार है। वाल अवस्था अज्ञानीकी अवस्था है श्रीर मध्यदशा अनेक रोग संकटोंसे भरी हुई है। उसमे कितने भेग भोगे जा सकेंगे <sup>१</sup> पर यह जीव ऋपनी हीरा सी पर्याय व्यर्थ ही खो देता है। जिस प्रकार वातकी व्याधिसे मनुष्यके श्रङ्ग श्रङ्ग दुखने लगते हैं। कषायसे-विपयेच्छासे इसकी आत्माका प्रत्येक प्रदेश दुखी हो रहा है। यह दूसरे पदार्थको जब तक अपना सममता है तभी तक उसे अपनाये रहता है। उसकी रक्षा आदिमे व्यय रहता है पर ज्यो ही उसे परमें परकीय बुद्धि हो जाती है, उसका त्याग करनेमें उसे देर नहीं लगती। एक बार एक धोबीके यहाँ दो मनुष्यों-ने कपड़े घुलानेको दिये। दोनोंके कपड़े एक समान थे, धोबी भूल गया, वह बदल कर दूसरेका कपड़ा दूसरेको दे आया। एक खास परीक्षा किये बिना दुपट्टाको अपना समभ ओढ़ कर सो गया पर दूसरेने परीचा की तो उसे अपना दुपट्टा वदला हुआ माळ्म हुआ। उसने घोवीसे कहा। घोवीने गलती स्वीकार कर उसका कारण वतलाया और मटसे उस सोते हुए मनुष्यके दुपट्टेका अंचल

खींच कर कहा—जरा जागिये, श्रापका कपड़ा वदल गया है। श्रापका यह है वह मुमे दीजिये। घोवीके कहने पर ज्यों ही उसने लच्चण मिलाये त्यों ही उसे उसकी वात ठीक जंची। श्रव उसे उस दुपट्टे से, जिसे वह श्रपना समम मुँह पर डाले हुए था, घृणा होने लगी और तत्काल उसने उसे घोवीको वापिस कर दिया। श्रापके शुद्ध चैतन्य भावको छोड़कर सभी तो श्रापमे पर पदार्थ हैं परन्तु श्राप नींदमे मस्त हो उन्हें श्रपना समम रहे हैं। स्वपरस्वरूपो-पादानापोहनके द्वारा श्रपनेको श्रपना सममो और पर को पर। फिर कल्याण तुम्हारा निश्चित है।

श्राप लोग कल्याएके अर्थ सही प्रयाए तो करना नहीं चाहते श्रीर कल्याणकी इच्छा करते हैं सो कैसे हो सकता है ? जैनधर्म यह तो मानता नहीं है कि किसीके वरदानसे किसीका कल्याण हो जाता है। यहाँ तो कल्यागाके इच्छुक जनको प्रयत स्वयं करना होगा। कल्याण कल्याणके ही मार्गसे होगा। मुक्ते एक कहानी याद आती है। वह यह कि एक वार महादेवजीने अपने भक्तपर प्रसन्न होकर कहा—बोल तूँ क्या चाहता है ? उसके लडका नहीं था अतः उसने लड़का ही माँगा। महादेवजीने 'तथास्तु' कह दिया। घर त्रानेपर उसने स्त्रीसे कहा—श्राज सब काम वन गया, साचात् महादेवजीने वरदान दे दिया कि तेरे लड़का हो जायगा। भगवान्के वचन तो भूठ होते नहीं। श्रव कोई पाप क्यों किया जाय ? हम दोनो ब्रह्मचर्यसे रहे। स्त्रीने पतिकी वात मान ली पर ब्रह्मचारीके सन्तान कहाँ ? वर्षोंपर वर्षे व्यतीत होगईं परन्तु सन्तान नहीं। स्त्रीने कहा भगवान्ने तुम्हे घोखा दिया। पुरुष वेचारा लाचार था। वह फिर महादेवजीके पास पहुँचा श्रीर वोला भगवन्। दुनिया भूठ बोले सो तो ठीक है पर श्राप भी भूठ बोलने लगे। आपको वरदान दिखे १२ वर्ष होगये पर आजतक लड़का नहीं

हुआ, ठगनेके लिये में ही मिला। महादेवजीने कहा—तुमने लड़का पानेके लिये क्या किया? पुरुषने कहा—हम लोग तो आपके वरदानका भरोसाकर ब्रह्मचर्यसे रहे। महादेवजीने हॅसकर कहा—भाई! मेने वरदान दिया था सो सच दिया था पर लड़का लड़केके रास्ते होगा। ब्रह्मचारीके संतान कैसे होगी? तू ही वता, में आकाशसे तो गिरा नहीं देता। ऐसा ही हाल हम लोगोंका है, कल्याण कल्याणके मार्गसे ही होगा।

यह मोह दुखदायी हैं—शास्त्रोंमें लिखा है, श्राचार्योने कहा है, हम भी कहते हैं पर वह भूठा तो है ही नहीं। प्रयत्न जो हमारे श्रधूरे होते हैं। पूज्यपाद स्वामी समाधितन्त्रमे कहते हैं कि—

> यन्मया हश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा। यण्जानाति न तद् हश्यं केन साकं ब्रवीम्यहम्॥

जो दिखता है वह जानता नहीं है श्रोर जो जानता है वह दिखता नहीं फिर मैं किसके साथ वातचीत करूं ? श्रथीत किसी के साथ वोलना नहीं चाहिये यह श्रात्माका कर्तव्य है। वे ऐसा लिखते हैं पर स्वयं बोलते हैं, स्वयं दूसरोंको ऐसा करनेका उपदेश देते हैं। तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन श्रापने सुना। उसकी भूमकामे उसके वननेके दो तीन कारण वतलाये हैं पर राजवार्तिकमे श्रवलंकदेवने जो लिखा है वह बहुत ही श्राह्य है। वे लिखते हैं कि इस सूत्रकी रचनामें गुरु-शिष्यका सम्बन्ध श्रपेचित नहीं है किन्तु श्रनन्त संसारमे निमज्ज जीवोंका श्रम्युद्धार करनेकी इच्छासे प्रेरित हो श्राचार्यने स्वयं वैसा प्रयास किया है। कहनेका तात्पर्य है कि मोह चाहे छोटा हो चाहे वड़ा, किसीको नहीं छोड़ता। भगवान ऋषभदेव तो युगके महान पुरुष थे पर उन्होंने भी मोहके उदयमें श्रपनी श्रायुके ८३ लाख पूर्व विता दिये। श्राखिर, इन्द्रका इस श्रोर ध्यान

गया कि १८ कोड़ाकोड़ी सागरके वाद इस महापुरुषका जन्म हुआ और यह सामान्य जीवोंकी तरह संसारमें फॅस रहा है, खियों और पुत्रोंके स्नेहमें डूव रहा है, संसारके प्राणियोंका कल्याण कैसे होगा ? उसने यह सोच कर नील जनाके नृत्यका आयोजन किया और उस निमित्तसे भगवान्का मोह दूर हुआ। जब मोह दूर हुआ तब ही उनका और उनके द्वारा अनन्त संसारी प्राणियोंका कल्याण हुआ। रामचन्द्रजी सीताके स्नेहमें कितने भटके, लड़ाई लडी, अनेकोंका संहार किया पर जब स्नेह दूर हो गया तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने कितना प्रयत्न किया उन्हें तपसे विचलित करनेका। पर क्या वह विचलित हुए ? मोह ही संसारका कारण है मेरा यही अटल श्रद्धान है।

हम मोहके कारण ही अपने आपको दुनियाँका कर्ता-धर्ता मानते हैं पर यथार्थमे पूँछो तो कौन कहाँका १ कहाँकी स्त्री १ कहाँका पुत्र १ कौन किसको अपनी इच्छानुसार परिणमा सकता है। 'कहींकी ईट कहीका रोरा भानमतीने कुरमा जोड़ा' ठीक हम लोग भी भानमतीके समान ही कुरमा जोड़ रहे हैं। नहीं तो कहाँका मनुष्य, कहाँका क्या १ इसलिए जो संसारके वन्धनसे छूटना चाहते हैं उन्हें मोहको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। आप लोग विना कुछ किये कल्याण चाहते हो पर वह उस तरह होनेका नहीं। आपका हाल ऐसा है कि 'अम्मा मैं तैरना सीख्ना पर पानीका स्पर्श नहीं कहाँगा'।

मार्ववका श्रर्थ कोमलता है। कोमलतामें श्रनेक गुण वृद्धि पाते हैं। यदि कठोर जमीनमे बीज ढाला जाय तो व्यर्थ चला जायगा। पानीकी वारिसमें जो जमीन कोमल हो जाती है उसीमे बीज जमता है। वच्चोंको प्रारम्भमे पढ़ाया जाता है—

विद्या ददाति विनय विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धमें ततः सुखम्॥

निद्या विनयको देती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रतासे धन सिलता है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है। जिसने अपने हृदयमे विनय धारण नहीं किया वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है ? विनयी छात्रपर गुरुका इतना आकर्षण रहता है कि वह उसे एक साथ सव कुछ वतलानेको तैयार रहता है।

एक स्थानपर एक पण्डितजी रहते थे। पहले गुरुओं के घरपर ही छात्र रहा करते थे तथा गुरु उनपर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। पण्डितजीका एक छात्रपर विशेष स्नेह था, पण्डितानी उनको बार वार कहा करती कि सभी लड़के तो आपकी विनय करते हैं, आपको मानते हैं फिर आप इसी एककी क्यों प्रशंसा करते हैं। पण्डितजी ने कहा कि इस जैसा कोई मुफे नहीं चाहता। यदि तुम इसकी परीचा ही करना चाहती हो तो मेरे पास बैठ जाओ। आमका सीजन था, गुरुने अपने हाथपर एक पट्टीके भीतर आम वाँध लिया। और दुखी जैसी सूरत बनाकर कराहने लगे। समस्त छात्र गुरुजीके पास दोंडे आये। गुरुने कहा दुर्भीग्य वश भारी फोड़ा हो गया

है। छात्रोंने कहा मैं अभी वैद्य लाता हूँ, ठीक हो जावेगा। गुरूने कहा वेटो ! यह वैद्यसे अच्छा नहीं होता—एक वार पहले भी मुफे हुआ था। तब मेरे पिताने इसे चूसकर अच्छा किया था, यह चूसने ही से अच्छा हो सकता है। मवादसे भरा फोड़ा कौन चूसे ? सव ठिठक कर रह गये। इतनेमे वह छात्र आ गया जिसकी गुरु वहुंत प्रशंसा किया करते थे। आकर बोला—गुरु जी क्या कष्ट है ? वेटा ! फोड़ा है, चूसनेसे ही अच्छा होगा…गुरु ने कहा। गुरुजीके कहनेकी देर थी कि उस छात्रने उसे अपने मुंहमें ले लिया। फोड़ा तो था ही नहीं आम था। पण्डितानीको अपने पतिके वचनोंपर विश्वास हुं त्रा। त्राजका छात्र तो गुरुको नौकर समम उसका वहुंत ही अनादर करता है। यही कारण है कि उसके हृदयमे विद्याका वास्तविक प्रवेश नहीं हो रहा है। क्या कहे आजकी वात ? आज तो विनय रह ही नहीं गया। सभी अपने आपको बड़ेसे वड़ा अतु-भव करते हैं। मेरा मान नहीं चला जाय इसकी फिकरमे सब पड़े हैं पर इस तरह किसका मान रहा है ? श्राप किसीको हाथ जोड़कर या शिर भुकाकर उसका उपकार नहीं करते विक अपने हृदयसे मान रूपी शत्रुको हराकर श्रपने श्रापका उपकार करते हैं। किसीने किसीकी वात मान ली, उसे हाथ जोड़ लिये, शिर भुका दिया उतने से ही वह खुश हो जाता है और कहता है कि इसने हमारा मान रख लिया। अरे मान रख क्या लिया? अपि तो खो दिया। श्रापके हृदयमे जो ऋहंकार था उसने उसे श्रपनी शारीरिक क्रियासे दूर कर दिया ?

दिल्लीमे पद्म कल्याएक हुआ था। पद्मकल्याएक ने वाद लाइ वाँटनेकी पृथा वहाँ थी। लाला हरसुखरायजीने नौकरके हाथ सबके घर लाइ मेजा, लोगोंने सानन्द लाइ ले लिया पर एक गरीव आदमीने जो चना गुड़ आदिकी दुकान किये था यह विचार कर लाड़ लेना श्रस्तीकृत कर दिया कि मैं कभी लालाजीको पानी नही पिला सकता तब उनके लाड़का व्यवहार कैसे पूर्ण कर सकूँ गा? शामके समय जब लालाजीको पता चला तो दूसरे दिन वे स्वयं लाड़ लेकर नौकरके साथ गाड़ीपर सवार हो उसकी दूकानपर पहुँचे श्रौर बड़ी विनयसे दूकानपर वैठकर उसकी डालीमेंसे कुछ चने श्रौर गुड़ उठाकर खाने लगे। खानेके बाद बोले लाश्रो पानी पिलाश्रो। पानी पिया, तदनन्तर बोले कि भाई श्रव तो मैं तुम्हारा पानी पी चुका श्रव तो तुम्हे हमारा लाड़ लेना श्रस्त्रीकृत नहीं करना चाहिये। दूकानदार श्रपने व्यवहार श्रौर लालाजीकी सौजन्यपूर्ण प्रवृत्तिसे दुझ रह गया। लाडू लिया श्रौर श्राँखोंसे श्राँस् गिराने लगा कि इनकी महत्ता तो देखों कि मुक्त जैसे तुच्छ व्यक्तिको भी ये नहीं भुला सके। श्राजका बड़ा श्रादमी क्या कभी किसी गरीबका इस प्रकार ध्यान रख सकता है ?

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरकी सुन्दरता इन आठ बातोंको लेकर मनुष्य गर्व करता है पर जिनका वह गर्व करता है वया वे इसकी हैं ? सदा इसके पास रहनेवाली हैं ? चायोपशिमक ज्ञान आज है, कल इन्द्रियोंमें विकार आ जानेसे नष्ट हो जाता है। जहाँ चक्रवर्तीकी भी पूजा स्थिर नहीं रह सकी वहाँ अन्य लोगोंकी पूजा स्थिर रह सकेगी यह सम्भव नहीं है। कुल और जातिका अहङ्कार क्या है ? सबकी खान निगोद राशि है। आज कोई कितना ही बड़ा क्यों न बना हो पर निश्चित है कि वह किसी न किसी समय निगोदसे ही निकला है। उसका मूल निवास निगोदमें ही था। बलका अहंकार क्या ? आज शरीर तगड़ा है पर जोरका मलेरिया आ जाय तथा चार छह लॅघनें हो जावें तो सूरत बदल जाय, उठते न बने। धन सम्पदाका अभिमान थोता अभिमान है, मनुष्यकी सम्पत्त जाते देर नहीं लगती। इसी

अकार तप और शरीरके सौन्दर्यका अभिमान करना व्यर्थ है।

कलके दिन प्रथमाध्यायमे आपने सम्यग्दर्शनका वर्णन सुना था। जिस प्रकार अन्य लोगोंके यहाँ ईश्वर या खुदाका माहात्म्य है वैसा ही जैनधर्ममे सम्यग्दर्शनका माहात्म्य है। सम्यग्दर्शनका श्रार्थ श्रात्मलव्धि है। श्रात्मीक स्वरूपका ठीक ठीक वाध हा जाना आत्मलिट्ध कहलाती हैं। आत्मलिट्धके सामने सब सुख धूल हैं। सम्यग्दर्शनसे आत्माका महान् गुण जागृत होता है, विवेक शक्ति जागृत होती है। आज कल लोग हर एक वातमे 'क्यों ? क्यों ?' करने लगते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि उनमे श्रद्धा नहीं है। श्रद्धाके न होनेसे ही हर एक वातमें कुतक उठा करते हैं। एक आदमीको 'क्यों' का रोग हो गया। उससे वेचारा वडा परेशान हुआ। पूछने पर किसी भले आदमीने सलाह दी कि तू इसे किसी को वेच डाल, भले ही सौ पचास लग जाँय। वीमार श्राद्मी इस विचारमे पड़ा कि यह रोग किसे वेचा जाय १ किसीने सलाह दी कि स्कूलके लड़के वड़े चालाक होते हैं, ५०) देकर किसी लड़केको बेच दे। उसने ऐसा ही किया। एक लड़केने ५०) लेकर उसका वह रोग ले लिया। सव लड़कोंने मिल कर ५० की मिठाई खाई। जब लड़का मास्टरके सामने गया श्रौर मास्टरने पूछा कि कलका सबक सुनान्त्रो, तव लड़का बोला—क्यो १ मास्टरने कान पकड़ कर लड़केको वाहर निकाल दिया। लडका सममा कि 'क्यों' का रोग तो वड़ा खराव है, वह उसका वापिस कर आया। अवकी वार उसने सोचा कि चलो अस्पतालके किसी मरीजको वेच दिया जाय तो अच्छा है। ये लोग तो पलंग पर पड़े पड़े आनन्द करते ही हैं। ऐसा ही किया, एक मरीज़को वेच आया। दूमरे दिन डाक्टर श्राये । पूछा—तुम्हारा क्या हाल है १ मरीजने कहा— चयों ? डाक्टरने उसे अस्पतालसे वाहर कर दिया। उसने भी

सममा कि दर श्रसल यह रोग तो वड़ा खराव है। वह भी वापिस कर श्राया। श्रवकी बार उसने सोचा कि श्रदालती श्रादमी बड़े टंच होते हैं, उन्होंको वेचा जाय। निदान, एक श्रादमीको वेच दिया। वह मजिष्ट्रेटके सामने गया। मजिष्ट्रेटने कहा कि तुम्हारी नालिशका ठीक ठीक मतलव क्या है श्रादमीने कहा—क्यों श्रमजिष्ट्रेटने मुकदमा खारिज कर कहा कि घरकी रह लो। "यह तो कहानी है पर विचार कर देखा जाय तो हर एक बातमे कुतर्कसे काम नहीं चलता। युक्तिके बलसे सभी बातोका निर्णय नहीं किया जा सकता। कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनका श्रागमसे निर्णय होता है श्रौर कितनी ही बातें ऐसी हैं जिनका युक्तिसे निर्णय होता है। यदि श्रापको धर्ममे श्रद्धा न होती तो हजारोंकी संख्यामें क्यों श्राते ?

श्राचार्योंने सबसे पहले यही कहा कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोचमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्हान श्रोर
सम्यक्चारित्रकी एकता ही मोचका मार्ग हैं। श्राचार्यकी करुणा
बुद्धि तो देखो। श्ररे, मोच तो तब हो जब पहले बन्ध हो। यहाँ
पहले बन्धका मार्ग बतलाना था फिर मोचका परन्तु उन्होंने मोचमार्गका पहले वर्णन किया है। उसका कारण यही है कि ये प्राणी
श्रनादिकालसे वन्ध जनित दुःखका श्रनुभव करते करते घवड़ा
गये हैं श्रतः पहले इन्हें मोचका मार्ग बतलाना चाहिये। जैसे जो
कारागारमें पड़ कर दुःखी होता है वह यह नहीं जानना चाहता है
कि मैं कारागारमें क्यों पड़ा १ वह तो यह जानना चाहता है कि
मैं इस कारागारसे छूटू कैसे १ यही सोच कर श्राचार्यने पहले
मोचका मार्ग बतलाया है। सम्यग्दर्शनके रहनेसे विदेक शक्ति
सदा जागृत रहती है। वह विपत्तिमें पड़ने पर भी 'कभी श्रन्यायको
न्याय नहीं समभता। ग्रामचन्द्रजी सीताको छुडानेके लिये लङ्का

गये थे। लंकाके चारों श्रोर उनका कटक पड़ा था। हन्मान् श्रादिने रामचन्द्रजीको खबर दी कि रावण जिनमन्दिरमें बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि उसे यह विद्या सिद्ध हो गई तो फिर वह श्रजेय हो जायगा। श्राज्ञा दीजिये कि जिससे हम लोग उसकी विद्यासिद्धिमें विद्य करें। रामचन्द्रजीने कहा कि हम चित्रय हैं, कोई धर्म करें श्रोर हम उसमें विद्य ढालें यह हमारा कर्तव्य नहीं है। सीता फिर दुर्लम हो जायगी यह हनुमानने कहा। रामचन्द्रजीने जोरदार शब्दोंमें उत्तर दिया—हो जाय, एक सीता नहीं दशों सीताएँ दुर्लम हो जाँय पर में श्रन्याय करने की श्राज्ञा नहीं दे सकता। रामचन्द्रजीमें जो इतना विवेक था उसका कारण क्या था ? कारण था उनका सम्यग्दर्शन—विशुद्ध चायिक सम्यग्दर्शन।

सीताको तीर्थयात्राकं वहाने कृतान्तवक्र सेनापित जंगलमें छोड़ने गया। क्या उसका हृदय वैसा करना चाहता था ? नहीं, वह तो स्वामीकी परतन्त्रतासे गया था। उस वक्त कृतान्तवक्रको अपनी पराधीनता काफी खली। जब वह निर्दोष सीताको जंगलमे छोड़ अपने अपराधकी चमा माँग वापिस आने लगा तब सीता उससे कहती है—सेनापते! मेरा एक संदेश उनसे कह देना। वह यह कि जिस प्रकार लोकापवादके भयसे आपने मुक्ते त्यागा है इस प्रकार लोकापवादके भयसे जैनधर्मको नहीं छोड़ देना। उस निराधित अपमानित छीको इतना विवेक बना रहा। इसका कारण क्या था श उसका सम्यग्दर्शन। आज कलकी छी होती तो पचास गालियाँ सुनाती और अपने समानताके अधिकार बनाती। इतना ही नहीं, सीता जब नारदजीके आयोजन द्वारा लवणांकुराके साथ अयोग्या आती है। एक वीरता पूर्ण युद्धके वाद पिता-पुत्रका मिलाप होना औ, सीता लज्जासे भरी हुई राज दरवारमे पहुँचती हैं। उसे देखरर

रामचन्द्रजी कह उठते हैं कि दुष्टे ! तू विना शपथ दिये—विना परीचा दिये यहाँ कहाँ ? तुमें लज्जा नहीं आई ? सीताने विवेक श्रोर धेर्यके साथ उत्तर दिया कि मे समभी थी कि श्रापका हृदय कोमल है पर क्या कहूं १ स्त्राप मेरी जिस प्रकार चाहे शपथ ले लें। रामचन्द्रजीने उत्तेजनामें आकर कह दिया कि अन्छा अग्निमे कूद कर श्रपनी सचाईकी परीचा दो। बड़े भारी जलते हुए श्राग्न कुण्डमे कृदनेके लिये सीता तैयार हुई। रामचन्द्रजी लदमणसे कहते हैं कि सीता जल न जाय । लच्मणने कुछ रोपपूर्ण शन्दोंमें उत्तर दिया कि यह त्राज्ञा देते समय न सोचा ? यह सती है, निर्दोष हैं। त्राज त्राप इसके त्रखण्ड शीलकी महिमा देखिये। इसी समय दो देव केवलीकी वन्दनासे लौट रहे थे। उनका ध्यान सीताका उपसर्ग दूर करनेकी श्रोर गया। सीता श्रग्न कुण्डमें कूद पड़ी और कूदते ही साथ जो अतिशय हुंआ सो सब जानते हो। सीताके चित्तमें रामचन्द्रजीके कठोर शब्द सुन कर संसारसे वैराग्य हो चुका था पर 'निःशल्यो व्रती' व्रतीको निःशल्य होना चाहिये। यदि विना परीचा दिये मैं व्रत लेती हूं तो यह शल्य निरन्तर वनी रहेगी। इसलिये उसने दीचा लेनेसे पहले परीचा देना श्रावश्यक सममा था। परीचामें वह पास हो गई, रामचन्द्रजी उससे कहते हैं-देवि ! घर चलो । अव तक हमारा स्नेह हृद्यमे था पर श्रव श्राँखोंमे श्रा गया है। सीताने नीरस स्वरमें कहा-

व्यक्ति सीता सुन रामचन्द्र संसार महादु ख वृद्धकंद। सम्बाद स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त स्वाप

रामचन्द्रजी ! यह घर दुखरूपी वृत्तकी जड़ है । श्रव मैं इसमें न रहूंगी । सन्ना सुख इसके त्यागमें ही है । रामचन्द्रजी ने वहत कुछ कहा—यदि मैं श्रपराधी हूं तो लद्दमणकी श्रोर देखों, यदि यह भी अपराधी है तो अपने वच्चों लवणांकुशकी ओर देखों और एक वार पुनः घरमें प्रवेश करों। परन्तु सीता अपनी हड़तासे च्युत नहीं हुई। उसने उसी वक्त केश उखाड़ कर रामचन्द्रजीके सामने फेंक दिये और जङ्गलमे जाकर आर्या हो गई। यह सब काम सम्यग्दर्शनका है। यदि उसे अपने कर्मपर, भाग्यपर विश्वास न होता तो वह क्या यह सब कार्य कर सकती?

श्रव रामचन्द्रजीका विवेक देखिये। जो रामचन्द्र सीताके पीछे पागल हो रहे थे, वृत्तोंसे पूंछते थे—क्या तुमन मेरी सीता देखी हैं १ वही जब तपश्चर्यामे लीन थे तब सीताके जीव प्रतीन्द्रने दिनने उपसर्ग किये पर वह श्रपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। शुक्ल ध्यान धारणकर केवली श्रवस्थाको प्राप्त हुए।

सम्यग्दर्शनसे आत्मामें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तित्य गुण प्रकट होते हैं जो सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यदि आपमें ये गुण प्रकट हुए हैं तो समम लो हम सम्यग्दिष्ट हैं। कोई क्या वतलायगा कि तुम सम्यग्दिष्ट हो या मिथ्यादृष्टि श्रि अपत्याद्याना-वरणी कपायका संस्कार छह माहसे ज्यादा नहीं चलता। यदि आपकी किसीसे लड़ाई होनेपर छह माहसे अधिक कालतक बात्मा लेनेकी भावना रहती है तो समम लो कि अभी हम मिथ्यादृष्टि हैं। कपायके असंख्यात लोकप्रमाण स्थान हैं। उनमें मनका स्वत्यमें ही शिथिल हो जाना प्रशम गुण है। मिथ्यादृष्टि अस्थामें अस् जीवकी विषय कपायमें जैसी स्वच्छन्द प्रशृत्ति होती है वैभी मन्य-ग्दर्शन होनेपर नहीं होती। यह दूसरी बात है कि चारित्रमें। के एवससे यह उसे छोड़ नहीं मक्ता हो पर प्रशृत्तिमें शैथिल्य प्रश्वा आ जाता है। प्रशमका एक अर्थ यह भी है तो पूर्वनी प्रवेगा अधिक प्राह्य है। वह यह कि सराः हनापनाय जीवेदन भी हैं। उत्पन्न नहीं होना प्रशम यहलाता है। बहुक्षिण्णी दिशा मिद्ध का समय रामचन्द्रजीने रावणपर जो रोप नहीं किया था वह इसका **उत्तम उदाहरण है। प्रशम गुण तव तक नहीं हो सकता जव तक** श्रनन्तानुवन्थी क्रोध विद्यमान रहता है। उसके छूटते ही प्रशम गुए प्रकट हो जाता है। क्रोध ही क्यों अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी मान माया लोभ सभी कपाय प्रशमगुराके घातक हैं। संसारसे भय ज्त्पन्न होना संवेग है। विवेकी मनुष्य जब चतुर्गतिरूप ससारके द्रःखोंका चिन्तन करता है तव उमकी श्रात्मा भयभीत होजाती है तया दुःखके कारणोंसे निवृत्त होजाती है। दुःखी सनुष्यको देखकर हृद्यमें कम्पन उत्पन्न हो जाना अनुकम्पा है। मिथ्यादृष्टिकी अनु-कम्पा त्रौर सम्यग्दृष्टिकी त्रमुकम्पामे त्रम्तर होता है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य जय किसी श्रात्माको कोधादि कपायोंसे श्रमिभूत तथा भोगासक्त देखता है तव उसके मनमे करुणाभाव उत्पन्न होता है कि देखो वेचारा कपायके भारसे कितना दव रहा है ? इसका कल्याण किस प्रकार हो सकेगा ? आप्त व्रत श्रुत तत्त्वपर तथा लोक श्रादि पर श्रद्धापृर्ण भावका होना श्रास्तिक्य भाव है। ये गुण सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यद्यपि मिथ्यात्वकी मन्दतामे भी ये हो जाते हैं तथापि वे यथार्थ गुण नहीं किन्तु गुणाभास कहलाते हैं।

: 3:

श्राज श्राजीव धर्म है। श्राजीवका श्रर्थ सरलता है श्रीर सरलता-के मायने मन वचन कायकी एकता है। मनमें जो विचार श्राया हो उसे वचनसे कहा जाय श्रौर जो वचनसे कहा जाय उसीके २३

त्रमुसार कायसे प्रवृत्ति की जाय l जव इन तीनों योगोंकी प्रवृत्तिमे विषमता त्र्या जाती है तव माया कहलाने लगती है। यह माया शल्यकी तरह हृदयमें सदा चुभती रहती है। इसके रहते हुए मनुज्य-के हृद्यमें स्थिरता नहीं रहती श्रीर स्थिरताके श्रभावमे उसका कोई भी कार्य यथार्थरूपमें सिद्ध नहीं हो पाता।

मान श्रौर लोभके वीचमें मोयाका पाठ श्राया है सो उसका कारण यह है कि माया मान श्रीर लोभ—दोनोंके साथ संपर्क रखती है। दोनोंसे उसकी उत्पत्ति होती है। मानके निमित्तसे मनुष्यको यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरे वड़प्पनमें कोई प्रकारकी कमी न त्रा जाय परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे वड़प्पनका कार्य करनेम असमर्थ रहता है इसलिये मायाचाररूपी प्रवृत्ति कर अपनी हार्दिक कमज़ोरीको छिपाये रखता है। मनुष्य जिस रूपमें वस्तुतः है उसी रूपमे उसे अपने आपको प्रगट करना चाहिये। इसके विपरीत जब वह अपनी दुवलताको छिपाकर वड़ा वननेका प्रयत्न करता है तय मायाकी परिणित उसके सामने त्राती है। यही दम्भ है, माया है। जिनागम तो यह कहता है कि जितनी शक्ति हो उतना कार्य करो श्रीर श्रपने श्रसली रूपमे प्रकट होश्रो। लोभके वशीभूत होकर जीव नाना प्रकारके कष्ट भोगता है तथा उच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये निरन्तर अध्यवसाय करता है। वह तरह-तरहकी छल-जुड़ताओं को करता है। मोहकी महिमा विचित्र है। स्रापने पद्मपुराणमे त्रिलोकमण्डन हाथीके पूर्व भव श्रवण किये होंगे। एक मुनिन एक स्थानपर मासोपवास किये। व्रत पूर्ण होनेपर वे तो कहीं ग्रन्यव विहार कर गये पर उनके स्थानपर अन्यत्रसे विहार करते हुए दूनरे मुनि त्रा गये। नगरके लोग उन्हें ही मासोपवासी मुनि ममफ उनकी प्रभावना करने लगे पर उन आगन्तुक मुनिको यह भार नहीं हुआ कि कह दें—में मासोपवासी नहीं हैं। महान न होन्य भी महान् वननेकी श्राकां चाने उनकी श्रात्माको मायाचारसे भर दिया श्रोर उसका परिणाम क्या हुत्रा सो श्राप जानते हैं। मनुष्य अपने पापको छिपानका प्रयत्न करता है पर वह रुईमे लपेटी श्रागके समान स्त्रयमेत्र प्रकट हो जाता है। किसीका जल्दी प्रकट हो जाता है श्रीर किसीका विलम्बसे पर यह निश्चित हे कि प्रकट श्रवश्य होता है। पापके प्रकट होनेपर मनुष्यका सारा वड़प्पन समाप्त हो जाता है श्रीर छिपानेके कारण संक्लेश रूप परीणामोंसे जो खोंटे कर्मोंका श्रास्त्रत करता रहा उसका फल व्यथ ही भोगना पड़ता है। बाँसकी जड़, मेढ़ेके सींग, गोमूत्र तथा खुरपीके समान माया चार प्रकारकी होती है। यह चारों प्रकारकी माया दुःखदायी है। मायाचारी मनुष्यका कोई विश्वास नहीं रखता श्रौर विश्वासके न होनेसे उसे जीवन भर कष्ट उठाना पड़ते हैं। जब कि सरल मनुष्य इसके विरुद्ध श्रनेक सम्पत्तियोंका स्वामी होता है। श्रापने पूजामे पढ़ा होगा—

कपट न कीजे कोय चोरनके पुर ना बसै। सरल स्वभावी होय ताके घर वहु सम्पदा॥

श्रांत किसीको कपट नहीं करना चाहिये क्योंकि चोरोंके कभी गाँव वसे नहीं देखे गये। जीवन भर चोर चोरी करते हैं पर अन्त- में उन्हें कफनके लिये परमुखापेची होना पड़ता है। इसके त्रिपरीत सरल मनुष्य अधिक सम्पत्तिशाली होता है। मायासे मनुष्यकी सब मुजनता नष्ट हो जाती है। मायाबी मनुष्य ऐसी मुद्रा बनाता है कि देखनेमें बड़ा भद्र माळ्म होता है पर उसका अन्तःकरण अत्यन्त कलुषित रहता है। वनत्रासके समय जब रामचन्द्रजी पम्पा सरो- वरके किनारे पहुँचे तब एक बगला बड़ी शान्त मुद्रामें बैठा था। उसे देख रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे कहते हैं कि लक्ष्मण। देखों

कैसा शान्त तपस्वी वैठा है ? उसी समय एक मच्छकी आवाज आती है कि महाराज ! इसकी शान्त वृत्तिका हाल तो मुक्तसे पूछिये। फहनेका वात्पर्य यह है कि मनुष्य येन केन प्रकारेण अपना ऐहिक प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं पर पारलौकिक प्रयोजनकी ओर उनकी दृष्टि नहीं है। सौंप लहराता हुँ आ चलता है पर वह जब अपने विलमें घुसने लगता है तब उसे सीधा ही चलना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्य जब स्वरूपमें लीन होना चाहता है तब उसे सरल व्यवहार ही करना पड़ता है। सरल व्यवहार विना स्वस्व-भावमें स्थिरता कहाँ हो सकती हैं ?

जहाँपर स्वस्वभावरूप परिखमन है वहाँ पर कपटमच व्यवहार नहीं और जहाँ कपट व्यवहार है वहाँ स्वस्वभाव परिएामनमे विनार है। इसीसे इसको विभाव कहते हैं। विभाव ही संसारका करण है। प्रायः संसारमे प्रत्येक मनुष्यकी यह श्रमिलापा रहती है कि में लोगोंके द्वारा प्रशंसा पाऊं—लोग मुक्ते श्रन्द्वा सममें नही भाव जीवके दुःखके कारण हैं। ये भाव जिनके नहीं होते वे ही हजन हैं। उनके जो भी भाव होते हैं वे ही सुम्यभाव वहलाने हैं। जिन जीवोंके अपने कपाय पोपणके परिणाम नहीं वही मुजन हैं। उनकी जो परिगति है वही सुजनता है। यहाँ तक उननी निर्मल परिग्लि होजाती है कि वे परोपकाराटि करके भी अपनी प्रशंसा नरी चाहरें-किसी कार्यके कर्ना नहीं बनते। मेरा तो विस्यान है कि एसे गराव पुरुष पुण्यको बन्यका स्त्ररण मह मते हैं। बाँव उसे बन्यस्त नगर न नममते नो उनके वर्त त्यको क्यों न श्वमनाने ? वं पर्मी एवं विषयादि कार्य भी बलान करते हैं परस्तु उसमें जिए रहते हैं। जो पुण्य बार्य करनेमें भी उनेक्षा रुग्ने हैं वे पाप नार्य स्परीत प्रोत्त कीं यह दृदिमें नहीं खाला। मुझन मनुष्यकी नेता खनाए हैं। उनवा तो भी बार्व है वह सर्वादमें शून है। इसीमें ने सेरिस

सुखो श्रौर दुःखके होनेपर हर्ष श्रौर विषाद भावके पात्र नहीं होते। वे उन कार्योंको कर्मकृत जान उनसे उपेचित रहते हैं। वे जो दानादि करते हैं उनमे भी उनके प्रशंसादिके भाव नहीं होते। यही कारण है कि वे श्रल्प कालमे संसारके दुःखोंसे वच जाते हैं।

सुजनताकी गन्ध भी मनुष्यके लग जावे तो वह ऋधर्म कार्योंसे वच जावे। वर्तमान युगमे मनुष्य प्रायः विपयलम्पटी हो गये हैं। इतसे सम्पूर्ण संसार दुःखमय हो रहा है। पहले मनुष्य विद्यार्जन इसलिये करते थे कि हम संसारके कच्टोंसे वचें तथा परको भी वचावें । हसारे संचयमे जो वस्तु हो उससे परको भी लाभ पहुँचे । पहलेके लोग ज्ञानदान द्वारा अज्ञानीको सुज्ञानी वनानेका प्रयत्न करते थे परन्तु अब तो विद्याध्ययनका लच्य परिग्रह पिशाचके श्रर्जनका रह गया है। यह वात पहले ही लच्यमें रखते हैं कि इस विद्याध्ययनके वाद हमको कितना मासिक मिलेगा <sup>१</sup> पार-लौकिक लाभका लच्य नहीं। पारचात्य विद्याका लच्य ही यह है कि विज्ञानके द्वारा ऐसे ऐसे त्राविष्कार करना जो किसी तरह द्रव्य का श्रजन हो, प्राणियोंका संहार हो, सहस्रों जीवोंका जीवन खतरे मे पड़ जावे। ऐसे आविष्कार किये जावें कि एक अणुवसके द्वारा लाखों मनुष्योंका स्त्राहा हो जाने । श्रथवा ऐसे ऐसे सिनेमा दिखाये जावें। यद्यपि कोई कोई सिनेमा भलाईके हैं तो भी वे विप मिश्रित भोजनके समान हैं। श्रस्तु, यह सव इस निकृष्ट कालकी महिमा है। इस युगमें भी कई ऐसे सुजन हैं जो इन उपद्रवासे सुरक्षित हैं छोर उन्होंके प्रतापसे आज कुछ शान्ति देखी जाती है। जिस दिन उन महात्मात्रोंका श्रभाव हो जायगा उस दिन सर्वत्र ही श्रराजकताका साम्राज्य हो जावेगा । श्राजकल प्राचीन श्रायेपद्वति के पराम्परागत नियमोंकी श्रवहेलना की जाती है श्रौर नये नये नियमोंका निर्माण किया जा रहा है। प्राचीन नियम यदि दोप

पूर्ण हों तो उन्हें त्याग दो। इसमे कोई भी आपत्ति नहीं परन्तु श्रव तो प्राचीन महात्माश्रोंकी वात सुननेसे मनुष्य उबल उठते हैं। मेरा तो विश्वास है कि परिग्रहके पिशाचसे पीड़ित श्रात्मा कितने ही जानी क्यों न हों उनके द्वारा जो भी कार्य किया जावेगा उससे कदापि साधारण मनुष्योंको लाभ नहीं पहुँच सकता क्योंकि वे स्वयं परिप्रह्से पीड़ित हैं। प्राचीन समयमें वीतराग साधुत्रोंके द्वारा संसारमात्रकी भलाईके नियम बनाये जाते थे श्रतः जिन्हें संसारके कल्याण करनेकी अभिलाषा है वे पहले स्वयं सुजन वर्ने। सुजन मायने भले मानुष। भले मानुषका ऋथे हैं जिनका आचार निर्मल हो। निर्मल आचारके द्वारा वे आत्मकल्याण भी कर सकते हैं श्रौर उनके श्राचारको देखकर संसारी मनुष्य स्त्रयं क्ल्याण कर सकता है। यदि पिता सदाचारी है तो उसकी संतान स्वयं सदाचारी वन जाती है। यदि पिता वीड़ी पीता है तो वेटा सिगरेट पीवेगा और पिता भंग पीता है तो वेटा मिटरा पान करेगा इसलिए निर्मल स्राचारके धारक सुजन वनो तथा निरहल प्रवृति करो।

श्रापने तृतीयाध्यायमे नरक लोकका वर्णन सुना, वहाँके स्वाभाविक तथा परकृत दुःखोंका जब ध्यान श्राता है तब शरीरमें रोमाञ्च उठ श्राते हैं। हृद्यमें विचार करों कि इन दुःखोंका मूल कारण क्या है । इन दुःखोंका मूल कारण मिध्यात्वकी प्रवलता है। मिध्यात्वकी प्रवलतासे यह जीव श्रपने स्वभावसे च्युत हो पर पदार्थोंको सुखका कारण मानने लगता है इसीलिये परिप्रहमें तथा उसके उपार्जनमें इसकी श्रासक्ति वढ़ जाती है श्रीर यह परिप्रह तथा श्रारम्भ सम्बन्धी श्रासक्ति ही इस जीवको नरक है दुःखोंको पात्र वना देती हैं। नरक गतिमें यह जीव दश हजार वर्णसे लेकर तेतीस सागर तक विद्यमान रहता है। वहाँसे श्रसमयमें निकलना

भी नहीं होता अर्थात् जो जीव जितनी आयु लेकर नरकमे जहाँ पहुँचता है उसे वहाँ उतनी आयु तक रहना ही पड़ता है। नरक दुःखका कारण है परन्तु वहाँ भी यदि किन्हीं जीवोंकी काललिध आजाती है तो वे सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं। सम्यग्दृष्टि वनते ही उनकी अन्तरातमा आत्मसुखका स्वाद लेने लगती है।

चिन्मूरित दृग्वारीकी मोहि रीति लगत है श्रटापटी। वाहर नारक कृत दु ख भोगे श्रन्तर मुख रस गटागटी॥

सम्यग्दर्शन हो जाने पर भी नारकी वाह्यमें यद्यपि पूर्वकी भाँ ति ही दुःख भोगता है तथापि अन्तरङ्गमे उसे मोहाभाव जन्य सुखका अनुभव होने लगता है। वह सममता है कि नारिकयोंके द्वारा दिया हुआ दुःख हमारे पुराकृत कर्मोंका फल है जिसे भोगना अनिवार्य है परन्तु यह दुःख हमारा निज स्वभाव नहीं है। मेरा निज स्वभाव तो चैतन्यमूर्ति तथा अनन्त सुखका भण्डार है। मोहके कारण मेरा यह स्वभाव वर्तमानमे अन्यथा परिण्मन कर रहा है पर जब मोहका विकार आत्मासे निकल जायगा तव आत्मा निजस्वभावमे लीन हो जायगा।

सध्यम लोकके वर्णनसे यह चिन्तवन करना चाहिये कि इस लोकमे ऐसा कोई स्थान नहीं वचा जिसमें मैं अनन्त वार उपजा मरा न हो कें। धर्म रूढ़ि नहीं है प्रत्युत आत्माकी निर्मल परिणति है। कोवनमे उतारनेसे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। श्राज शोंचधर्स है। शोंचका श्रर्थ पवित्रता है। यह पवित्रता लोभ कषायके श्रभावमे प्रकट होती हैं। लोभके कारण ही संसारके यावन्मात्र प्राणी दुखी हो रहे हैं। श्राचार्य गुणभद्रने श्रात्मानुशासनमें लिखा है—

श्राशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्। कस्य किं कियदायाति चृथा वो विषयेषिता॥

अर्थात् यह आशारूपी गर्त प्रत्येक प्राणीके सामने खुदा है। ऐसा गर्त कि जिसमे समस्त संसारका वैभव परमाणुके समान है। फिर किसके भागमे कितना आवे अतः विषयोंकी वाञ्छा करना व्यर्थ है। इस आशारूपी गर्तको जैसे-जैसे भरा जाता है वैसे वैसे ही यह गहरा होता जाता है। पृथिवीके अन्य गर्त ता भर देनेसे भर जाते हैं पर यह आशागर्त भरनेसे और भी गहर हो जाता है। किसी आदमीको इजारकी आशा थी, हजार उसे मिल भी गये पर अव आशा दश हजारकी हो गई। अर्थात् श्राशारूपी गर्त पहलेसे दशगुना गहरा हो गया। भाग्यवश दश हजार भी मिल गये पर अव एक लाखकी आशा हो गई। अर्थान् श्राशागर्त पहलेसे सौ गुना गहरा हो गया। यह केवल वहनेकी वात नहीं है। इसे आप लोग रात दिन अपने जीवनमें उतार रहे हैं। तृष्णाके वशीभूत हुआ प्राणी क्या-क्या नहीं करता हैं ? वइ इष्टसे इष्ट व्यक्तिका प्राणान्त करनेमे भी पीछे नहीं हटता। आजका मानव निरन्तर 'श्रोर श्रोर' चिहाता रहता है। उसके मुखसे कभी 'वस' नहीं निकलता। विना सन्तोषके वस कैंसे निकले ?

एक समय था कि जब लड़का कार्य सम्भालने योग्य हो जाता था तब वृद्ध पिता सम्पत्तिसे मोह छोड़ दीन्ना ले लेता था पर आज वृद्ध पिता और उनके भी पिता हों तो वह भी सम्पत्तिसे मोह नहीं छोड़ना चाहता, फिर लड़का तो लड़का ही है। वह सम्पत्तिसे मोह नहीं छोड़ रहा है इसमे आख्चर्य ही क्या है ? कपड़ा बुनने-वाला कुविन्द कपड़ा बुनते अन्तिम छीरा छोड़ देता है पर हम उस अन्तिम छीरे तक बुनना चाहते हैं। इस तृष्णाका भी कभी अन्त होगा ?

लोभ मीठा शत्रु है। यह दुशम गुणस्थान तक मनुष्यका पिण्ड नहीं छोड़ता। अन्य कषाय यद्यपि उसके पहले ही नष्ट हो जाती हैं पर लोभकषाय सवसे घानत तक चलती जाती है। लोभके निमित्तसे श्रास्मामें श्रपवित्रता श्राती है। लोभसे ही समस्त पापोंमे इस प्राणीकी प्रवृत्ति होती है । त्र्याचार्योंने लोभको ही पापका वाप वतलाया है। एकवार एक श्रादमी काशी पढ़ने गया। उस समय छोटी श्रवस्थामें विवाह हो जाता था इसिलये उसका भी विवाह हो गया था। वह स्त्रीको घर छोड़ गया। ५-६ वर्ष काशीमें पढ़नेके बाद जब घर लौटा तब गाँवके लोगोंने उसका बड़ा सत्कार किया। जब वह अपनी स्त्रीके पास पहुँचा तब स्त्रीने कहा कि आप मुक्ते अकेली छोड़ काशी गये थे। अब आप मेरे एक प्रश्नका उत्तर यदि दे सकें तो मैं अपने घरके भीतर पैर रखने दूंगी, श्रन्यथा नहीं। उसने कहा कि अपना प्रश्न कहो। छीने कहा कि बताच्यो 'पापका बाप क्या है ?' अद्भुत प्रश्न सुनकर वह बहुत घवड़ाया। रामायण महाभारत भागवत आदि सव अन्थ देख डाले पर कहीं पापका वाप नहीं मिला। उसे चुप देख स्त्रीने कहा कि श्रव पुनः काशी जाउये और यह पढ़कर श्राइये। काशी बहुत दूर थी इसलिये उसने सोचा कि यदि कोई यहीं पापका

चाप चता दे तो काशी न जाना पड़े। अन्तमे वह पागलकी भौति नगरकी सड़कों पर पापका वाप क्या है ? पापका वाप क्या है ? यह चिहाता हुआ भ्रमण करने लगा । एक दिन एक वेश्याने अपने घरकी छ्परीसे उसे ऊपर वुलाया और कहा कि यहाँ आओ, पापका वाप मैं वताती हूं। वह आदमी सीढ़ियोंसे जब उपर पहुँचा तो वह वेश्या जान वड़ा दुःखी हुआ और मटसे नीचे चतरने लगा । वेश्याने कहा—महाराज । ठहरिये तो सही: श्राप जिस सड़कपर चल रहे थे उस सड़कार तो वेश्या श्रादि सभी अधम प्राणी चलते हैं, फिर हमारा वह मकान उस सड़कसे तो अच्छा है। आप इतनी घृणा क्यों करते हैं ? आपने हमारा घर अपनी चरणरजसे पवित्र किया इसलिए एक मुहर श्रापको देती हूँ। "यह कहकर वेश्याने एक मुहर उसे दे दी। मुहर देख उसने सोचा कि यह ठीक तो कह रही है। आखिर यह मकान सड़कसे तो अच्छा है। कुछ देर ठहरनेके वाद वह जाने लगा तव वेश्याने कहा महाराज ! दो मुहरें देती हूं । यह सामने पंसारीकी दूकान है इससे सीधा वुलाकर भोजन वना लीजिये, फिर जाइये। दो मुहरोंका लाभ देख उसने सोचा कि मैं भी तो इसी पंसारीकी दूकानसे खाद्य सामग्री लेता हूँ इसलिये वेश्याका इसके साथ क्या सम्बन्ध हे ? २ मुहरें लेकर उसने भोजन बनाना छुक् किया। जब भोजन बन चुका तत्र वेश्याने कहा सहाराज । मैंने जीत्रन भर पाप किये हैं। यदि त्राज त्रापके लिये अपने हायसे भोजन परोस सकूँ तो मैं पापसे निर्मुक्त हो जाऊँ। इस कार्यके लिये में पाँच मुहरें आपके चरणोंमें चढ़ाती हूँ। पाँच मुहरोंका नाम सुनत ही उसके मुहमे पानी आ गया। उसने सोचा कि भोजन तो मेरे हाथका बनाया है। यहि वेश्या छूकर इसे मेरी थालीमे रख देती हैं तो उससे कोन सा अधर्म हुआ जाता है। यह विचारकर उसने वेश्याको परोसनेकी श्रज्ञा है दी। वेश्याने उत्तम थालीमें भोजन परोस दिया। पश्चात् वेश्या वोली – महाराज । एक भावना वाकी श्रौर रह गई है। मैं चाहती हूं कि मैं एक प्रास थालीसे उठाकर श्रापके मुखमें दे दूं तो मेरे जन्म जन्मके पाप कट जावें। इस कार्यके लिये मैं दश मुहरें चढ़ाती हूं। दश मुहरोंका लाभ देख उसने वेश्याके हाथसे भोजन करना स्वीकृत कर लिया। वेश्याने जो प्रास मुखमें देनेके लिये उठाया था उसे मुखतक ले जानेके वाद छोड़ दिया श्रौर उसके गालमें जोर की थप्पड़ मारते हुए कहा कि सममें पापका वाप क्या है ? पाप का वाप लोभ है। कहाँ तो श्राप वेश्याके घर श्रानेपर ग्लानिसे नीचे उत्तरने लगे थे श्रौर कहाँ उसके हाथका प्रास खानेके लिये तैयार हो गये ? यह सब महिमा लोभकी है। मुहरोंके लोभने श्रापको धमें कमैंसे श्रष्ट कर दिया है।

शौच पवित्रताको कहते हैं श्रीर यह पवित्रता वाह्य श्राभ्य-न्तरके भेदसे दो प्रकार की है। श्रपने श्रपने पदके श्रनुसार लौकिक शुद्धिका विचार रखना वाह्य शुद्धि है श्रीर श्रन्तरङ्गमें लोभादि कपायोंका कम करना श्राभ्यन्तर शुद्धि है। 'गङ्गास्नानान्मुक्ति.'— गङ्गा स्नानसे मुक्ति होती है इसे जिन शासन नहीं मानता। उससे शरीरका मल छूट जानेके कारण लौकिक शुद्धि हो पर वास्तविक शुद्धि तो श्रात्मामे लोभादि कपायोंके कृश करनेसे ही होती है। श्रजु नके प्रति उपदेश हैं—

त्र्यात्मा नदी संयमपुर्यतीर्था सत्योदका शीलतटा नयोर्मिः। तत्रामिषेकं कुर पार्डुपुत्र न वारिणा सुद्धयित चान्तरात्मा।

संयम ही जिसका पवित्र घाट है, सत्य ही जिसमे पानी भरा है, शील ही जिसके तट हैं श्रौर द्या रूप भवरें जिसमे उठ रही हैं ऐसी आत्मारूपी नदीमें हे अर्जुन! अभिषेक करो क्यों कि पानीमात्रसे अन्तरात्मा गुद्ध नहीं होती है आत्माको निर्मल बनाने का जिसने अभ्यास कर लिया उसने सब कुछ कर लिया। 'आतमके अहित विषय कथाय'—आत्माके सबसे बड़े शत्रु विषय और कथाय हैं। इनसे जिसने अपने आपकी रक्षा कर ली उसने जग जीत लिया, अर्थान् मोक्त प्राप्त कर लिया।

लोभ केवल रुपया पैसाका ही हो सो वात नहीं। मान प्रतिष्ठा आदिकी आकांचा रखना भी लोभका ही रूप है। जब रामका रावणके साथ लङ्कामे युद्ध हो रहा या तव राम रावणको मारते थे तो वह वहुरूपिगी विद्यासे दूसरा रूप वना कर सामने आ जाता था। इसी प्रकार हम लोभको छोड़नेका प्रयत्न करते हैं। घर गृहस्थी, वाल वच्चे छोड़ कर जंगलमें जाते हैं पर वहाँ शिष्य संग्रह. धर्म प्रचार आदिका लोभ सामने आजाता है। पहले घरके कुछ लोगोंके भरण-पोषणका ही लोभ था अव अनेकों शिष्योंके भरण-पोरण तथा शिचा-दीचा त्रादिका लोभ सामने श्रा गया। लोभ नप्ट कहाँ हुस्रा ? वह तो वेष वदल कर स्रापके सामने स्रा गया है। यदि वास्तवमे लोभ नष्ट हो जाता तो इस परिकरकी क्या त्रावश्यक्ता थी ? 'इसका कल्याण करूँ, उसका कल्याण करूँ' चह विकल्पजाल निरन्तर आत्मामे क्यों उठते ? अतः प्रयत्न ऐसा करों कि जिससे यह लोम स्मृल नष्ट हो जाय। एक रोग छूटनेके वाट यदि दूसरा रोग द्वाईसे होता है तो वह दवाई द्वाई नहीं। द्वाई तो वह है जिससे वर्तमान रोग नप्ट हो जाय और उसके वदले कोई दूसरा रोग उत्पन्न न हो। विपय कपायका सेवन नरते करते श्रनन्त काल वीत गया पर श्रात्मामें संतोप इत्पन्न नहीं हुआ। इससे जान पड़ता है कियह सब संतोपके मार्ग नहीं हैं। --समन्तभद्र स्वामीने कहा है--

तृष्णार्चियः परिदहन्ति न शान्तिरासा— मिष्टेन्द्रियार्थविभवः परिवृद्धिरेव ॥

श्रयोत् तृष्णारूपी ज्ञालाएं इस जीवको निरन्तर जला रहीं हैं। यह जीव इन्द्रियोके इप्ट विषय एकत्रित कर उनसे इन तृष्णा-रूपी ज्ञालाश्रोंको शान्त करनेका प्रयत्न करता है पर उनसे इसकी शान्ति नहीं होती, प्रत्युत वृद्धि ही होती है। जिस प्रकार वृतकी श्राहृतिसे श्राग्निकी ज्ञाला शान्त होनेके वदले प्रज्ञितत ही होती है उसी प्रकार विषय सामग्रीसे तृष्णारूप ज्ञाला शान्त होनेके वदले प्रज्ञितत ही श्रिधिक होती है।

चतुर्थे श्रध्यायमे देवलोकका वर्णन श्रापने सुना। देवपर्यायके र्दार्घ काल तक स्थिर रहनेवाले सुखोंसे भी इस जीवको तृप्ति नहीं हुई फिर मनुष्य लोकके श्राल्पकालीन सुखोंसे इसे एपि हो जायगी यह संभव नहीं। सागरों पर्यन्त स्वर्गके मुख यह जीव भीगता है पर घ्रान्तमे जब माला मुरमा जाती है तो दुखी होता है कि हाय श्रव यह सामग्री श्रन्यत्र कहां मिलेगी ? इमी श्रार्तध्यानसे मर कर कितने ही देव एकेन्द्रिय तक हो जाते हैं। नरकसे निकल कर एकेन्द्रिय पर्याय नहीं मिलती पर देवसे निकल कर यह जीव एकेन्द्रिय तक हो जाता है। परिणामोकी विचित्रता है। देवोंके वर्णनमें श्रापने सुना है कि उनमे 'स्थिति-प्रभाव-सुख-सुति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियाविषविषयतोऽधिकाः' श्रौर 'गति-शरीर-परिग्रहासि-मानतो हीना ' श्रर्थात् स्थिति, प्रभाव, सुख, कान्ति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय और अवधिज्ञानके विषयकी अपेक्षा अधिकता है तथा गति, शरीर परिश्रह और अभिमानकी अपेद्मा हीनता है। ऊपर ऊपरके देवोंमे सुखकी मात्रा तो त्राधिक है परन्तु परिमहकी श्रालपता है। इससे सिद्ध होता है कि परिश्रह सुखका कारण नहीं है

किन्तु परिम्रहंकी श्राकांचा न होना ही सुखका कारण है। यह प्राणी मोहोदयके कारण परिमहंको सुखका कारण मान रहा है इसीलिये रात-दिन उसीके संचयमे तन्मय हो रहा है। पासका परिम्रह नष्ट न हो जाय यह लोभ है और नवीन परिम्रह प्राप्त हो जाय यह तृष्णा है। इस प्रकार आजका मनुष्य इन लोभ और कृष्णा दोनोंके चक्रमे फंस कर दुखी हो रहा है।

## : ¥ :

जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप कथन करना सत्य है। भगवान् उमास्त्रामीने असत्य पापका लक्षण लिखा है—'असदिभ-धानमनृतम्' अर्थात् प्रमादके योगसे जो कुछ असत्का कथन किया जाता है उसको अनृत या असत्य कहते हैं। इसके चार भेद हैं —जो वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्ट्य कर है उसका अपलाप करना यह प्रथम असत्य है। जैसे देवदत्तके रहने पर भी कहना कि यहाँ पर देवदत्त नहीं है। जो वस्तु अपने चतुष्ट्य कर नहीं है वहाँ उसका सद्भाव स्थापना द्वितीय असत्य है। जैसे जहाँ पर घट नहीं वहाँ पर कहना कि घट है। जो वस्तु अपने स्वरूपसे हे उसे पर रूपसे कहना यह तृतीय असत्य है जैसे गोको अश्व कहना। तथा पैशुन्य, हास्य, कर्कश, असमंजस, प्रलाप तथा उत्सृत्रह्य जो वचन है वह चतुर्थ असत्य है। इन चार भेदों मे ही सब प्रकारके असत्य आ जाते हैं। इन चार भेदों के विपरीत जो वचन हैं वे चार प्रकारके सत्य हैं। असत्य भापण्के प्रमुख कारण् हो हैं—एक अज्ञान और दूसरा कपाय। अज्ञानके कारण मनुष्य असत्य बोलना

है श्रौर कपायके वशीभूत होकर कुछका कुछ वोलता है। यदि श्रज्ञान जन्य असत्यके साथ कपायकी पुट नहीं है तो उससे आत्माका श्रहित नहीं होता क्यों कि वहाँ वक्ता श्रज्ञानसे विवश है। ऐसा श्रज्ञान जन्य असत्यवचनयोग तो श्रागममे वारहवें गुरास्थान तक वतलाया है परन्तु जहाँ कषायकी पुट रहती है वह श्रसत्य श्रात्माके लिये श्रहितकारक है। संसारमे राजा वसुका नाम श्रसत्यवादियोंमे प्रसिद्ध हो गया। उसका खास कारण यही था कि वह कषाय जन्य था। पर्वतकी माताके चक्रमे पड़ कर उसने 'श्रजैर्यष्टव्यम्' वाक्यका मिथ्या अर्थ किया था इसलिये उसका तत्काल पतन हो गया। और वह दुर्गतिका पात्र हुआ। कपायवान् मनुष्य अपने स्वार्थके कारण पदार्थका स्वरूप उस रीतिसे कहनेका प्रयत्न करते हैं जिससे उनके स्वार्थमे वाधा न पड़ जाय। महाभारतमे एक गृद्ध श्रीर गोमायुका संवाद श्राया है। किसीका पुत्र मर गया, उस मृतक पुत्रको लेकर उसके परिवारके लोग श्मशानमें गये। जब इसशानमें गये तव सूर्यास्त होनेमें कुछ विलम्ब था। उसी रमशान-में एक गृध्र तथा एक गोमायु-शृगाल विद्यमान थे। गृध्र रातमें नहीं खाता इसलिए वह चाहता था कि ये लोग मृत बालकको छोड़कर जल्दी ही यहाँसे चले जावें तो मैं इसे खा छूँ श्रौर गोमायु यह चाहता था कि ये लोग यहाँ सूर्यास्त होने तक विद्यमान रहे जिससे सूर्यास्त होनेके वाद इसे गृध खा नहीं सकेगा तव केवल मेरा ही यह भोज्य हो जावेगा। श्रपने श्रमिप्रायके श्रनसार गृध्र कहता है।

श्रलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन्ग्ध्रगोमायुसंकुले ।
कङ्कालवहले घोरे सर्वप्राणिमयंकरे ॥
न चेह जीवितः कश्चित्कालधर्ममुपागतः ।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः प्राणिना गतिरीहशी ॥

अर्थात् गृध्न तया शृगालोंसे भरे और समस्त प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाले रमशानमें ठहरना व्यर्थ हे। मृत्युको प्राप्त हुन्ना कोई भी प्राणी यहाँ त्राकर जीवित नहीं हुन्ना। चाहे प्रिय हो चाहे अप्रिय हो, प्राणियोंकी रीति ही ऐसी है।

गृधके वचनोंका प्रभाव मृत वालकके वन्धुजनों पर न पड़ जाय इस भावनासे गोमायु कहता है—

> श्रादित्योऽयं स्थितो मूडाः स्तेह फुकत साम्प्रतम् । वहुविन्नो मुहूतौंऽयं जीवेदपि कदाचन ॥ श्रमुं कनकवर्णाम वालमप्राप्तयौवनम् । एप्रवाक्यात्कयं मूदास्त्यजध्वमविशङ्किताः॥

अर्थात् अरे मूर्खं । अभी यह सूर्य विद्यमान हे । तुम लोग वालकसे स्नेह करो । यह मुहूर्त अनेक विद्नोंसे भरा हे । कदाचित् तुम्हारा वालक जीवित हो जाय । जो स्वर्णके समान कान्तिमान है तथा जिसका योवन नहीं आ पाया ऐसे वालकको गृधक कहनेस आप लोग निःशङ्क हो क्यों छोड़ रहे हो ?

प्रकरण लम्बा है पर उसका श्राभिप्राय देखिये कि मतुष्य श्रपने-श्रपने श्राभिप्रायके श्रानुसार पदार्थके यथार्थ स्वरूपको दना छिन्न-भिन्न करते हैं। इस छिन्न भिन्न परनेदा कारण मतुष्यके हत्यमे विद्यमान प्रमादयोग या क्यायपरिण्ति ही है। उस पर विजय होजाय तो फिर मुखसे एक भी श्रामन्य शहर न निक्ले। मनुष्यकी शोभा या प्रामाणिक्ता उसके वसनोने हैं। वसनोंकी प्रामाणिकता नष्ट हुई कि सब गुढ़ नष्ट होग्या। श्रासत्यवादीके वसन रथ्यापुरूपके यसनके सनान श्रामाणिक होते है। उनपर कोई ध्यान नहीं देना पर सन्यक्षरी महार्थे वसने गुज़ लिए लोग पर्यों पहुँची उस्पा कर्म हुने हैं।

वचनोंने वल सत्यभाषणसे ही आता है, असत्य भापणसे नहीं। एक सत्यभाषण ही मनुष्यकी अन्य पापोंसे रक्षा कर देता है।

एक राजपुत्रको चोरीकी आदत पड़ गई। जब राजाको उसका व्यवहार सह्य नहीं हुआ तव उसने घरसे निकाल दिया। अब वह ख़ुले रूपमें चोरी करने लगा। एक दिन उसने किन्ही मुनिराजके ज्पदेशसे प्रभावित होकर श्रसत्य वोलनेका त्याग कर दिया। श्रव वह एक राजाके यहाँ चोरी करनेके लिये गया। पहरे पर खड़े लोगाने पूछा कि कहाँ जाते हो ? उसने कहा चोरी करनेके लिए जाता हूँ। राजपुत्र था इसलिए शरीरका सुन्दर था। पहरे पर खड़े लोगोंने सोचा कि यह कोई महापुरुष राजाका स्नेही व्यक्ति है। कहीं चोर यह कहते नहीं देखे गये कि मै चोरीके लिए जाता हूं। यह तो हम लोगोंसे हॅसी कर रहा है। ऐसा विचारकर उन्होंने उसे रोका नहीं। चोरी करनेके वाद वह वहीं एक स्थानपर सो गया। प्रातःकाल जब लोगोंकी दृष्टि पड़ी तब उससे पूछा गया तो उसने यही कहा कि मैं चोर हूँ, चोरी करनेके लिए आया हूं। फिर भी लोगोंको विश्वास नहीं हुआ। राजपुत्र सोचना है कि देखो सत्य वचनमे कितना गुण है कि चोर होने पर भी किसीको विश्व.स ही नहीं होता कि मैं चोर हूं। जब एक पापके छोड़नेमें इतना गुए। ह तव समस्त पापोंके छोड़नेमें कितना गुण न होगा ? यह विचार कर इसने मुनिराजके पास जाकर समस्त पापोंका परित्यागकर दीज्ञा धारण करली। अस्तु,

मैं आज तक नहीं सममा कि असत्य भी कुछ है क्योंकि जिसे आप असत्य कहते हैं वह वस्तु भी तो आत्मीय स्वरूपसे सन् हैं। तब मेरी बुद्धिमे तो यह आता है कि जो पदार्थ आत्माको दु:खकर हो उसको त्यागना ही सत्य है। जैसे शरीरको आत्मा मानना असत्य है। शरीर असत्य नहीं हैं किन्तु जिस रूपसे वह है उससे अन्यह्य मानना असत्य है। शरीर पुद्गल द्रव्यक्ष विकार है। उसे आत्मद्रव्य मानना मिध्या है। यह विपरीत मान्यता मिध्यात्वके कारण उत्पन्न होती है इसिलये सर्व प्रथम उसे ही त्यागना चाहिये।

पञ्चमाध्यायमे षड् द्रव्योंका वर्णन श्रापने सुना है। उसमे प्रमुग् जीवद्रव्य है। उसीका सव खेल है, वैभव है—

> श्रहं प्रत्ययवेद्यत्वाच्जीवस्यास्तित्वमन्वयात्। 'एको दरिद्र एक: श्रीमानिति च कर्मग्रः॥

'में सुखी हूँ, दुखी हूँ इत्यादि प्रत्ययसे जीवके श्रस्तित्वका साज्ञातकार होता है तथा श्रम्वयसे भी इसका प्रत्यय होता है। यह वही देवदत्त हैं जिसे मैंने मथुरामे देखा था, अब यहाँ देख एत हूँ। इस प्रत्ययसे भी श्रात्माके श्रास्तित्वका निर्णय होता है तया कोई तो श्रीमान् देखा जाता है श्रीर कोई दारित्र देखा जाता है इस विभिन्नतामें भी कोई नारण होना चाहिये। यह विभिन्ना-विषमता निर्हेतुक नहीं। जो हेतु हैं उमीको कर्म नाममें करा जाता है। नाममे विवाद नहीं—चार कर्म करा, अन्द्र पर्ही, ईश्वर कहो, खुटा कहो, विधाता वही, जो श्रापको स्थिता है परन्तु यह श्रवस्य मानना कि यह त्रिभिन्नता निर्मृत नहीं। नार ही यह भी मानना पड़ेगा कि जो यह हस्यमान जगने हैं पर है। व एक जीवका परिग्णम नहीं। केरत एक पदार्थ हैं। हैं। उन्हें नानात्व कहाँमे श्राया ? नानात्वमा नियासक द्रव्यास्त्व होता चाहिये । केवल पुर्गलमे शन्य बन्धारि वसीयें नहीं हैती । जब पुद्रगल परमाणुत्रोंनी बन्याबम्या है। जानी है एसी ग पर्याचे होती है। उस खास्थामे पुद्रमण परमा खोडी सना इत्यमपुरे खबायित रहती है। एनावता शालाहिया प

केवल परमाणुत्रोंकी नहीं किन्तु स्कन्ध पर्यायापत्र परमाणुत्रोंकी हैं। इसी तरह जो रागादि पर्याय हैं वह उदयावस्थापत्र कर्मोंके सद्भाव में ही जीवके होती हैं। यदि ऐसा न माना जावे तो रागादि परिणाम जोवका पारिणामिक भाव हो जावेगा छोर ऐसा होनेसे संसारका श्रभाव हो जावेगा जो कि किसीको इष्ट नहीं। रागादिक भावोका प्रत्यक्तमें सद्भाव देखा जाता है। इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादि भाव श्रौपाधिक हैं। जैसे स्फिटिकमणि स्वच्छ है किन्तु जव स्फिटिकमणिके साथ जपापुष्पका सम्बन्ध होता है तव उसमें लालिमा प्रतीत होती है। यद्यपि स्फिटिकमणि स्वयं रक्त नहीं किन्तु निमित्तको पाकर रिक्तमामय प्रत्ययका विषय होता है। इससे यह समक्रमे श्राता है कि स्फिटिकमणि निमित्तको पाकर लाल जान पड़ती है। यह लालिमा सर्वथा श्रमत्य नहीं। ऐसा सिद्धान्त है कि जो द्रव्य जिस कालमे जिस रूप परिणमती है वह उस कालमें तन्मय हो जाती है। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने स्वयं प्रवचनसारमें लिखा है—

पिरिण्मिद जेण दब्वं तक्कालं तम्मय ति परण्तं। तम्हा धम्मपरिणादो श्रादा धम्मो मुखेदन्वो ॥

इस सिद्धान्तसे यह निष्कर्ष निकला कि आत्मा जिस समय रागादिरूप परिणमेगा उस समय नियमसे उसी रूप होगा तथा पर्याय दृष्टिसे उन्हीं रागादिकका उस कालमें आस्तित्व रहेगा। जो भाव करेगा उसीका वर्तमानमे आनुभव होगा। जल शीत है परन्तु अग्निके सम्बन्धसे उष्ण पर्यायको प्राप्त करता है।

यद्यपि उसमें शक्ति अपेक्षा शीत होनेकी योग्यता है तथापि वर्तमानमें शीत नहीं। यदि कोई उसे शीत मानकर पान करे तो दग्ध ही होगा। इसी प्रकार आत्मा यदि वर्तमानमें रागरूप है तो

रागी ही है। इस अवस्थामे वीतरागका अनुभव होना असंभव है— इस कालमे आत्माको रागादि रहित मानना मिथ्या है। यद्यपि रागादि परिणाम परनिमित्तक हैं अतएव श्रोपाधिक हैं --- नशनशील हैं तथापि वर्तमानमें तो श्रौष्ण्य परिगात श्रयःपिण्डवत् श्रात्मा तन्मय हो रहा है, अर्थात् उन परिणामी के साथ आत्माका तादात्म्य हो रहा है। इसीका नाम अनित्य तादात्म्य है। यह अलीक कथन नहीं। एक मनुष्यने मद्यपान किया श्रीर उसके नशासे वह उन्मत्त होगया। हम पूछते हैं कि क्या वह वर्तमानमे उन्मत्त नहीं है ? अवश्य उन्मत्त हैं किन्तु किसीसे आप प्रश्न करें कि मनुष्यका क्या लज्ञाण है १ इसके उत्तरमें उत्तर देनेवाला क्या यह कह सकता है कि उन्मत्तता मनुष्यका लक्षण है ? नहीं, यह उत्तर ठीक नहीं क्योंकि मनुष्यकी सर्वे अवस्थाओंमें उन्मत्तताकी व्याप्ति नहीं। इसी तरह त्रात्मामें रागादिभाव होनेपर भी श्रात्माका लच्चण रागादि नहीं हो सकता क्योंकि आत्माकी अनेक अवस्थाओं में रागादिभाव व्यापकरूपसे नहीं रहता श्रतः यह श्रात्माका तत्त्रण नहीं हो सकता। लक्त्रण वह होता है जो सर्व अवस्थाओं में पाया जाने । ऐसा लक्त्रण चेतना ही है। यद्यपि रागादि परिग्णाम तथा केत्रलज्ञानादि भी श्रात्मामे ही होते हैं तथापि उन्हें लच्चण नहीं माना जाता क्योंकि वे जीवकी पर्यायविशेष हैं, व्यापक रूपसे नहीं रहतीं। अन्ततो गत्वा चेतना ही श्रात्माका एक ऐसा गुण है जो श्रात्माकी सर्व दुशात्रोंमें व्यापकरूपसे रहता है। त्रात्माकी र त्रवस्थाएँ हैं-संसारी और मुक्त। इन दोनोंमे चेतना रहता है। उसीसे अमृत चन्द्र स्वामीने लिखा है कि-

> श्रनाद्यमनन्तमचलं स्वसवेद्यमिह स्फुटम् । जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ॥

जीव नामक जो पदार्थ है वह स्वयंसिद्ध है तथा परनिरपेच

अपने आप अतिशय कर चकचकायमान हो रहा है। कैसा है ? अनादि है। कोई इसका उत्पादक नहीं अतएव अनादि है, अतएव अकारण है। जो वस्तु अनादि अकारणक है वह अनन्त भी है तथा अचल हे ऐसे अनादि अनन्त तथा अचल अजीव द्रव्य भी है, इससे इसका लक्षण स्वसंवेद्य भी है यह स्पष्ट है। जीव नामक पदार्थमे अन्य अजीवोंकी अपेचा चेतनागुण ही मेद करनेवाला है। वही गुण इसमें ऐसा विशद है कि सर्व पदार्थोंकी तथा निजकी व्यवस्था कर रहा है।

इस गुणको सव मानते हैं परन्तु कोई उस गुणको जीवसे सर्वथा भिन्न मानते हैं। कोई गुणसे अतिरिक्त अन्य द्रव्य नहीं-गुणा-गुणी सर्वया एक हैं ऐसा मानते हैं। कोई चेतना तो जीवमें मानते हैं परन्तु वह जेयाकार परिच्छेदसे पराङ्मुख रहता है ऐसा त्रा ही कार करते हैं। प्रकृति त्र्यौर पुरुषके सम्वन्धसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसमें चेतनाके संसर्गसे जानपना त्राता है। कोईका कहना हैं कि पदार्थ नाना नहीं एक ही श्रद्धैत तत्त्व है। वह जब माया-विञ्जन होता है तब यह संसार होता है। किसीका कहना है कि जीव नामक स्वतन्त्र पदार्थकी सत्ता नहीं किन्तु पृथिवी जल अग्नि वायु श्रीर श्राकाश इनकी जिस समय विलक्ष्मण श्रवस्था होती हैं उसा समय यह जीवरूप श्रवस्था होजाती है। ये जितने मत हैं वे सर्वथा मिथ्या नहीं। जैनदर्शनमें अनन्त गुणोंका जो अविष्व-ग्भाव सम्बन्ध हैं वही तो द्रव्य है। वह श्रात्मीय स्वरूपकी श्रपेत्ता भित्र भित्र है परन्तु कोई ऐसा उपाय नहीं कि उनमेसे एक भी गुगा पृथक् हो सके। जैसे पुद्गल द्रव्यमें रूप रस गन्ध स्पर्श गुरा हैं। चत्तुरादि इन्द्रियोंसे पृथक् पृथक् ज्ञानमें आते हैं परन्तु उनमेंसे कोई पृथक् करना चाहे तो नहीं कर सकता। वे सव श्रखण्डरूपसे विद्यमान हैं। उन सर्व गुणोंकी जो अभिन्न प्रदेशता है उसीका नाम

द्रव्य हैं। श्रतएव प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है— णित्य विणा परिणामं श्रत्थो श्रत्यं विणेह परिणामो। दव्वगुणपज्जयत्थो श्रत्थो श्रत्यित्तिणपणणो॥

परिगामके विना अर्थकी सत्ता नहीं तथा अर्थके विना परिगाम नहीं। जैसे दुग्ध दिध धी छांछ इनके विना गोरस कुछ भी सत्ता नहीं रखता इसी तरह गोरस न हो तो इन दुग्धादिकी भी सत्ता नहीं। एवं यदि आत्माके ज्ञानादि गुण न हों तो आत्माके अस्तित की सिद्धि नहीं हो सकती तथा आत्माके विना ज्ञानादि गुणोंका कोई श्रस्तित्व नहीं। विना परिणामीके परिणमनका नियामक कोई नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि ये गुए सदा परिएमनशील हैं किन्तु श्रनादिसे श्रात्मा कर्मोंसे सम्बद्ध है, इससे इसके ज्ञानादि गुणेंका विकास निमित्त कारणोंके सहकारसे होता है। होता उसीमे हैं परन्तु जैसे घटोत्पत्तिकी योग्यता मृत्तिकामें ही होती है किन्तु कुम्भन कारके विना घट नहीं वनता । यद्यपि घटकी उत्पत्तिके योग्य व्यापार कुम्भकारमें ही होगा फिर भी मृत्तिका अपने व्यापारसे घटरूप होगी, कुम्भकार घटरूप न होगा। उपादानकी मुख्य माननेत्रालींका कहना हैं कि जब मृत्तिकामें घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है तब वहीं कुम्भ-कारकी उपस्थिति स्वयमेव हो जाती है। यहाँपर यह कहना है कि घटोत्पत्ति स्वयमेव मृतिकामें होती हं इसका क्या अर्थ है ? जिस काल मृतिकामें घट होता है उस कालमे क्या कुम्भकाराटि निरपंत घट होता हैं या सापेच ? यदि निरपेक्ष घटोत्पत्ति होती हैं तो एक भी उटाहरण ऐसा वतात्रों कि मृत्तिकामें कुम्भकारके विना यट हुणा हो नो तो देखा नहीं जाता। यदि सापेश्र पत्तको श्रदीकार परोगे तो स्वयमेव श्रागया कि हुम्भकारके व्यापार विना घटकी उत्पनि नहीं होती। उसका श्रर्थे यह है कि कुम्भकार घटोत्यति में महबारी निमित्त है। जैसे आत्मामें रागादि परिणाम होते हैं। दर्यान

श्रात्मा ही उनका उपादान कर्ता है परन्तु चारित्रमोहके उदय बिना रागादि नहीं होते । होते श्रात्मामे ही हैं परन्तु विना कर्मोदयके यह भाव नहीं होते। यदि निमित्तके विना यह हों तव तो आत्माका त्रिकाल श्रवाधित स्त्रभाव हो जावे सो ऐसा यह भाव नहीं। इसका विनाश हो जाता है श्रतः यह मानना पड़ेगा कि यह श्रात्माका निज भाव नहीं इसका यह अर्थ नहीं कि यह भाव आतमामे होता ही नहीं। होता तो है परन्तु निमित्त कारणकी अपेक्षासे होता है। यदि निमित्त कारणकी श्रपंज्ञासे नहीं है ऐसा कहोगे तो आत्मामे मतिज्ञानादि जो चार ज्ञान उत्पन्न होते हैं वे भी तो नैमित्तिक हैं उनको भी आत्माके मत मानो। यह भी हमें इष्ट है, हम तो यहां तक माननेको प्रस्तुत हैं कि चायोपश-मिक, छौद्यिक, छौपशमिक जितने भी भाव हैं वे छात्माके छस्तित्व में सर्वदा नहीं होते। उनकी कथा छोड़ो, चायिक भाव भी तो क्षयसे होते हैं वे भी श्रवाधित रूपसे त्रिकालमें नहीं रहते अतः वे भी त्रात्माके लक्ष्मण नहीं। केवल चेतना ही त्रात्माका लच्चण है यही श्रवाधित त्रिकालमे रहता है। इसी भावको पुष्ट करनेवाला श्लोक श्रष्टावक गीतामे श्रष्टावक ऋषिने लिखा है-

नाहं देहों न में देहों जीवों नाहमह हि चित्। श्रयमेव हि में वन्धों या स्यज्जीविते स्पृहा॥

श्रर्थात् में देह नहीं हूं श्रोर न मेरा देह है, न में जीव हूं, में तो चित् हूं चैतन्यगुणवाला हूं। यदि ऐसा वस्तुका निज स्वरूप है तो, श्रात्माको वन्ध क्यों होता है १ इसका कारण हमारी इस जीवमें स्पृहा है। यह जो इन्द्रिय मन वचन काय श्वासो-च्छ्वास तथा श्रायुप्राणवाले पुतलेमें हमारी स्पृहा है यही तो वन्धका मूल कारण है। हम जिस पर्यायमे जाते हैं उसीको निज मान कैठते हैं। उसके श्रास्तित्वसे श्रपना श्रास्तित्व मान कर पर्याय बुद्धि हो पर्यायके अनुरूप ही समस्त व्यवहार कर पर्यायान्तरको

प्राप्त होते हैं। इससे यही तो निकला कि हम पर्यायवृद्धिसे ही अपनी जीवनलीला पूर्ण करते हैं। अस्तु विषय लम्वा हो गया है।

# ; ६ ;

स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों तथा मनके विपयों और पट्कायिक जीवोकी हिंसासे विरत होना संयम कहलाता है। इन्द्रिय विपयों के आधीन हुंआ प्राणी उत्तर कालमें प्राप्त होनेवाले दुःखों को अपनी दृष्टिसे अभिमल कर देता है। यहि कारण है कि वह तदात्व सुखमें निमन हो आत्महितसे विख्यत हो जाता है। इन्द्रिय विपयों के आधीन हुआ वनका हाथी अपनी सारी स्वतन्त्रता नष्ट कर देता है। रसनेन्द्रियके वशमें पड़ा मीन धीवरकी वंशीमें अपना कण्ठ द्विवा देता है। नासिकाके आधीन रहनेवाला अमर सन्ध्याके समय यह सोचकर कमलमें वन्द हो जाता है कि रात्रि व्यतीत होगी, प्रातःकाल होगा, कमल फूलेगा तव मैं निकल जाऊंगा। अभी रात भर तो मकरन्दका रसास्वादन कहं पर प्रातःकाल होनेके पहले ही एक हाथी आकर उस कमलिनीको उखाड़ कर चला जाता है। अमरके विचार उसके जीवनके साथ ही समाप्त हो जाते हैं। कहा है—

रात्रिर्गिमण्यति भविष्यति सुप्रमातं.

भारवानुदेष्यति हिषण्यति पद्भवक्षाः ।

इत्यं विचारयत्यव्याते दिनेफे,

हा इन्त हन्त निर्ताग उज्वहार ॥

नेत्रेन्द्रियके वशीभूत हुए पतंग दीपको पर श्रपने प्राण न्योद्धारा

कर देते हैं श्रौर कर्णेन्द्रियके श्राधीन हो हरिए वहेलियोंके द्वारा मारे जाते हैं। ये तो पछ्छे न्द्रियोंमे एक-एक इन्द्रियके श्राधीन रहनेत्राले जीवोकी वात कही पर जो पांचों ही इन्द्रियोंके वशीभूत हैं उनकी तो कथा ही क्या है। पञ्चे न्द्रियोंमें स्पर्शन श्रौर रसना ये दो इन्द्रियां श्रधिक प्रवल हैं। वहुकेर स्त्रामीने मूलाचारमे कहा है कि चतुरङ्गूल प्रमाण स्पर्शन त्र्यौर रसना इन्द्रियने संसारको पटरा कर दियाँ—नष्ट कर दिया। इन इन्द्रियोंकी विषयदाहको सहन करनेके लिये जब प्राणी श्रसमर्थ हो जाता है तब वह इनमें प्रवृत्ति करता है। कुन्दकुन्द स्त्रामीने प्रवचनसारमे यहाँ तक लिखा है कि संसारके साधारण मनुष्योंकी तो कथा ही क्या है ? हरि, हर, इलधर, चक्रधर तथा देवेन्द्र घादिक भी इन्द्रियोंकी विषय दाहको न सहकर उनमें भन्पापात करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि वड़े बड़े पुरुष इनमें मान्पापात करते हैं अतः ये त्याच्य नहीं है। विष तो विष ही है, चाहे उसे छोटे पुरुष पान करें चाहे बड़े पुरुष। हरि-हरादिककी विषयोंमें प्रवृत्ति हुई सही परन्तु जब उनके चारित्रमोहका उदय दूर हुआ तब उन्होंने उस विषयमार्गको हेय समभ कर त्याग दिया। भगवान् ऋषभदेव श्रपने राज्य पाट भोग विलासमें निमग्न थे परन्तु नीलाञ्जनाका विलय देख विषयोंसे विरक्त हो गये। जब तक चारित्रमोहका उदय उनकी आत्मामें विद्यमान रहा तव तक उनका भाव विषयोंसे विरक्त नहीं हुआ। उन्होंने समस्त राज्य वैभव छोड़ कर दिगम्बर दीचा धारण की। इससे यही तो ऋर्थ निकला कि यह विषयका मार्ग श्रेयस्कर नहीं। यदि श्रेयस्कर होता तो तीर्थंकर श्रादि इसे क्यों छोड़ते । श्रतः श्रन्तरङ्गसे विषये-च्छाको दूर कर श्रात्महितका प्रयत्न करना चाहिये।

वज्रदन्त चक्रवर्ती सभामे विराजमान थे। मालीने एक सहस्र-

दल कमल उनकी सेवामे भेट किया। सूघनेके वाद जब उन्होंने कमलके अन्दर मृत अमरको देखा तो उनके हृदयके नेत्र खुल गये। वे विचार करने लगे कि देखो नासा इन्द्रियके वशीभूत हो इस श्रमरने अपने प्राण गॅवाये हैं। यह विषयासक्ति ही जन्म-मरणका कारण है। ऐसा विचार कर उन्होंने दीचा लेनेका विचार कर लिया। चक्रवर्ती थे इसलिये राज्यका भार वड़े पुत्रको देने लगे। पुत्रके भी परिणाम देखो, उसने कहा पिताजी। यह राज्यवैभव अच्छा है या बुरा ? यदि अच्छा है तो आप ही इसे क्यों छोड रहे हैं ? यदि बुरा हैं तो फिर मैं तो आपका पीतिपात्र हूँ—स्नेह भाजन हूँ। यह बुरी चीज मुमो ही क्यों दे रहे हैं। किसी शत्रुको दीजिये। चक्रवर्ती निरुत्तर हो गये। दूसरे पुत्रको राज्य देना चाहा, इसने भी लेनेसे इनकार कर दिया। तत्र पुण्डरीक नामका छोटा मा वालक जो कि वड़े पुत्रका लड़का था उसका राज्याभिषेक कर वन को चले गये। उनके मनमें यह भी विकल्प न उठा कि पर्वण्डके राज्यको छोटा सा वालक कैसे संभालेगा? संभाले या न संभान, इसका विकल्य ही उन्हें नहीं उठा। यही सचा वेराग्य कहलाना है। हम लोग तो ''त्रालसी वानिया अपशकुनकी वाट जोहैं' वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं। जरा जरासे कामके लिये वहाना खोजा करते हैं पर यह निश्चित सममो, ये वहाना एक भी काम न श्रावेंगे। मनुष्य जीवनका भरोसा क्या है ? श्रभी श्रारामसे वटे हो पर हार्ट फैल हो जाय तो पर्याय समाप्त होते देर न लगे इसलिये समय रहते. सावधान हो जाना विवेकका कार्य है। 'मुग्ग-नरक पशुगतिमें नाहीं' यह मंत्रम देव. नरक तथा पशुगिनमें प्राप्त नहीं होता। यद्यपि पशुगतिमें संयमासंमयस्य योडा मा मंयम प्रकट हो जाता है पर वह उत्हृष्ट मैयमके ममन नगन्य ही है। यह संयम कर्मभूमिक मनुष्यके ही हो नकता है अतः मनुष्य पर्याप

पाकर उसे श्रवश्य धारण करना चाहिये। श्रपनी शक्तिको भूलकर लोग दीन-हीन हो रहे हैं। कहते हैं कि हमसे अमुक काम नहीं वनता, श्रमुक विपय नहीं छोड़ा जाता। यदि राजाज्ञा होने पर वलात्कार यह काम करना पड़े तो फिर शक्ति कहाँसे श्रावेगी। श्रात्माम श्रचिन्त्य शक्ति है। यह प्राणी उसे भूल पर पदार्थका श्रातम्यन प्रहण करता फिरता है परन्तु यह निश्चित है कि जव तक यह परका श्रालम्यन छोड़ श्रपनी स्वतन्त्र शक्तिकी श्रोर दृष्टि-पात न करेगा तव तक इसका कस्थाण नहीं होगा।

श्राजका मनुष्य इच्छात्र्योंका कितना दास हो गया है? न उसके रहन-सहनमें विवेक रह गया है, न खान-पानमे भच्या-भक्त्यका विचार शेप रहा है। स्त्री-पुरुषोंकी वेष-भूषा ऐसी हो गई है कि जिससे कुलीन श्रीर श्रकुलीनका श्रन्तर ही नहीं मालूम होता है। पुरुष स्वयं विषयोंका दास हो गया है जिससे वह लियोंको नाना प्रकारके उत्तेजक वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित देख प्रसन्नताका अनुभव करता है। यदि पुरुषके अन्दर थोड़ा विवेक रहे तो वह अपने घरके वातावरणको संभाल सकता है। त्र्याजके प्राणी जिह्ना इन्द्रियके इतने दास होगये हैं कि उन्हें भच्य श्रमच्यका कुछ भी विचार नहीं रह गया है। जिन चीजोंमें प्रत्यक्त त्रसंघात अथवा वहुस्थावरघात होता है उन्हें खाते हुंये वे सुखका श्रनुभव करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि हमारे अल्प स्वादके पीछे अनन्त जीवोंकी जीवन लीला समाप्त हो रही है। आज खाते समय लोग दिन-रातका विकल्प छोड़ बैठे हैं। उन्हे जब मिलता है तभी खाने लगते हैं। आशाधरजीने कहा है कि उत्तम मनुष्य दिनमे एक वार, मध्यम मनुष्य दो वार और अधम मनुष्य पशुके समान चाहे जब भोजन करते हैं। जैसे पशुके सामने जब भी घासका पूला हाला जाता है वह तभी उसे खाने लगता है वैसे ही आजका मनुष्य जब भी भोजन सामने त्राता है तभी खाने लगता हैं।

छठवें श्रध्यायमे श्रापने श्रास्त्रवतत्त्वका वर्णन सुना है। मेरी न्दृष्टिमें यह श्रध्याय श्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हम कर्मवन्धसे बचना तो चाहते हैं पर कर्म किन कारणोंसे वंधते हैं यह न जाने तो कैमे वच सकते हैं ? बुद्धिपूर्वक श्रथ्या श्रवुद्धिपूर्वक ऐसे बहुतसे कार्य हम लोगोंसे होते रहते हैं जिनसे कर्मका बन्ध जारी रहता है। जो न्वैद्य रोगके निदानकों ठीक ठीक समम लेता है उसकी द्वा तत्काल लाभ पहुँचा देती है पर जो निदानको सममे विना उपचार करता न्है उसकी द्वा महीनों सेवन करनेपर भी लाभ नहीं पहुँचाती।

'श्राव चोर चोरी कर ले गव मोरी मू दत मुगध फिरे'

सीधा सीधा पद है। किमीके घर चोर श्राया श्रौर चोरी कर लेगया पर उस मूर्खको यह पता नहीं चला कि चोर किस रास्तेसे श्राया था श्रतः वह मुहरी-पानी श्राने जानेके मार्गको चोरका मार्ग सममकर मूंदता फिरता है। दूसरी रात फिर चोर श्राते हैं। यही दशा संसारी प्राणीकी है कि जिन भावोंसे कर्मोका श्रास्त्रव होता है—कर्मस्पी चोर श्रात्मामे घुसते हैं उन भावोंका इसे पता नहीं रहता इसलिये श्रन्य प्रयत्न कर्मोका श्रास्त्रव रोकनेके लिये करता है। पर कर्मोंका श्रास्त्रव रकता नहीं है। यही कारण है कि यह श्रनन्तवार मुनिलिङ्ग धारण कर नवम मैं वेयक तक उत्पन्न हुआ परन्तु संसार वन्धनसे मुक्त नहीं हो सका। जान पड़ता हे कि उसे कर्मोंके श्रास्त्रवको चोध ही नहीं हुआ। श्रात्माकी विकृत परिणतिसे होनेवाले श्रास्त्रवको उसने केवल शरीराश्रित कियाकाण्डसे रोकना चाहा सो कैसे रुक सकता था श्रागममे लिखा है कि श्रहानी जीव करोड़ों जन्मकी तपस्याके द्वारा भी जिस कर्मको नहीं खिपा सकता ज्ञानी जीव उसे च्यामात्रमे खिपा देता है। तालेकी जो कुंजी है उसीसे तो वह

खुलेगा। दृसरी कुंजीसे दूसरा ताला घंटों परिश्रम करनेपर भी नहीं खुल सकता स्रोर कुंजीका ठीक ठीक बोध हो जानेपर जरासी देरमे ख़ुल जाता है। यही बात यहाँपर है। जो कर्म जिस भावसे आता हैं उस भावके विरुद्ध भाव जब आत्मामें उत्पन्न हो तब उस कर्मका त्राना रुक सकता है। त्रापने सुना है 'सकषायाकषाययो' साम्परा-यिकेर्यापथयोः अर्थात् योग सकपाय जीवोंके साम्परायिक तथा कषायरिहत जीवोंके ईर्यापय आस्त्रवका कारण है। जिस आस्त्रवका प्रयोजन संसार है उसे साम्परायिक आस्त्रव कहते हैं और जिसमे स्थिति तथा अनुभागवन्य नहीं पड़ता उसे ईर्यापथ आस्त्रव कहते हैं। साम्परायिक स्रास्त्रवं स्रात्माका स्रत्यन्त स्रहित करनेवाला है। यह कषाय सहित जीवके ही होता है। जिस प्रकार शरीरमें तेल लगाकर मिट्टीमें खेलनेवाले पुरुषके मिट्टीका सम्बन्ध सातिशय होता हैं और तेल रहित मनुष्यके नाममात्रका होता है उसी प्रकार कषाय सहित जीवका आस्त्रव सातिशय होता है—स्थिति और अनुभागसे सहित होता है परन्तु कषाय रहित जीवके नाममात्रका होता है। श्रर्थात् समयमात्र स्थित रहकर निर्जीर्ण हो जानेवाले कर्मप्रदेशोंका श्रास्त्रव उसके होता है। इस तरह श्रात्माकी सकषाय अवस्था ही आस्त्रव है—वन्धका कारण है अतः उससे वचना चाहिये। जिस प्रकार फिटकली आदिके संसर्गसे जो वस्त्र सकपाय हो गया है उसपर रंगका सम्बन्ध अच्छा होता है परन्तु जो बस्न फिटकली श्रादिके संसर्गसे रहित होनेके कारण श्रकपाय है उसपर रङ्का सम्बन्ध स्थायी नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतमें भी सम-मना चाहिये।

नामकर्मकी ६३ प्रकृतियोंसे तीर्थं कर प्रकृति सातिशय पुण्य— प्रकृति है इसलिये उसके आस्त्रव आचार्यने अलगसे वतलाये हैं। दर्शनिवशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके चिन्तनसे उसका आस्त्रव होता है। इन सभीमें दर्शनिवशुद्धि प्रमुख है। यदि यह नहीं हैं श्रोर वाकी सव हैं तब भी तीर्थ कर प्रकृतिका श्रास्त्रव नहीं हों सकता और यह है तथा वाकीकी नहीं हैं तब भी उसका श्रास्त्रव हो सकता हैं। दर्शनिवशुद्धिका अर्थ है श्रपायिवचय धर्मध्यानमें वैठकर करुणापूर्ण हृदयसे यह विचार करना कि ये संसारके प्राणी मोहके वशीभूत हो मार्गसे श्रष्ट हो कितना दुःख उठा रहे हैं। इनका दुःख किस प्रकार दूर कर सकूं। इस लोककल्याणकी भावनाके समय जो शुभ राग होता हैं उसीसे तीर्थकर प्रकृतिका श्रास्त्रव होता है। सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता तो मोचका कारण है। उसके द्वारा कर्मवन्ध किस प्रकार हो सकता हैं?

### : 0:

'तपसा निर्जरा च' श्राचार्य उमास्वामीने लिखा है कि तपके द्वारा संवर तथा निर्जरा दोनों ही होते हैं। मोच्च उपादेय तक्त्व हैं श्रीर संवर तथा निर्जरा उसके साधक तक्त्व हैं। इनके विना मोच्च होना संभव नहीं। तप चारित्रका ही विशेष रूप है। चारित्रमोहका श्रामाव होने पर मनुष्यकी विरक्तिरूप श्रवस्था होती है श्रोर उस विरक्ति श्रवस्थामें जो कार्य होता है वह तप कहलाता है। विरक्तिरूप श्रवस्थामें इच्छाश्रोंका निरोध सुतरा हो जाता है इसलिये 'इच्छानिरोधस्तपः' इच्छाको रोकना तप है यह तपका लक्त्य श्रिसद्ध हो गया है। रागके उद्यमें यह जीव वाह्य वैभवको पकड़े रहता है पर जब श्रन्तरङ्गसे राग श्रूट जाता है तव उस वैभवको छोडते इसे देर नहीं लगती। वहे वहे पुरुप संसारसे विरक्त न हो सकें

पर छोटे पुरुप विरक्त होकर आत्मकल्याण कर जाते हैं। प्रद्युम्नको वराग्य त्राया—दीचा लेनेका भाव उसका हुत्रा त्रात राज्यसभामे चलदेव तथा श्रीकृष्णसे श्राज्ञा लेने गया। वहाँ जाकर जव उसने श्रपना अभिप्राय प्रकट किया तव वलदेव तथा श्रीकृष्ण कहते हैं कि वेटा! श्रभी तेरी श्रवस्था ही क्या है ? तूने संसारका सार जाना ही क्या है ? जो दीचा लेना चाहता है अभी हम तुमसे बड़े चृढ़े त्रिद्यमान हैं। हम लोगोंके रहते तू यह क्या विचार कर रहा है ? सुनकर प्रद्युम्नने उत्तर दिया कि आप लोग संसारके स्तम्भ हो स्रुतः राज्य करो । मेरी तो इच्छा दीचा धारण करनेकी है। इस ससारमें सार है ही क्या जिसे जाना जाय। इस प्रकार राज्यसभा-से विदा लेकर अपने अन्तःपुरमे पहुँचा और स्त्रीसे कहता है-त्रिये ! मेरा दीचा लेनेका भाव है । स्त्री पहलेसे ही विरक्त वैठी थी । वह कहती है जब दीचा लेनेका भाव है तब प्रिये! सम्बोधनकी क्या त्र्यावश्यकता है ? क्या स्त्रीसे पूछ-पूछकर दीचा ली जाती है। त्राप दीचा लें या न लें, मै तो जाकर श्रभी लेती हूं। यह कहकर चह प्रद्युम्नसे पहले निकल गई। दोनोंने दीचा धारण कर आत्म-कल्याण किया श्रीर श्रीकृप्ण तथा बलदेव संसारके चक्रमे फॅसे रहे। एक समय था कि जब लोग थोड़ा सा निमित्त पाकर संसारसे विरक्त हो जाते थे। शिरमें एक सफेद बाल देखा कि वैराग्य आ गया पर त्राज एक दो नहीं समस्त बाल सफेद हो जाते हैं पर वैराग्यका नाम नहीं श्राता। उसका कारण यही है कि मोहका संस्कार बड़ा प्रबल है। जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानीकी बूँद नहीं ठहरती उसी प्रकार मोही जीवोंर्पर वैराग्यवर्धक उपदेशोंका प्रभाव नहीं ठहरता। थोड़ा बहुत वैराग्य जव कभी आता भी है तो इसशान वैराग्यके समान थोड़ी ही देरमे साफ हो जाता है।

वाह्य श्रीर श्राभ्यन्तरके भेदसे तप दो प्रकारके हैं। श्रनशन,

ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह वाह्य तप हैं। इन्हें वाह्य पुरुप भी कर सकते हैं तया इनका प्रवृत्यंश वाह्यमे दृष्टिगोचर होता है उसलिये इन्हें वाह्य तप कहते हैं। श्रोर प्रायिश्चत्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और भ्यान ये छह आभ्यन्तर तप हैं। इनका सीधा सन्वन्ध श्राभ्यन्तर—श्रन्तरात्मासे है तथा उन्हें वाह्य पुरुष नहीं कर सक्ते इसलिये ये आभ्यन्तर तप कहलाते हैं। उन सभी तपोंमें इच्छाका न्यूनाधिक रूपसे नियन्त्रण किया जाता है इसीलिये इनसे नवीन कर्मींका वन्ध रकता है श्रीर पूर्वके वैंधे कर्म निर्जीण हो जाते हैं। 'कर्मशैलको व्यासमाना' यह तप कर्मरूपी पर्वतको गिरानेके लिये वजके समान है। जिस प्रकार वज्रपातसे पर्वतके शिखर चूर चूर हो जाते हैं उसी प्रकार तपश्चरणसे कर्म चूर चूर हो जाते हैं। जिन कर्मों के फल देनेका समय नहीं आया ऐसे कर्म भी तपके प्रभावसे श्रसमयमे ही गिर जाते हैं। श्रविपाक निर्जराका मृल कारण वप ही हैं। तपके द्वारा किसी सांसारिक फलकी आकांचा नहीं करना चाहिये। जैन सिद्धान्त सम्मत तप तया अन्य लोगोंके तपमे अन्तर वतात हुए श्री समन्तमद्र स्वामीने लिखा है—

> श्रपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्ण्या तपस्तिनः केचन कर्म कुर्वते। भवान् पुनर्जन्म-जराजिहासया त्रयीं प्रवृतिं समधीरनारुण्त्॥

हे भगवन् ! कितने ही लोग संतान प्राप्त करनेके लिये, कितने ही धन प्राप्त करनेके लिये तथा कितने ही मरणोत्तर कालमें प्राप्त होनेवालं स्वर्गादिकी तृष्णासे तपश्चरण करते हैं परन्तु श्राप जन्म श्रोर जराकी वाधाका परित्याग करनेकी इच्छासे इप्टानिष्ट पदार्थों में मध्यस्थ हो मन वचन कायकी प्रवृत्तिको रोकते हैं। श्रन्यत्र तपका प्रयोजन संसार है तो यहां तपका प्रयोजन मोन्न है। परमार्थसे तप मोन्नका ही साधन है। उसमे यदि कोई न्यूनता रह जाती है तो सांसारिक सुखका भी कारण हो जाता है। जैसे खेती का उद्देश्य श्रनाज प्राप्त करना है। यदि पाला श्रादि पड़नेसे श्रनाज प्राप्त करनेमें कुछ कभी हो जाय तो पलाल कौन ले गया, वह तो प्राप्त होगा ही इसी प्रकार तपश्चरणसे मोन्न मिलता है। यदि कदाचित् उसकी प्राप्ति न हो सकी तो स्त्रर्गका बैभव कौन छीन लेगा? वह तो प्राप्त होगा ही।

पद्मपुराणमे विशल्याकी महिमा श्रापने सुनी होगी। उसके पांस आते ही लदमणके वचःस्थलसे देवोपनीत शक्ति निकलकर दूर हो गई। इसमे विशल्याका पूर्व जन्ममे किया हुआ तपश्चरण ही कारण था। निर्जन वनमें उसने तीन हजार वर्ष तक कठिन तपश्चरण किया था। तपश्चर्याके प्रभावसे मुनियोंके शरीरमे नाना प्रकारकी ऋद्धियां उत्पन्न होती हैं पर वे उनकी श्रोरसे निर्भान ही रहते हैं। विष्णुकुमार मुनिको विक्रिया ऋदि उत्पन्न थी पर उन्हें इसका पता ही नहीं था। जुल्लकके कहनेसे उनका उस श्रोर ध्यान गया। सनत्कुमार चक्रवर्ती तपश्चरण करते थे। दुष्कर्मके उदयसे उनके शरीरमे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो गये फिर भी उस श्रोर उनका ध्यान नहीं गया। एक वार इन्द्र की सभामे इसकी चर्चा हुई तो एक देव इनकी परीक्षा करने के लिये स्त्राया। जहाँ वे तप करते थे वहाँ वह देव एक वैद्यका रूप धरकर चक्कर लगाने लगा तथा उनके शरीर पर जो रोग दिख रहे थे उन सवकी श्रौषधि श्रपने पास होनेकी टेर लगाने लगा। एक दो दिन हो गये। मुनि विचार करते हैं कि यदि यह वैद्य है तो नगरमे क्यों नहीं जाता ? यहाँ क्या माड़-मंखाड़ों की खोंपधि करने

त्राया है ? उन्होंने उसे वुलाया और पृद्धा कि तुम्हारे पास क्या औपधियाँ है ? उसने जो रोग उनके शरीर पर दिख रहे थे उन सबकी औपधियाँ वता हीं। मुनिराजने कहा कि भाई! वे रोग तो मुक्ते हैं नहीं। ये सब शरीरमें अवस्य हैं पर उसके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है ? मैं तो आत्मद्रव्य हूँ जो कि उससे मर्चया भिन्न हैं। उसे उन रोगोंमेंसे एक भी रोग नहीं है। हाँ, उसे जन्म-मरणका रोग है। यदि तुम्हारे कोलामें उसकी ओपधि हो तो देखों। वैद्य असली रूपमें प्रकट हो चरणोंमें गिर कर कहता है कि भगवन ! उस रोगकी औपधि तो आपके ही पास है। हम देव लोग तो इसकी औपधि जो तम है उससे बिक्कित ही रहते हैं। चाहते हैं कि तम करें पर हमारा यह वैकिथिक शरीर उसमें वायंक है। कहनेका तात्मर्थ यह है कि चिद किसी तरह गृहस्थीके जालसे छुटकारा मिला है तो दूसरे जालमें नहीं फॅसना चाहिये और निर्दृन्द होकर आत्माका कल्याण करना चाहिये।

अन्तरङ्ग तपोंमें स्वाध्यायको भी तप वताया है। स्वाध्यायसे आत्मा और इनात्माका वोध होता है इसिलये प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमें प्रशृति करना चाहिये। आचार्योकी युद्धि तो देखों, उन्होंने शास्त्र पढ़नेके लिये 'स्वाध्याय' यह कितना सुन्दर शब्द चुना है। अरे शान्त्र पढ़ते हो तो उसके लिये 'शास्त्राध्याय' राज्य चुनते पर उन्होंने स्वाध्याय शब्द चुना है। इसका तात्मय यह है कि शास्त्र पढ़कर स्वको पढ़ो—अपन आपको पहिचानो। यदि ग्यारह अङ्ग और नो पूर्वको पढ़नेके बाद भी स्वको नहीं पढ़ सके तो उस भारभूत ज्ञानसे कोन सा लाभ होनेवाला है ? इनना ज्ञान तो इस जीवन अनन्तवार प्राप्त किया परन्तु मंसार न्यारमे पार नहीं हो सका। जैन सिद्धान्तमें अनेक शास्त्रोंको ज्ञाननेकी प्रतिष्ठा नहीं है किन्तु सम्यग्ज्ञानकी प्रतिष्ठा है। यहाँ तो मात्र

तुपमात्रको भिन्न भिन्न जानने गाले मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति वताकर मोच्च पहुँचनेकी वात लिखो है त्र्यतः ज्ञान थोड़। भी हो तो हानि नहीं परन्तु मिथ्या न हो उस वातका ध्यान रक्खो।

सप्तम ख्रध्यायमे आपने ग्रुभालावका वर्णन सुनते समय छिटिमादि पाँच व्रतोंका वर्णन सुना है। उसमे उन्होंने उन व्रतोंकी स्थिरताके लिए पाँच पाँच भावनाओंका वर्णन किया है। उसपर ध्यान दीजिये। जिन कामोसे व्रतमे वाधा होती दिखी उन्हीं उन्हीं कामोपर ख्राचार्यने पहरा वैठा दिया है। जैसे मनुष्य हिंसा करता है तो किन किन कार्योंसे करता है १ वचनसे कुछ वोलकर, २ मनसे कुछ विचार ३ शरीरसे चलकर, ४ किन्हीं वस्तुश्रोंको रख तथा उठाकर श्रोर ५ भोजन श्रहणकर इन पाँच कार्योंसे ही करता है। ख्राचार्यने इन पाँचो कार्योंपर पहरा वैठाते हुए लिखा है—

'वाड्मनोगुप्तीर्यादानिन्तेपणसिमत्यालोकितपानभोजनानि पद्ध' श्रयान् वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासिमिति, श्रादानिन्तेपण सिमिति श्रोर श्रालोकितपानभोजन इन पाँच कार्यों से श्राहिसा श्रतकी रच्चा होती है। इसी प्रकार सत्यव्रत, श्रचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत श्रोर परिग्रहत्यागव्रतकी वात समक्षना चाहिये।

उन्होंने एक वात और लिखी है 'निःशल्यो व्री' अर्थात व्रतीको निःशल्य होना चाहिये। माया, मिध्यात्व और निदान ये तीन शल्य हैं। ये काँटेकी तरह सदा चुभती रहती हैं इसलिये व्रतीको उनसे दूर रहना चाहिये। मायाका अर्थ है भीतर कुछ और वाहर कुछ। व्रतीको ऐसा कभी नहीं होना चाहिये। कितने ही व्रती अन्तरङ्ग कुछ हैं और लोक व्यवहारमें कुछ और ही प्रवृत्ति करते हैं। जिसकी ऐसी प्रवृक्तसे भरी वृत्ति है वह व्रती कैसे होसकता है हदय यदि दुर्वल है तो कठिन व्रत कभी धारण नहीं करो तथा हदयकी दुर्वलता छिपाकर बाह्य प्रवृत्तिके द्वारा उन्नत वननेकी भावना निन्दा

भावना है । इससे व्रतीको सदा यह भय वना रहता है कि कहीं मेरी हृदयकी दुर्वेलता कोई जान न जावे । इसी तरह जिस व्रतको धारण किया है उसमें पूर्ण श्रद्धा होना चाहिये। उसके विना मिध्यात्व श्रवस्था रहेगी तथा श्रद्धाकी दढ़ता न होनेसे श्राचार भी निर्मल नहीं रह सकेगा इसलिये जितना आचरण किया जाय उनका विवेक और श्रद्धाके साथ किया जाय। यदि व्रतीके विवेक नहीं होगा तो वह उत्सूत्र प्रवृत्ति करेगा श्रौर श्रपनी उस प्रवृत्तिसे जनतापर श्रातंक जमाने की चेष्टा करेगा। यदि भाग्यवश जनता विवेकत्रती हुई श्रौर उसने उसकी उत्सूत्र प्रवृत्तिकी श्रालोचना शुरू कर दी तो इससे हृदयमे चोभ उत्पन्न हो जायगा जो निरन्तर अशान्तिका कारण होगा। इसके सिवाय व्रतीको व्रत धारण कर उसके फलस्वरूप किसी भोगोपभोगकी त्राकांचा नहीं रखनी चाहिये, क्योकि ऐसा करनेके कारण उसकी आत्मामे निर्मलता नहीं आ सकेगी। जहाँ स्वार्थकी गन्ध है वहाँ निर्मलता कैसी ? व्रतीको तो केवल यह भावना रखना चाहिये कि पापका परित्याग करना हमारा कर्तव्य है जिसे मैं कर रहा हूँ। इससे क्या फलकी प्राप्ति होगी १ इस प्रपञ्चमे पड़नेकी आवश्यकता नहीं। एक वार सही मार्गपर चलना शुरू कर दिया तो लच्य स्थानकी प्राप्ति अवश्य होगी उसमे सन्देहकी वात नहीं है।

#### : = :

त्यागका श्रर्थ छोड़ना है, पर जब यह श हो रितभी न छोड़ना वने। संसारके समस्त पदार्थ श्रपना श्रपना चतुष्टय लिये स्वतन्त्र स्वतन्त्र विद्यमान हैं। किसीको यह ए करनेकी किसीमे सामर्थ्य

नहीं। हमारा कमण्डलु वहां रक्खा श्रीर में यहां वैठा, मैंने कमण्डलुको क्या प्रहुण कर लिया १ श्रापकी सम्पत्ति श्रापके घर है। श्राप यहां बेठे हैं। श्रापने सम्पत्तिको क्या महरण कर लिया ? जन महुण ही नहीं किया तन त्यागना कैसा <sup>१</sup> वाह्यमे तो ऐसा ही हे परन्तु मोहके कारण यह जीव उन पदार्थींमे 'ये मेरे हैं' 'मैं इनका स्यामी हुं इस प्रकारका मूर्च्छाभाव लिये बैठा है वही मूर्च्छाभाव छोड़नेका नाम त्याग है। जिसका यह मूच्छाभाव छूट गया उसकी छात्मा निःशन्य हो गई। यह मनुष्य पर पदार्थको अपना मान उसके उप्र श्रनिष्ट परिएामनसे व्यर्थ ही हर्प-विपादका श्रनुभव फरता है। यदि परमे परत्य श्रौर निजमे निजत्व वुद्धि हो जावे तो त्यागका त्रानन्द उपलब्ध हो जावे। इस तरह निश्चयसे ममता भावको छोडना त्याग कहलाता है। वहिरङ्गमे आहार, श्रौपधि, ज्ञान तथा अभयसे त्यागके चार भेद हैं। जब यहां भोगभूमि थी नव सवकी एकसी दशा थी, कल्पवृत्तोंसे सवकी इच्छाएं पूर्णे होती थीं उमलिये किसीसे किसीको कुछ प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं थी। मुनिमार्गका भी श्रभाव था इसलिये श्राहारादि देना अतावश्यक था परन्तु जवसे कर्मभूमि प्रचलित हुई श्रीर विषमता को लिए हुए मनुष्य यहा उत्पन्न होने लगे तबसे पारस्परिक सहयोगकी आवश्यकता हुई। मुनिमार्गका भी प्रचलन हुआ इसलिये आहारादि देना आवश्यक हो गया। फलस्वरूप उसी समयसे त्याग धर्मका आविर्भाव हुआ। दाताको हृद्यसे जब तक लोभ कषायकी निवृत्ति नहीं होती तब तक वह किसीके लिये एक कप दिंका भी देनेके लिये तैयार नहीं होता पर जब अन्त-रइसे लोभ निकल जाता है तब छह खण्डका वैभव भी दूसरेके लिये सौंपनेमे देर नहीं लगती। मुनिने श्रावकसे आहार लिया, श्रावकने भक्तिपूर्वक दिया इसमे दोनोंका कल्याण हुआ। दाताको तो इसलिये हुआ कि उसकी आत्मासे लोभकषायकी निवृत्ति हुई और

मुनिका इसिलये हुआ कि आहार पाकर उसके औदारिक शरीरमें स्थिरता आई जिससे वह रत्नत्रयकी वृद्धि करनेमें समर्थ हुआ। मुनि अपने उपदेशसे अनेक जीवोंको सुमार्ग पर लगावेंगे इस दृष्टिसे अनेक जीवोंका कल्याण हुआ। उस तरह विचार करनेपर त्यागधर्म अत्यधिक स्वपर कल्याणकारी जान पढ़ता है। मुनि अपने पढ़के अनुकूल निश्चय त्यागधर्मका पालन करते हैं और गृहस्थ वाह्य त्यागधर्मका पालन करते हैं। इतना निश्चत है कि संसारका समस्त व्यवहार त्यागसे ही चल रहा है। अन्यथा जिसके पास जो है वह किसीके लिए कुछ न दे तो क्या संसारका व्यवहार चल जावेगा?

एक वार एक साधु नदीके किनारे पहुँचा। दूसरी पार जानेके लिए नाव लगती थी। नावका किराया दो पैसा था। साधुके पास पैसाका अभाव था इसलिए वह नदीके इस पार ही ठहरनेका उद्यम करने लगा। इतनेमे एक सेठ आया, वोला-वावाजी। रात्रिको यहाँ कहाँ ठहरेगें । उस ख्रेर चिलये, वहाँ ठहरनेका ख्रच्छा स्थान है। साधुने कहा वेटा । नावमे वैठनेके लिए दो पैसा चाहिये। मेरे पास है नहीं अतः यहीं रात्रि वितानेका विचार किया है। सेठने कहा पैसोकी कोई वात नहीं, आप नावपर वैठिये। सेठ और साधु-दोनों नाव पर बैठ गये। सेठने चार पैसे नाववालेको दिये। जब नावसे उतरकर दूसरी श्रोर दोनों पहुँच गये तव सेठने साधुसे कहा वावाजी श्राप वहुत त्यागका उपदेश देते हो । यदि श्रापके समान मैंने भी पैसे त्याग दिये होते तो आज क्या दशा होती ? श्रवः त्य,गकी वात छोड़ो । साधुने हॅसकर कहा—वेटा ! यदि नटी पार हुई है तो चार पैसोंके त्यागसे ही हुई है। यदि तूँ ये पैसे अपनी ख्रंटीमें रखे रहता तो यह नाववाला तुमें कभी भी नदीसे पार नहीं उतारता। सेठ चुप रह गया।

कहनेका तात्पर्य यही है कि त्यागसे ही संसारके सब काम चलते हैं।

> पानी वाढ़े नावमें घरमें वाढे दाम। दोनों हाथ उलीचिये यही सयाना काम॥

यदि नावमे पानी वढ़ रहा है तो दोनों हाथोंसे उलीचकर उसे वाहिर करना ही बुद्धिम ता है। इसी प्रकार यदि घरमें सम्पत्ति वढ़ रही है तो उसे दानके द्वारा उत्तम कार्यमें खर्च करना ही उसकी रहाका उपाय है। दान सम्मानके साथ देना चाहिये और उसके वदले किसी प्रकारका अभिमान हृदयमें उत्पन्न नहीं होना चाहिये, अन्यथा पैसाका पैसा जाता है और उससे आत्माका लाभ भी कुछ नहीं होता। दानमें लोभ कषायसे निष्टित्ता होनेके कारण दाताकी आत्माको लाभ होता है। यदि लोभके वदले उसके दादा मानका उदय आत्मामें हो गया तो इससे क्या लाभ कहलाया। उत्तम पात्रके लिये दिया हुआ दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। धन्यकुमारकी कथा आप लोग जानते हैं। घरसे निकलनेपर उसे जो स्थानस्थानपर अनायास ही लाभ हुआ था वह उसके पूर्व पर्यायमें दिये दानका ही फल था। समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

चितिगतिमव वटवीज पात्रगतं दानमल्यमिप काले । फजति च्छायाविभवं बहुफत्तिमष्टं शरीरभृताम्॥

श्रर्थात् जिस प्रकार योग्य भूमिमे पड़ा हुन्ना वटका छोटा सा बीज कालान्तरमें वड़ा वृत्त बनकर छायाके विभवको प्रदान करता है उसी प्रकार योग्य पात्रके लिये दिया हुन्ना छोटा सा दान भी समय पाकर ऋपरिमित वैभवको प्रदान करता है।

> जब वसन्त याचक भये दीने तरु मिल पात। इससे नव पल्जव भये दिया व्यर्थ नहिं जात॥

एक किवके सामने पूर्तिके लिये समस्या रखी गई—'हिया व्यर्थ निह जात' जिसकी उसने उक्त प्रकार पूर्ति की। कितना सुन्दर भाव इसके अन्दर भर दिया है। वसन्त ऋतुमें प्रथम पतमः आती है जिससे समस्त बृद्धोंके पुराने पत्त मः जाते हैं और उसके वाद उन बृद्धोंमें नये लहलहाते पह्न उत्पन्न होते हैं। किवने यही भाव इसमे अंकित किया है कि जब वसन्त ऋतु याचक हुआ अर्थात् उसने बृद्धोंसे पत्तोंकी याचना की तब सब बृद्धोंने उसे अपने अपने पत्ते दे दिये। उसीके फलस्वरूप उन्हें नये नये पल्लवोंकी प्राप्ति होती है क्योंकि दिया दान कभी व्यर्थ नहीं जाता है। मान वड़ाईके लिए जो दान दिया जाता है वह व्यर्थ जाता है। इसके लिए महाभारतमे एक उपकथा आती है—

युद्धमें विजयोपरान्त युधिष्ठिर महाराजने एक वड़ा भारी यज्ञ किया। उसमें हजारो ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। जिस स्थान पर ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया उस स्थानपर युधिष्ठिर महाराज खड़े हुए कुछ लोगोंसे वार्ता कर रहे थे। वहीं एक नेवला जूठनमें वार वार लोट रहा था। महाराजन नेवलासे कहा—यह क्या कर रहा है ? तव नेवलाने कहा—महाराज! एक गाँवमें एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री थी, एक लड़का था और लड़केकी स्त्री थी। इस तरह चार श्रादमियोंकी उसकी गृहस्थी थी। वेचारे वहुत गरीव थे। खेतों परसे शिला वीनकर लाते और उससे अपनी गुजर करते थे। एक वार ३ दिनके अन्तरसे उन्हें भोजन प्राप्त हुआ। शिला वीनकर जो अनाज उन्हें मिला उससे वे ब्राठ रोटियाँ वनाकर तथा दो दो रोटियाँ अपने हिस्सेकी लेकर खाने वेठे। वेठे ही थे कि इतनेमें एक गरीव आदमी चिल्लाता हुआ आया कि सात दिनसे मुखमें अनाजका दाना भी नहीं गया, भूखके मारे प्राण निकले जा रहे हैं। उसकी दीन वाणी सुन ब्राह्मणा दया आगई

जिससे उसने यह विचार कर कि श्रभी मुमे तो दो तीन ही दिन हुए हैं पर इस वेचारेको सात दिन हो गये हैं, अपनी रोटियाँ उसे दें दीं। वह आदमी तृप्त नहीं हुआ। तब बाह्मण अपनी स्त्रीकी श्रोर देखने लगा। ब्राह्मणीने कहा कि श्राप भूखे रहे श्रीर मैं भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है ? यह कह उसने भी अपनी रोटियाँ उसे दे दीं। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ। तब दोनों लड़केकी श्रोर देखने लगे। लड़केने कहा कि हमारे वृद्ध माता पिता भूखे रहें त्र्यौर मै भोजन करूँ यह कैसे हो सकता है ? यह कह उसने भी श्चपनी रोटियाँ उसे खिला दीं। वह फिर भी तृप्त नहीं हुआ तव तीनों लड़केकी स्त्रीकी स्रोर देखने लगे। उसने भी कहा कि यद्यपि मैं आपके घर उत्पन्न नहीं हुई हूं तथापि आप लोगोंके सहवाससे मुममें भी कुछ-कुछ उदारता श्रीर दयालुता श्राई है यह कहकर उसने भी अपनी रोटियाँ उसे खिला दीं। वह भूखा धादमी तृप्त होकर आशीर्वाद देता हुआ चला गया। चारोंके चारों भूखे रह गये। महाराज ! जिस स्थान पर उस गरीवने वैठकर भोजन किया था, मैं वहाँसे निकला तो मेरा नीचेका भाग स्वर्णमय हो गया। अब आधा स्त्रर्णमय और आधा चर्ममय होनेसे सुमे श्रपना रूप श्रच्छा नहीं लगा। इसी बीच मैंने सुना कि महाराजके यहाँ यज्ञमे हजारों ब्राह्मणोंका भोजन हुआ है। वहाँ जाकर लोटूँगा तो पूरा स्वर्णमय हो जाऊँगा। यही सुनकर मैं यहाँ श्राया श्रीर बड़ी देरसे जूँ ठनमे लोट रहा हूँ परन्तु मेरा शेष शरीर स्वर्णमय नहीं हो रहा है। महाराज । जान पड़ता है आपने यह ब्राह्मण्मोजन करुणावुद्धिसे नहीं कराया, केवल मान वढ़ाईके लिये लोकन्यवहार देख कराया है।... कथा तो कथा ही है पर इससे सार यही निकलता है कि मान वढ़ाईके उद्देश्यसे दिया दान निष्फल जाता है। दान देते समय पात्रकी योग्यता श्रौर श्रावश्यकता

पर भी दृष्टि डालना चाहिये। एक स्थान पर कहा है-

दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्। व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीक्जस्य किमौषधैः॥

त्रर्थात् हे युधिष्ठर । दिर्द्रोंका भरण पोषण करो, सम्पन्न व्यक्तियोंको धन नहीं दो। रुग्ण मनुष्यके लिए श्रीपिध हितकारी है, नीरोग मनुष्यको उससे क्या प्रयोजन ?

प्रसन्नताकी बात है कि जैन समाजमे दान देनेका प्रचार अन्य समाजोंकी अपेचा अधिक है। प्रतिवर्ष लाखों रुपयोंका दान समाजमें होता है और उससे समाजके उत्कर्षके अनेक कार्य हो रहे हैं। पिछले पचास वर्षोंसे आपकी समाजमें जो प्रगति हुई है वह आपके दानका ही फल हैं।

श्रष्टम श्रध्यायमे श्रापने वन्धतत्त्वका वर्णन सुना है। वन्धका प्रमुख कारण मोहजन्य विकार है। मिध्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कपाययोगा वन्धहेतवः' इस सूत्रमे जो वन्धके कारण वतलाये हैं उनमे योगको छोड़कर शेप सब मोहजन्य विकार ही तो हैं। श्रन्य कमोंके उदयसे जो भाव श्रात्मामे उत्पन्न होते हैं उनसे नवीन कमें वन्ध नहीं होता। परन्तु मोह कमेंके उदयसे जो भाव होता है वह नवीन कमेंवन्धका कारण है। हुन्दहुन्द स्वामीने भी समयसार-में कहा है—

रत्तो वंधदि कम्म मुंचदि जीवो विरागसपत्तो। एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ञ॥

त्रर्थात् रागी प्राणी कर्मोको वाँधता है श्रौर राग रहित प्राणी कर्मोंको छोड़ता है। वन्धके विपयमें जिनेन्द्र भगवान्का यही उपदेश है, श्रतः कर्मोंमे राग नहीं करो। इस रागसे वचनेका प्रयत्न करो। यह राग श्राग दहे सदा तात समामृत 'सेड्ये' यह राग रूपी श्राग

सदा जलाती रहती है इसिलये इससे वचनेके लिए सदा समता-भावरूपी अमृतका सेवन करना चाहिये। यह संसारचक्र अनादि कालसे चला आ रहा है और सामान्यकी अपेचा अनन्त काल तक चलता रहेगा। पञ्जास्तिकायमे श्री कुन्दकुन्ददेवने लिखा है—

गिंदमिधगदस्स देहो देहादिंदियाणि नायते। जो खलु ससारत्थो नीवो तत्तो दु होदि परिणामो॥ परिणामादो कम्मं कम्मादो गिंदिसु होदि गदी। गिंदमिधगदस्स देहो देहादो इदियाणि नायते॥ तेहिं दु विषयगाहण तत्तो रागो व दोसो वा। नायदि जीवस्सेव भावो ससारचक्कवालिम्म॥ इदि जिणवरेहि भिणादो अर्णादिणिधणो सणिधणों वा।

जो संसारमें रहनेवाले जीव हैं उनके स्निग्ध परिणाम होता है, परिणामोंसे कर्मका वन्ध होता है, कर्मसे जीव एक गतिसे अन्य गतिमे जाता है, जहाँ जाता है वहाँ देहग्रहण करता है, देहसे इन्द्रियोंका उत्पाद होता है, इन्द्रियोंके द्वारा विपय प्रहण करता हैं, विषय ग्रहरासे रागादि परिसामोंकी उत्पत्ति होती है फिर रागादिकसे कर्म श्रौर कर्मसे गत्यन्तरगमन, फिर गत्यन्तरगमन से देह देहसे इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंसे त्रिपय प्रहण, विषयोंसे स्निग्ध परिणाम, स्निग्धपरिणामोंसे कर्म और कर्मसे वही प्रक्रिया इस तरह यह संसार चक्र वरावर चला जाता है। यदि इसकोमिटानाहै तो क प्रक्रियाका अन्त करना पडेगा। इस प्रक्रियाका मृत कारण स्तिग्ध परिणाम है। उसका अन्त करनाही इस भवचक्रके विध्वंस-का मूल हेतु है। इसको दूर करनेके उपाय वड़े वड़े महा-त्माओंने वतलाए हैं। आज संसारमे धर्मके जितने आयतन दृष्टिपय हैं वे इसी चक्रसे वचनेके साधन हैं । किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि डालो तो ये सर्व उपाय पराश्रित हैं। केवल स्वाश्रित उपाय ही

·स्वद्वारा श्रर्जित संसारके विध्वंसका कारण हो सकता है। जैसे शरीरमें यदि श्रन्न खाकर श्रजीर्ण हो गया है तो उसके दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि उदरसे पर द्रव्यका सम्बन्ध पृथक् कर दिया जावे । उसकी प्रक्रिया यह है कि प्रथम तो नवीन भोजन त्यागी तथा उद्रमे जो विकार है वह या तो काल पाकर स्वयमेव निर्गत हो जावेगा या शीव ही पृथक् करना है तो चमन-विरेचन द्वारा निकाल दिया जावे। ऐसा करनेसे निरोगताका लाभ अनायास हो सकता है। मोचमार्गमे भी यही प्रक्रिया है। चिलक जितने कार्य हैं उन सर्वकी यही पद्धति है। यदि हमे संसार वन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलापा है तो सबसे प्रथम हम कौन हैं ? क्या हमारा स्वरूप है ? वर्तमान क्या है ? तथा संसार क्यों श्रिनिष्ट है ? इन सब बातोका निर्णय करना श्रावश्यक है। जब तक उक्त वातोंका निर्णय न हो जावे तव तक उसके अभावका प्रयत्न हो ही नहीं सकता। श्रात्मा श्रहम्प्रत्ययवेद्य है । उसकी जो श्रवस्या हमें संसारी वना रही है उससे मुक्त होनेकी हमारी इच्छा है तव केवल इच्छा करनेसे मुक्तिके पात्र हम नहीं हो सकते। जैसे जल श्रग्निके निमित्तसे उपए होगया है। श्रव इम माला लेकर जपने लगें कि 'शीतस्पर्शवज्जलाय नमः' तो क्या इससे अनल्प कालमें भी जल शीत हो जायगा ? नहीं. वह तो उप्ण स्पर्शके दूर करनेसे ही शीत होगा। इसी तरह हमारी आत्मामें जो रागादि विभाव परिणाम हैं उनके दूर करनेके अर्थ 'श्री वीतरागाय नमः' यह जाप असंख्य कल्प भी जपा जावे तो भी आत्मामें वीतरागता न आवेगी किन्तु रागादि निवृत्तिसे श्रनायास वीतरागता श्रा जावेगी। वीत-रागता नवीन पदार्थ नहीं, आत्माकी निर्मोह अवस्था ही वीतरागता है जो कि शक्तिकी अपेक्षा सदा विद्यमान रहती है। जिसके उदयसे परमें निजत्व बुद्धि होती है वहीं मोह है। परको निज मानना यह

श्रजान भाव हे श्रर्थान् मिथ्याज्ञान है। इसका मूल कारण मोहका उद्य है। ज्ञानावरणके च्योपशमसे ज्ञान तो होता है परन्तु विपर्यय होता है। जैसे गुक्तिकामे रजतका विश्रम होता है। यद्यपि ग्रुक्ति रजत नहीं हो गई तथापि दूरत्व एवं चाकचक्यादि कारणोंसे भ्रान्ति हो जाती है। यहाँ भ्रान्तिका कारण दूरत्यादि दोप है। जैसे कामला रोगी जब राह्न देखता है तब 'पीतः राह्नः' ऐसी प्रतीति करता है। यद्यपि शद्भमें पीतता नहीं, यह तो नेत्रमे कामला रोग होनेसे शद्भमें पीतत्य भासमान है। यह पीतता कहाँसे आई! तव यही कहना पड़ेगा कि नेत्रमे जो कामला रोग है वही इस पीतत्वका कारण है। इसी प्रकार आत्माम जो रागादि होते हैं उनका मूल कारण मोहनीय कर्म है। उसके दो भेद हैं—१ दर्शनमोह श्रौर २ चारित्रमोह। **उनमे दर्शनमोहके उदयसे मिध्यात्व श्रौर चारित्रमोहके उदयसे** राग द्वेप होते हैं। उपयोग श्रात्माका ऐसा है कि उसके सामने जो श्राता है उसीका उसमे प्रतिभास होने लगता है। जैसे नेत्रके समक्ष जो पदार्थ श्राता है वह उसका ज्ञान करा देता है। यहाँतक तो कोई आपत्ति नहीं परन्तु जो पदार्थ ज्ञानमे आवे उसे आत्मीय मान लेना आपत्तिजनक हैं क्योंकि वह मिथ्या अभिप्राय है। जो पर वस्तुको निज मानता है, संसारमे लोग उसे ठग कहते हैं परन्तु यह चोट्टापन छूटना सहज नहीं। श्रच्छे श्रच्छे जीव परको निज मानते हैं श्रोर उन पदार्थोंकी रचा भी करते हैं किन्तु श्रमिप्रायमे यह है कि ये हमारे नहीं। इसीलिये उन्हें सम्यग्ज्ञानी कहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें निज मान श्रनन्त संसारके पात्र होते हैं श्रतः सिद्ध होता है कि यह मोह परिएति ही बन्धका कारए है। इससे छुटकारा चाहते हो तो प्रथम मोह परिएतिको दूर कर आत्मस्वरूपमें स्थित होनेका प्रयास करो। इसीसे आत्मशान्ति प्राप्त होगी। परमार्थसे त्र्यात्मशान्तिका उपाय यही है कि परसे सम्वन्ध छोडा **जाय** श्रीर

श्रातमपरिण्तिका विचार किया जाय। विचारका मूल करण् सम्यग्जान है, सम्यग्जानकी प्राप्ति श्राप्तश्रतिसे होती है, श्राप्तश्रुति श्राप्ताधीन है, श्राप्त रागदि दोप रहित है श्रतः रागादि दोपोंको जानो. उनकी पारमार्थिक दशासे परिचय करो। रागादि दोपोंका त्याग ही संसार बन्धनसे मुक्तिका उपाय है। रागादिकोका यवार्थ स्वरूप जान लेना ही उनसे विरक्त होनेका मूल उपाय है।

### :3:

त्याग करते करते अन्तमे आपके पास क्या बचेगा १ इत्र नहीं। जिसके पास इन्छ नहीं बचा वह अिक कि कहलाता है और अिक क्रिक नका जो भाव है वही आिक क्रिक य कहलाता है। परिप्रहका त्याग हो जानेपर ही पूर्ण आिक क्रिक य धर्म प्रकट होता है। सुल आत्माका गुण है। भले ही वह वर्तमानमे विपरीत हप परिण्यन कर रहा हो पर यह निश्चित है कि जब भी वह प्रकट होगा तब आत्मामे ही प्रकट होगा यह अब सत्य है परन्तु मोहके कारण यह जीव परिप्रहको सुखका कारण जान उसके संचयमे रात दिन एक कर रहा है। 'परितो गृहाति आत्मानमिति परिप्रहः' जो आत्माको सब ओरसे पकड़ कर जकड़ कर रक्खे वह परिप्रहः' जो आत्माको सब ओरसे पकड़ कर जकड़ कर रक्खे वह परिप्रहः' चे परमार्थसे विचार किया जाय तो यह परिप्रह ही इस जीवको समन्तात्—सब ओरसे जकड़े हुए है। 'मूच्छी परिप्रहः।' आचार्य हमास्वामी महाराजने परिप्रहक्ता लक्षण मूच्छी रक्खा है। मैं इसका स्वामी हूँ, ये मेरे स्व हैं इस प्रकारका भाव ही मूच्छी है। इस मूच्छिक रहते हुए पासमे इन्छ भी न हो तब भी यह जीव

परिग्रही कहलाता है श्रौर मूच्छांके श्रभावमे समवसरणहूप विभूति-के रहते हुए भी श्रपरियह—परियह रहित कहलाता है। परियह सबसे वड़ा पाप है जो दशम गुग्णस्थान तक इस जीवका विण्ड नहीं छोड़ता। त्राज परिप्रहके कारण संसारमे त्राहि त्राहि मच रही है। जहाँ देखो वहीं परियहकी पुकार है। जिनके पास है वे उसे ऋपने पाससे श्रन्यत्र नहीं जाने देना चाहते श्रौर जिनके पास नहीं है वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं इसीलिये संसारमे संघर्ष मचा हुआ है। यदि लोगोंकी दृष्टिमे उतनी वात आ जाय कि परि-यह निवाहका साधन है। जिस प्रकार हमे भोजन, वस्त्र और निवासके लिए परिवहकी आवश्यकता है उसी प्रकार दूसरेके लिए भी इसकी त्रावश्यकता है त्रातः हमे त्रावश्यकतासे त्र्रिक त्रपने पास नहीं रोकना चाहिये तो संसारका कल्याण हो जाय। यदि परिप्रह्का कुछ भाग एक जगह अनावश्यक रुक जाता है तो दूमरी जगह उसके विना कमी होनेसे संकट उत्पन्न हो जाता है। शरीरके अन्दर जवतक रक्तका संचार होता रहता है तवतक शरीरके प्रत्येक श्रंग श्रपने कार्यमें दत्त रहते हैं पर जहाँ कही रक्तका संचार रुक जाता है वहाँ वह अङ्ग वेकार होजाता है और जहाँ रक्त रुक जाता है वहाँ मवाद पैदा हो जाता है। यही हाल परिश्रहका है। जहाँ यह नहीं पहुँचेगा वहाँ उसके विना संकटापन्न स्थिति हो जायगी श्रीर जहाँ रुक जायगा वहाँ मद-मोह विभ्रम त्रादि दुर्गुग उत्पन्न कर देगा। इसलिये जैनागममें यह कहा गया है कि गृहस्य अपनी श्रावश्यकतात्रोके श्रनुसार परिग्रहका परिमाण करे श्रोर मुनि सर्वथा ही उसका परित्याग करे।

त्राजके युगमे मनुष्यकी प्रतिष्ठा पैसेसे आँकी जाने लगी है इसलिये मनुष्य न्यायसे अन्यायसे जैसे वनता है वैसे पैसेका संचय कर श्रपनी प्रतिष्ठा वढ़ाना चाहता है। प्रतिष्ठा किसे चुरी लगती है ?

इस परित्रहकी छीना-मपटीमे मनुष्य माई माईका, पुत्र पिताका श्रौर पिता पुत्र तकका घात करता सुना गया है। इसके दुर्गुणोंकी श्रोर जव दृष्टि जाती है तब शरीरमे रोमाञ्च उठ त्राते हैं। चक्रवर्ती भरत ने श्रपने भाई वाहुवलिके ऊपर चक्र चला दिया। किसलिए १ पैसेके लिये। क्या वे यह नहीं सोच सकते थे कि श्राखिर यह भी तो उसी पिताकी सन्तान है जिसकी मैं हूं। यह एक न वशमें हुआ न सही, पट्खण्डके समस्त मानव तो वशमे आगये—आज्ञाकारी होगये पर वहाँ तो भूत मोहका सवार था इसलिए संतोष कैसे हो संकता था ? वे मन्त्रियों द्वारा निर्णीत दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध श्रीर मह-युद्धमे पराजित होनेपर भी जवल पड़े – रोपमे आगर्ये और भाईपर चकरत्त चलाकर शान्त हुए। उस समयके मंत्रियोंकी वुद्धिमानी देखो। वे सममते थे कि ये दोनों भाई चरमशरीरी-मोचगामी हैं। इनमेसे एकका भी विघात होनेका नहीं। यदि सेनाका युद्ध होता है तो हजारों निरपराध व्यक्ति मारे जावंगे इसिलये अपनी वलवत्ताका निर्णय ये दोनों अपने ही युद्धोंसे करें और युद्ध भी कैसे, जिनमे घातक शस्त्रोंका नाम भी नहीं ? यह उस समयके मन्त्री थे श्रौर त्राजके मन्त्रियोकी वात देखो। त्राप घरमेसे वाहर नहीं निकलेंगे पर निरपराध प्रजाके लाखों मानवोंका विध्वंस करा हेंगे। कौरव और पाण्डर्गेका युद्ध किंनिमित्तक था ? इसी परिप्रह निमित्तक तो था। कौरव श्रधिक थे इसलिए सम्पत्तिका श्रधिक भाग चाहते थे। पाण्डव यदि यह सोच लेते कि हम थोड़े हैं अतः हमारा काम थोड़ेसे ही चल सकता है। ऋर्ध भागकी हमें आवश्यकता नहीं है तो क्या महाभारत होता ? नहीं, पर उन्हें तो श्राधा भाग चाहिये था। कितने निरपराध सैनिकोंका विनाश हुआ इस ओर दृष्टि नहीं गई। जावे कैसे परिग्रहका आवरण नेत्रके उपर ऐसी पट्टी बाँध देता है कि वह पदार्थका सही रूप देख ही नहीं पाता।

संसारमें परिग्रह पापकी जड़ है। वह जहाँ जावेगा वहीं पर अनेक जपद्रव करावेगा। करावे किन्तु जिन्हे आत्महित करना है वे इसे त्याग करें। त्याग परिग्रहका नहीं मूच्छोंका होना चाहिये।

कितने ही लोग ऐसा सोचते हैं कि अभी परित्रहका अर्जन करो, पीछे दान आदि कार्योमे व्यय कर पुण्यका संचय कर लेंगे परन्तु आचार्य कहते हैं कि 'प्रचालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' अर्थात् कीचड़ धोनेकी अपेचा दूरसे ही उसका स्पर्श न करना अन्छा है। लच्मीको अंगीकार कर उसका त्याग करना कहाँकी युद्धिमानी है। कार्तिकेय मुनिने लिखा है कि वैसे तो सभी तीर्थङ्कर समान हैं परन्तु वासुपूज्य, मिल, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थङ्करोंने हमारी भक्ति विशेष है क्यों कि इन्होंने संपत्तिको अङ्गीकृत ही नहीं किया, जब कि अन्य तीर्थङ्करोंने सामान्य मनुष्यों-की तरह सम्पत्ति प्रहण कर पीछे त्याग किया। परित्रहवालोंसे पृछो कि उन्हे परिप्रहसे कितना सुख है शित्रसके पास कुछ नहीं है वह सुखकी नींद तो सोता है पर परिप्रहवालोंको यह नंसीव नहीं।

एक गरीव श्रादमी था, महादेवजीका भक्त था। उसकी भक्ति-से प्रसन्न होकर एक दिन महादेवजीने कहा—वोल क्या चाहता है ? महादेवजीको सामने खड़ा देख वेचारा घवड़ा गया। वोला— महाराज! कल सबेरे माँग छुंगा। महादेवजी ने कहा—श्रच्छा। वह श्रादमी सायंकलसे ही विचार करने वैठा कि महादेवजीसे क्या माँगा जाय। हमारे पास रहनेके लिये घर नहीं इसलिये यही माँगा जाय। फिर सोचता है जब महादेवजी मुंह मागा वरदान देनेको तैयार हैं तब घर ही क्यों माँगा जाय ? देखो ये जमींदार हैं, गाँवके समस्त लोगों पर रौव गाँठते हैं इसलिये हम भी जमींदार हो जावें तो श्रच्छा है। यह विचार कर उसने जमींदारी माँगनेका निर्णय किया। फिर सोचता है श्राखिर जब लगान भरनेका समय श्राता है तब ये तहसीलदारकी श्रारजू मिन्नत करते हैं इसलिये इनसे वडा तो तहसीलदार है, वही क्यों न वन जाऊँ ? इस तरह विचार कर वह तहसीलदार बननेकी श्राकांचा करने लगा । कुछ देर वाद उसे जिलाधीशका स्मरण श्राया तो उसके सामने तहसीलदारका पर फीका दिखने लगा । इस प्रकार एक के वाद एक इच्छाएं वढ़ती गई श्रोर वह निर्णय नहीं कर पाया कि क्या माँगा जाय । सारी रात्रि विचार करते करते निकल गई । सबेरा हुआ, महादेवजी ने पूछा—वोल क्या चाहता है ? वह उत्तर देता है — महाराज ! कुछ नहीं चाहिये । क्यों ? क्यों क्या, जब पासमे संपत्ति आई नहीं, आनेकी श्राशामात्र दिखी तब तो रात्रिभर नींद नहीं । यदि कदाचित आ गई तो फिर नींद तो एकदम विदा हो जायगी इसलिये महाराज मैं जैसा हूँ वैसा ही श्रच्छा हूँ । उदाहरण है श्रतः इससे सार श्रहण कीजिये । सार इतना ही है कि परिश्रह जञ्जालका कारण है श्रतः इससे निवृत्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

नवम अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन आपने सुना है। वास्तवमे विचार करो तो मोन्नके साधक ये दो ही तत्त्व हैं। नवीन कर्मोंका आस्तव रक जाय यही संवर है और पूर्ववद्ध कर्मोंका क्रम-क्रमसे खिर जाना निर्जरा है। संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेन्चा, परिपहजय और चारित्रके द्वारा होता है। उन कारणोंमे आचार्य महाराजने सर्वसे प्रथम गुप्तिका उल्लेख किया है। समस्त आस्त्रवोंका मृल कारण योग है। यदि योगों पर नियन्त्रण हो गया तो आस्त्रव अपने आप रक जावेंगे। उन तरह गुप्ति ही महासंवर है परन्तु गुप्तिका प्राप्त होना सहज नहीं। गुप्तिस्प अवस्था सतत नहीं हो सकती अतः उमके अभावमें प्रवृत्ति करना पड़ती है तव आचार्यने आदेश दिया कि भाई यदि प्रवृत्ति ही करना है तो प्रमाद रहित प्रवृत्ति करो। प्रमाद गिहन

प्रशृत्तिका नाम सिमिति है। मनुष्य चलता है, वोलता है, खाता है, किसी वस्तुको उठाता धरता है श्रोर मलमूत्रादिका त्याग करता है। इनके सिवाय यदि अन्य कर्म करता हो तो वताओ ? इसके समस्त कार्य उन्हीं पांच कर्मीम अन्तर्गत हो जाते हैं। श्राचार्य महाराजने पाच सिमितियोंके द्वारा इन पांचों कार्यों पर पहरा बंठा दिया फिर श्रनीतिमे प्रवृत्ति हो तो केसे हो ?

## : 90:

श्रात्माका उपयोग श्रात्मामे स्थिर नहीं रहता इसका कारण परिग्रह है। परिश्रहके कारण ही उपयोगमे सदा चळ्ळलता श्राती रहती है। श्राकिळ्ळत्य धर्ममे परिश्रहका त्याग होनेसे श्रात्माका उपयोग श्रन्यत्र न जाकर ब्रह्म श्र्यात् श्रात्मामे ही लीन होने लगता है। यथार्थमे यही ब्रह्मचर्य है। वाह्य ज्ञे यसे उपयोग हटकर श्रात्म-स्वरूपमे ही लीन हो जाय तो इससे वढ़कर धर्म क्या होगा ? इसी-लिये ब्रह्मचर्यको सबसे वड़ा धर्म माना है। ब्रह्मचर्यकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानमे होती है। श्रागममे वहाँ ही शीलके श्रठारह हजार भेदोक्ती पूर्णता वतलाई है। यद्यपि निद्धय नयसे ब्रह्मचर्यका यही स्वरूप है तथापि व्यवहारसे स्नीत्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं। स्वकीय तथा परकीय दोनों प्रकारकी स्त्रियोंका त्याग हो जाना पूर्ण ब्रह्मचर्य है श्रीर परकीय स्नीक त्यागकर स्वकीय स्त्रीमे संतोष रखना श्रथवा स्त्रीकी श्रपेत्ता स्वपुरुपमे संतोष रखना एकदेश ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही मनुष्यकी शोभा तथा प्रतिष्ठा है। चिरकालसे मनुष्योमें को कोटुम्बिक व्यवस्था चली श्रा रही है उसका कारण मनुष्यका

त्रह्मचर्य ही है। त्रह्मचर्यका सवसे वड़ा वाधक कारण कुसङ्गति है। कुसंगतिके चक्रमे पड़कर ही मनुष्य बुरी त्रादतोंमे पड़ता है इस लिये त्रद्धचर्यकी रचा चाहनेवाले मनुष्यको सर्व प्रथम कुसंगतिसे वचना चाहिये। शुभचन्द्राचार्यने वृद्ध सेवाको त्रह्मचर्यका साधक मानकर ज्ञानार्णवमे इसका विशाद वर्णन किया है। यहाँ जो उत्तमगुणोंसे सहित हैं उन्हे वृद्ध कहा है। केवल त्र्यवस्थासे वृद्ध मनुष्योंकी यहाँ विवचा नहीं है। मनुष्यके हृदयमें जव दुर्विचार उत्पत्र होते हैं तब उन्हे रोकनेके लिये लज्जा गुण बहुत कुछ प्रयत्न करता है। उत्तम मनुष्योंकी संगतिसे लज्जागुणको वल मिलता है। और वह मनुष्योंके दुर्विचारोंको परास्त कर देता है परन्तु जब नीच मनुष्योंकी संगति रहती है तब लज्जागुण त्रसहाय जैसा होकर स्वयं परास्त हो जाता है। हृदयसे लज्जा गई' फिर दुर्विचारोंको रोकनेवाला कौन है ?

श्रादर्श गृहस्थ वही हो सकता है जो श्रापनी ख्रीमें संतोप रखता है। उस एकदेश ब्रह्मचर्यका भी कम माहात्म्य नहीं है। सुदर्शन सेठकी रज्ञाके लिये देव दौड़े श्राते हैं। सीताजीके श्राग्नकुण्डकों जलकुण्ड वनानेके लिये देवोंका ध्यान श्राकर्पित होता है। यह क्या है १ एक शीलब्रतका ही श्रद्भुत माहात्म्य है। इसके विरुद्ध जो कुशील पापमे प्रवृत्ति करते हैं वे देर सवेर नष्ट हो जाते हैं उसमें संदेहकी बात नहीं है। जिन घरोंमें यह पाप श्राया वे घर वरवार ही हो गये श्रीर पाप करनेवालोंको श्रपने ही जीवनमें ऐसी दशा देखनी पड़ी कि जिसकी उन्हें स्वप्नमें भी संभावना नहीं थी। जिस पापके कारण रावणके भवनमें एक वच्चा भी नहीं वचा उसी पापको श्राज लोगोंने खिलीना बना रक्खा है।

जाहि पाप रावणके छीना रह्यों न मीना माहि । ताहि पाप लोगनने खिलीना कर राख्यों है।।

पाप पाप ही है। इसे जो भी करेगा वह दुःख उठावेगा। ब्रह्म-चारी मनुष्यको अपने रहन, वेषमूपा आदि सव पर दृष्टि रखना पड़ती है। वाह्य परिकर भी उज्जल वनाना पड़ता है क्योंकि इन सवका असर उसके ब्रह्मचर्यपर अच्छा नहीं पड़ता। आप भगवान् महावीर स्वामीके संवोधे हुए शिष्य हैं। भगवान् महावीर कौन थे ? वाल ब्रह्मचारी ही तो थे। अच्छा जाने दो उनकी वात, उनके पहले भगवान पार्श्वनाथ कैसे थे ? वे भी वालब्रह्मचारी थे और उनके पहले कौन थे <sup>१</sup> नेमिनाथ, वे भी ब्रह्मचारी थे। उनका ब्रह्मचर्य तो और भी आखर्यकारी हैं। वीच विवाहमें विरक्त हो दीचा उन्होंने धारण की थी। इस तरह एक नहीं तीन तीन तीर्थंकरोंने श्रापके सामने ब्रह्मचर्यका माहात्म्य प्रकट किया है। हम श्रपने आपको उनका शिष्य वतलाते हैं पर ब्रह्मचर्यकी खोर दृष्टि नहीं देते ! जीवन विलासमय हो रहा है और उसके कारण सूरतपर वारह वज रहे हैं फिर भी इस कमीको दूर करनेकी खोर लच्च नहीं जाता। की है मको हे की तरह मनुष्य संख्यामें वृद्धि होती जा रही हैं। वल-त्रीर्यका श्रभाव शरीरमे होता जा रहा है फिर भी ध्यान इस श्रोर नहीं जाता। एक वच्चा माँके पेटमें और एक श्रख्नतके नीचे है फिर भी मनुष्य विषयसे उप नहीं होता। पशुमे तो कमसे कम इतना विवेक होता है कि वह गर्भवती स्त्रीसे दूर रहता है पर हाय रे मनुष्य! तूं तो पशुसे भी अधम दशाको पहुँच रहा है। तुमे गर्भवती स्त्रीसे भी समागम करनेमें संकोच नहीं रहा। इस स्थितिमें जो तेरे सन्तान उत्पन्न होती है उसकी अवस्थापर भी थोड़ा विचार करो। किसीके लीवर बढ़ रहा है तो किसीके पन्नाघात हो रहा है, किसीकी श्रॉंख कमजोर है तो किसीके दॉत दुर्वेल हैं। यह सर्व क्यों है ? एक ब्रह्मचर्यके महत्त्वको नहीं सममनेसे है। जब तक एक वचा मौंका दुग्धपान करता है तव तक दूसरा वचा उत्पन्न न

किया जाय तो वच्चे भी पुष्ट हों तथा माता पिना भी स्वस्थ रहे। त्राज तो स्त्रीके दो तीन वच्चे हुए नहीं कि उसके शरीरमे बुढापाके चिह्न प्रकट हो जाते हैं। पुरुषके नेत्रों पर चश्मा आजाता है और मुँहमे पत्थरके टॉत लगवाने पड़ते हैं। जिस भारतवर्षमें पहले टी. वी. का नाम नहीं था वहाँ त्राज लाखोंकी संख्यामे इस रोगसे यसित हैं। विवाहित स्त्री पुरुपोंकी वात छोड़िये, स्त्रव तो स्रविवाहित वालक वालिकायें भी इस रोगकी शिकार हो रही हैं। इस स्थितिमे भगवान् ही देशकी रत्ता करें। एक राजा ज्योतिष विद्याका वड़ा प्रेमी था। वह मुहूर्त दिखाकर ही स्त्री समागम करता था। राजाका ज्योतिपी तीन सालमे एक वार मुहूर्त निकाल कर देता था। इससे राजाकी स्त्री वहुत कुढ़ती रहती थी। एक दिन उसने राजासे कहा कि ज्योतिषी जी आपको तो तीन साल वाद मुहूर्त शोध कर देते हैं और स्वयं निजके लिए चाहे जव मुहूर्त निकाल लेते हैं। उनका पोथी-पत्रा क्या जुदा है ? देखों न, उनके प्रति वर्ष वच्चे उत्पन्न हो रहे हैं। स्त्रीको वात पर राजाने ध्यान दिया च्रौर ज्योतिषीको बुलाकर पूछा कि महाराज । क्या आपका पोथी-पत्रा जुदा <sup>है १</sup> च्योतिषीने कहा - महाराज । इसका उत्तर कल राजसभामे टूँगा। दूसरे दिन राजसभा लगी हुई थी। सिंहासन पर राजा आसीन थे। जनके दोनों **त्रोर तीन तीन वर्षके अन्तरसे हुए दोनों** वच्चे सुन्दर वेष-भूपामे वैठे थे। राजसभामे ज्योतिषी जी पहुँचे। प्रति वर्ष उत्पन्न होनेवाले वच्चोमेसे वे एकको कन्धेपर रखे थे, एकको वगलमे दावे थे और एकको हाथसे पकड़े थे। पहुँचने पर राजाने उत्तर पूछा। ज्योतिपीने कहा—महाराज । मुहूर्तका वहाना तो मेरा छल था। यथार्थ वात यह है कि आप राजा हैं। आपकी संतान राज्यकी उत्तराधिकारी है। यदि आपके अतिवर्ष संतान पैदा होती तो वह हमारे इन वच्चोंके समान होती। एकके नाक वह रही है, एककी

श्राँखोम कीचड़ लग रहा है, कोई चीं कर रहा है, कोई पीं कर रहा है। ऐसी संतानसे क्या राज्यकी रचा हो सकती है ? हम तो जाति के ब्राह्मण हैं। हमारे इन वच्चोंको राज्य तो करना नहीं है, सिर्फ श्रपना पेट पालना है सो येन केन प्रकारेण पाल ही लेंगे। श्रापके ये दोनो वच्चे तीन तीन सालके अन्तरसे हुए हैं और ये हमारे वच्चे एक एक वर्षके अन्तरसे हुए हैं। दोनोंकी सूरत मिलान कर लीजिये। राजा ज्योतिपीके उत्तरसे निरुत्तर हो गया तथा उसकी दूरदर्शितापर वहुत भसन्न हुऋा। यह तो कथा रही पर मैं ऋापको एक प्रत्यक्ष घटना सुनाता हूँ । मैं पं० ठाक्करदासजीके पास पढ़ता था। वह वहुत भारी विद्वान थे। उनकी स्त्री दूसरे विवाहकी थी पर उसकी परिणतिकी वात इम श्रापको क्या सुनावें ? एक वार पण्डित जी उसके लिए १००) सौ रुपयेकी साड़ी ले आये। साड़ी हाथ में लेकर वह पण्डित जी से ३ हती है-पण्डित जी ! यह साड़ी किसके लिये लाये हैं ? पण्डितजीने कहा कि तुम्हारे तिये लाया हूँ। उसने कहा कि श्रभी जो साड़ी मैं रोज पहिनती हूँ वह क्या बुरी है <sup>9</sup> बुरी तो नहीं है पर यह अच्छी लगेगी "
पण्डितजीने कहा। यह सुन उसने उत्तर दिया कि मै अच्छी लगने के लिए वस्त्र नहीं पहनना चाहती। वस्त्रका उद्देश्य शरीरकी रचा है, सौन्दर्य वृद्धि नहीं और सौन्दर्य वृद्धि कर मैं किसे त्राकर्षित करू ? त्रापका प्रेम मुमपर है यही मेरे लिये वहुत है। उसने वह साड़ी अपनी नौकरानीको दे दी और कह दिया कि इसे पहिन कर खराब नहीं करना। कुछ वट्टेसे वापिस होगी सो वापिस कर श्रा और रूपये श्रपने पास रख, समय पर काम आवेंगे। जब पण्डितजीके २ सन्तान हो चुकीं तब एक दिन उसने पण्डितजीसे कहा कि देखो अपने दो संतान एक पुत्र श्रीर एक पुत्री हो चुकीं। अब पापका कार्य वन्द कर देना चाहिये।

पण्डितजी उसकी वात सुन कर कुछ हीला-हवाला करने लगे तो वह स्वयं उठ कर उनकी गोदमें जा बैठी और वोली कि अव तो आप मेरे पिता तुल्य हैं और मैं आपकी वेटी हूँ। पण्डितजी गद्गद् स्वरसे वोले—वेटी! तूंने तो आज वह काम कर दिया जिसे मैं जीवन भर अनेक शास्त्र पढ़कर भी नहीं कर पाया। उस समयसे दोनों ब्रह्मचर्यसे रहने लगे। यदि किसीकी लड़की या वधू विधवा हो जाती है तो लोग यह कह कर उसे स्लाते हैं कि हाय! तेरी जिन्दगी कैसे कटेगी? पर यह नहीं कहते कि वेटी! तूं अनन्त पापसे वच गई, तेरा जीवन वन्धन मुक्त हो गया। अव तूं आत्महित स्वतन्त्रतासे कर सकती है।

प्रथमानुयोगमे एक कथा आती है—किसी आदमीसे पानी छाननेके वाद जो जीवानी होती है वह लुढ़क गई। उसने मुनिराज से इसका प्रायश्चित्त पूछा तो उन्होंने कहा कि स्वसिधारा व्रत धारण करनेवाले स्त्री-पुरुषको भोजन करात्र्यो । महाराज<sup>।</sup> इसकी परीचा कैसे होगी ? ... ऐसा उसने पूछा तो मुनिराजने कहा कि जब तेरे घरमें ऐसे स्त्री-पुरुष भोजन कर जावेंगे तब तेरे घरका मलिन चंदेवा सफेद हो जावेगा। मुनिराजके कहे अनुसार वह स्त्री-पुरुपोंको भोजन कराने लगा। एक दिन उसने एक स्त्री तथा पुरुपको भोजन कराया और देखा कि उनके भोजन करते करते मैला चंदेवा सफेद हो गया है। आदमीको विश्वास हो गया कि ये ही श्रसिधारा व्रतके धारक हैं। भोजनके वाद उसने उनसे पृद्धा तो उन्होंने परिचय दिया कि जब हम दोनोंका विवाह नहीं हुआ था, उसके पहले हमने शुक्ल पक्षमे श्रीर इसने कृष्ण पक्षमे ब्रह्मचर्य रखनेका नियम ले रक्खा था। श्रनजानमे हम दोनोंका विवाह हो गया। शुक्लपत्तके वाद कृष्णपत्तमें जब हमने उसके प्रति कामेच्छा प्रकट की तो उसने उत्तर दिया कि मेरे तो कृण्णपनमें

ब्रह्मचर्यसे रहनेका जीवन पर्यन्तके लिए नियम है। मैं उत्तर सुनकर शान्त हो गया। तदनन्तर जब कृष्णपत्तके बाद शुक्लपत्त श्राया श्रोर इसने श्रपना श्रनुराग प्रकट किया तब मैने कहा कि मैंने शुक्लपत्तमे ब्रह्मचर्यसे रहनेका नियम जीवन पर्यन्तके लिये विवाह के पूर्व लिया है। श्री शान्त हो गई। इस प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों साथ-साथ रहते हुए भी ब्रह्मचर्यसे श्रपना जीवन विता रहे हैं। देखो उनके संतोषकी बात कि सामग्री पासमें रहते हुए भी उनके मनमें विकार उत्पन्न नहीं हुश्रा तथा जीवन भर उन्होंने श्रपना श्रपना व्रत निभाया। श्रस्तु,

दशम अध्यायमें आपने मोचतत्त्रका वर्णन सुना है। इसमें आचार्य ने मोचका स्वरूप वतलाते हुए लिखा है कि 'बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोच्चो मोचः' अर्थात् बन्धके कारणोंका अभाव और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होनेसे जो समस्त कर्मोंका आत्यन्तिक चय हो जाता है वह मोच कहलाता है। निश्चयसे तो सब द्रव्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र है। जीव स्वतन्त्र है और कर्मरूप पुद्गल द्रव्य भी स्वतन्त्र हैं। इनका बन्ध नहीं, जब बन्ध नहीं तब मोच किसका ? इस तरह निश्चयकी दृष्टि से तो बन्ध और मोचका व्यव-हार बनता नहीं है परन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे जीव और कर्मरूप पुद्गल द्रव्यका एकचेत्रावगाह हो रहा है, इसलिये दोनोंका बन्ध कहा जाता है और जब दोनोंका एक चेत्रावगाह मिट जाता है तब मोच कहलाने लगता है। समन्तभद्र स्वामीने कहा है—

वन्धश्च मोक्षभ्व तयोश्च हेत् वद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः। स्याद्वादिनो नाथ! तनैव युक्तं नैकान्तदृष्टे स्वमतोऽसि शास्ता॥ श्रर्थात् बन्ध, मोत्त, इनके कारण, जीवकी बद्ध श्रीर मुक्त दशा तथा मुक्तिका प्रयोजन यह सव हे नाथ ! श्रापके ही संघटित होता है, क्योंकि श्राप स्वाद्वादसे पदार्थका निरूपण करते हैं, एकान्त दृष्टि-से श्राप पदार्थका उपदेश नहीं देते।

इस तरह परपदार्थसे भिन्न आत्माकी जो परिणित है वही मोच है। इस परिणितके प्रकट होनेमें सर्वसे अधिक वाधक मोह कर्मका उदय है, इसिलये आचार्य महाराजने आज्ञा की है कि सर्व प्रथम मोह कर्मका चय कर तथा उसके वाद होप तीन घातिया कर्मोंका चय कर केवलज्ञान प्राप्त करों। उसके वाद ही अन्य अघातिया कर्मोंका चय होनेसे मोच प्राप्त हो सकेगा। मोहके निकल जाने तथा केवलज्ञानके हो जाने पर भी यद्यपि पचासी प्रकृतियोंका सङ्गाव आगममे वताया है तथापि वह जली हुई रस्सीके समान निर्वल है—

ध्यान कृपाण पाणि गहि नाशी त्रेशठ प्रकृति ऋरी। शेष पचासी लाग रही हैं ज्यों जेवरी जरी॥

परन्तु इतना निर्वल नहीं समक लेना कि कुछ कर ही नहीं सकती हैं। निर्वल होनेपर भी उनमें इतनी शक्ति हैं कि वे देशोन कोटि पूर्व तक इस आत्माकों केवलज्ञान हो जानेपर भी मनुष्य शरीरमें रोके रहती हैं। फिर निर्वल कहनेका तात्पर्य यही हैं कि वे इस जीवको आगेके लिये वन्धन युक्त नहीं कर सकतीं। परम यथाख्यात चारित्रकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थानमें होती हैं। आतः वहीं शुक्लध्यानके चतुर्थ पायेके प्रभावसे उपान्त्य तथा अन्तिम समयमें वहत्तर और तेरह प्रकृतियोंका चय कर यह जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है तथा उध्वेगमन स्वभावके कारण एक समयमें मिस्डालयमें पहुँच कर विराजमान हो जाता है। यही जनागममें मोचकी व्याख्या है।

त्रयोदशी श्रौर चतुर्दशीके दिन नगरके मन्दिरोंके दर्शनार्थं जुल्स निकले। चमावणीके दिन विद्यालयके प्राङ्गणमें श्रीजिनेन्द्र-देवका कलशाभिषेक हुश्रा। चमाधर्मपर विद्वानोंके भाषण हुए। श्रासौज बदी ४ को जयन्ती उत्सव हुश्रा। बाहरसे भी श्रनेक महानुभाव पधारे। दिल्लीसे राजकृष्ण तथा फिरोजाबादसे श्रीलाला छदामीलालजी भी श्राये। श्रापने फिरोजाबादके मेलाकी फिल्म दिखलाई तथा राजकृष्णजी ने उसका परिचय दिया। जिसे देख-सुन कर जनता बहुत प्रसन्न हुई।

#### विचार कण

दीपावलीके पूर्व धन्त्रन्ति त्रयोदशी (धनतेरस) का दिन था। मनमे विचार श्राया कि श्राजके दिन सब लोग नया वर्त्तन खरीदते हैं श्रतः हम भी श्राजसे प्रतिदिन एक एक नया वर्तन खरीदें। वर्तन नाम विचारका है। उस दिनसे हमने कुछ दिन तक प्रतिदिन जो वर्तन खरीदे उनका संचय इस प्रकार है—

'संसारमे वही मनुष्य वन्द्रनीय होते हैं जिन्ह्रोंने ऐहिक और पारलौकिक कार्योंसे तटस्थ रह कर आत्मकल्याणके अर्थ स्वकीय परिणतिको निर्मल बना लिया है।'

'जो अवस्था आवे उसे अपनानेका प्रयत्न मत करो। पुण्य पाप दोनो ही त्रिकार परिणाम हैं, इनकी उपेन्ना करो।'

'प्रभु कोई अन्य नहीं, आत्मा ही प्रभु है और वही अपनी रज्ञा करनेवाला है। अन्यको रक्षक मानना ही महती अज्ञानता है।

'किसीको तुच्छ मत वनां, श्रपनी प्रशंसाकी लिप्सा ही दूसरेको तुच्छ वतलाती है।' वेदनात्रोंका श्रभाव करना चाहते हैं उन्हे उचित है कि पर पदार्थीं का श्रपनाना त्यागें।

'प्रशंसाकी इच्छासे कार्य श्रारम्भ करना श्रात्माको पनित चनानेकी कला है।'

'अपनी सुवं भूलकर यह आत्मा दु खका पात्र वना। गृहस्यों के जालमें आकर जैसे चुगके लोभसे चिड़ियां फंस जाती हैं वसे ही त्यागी वर्ग सोह-जालमे फंस जाता है।'

'श्रात्माराम श्रकेला श्राया श्रोर श्रकेला ही जावेगा। कोई भी इसका साथी नहीं। श्रन्यकी क्या कया, शरीर भी सुख-दुःख भोगनेमें साथी नहीं।'

'शुद्ध हृदयकी भावना नियमसे फलीभूत होती है। निर्माय [ मायारहित ] ही कार्य सफल होता है।'

'पर का भय मत करो। पर को अपनाना छोड़ो। परको अपनाना ही राग-द्वेपमे निमित्त है।'

'भयसे व्यवहार करना आत्माकी वस्त्रना है। मोक्षमार्गका सुगमोपाय अपनी अहम्बुद्धि त्यागो। मैं कौन हूँ ? इसे जानो। इसे जानना कुछ कठिन नहीं। जिसमे यह प्रश्न हो रहा है वही तो ज़म हो।'

'श्रात्मज्ञान होना कठिन नहीं किन्तु परसे ममता भाव त्यागना श्रति कठिन है।'

'सुख—शान्तिका लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेश्नकी देन है।'

'शान्त मनुष्य वह हो सकता है जो श्रयनी प्रशंसाको नहीं चाहता।'

'परकी समालोचना न करो और न सुनो।'

'धन अधिक संग्रह करना चोरी है, इसलिये कि तुमने अन्यका स्वत्य हरण कर लिया।'

'राग द्वेष घटानेसे घटता है किन्तु उसके प्राक् मोहका नाश करो। मोहके नशामे आतमा उन्मत्त हो जाता है।'

'यदि शान्ति चाहते हो तो स्थिर चित्त रहो। व्ययता ही संसार की दादी है। यदि संसारमें रुलनेकी इच्छा है तो इस दादीके पुत्रसे स्नेह करो।'

'यदि परोपकार करनेकी भावना है तो उसके पहले आत्माको पवित्र वनानेका प्रयत्न करो।'

,परोपकारकी भावना उन्होंके होती है जो मोही हैं। जिनकी सत्तासे मोह चला गया वे परको पर सममते हैं तथा आत्मीय वस्तुमे जो राग है उसे दूर करनेका प्रयास करते हैं।

'ज्ञानार्जन करना उत्तम है किन्तु ज्ञानार्जनके वाद यदि श्रात्म-हितमें दृष्टि न गई तव जैसा धनार्जन वैसा ज्ञानार्जन।'

'मनुष्य वही है जिसने मानवता पर विश्वास किया।'

'लोभ पापका वाप है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य जो जो श्रनर्थ करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं।'

'श्रपने लच्यसे च्युत होनेवाले मनुष्यके कार्य प्रायः निष्कल रहते हैं।'

'जितना श्रधिक संग्रह करोगे उतना ही श्रधिक व्यय होगे।'

जो सुख चाहत श्रातमा तज दो श्रपनी भूल।
परके तजनेसे कही मिटे न निजकी शूल॥
जो श्रानन्द स्वभावमय ज्ञानपूर्ण श्रविकार।
मोहराजके जालमें सहता दुख श्रपार॥

जो सुख है निज भावमें कहीं न इस जग वीच ।
परमें निजकी कल्पना करत जीव सो नीच ॥
जो नाहीं दुख चाहता तज दे परकी श्रोट ।
श्रमी संगत लोहकी सहती घनकी चोट ॥
परकी संगतिके लिये होता मनमें रङ्ग ।
लोह श्रमिन संगति पिटे होत तत सब श्रङ्ग ॥
गल्पवादमें दिन गया सोवत बीती रात ।
तोय विलोलत होत निहं कभी चीकने हात ॥
जो चाहत दु.खसे वचें करो न परकी चाह ।
पर पदार्थकी चाह से मिटे न मन की दाह ॥
बहु सुनवो कम बोलवो यो है चतुर विवेक ।
तब ही तो विधिने रच्यो दोय कान जिम एक ॥
जो चाहत निज रूप तजहु परिग्रह कामना ।
तिन सम नाही भूप श्रर्थं चाह जिनके नहीं ॥

# स्वराज्य मिला पर सुराज्य नहीं

लिखना सरल है—स्वराज्य मिल गया परन्तु मानवोंको शान्ति नहीं। अन्नादि खाद्य सामग्रीकी न्यूनता हो रही है, अनेक मनुष्य वेकार हैं, यन्त्रविद्याकी प्रचुरता होनेसे अनेक कार्य करनेवाले वेकार हो गये, लोगोंके हृद्यमे स्वकीय कार्यके प्रति निष्टा नहीं, नौकरीकी टोहमें प्रायः सब घूमते हैं, दैवी विपत्ति निरन्तर आती रहती हे, पशु-धनकी हानि हां रही है, राज्यने पशुआंके लिये चारे तकका स्थान नहीं रहने दिया, सब पर अपना अधिकार कर लिया इसलिये पशुधनको चारा तक नहीं मिलता, शुद्ध धी दृध भन्नणमें

नहीं आता, मनुष्योंका नैतिक वल उत्तरोत्तर घटता जा रहा है, ढाकेजनीका प्रचार वढ़ गया है, प्रामीण लोग नगरोंको सव सामग्री तैयार कर देते हैं परन्तु इस समय वे श्रसुरत्ताका श्रनुभव कर रहे हैं, घूसखोरीका जोर वढ़ रहा है, प्रायः ऋधिकांश लोग पद-लिप्साकी दौड़मे एक दूसरेको पीछे छोड़ स्त्रयं आगे वढ़ जाना चाहते हैं, आज यदि कुछ मूल्य रह गया है तो मनुष्यका,-मनुष्यके स्वार्थके लिये अन्य समस्त वध्य हो रहे हैं, जैसे मानों उनमे जीव ही न हो, चरखाका स्थान चक्रने ले लिया है, गाय भैस वकरा वकरियोंकी परवाह नहीं रही, वन्दरों पर भी बारी श्रा गई, तालावोंकी मछलियाँ भी अव सुरिचत नहीं रहीं, न्यायालयोंका न्याय समय साध्य तथा द्रव्य सापेच हो गया, जनताके हृद्यमें स्वराज्यके लिये जो उत्साह था वह निराशामें परिएात हो रहा है, देशकी जनता करोंके भारसे त्रस्त है श्रौर ऋग्पके भारसे दव रही है। इन सब कारणोंको देखते हुए हृदयसे निकलने लगता है कि स्वराज्य तो मिला पर सुराज्य नहीं। स्वराज्य तो श्रंम जीने दे दिया पर सुराज्य देनेवाला कोई नहीं। यह तो स्वयं श्रपने श्रापसे लेना है। देशकी जनता देशके प्रति कर्तव्य निष्ठ हो, अपने स्वार्थमें कमी करे, बढ़ती हुई तृष्णात्र्योंको नियन्त्रित करे, गांधीजीके सिद्धान्तानुसार यान्त्रिक विद्याकी प्रचुरताको कमकर हस्तोद्योगको बढ़ावा दे, परिश्रमकी प्रतिष्ठा करे श्रीर श्रहिसाको केवल वाचनिक रूप न दे प्रयोगमें लावे तो सुराज्य प्राप्त हो सकता है।

### गिरिराजके लिये प्रस्थान

पौष कृष्णा श्रमावस्या सं०२००६ की रात्रि थी। श्राकाशमें मायवृष्टिके मेघ छाये थे। रात्रिके समय श्रचानक वर्षा ग्रुरू होनेसे २७

निद्रा भड़ हो गई। मनमें नाना प्रकारके विकल्प उठने लगे। विचार श्राया कि तेरी श्रायु ७६ वर्षकी हो गई फिर भी इस चक्रमें पड़ा है। कभी ललितपुर, कभी सागर, कभी जवलपुर, कभी सागर विद्यालय श्रीर कभी वनारस विद्यालय। शरीरकी शक्ति दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती है। भाग्यवश एक वार श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमें पहुँच गया या परन्तु मोहके जालमें पड़ वहाँसे वापिस श्रा गया। पक्वपानवत् शरीरकी श्रवस्था है। न जाने कव डालसे नीचे मड़ जाय इसलिये जब तक चलनेकी सामध्य है तब तक पुनः श्री पार्श्वनाथ भगवान्के पादमूलमें पहुँचनेका विचार कर। जहाँसे अनन्तानन्त तीर्थकराने तथा वर्तमानमे वीस तीर्थकराने निर्वाण प्राप्त किया उस स्थानसे वढ़कर समाधिके लिये अन्य कौन स्थान उपयुक्त होगा ? वहाँ निरन्तर धार्मिक पुरुषोंका समागम भी रहता है। सागरमे तूं वहुत समय रहा है अतः यहाँके लोगोंसे श्रात्मीयवृत् स्नेह है। श्री भगवती श्राराधनामें लिखा है कि सल्ले-खना करनेके लिये अपना संघ अथवा अपना परिचित स्थान छोड़ कर अन्यत्र चला जाना चाहिये जिससे अन्तिम च्या किसी प्रकार की शल्य श्रयवा चिन्ता श्रात्मामे न रह सके।

डक्त विचारधारामे निमग्न रहते हुए लगभग १ घंटा व्यतीत हो गया। उठकर समयसारका स्वाध्याय किया। तदनन्तर सामा-यिकमे वैठा। सामायिकमे भी यही विकल्प रहा कि जितना जल्दी हो यहाँसे गिरिराजके लिये प्रस्थान कर देना चाहिये। श्राकाश मेघाच्छन्न था इसलिये तत्काल तो यह विचार कार्य रूपमें परिणत नहीं कर सका पर मनमे जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया। मैंने यह विचार मनमें ही रक्खा। कारण यदि प्रकट करता तो सागरके लोग रोकनेका प्रयास करते श्रोर में उनके संकोचमें पढ़ जाता। २ दिन वाद ईसरीसे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी का पत्र श्राया कि श्राप जिस दिन ईसरी श्रा जावेंगे मैं उसी दिन निवसी प्रतिमाके व्रत धारण कर ॡेंगा। भगतजीके पत्रसे मुक्ते श्रीर भी प्रेरणा मिली जिससे मैंने हढ़ निश्चय कर लिया कि गिरिराज श्रवश्य जाना। यद्यपि शरीर शक्तिहीन है तथापि श्रीपार्श्व प्रभुमें इतना श्रनुराग है कि वे पूर्ण वल प्रदान करनेमे निमित्त होंगे।

पौपशुक्ला ११ संवत् २००६ को भोजनके उपरान्त मैंने लोगोंके समज्ञ अपना विचार प्रकट कर दिया कि मै आज गिरिराजके लिये १ वजे प्रस्थान करूँगा। यह खबर सारे शहरमे विजलीकी भाँति फैल गई जिससे बहुतसे लोग एकत्र हो गये और रोकनेका प्रयत्न करने लगे परन्तु मैं अपने विचारसे विचलित नहीं हुआ। लोगोंके अवागमनके कारण १ वजे तो प्रस्थान नहीं कर पाया परन्तु ३ वजे प्रस्थान कर चल दिया। मार्गमे बहुत भोड़ हो गई। मैं जाकर गोपालगंजके मन्दिरमे बाहर जो कमरे हैं उनमें ठहर गया। रात्रिके १० वजे तक लोगोंका आना जाना वना रहा। सेठ भगवान-दासजी वालचन्द्रजी मलैया आदि अनेक पुरुष आये पर मैं किसीके चक्रमें नहीं आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोपालगंजके मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हुआ। भोजनोपरान्त सामायिक किया। तदनन्तर १ वजेसे चल दिया। यूनीवरिसटीके मार्गसे चलकर शामके ५ वजे गमीरिया पहुँच गये। यहाँ तक सागरके अनेक महानुभाव पहुँचाने आये। गाँवके जमींदारने सत्कार पूर्वक रात्रि भर रक्खा। जो अन्य लोग गये थे उन्हे दुग्ध पान कराया। खेद इस वातका हैं कि हम लोग किसी दूसरेको अपनाते नहीं। धर्मको हम लोगोंने अपनी सम्पत्ति मान रक्खा है।

#### कटनी

गमीरिया से ४ मील चलकर वमोरीमे आहार किया, तदनन्तर सानोधा श्रौर पड़रिया ठहरते हुए श्रागे वढ़े। पड़रियासे ३ मील चलकर १ कूप पर भोजन हुआ। स्थान अति रम्य श्रौर सुखद था। ऐसे स्थानों पर मनुष्योंको स्वाभाविक निर्मलता श्रा जाती है परन्तु हम लोग उन परिणामोंको यों ही व्यय कर देते हैं। यहां पर ईसरीसे श्री सुमेरुचन्द्र जी भगत आ गये। आप वहुत ही विलक्त्ए प्रकृतिके हैं-प्रायः सवकी समालोचना करनेमें नहीं चूकते। अस्तु, उनकी प्रकृति है उसे हम निवारण नहीं कर सक्ते। अच्छा तो यही था कि इसके विरुद्ध वे अपनी समालोचना करते। यहां से गोरा, सासा, शाहपुर, टड़ा श्रादि स्थानोंमे ठहरते हुए माघ शुक्ला ११ को दमोह आ गये। लोगोंने सम्यक् स्वागत किया । प्रातःकाल धर्मशालाके विशाल भवनमे प्रवचन हुआ। एक सहस्र संख्या एकत्र हुई। लोगोंकी भीड़ देखकर लगने लगता है कि श्रायः सर्व लोग धर्मके पिपासु हैं परन्तु कोई इन्हें निरपेत्तभावसे धर्मपान करानेवाला नहीं है। पं॰ जगन्मोहन-लालजी स्रा गये। स्रापने स्रपने प्रवचनमें संगठन पर वहुत वल दिया परन्तु लाभांश कुछ नहीं हुआ। केवल वाह वाहमें व्याख्यानका अन्त हो गया। गल्पत्रादकी बहुलतासे संसार व्यामूढ़ हो रहा है। यहीं पर श्री १० मुनि आनन्दसागर जी भी थे। उनके दर्शन करनेके लिए गये। सेठ लालचन्द्रजीसे भी वार्तालाप हुआ। आप विद्वान् हैं, धनी हैं, परन्तु समाज श्रापसे लाभ लेना नहीं जानती ।

दसोहसे हिंडोरिया तथा पटेरामें ठहरते हुए श्री श्रातिशय चेत्र कुण्डलपुरजी पहुँच गये। बड़ा रमणीय चेत्र हैं। कुण्डलाकार पर्वत पर सुन्दर मन्दिर वने हैं। नीचे तालाव है। उसके समीप भी श्रनेक मन्दिर बने हैं। उपर श्री भगवान् महावीर स्वामीकी सातिशय विशाल प्रतिमा है । मेलाका समय था । लगभग ४ सहस्र श्रादमी थे। मेला सानन्द सम्पन्न हुत्रा। पं० जगन्मोहनलालजीके पहुँच जानेसे अच्छी प्रभावना तथा चेत्रको अच्छी आय हुई। लोगोंमें जागृति हुई। जनता धर्मिपिपासु थी। एक दिन पर्वतपर स्थित श्री महावीर स्वामीके दर्शन किये। चित्तमें श्रसीम हर्ष उत्पन्न हुआ। यहाँसे वीचके कई स्थानोंमें ठहरते हुए फाल्गुन कृष्णा १० को कटनी ह्या गये। वीचका मार्ग पहाड़ी मार्ग था, ह्यतः कष्ट हुन्ना परन्तु यथास्थान पहुँच गया। कटनीकी जनताने स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातःकाल मन्दिरमे प्रवचन हुआ। समयसार प्रन्थ सामने था इसलिये उसीका मङ्गलाचरण कर प्रवचन प्रारम्भ किया । मैंने कहा-

श्रीकुन्दकुन्द भगवान् ने = ४ प्राभृत वनाये हैं। उनमें कितपय श्रव भी प्रसिद्ध हैं। उन प्रसिद्ध प्राभृतोंमे समयसारकी वहुत प्रसिद्धि है। यद्यपि श्री स्वामीने जो कुछ लिखा है वह सभी मोत्तमार्गका पोपक है परन्तु कई व्यक्ति समयसारको ही बहुत महत्त्व देते हैं यह व्यक्तिगत विचार है। इसके हम निवारक कौन होते हैं १ फिर भी हमारी बुद्धिमे जो श्राया उसे स्वीय श्राभिप्रायके श्रनुकून कुछ लिखते हैं।

श्रीस्त्रामीने प्रथम गाथामे सिद्ध भगवान्को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा की कि में समयप्राभृतका परिभाषण करूँगा श्रीर यह भी लिखा कि श्रतकेवली भगवान् ने जैसा कहा वैसा करूँगा। उससे यह दोतित होता है कि वर्तमानमे हमारी श्रात्मामे सिद्ध पर्याय

नहीं है, श्रर्थात् संसार पर्याय है । श्रुतकेवलीने जैसा कहा इससे यह द्योतित होता है कि परम्परासे यह उपदेश चला श्राया है। में वैसा ही कहूँगा इससे यह ध्वनि निकलती हैं कि मेरे अनुभवमें भी श्रा गया है। निरूपण करनेका यह प्रयोजन हैं कि अनादिकालसे जो स्वपरमें मोह है उसका नाश हो जावे। इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि स्वामीके धर्मानुराग है श्रौर यही धर्मानुराग उपचार से शुद्धोपयोगका कारण भी कहा जाता है। स्त्रामीने प्रतिज्ञा की कि मैं समयप्राभृत कहूँगा। यहाँ आशङ्का होती है कि समय क्या पदार्थ है ? इस आशङ्काका स्वयं स्वामी उत्तर देते हैं कि जो सम्य-ग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्रमे स्थित है। उसे स्वसमय श्रौर जो इससे भिन्न पुद्गल कर्मप्रदेशमें स्थित है उसे पर समय कहते हैं। यह दोनों जिसमें पाये जावें उसीका नाम जीव जानो चाहे समय जानो। इसके वाद स्वामीने द्वे विध्यको आपत्तिजनक वतलाया श्रर्थात् यह द्वे विध्य शोभनीक नहीं, एकत्व प्राप्त जो समय है वही सुन्दर है। जहाँ द्विविध हुन्ना वहाँ ही वन्ध है, संसार है। जैसे माँ के पुत्र पैदा होता है तो स्वतन्त्र होता है। नहीं उसका विवाह हुआ—परको अपनाया—त्रह्मचारीसे गृहस्य हुआ वहाँ उसकी स्वतन्त्रताका हरण हो गया-वह संसारी वन गया। इसी तरह आत्माने जहां परको अपनाया वहां उसका एकत्र चला गया। वर्यो दुर्तभ हो गया ? उसका उत्तर यह है कि अनादिसे काम भोगकी कथा सुनी, वही परिचयमे आई और वही अनुभवमें आई। आत्मा-का जो एकत्व था उसे कपायचक्रके साथ एक्सेक होनेसे न तो सुना, न परिचय में लाया और न अनुभवमे लाया। उसपर श्री स्त्राचार्य लिखते हैं कि मैं उस स्त्रात्माके एकत्वका जो मर्वधा परसे भिन्न हं अपने विभवके अनुसार निरूपण वर्रेंगा। मेरा विभव यह है कि मैंने स्याद्वाद पद भूषित शब्दब्रह्मका श्रन्या श्रम्यान

किया है, एकान्तवाद द्वारा जो उसकी वाधक युक्तियाँ हैं उनको निरस्त करनेमें समर्थ युक्तियोंकी पूर्णता प्राप्त की है, परापर गुरुष्ठोंका उपदेश भी मुम्ने प्राप्त है तथा वैसा श्रनुभव भी है। इतने पर भी यदि श्रच्छा न जॅचे तो श्रनुभवसे परीक्षा कर पदार्थका निर्णय करना, छल प्रहण कर श्रमार्गका श्रवलम्बन मत करना।

श्रव स्वयं स्वामी उस केवल श्रात्माको कहते हैं जो न तो श्रप्रमत्त है श्रोर न प्रमत्त है, केवल ज्ञायकभाववाला है, उसीको शुद्ध कहते हैं, वही ज्ञाता है श्र्यात् श्रात्माकी कोई श्रवस्था हो वह ज्ञायकभावसे शून्य नहीं होती। जैसे मनुष्यकी वाल्यादि श्रमेक श्रवस्थाएँ होती हैं परन्तु वे ज्ञायकभावसे शून्य नहीं होतीं। यही कारण है कि श्रात्माका लक्षण श्रन्यत्र चेतना कहा है। कर्नु-कर्माधिकारमे श्रात्मामे कर्नु त्व तथा कर्मत्व हो सकता है या नहीं ? उस पर विचार किया है। यह विचार र दृष्टियोंसे हो सकता है - एक तो शुद्ध दृष्टिसे श्रोर दूसरा श्रशुद्ध दृष्टिसे। कर्ता किसे कहते हैं जो परिणमन करता है वह कर्त्ता है श्रीर कर्म उसे कहते हैं जो परिणमन होता है वह कर्म है। कर्नु-कर्माधिकारमे जो दिखाया है वह निमत्तकी गौणता कर दिखाया है। उसे लोक सर्वथा मान लेते हैं यही परस्पर विवादका स्थल वन जाता है।

श्रमृतचन्द्र स्वामीने मङ्गलाचरणमे लिखा है कि मैं एक कर्ता हूं श्रोर ये जो क्रोधादिक भाव हैं ये मेरे कर्म हें ऐसी श्रज्ञानो जीवोंकी श्रनादि कालसे कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति चली श्राती है परन्तु जब सब द्रव्योंको भिन्न भिन्न दर्शानेश्वाली ज्ञानज्योति उद्यको प्राप्त होती है तब यह सब नाटक शान्त हो जाता है। इससे यह निश्चय हुआ कि यह नाटक, जब तक इसकी विरोधी ज्ञानज्योति उदित नहीं हुई तब तक सत्य है। श्रापकी इच्छा चाहे इसे व्यवहार कहो या श्रशुद्ध दशा कहो।

जीवकी दो पर्याय होती हैं-एक संसार और दूसरी मोस्। हम तो दोनों पर्यायोको सत्य मानते हैं। जब कि ये अपने अपने कारणोंसे होती हैं तब एकको सत्य और दूसरीको असत्य मानना यह हमारे ज्ञानमें नहीं आता। हौं, यह अवश्य है कि एक प्याय श्रनादि-सान्त है श्रौर दूसरी सादि-श्रनन्त है। इन दोनों पर्यायोंका श्राधार श्रात्मा है, एक पर्याय श्राकुत्ततामय है क्योंकि उसमे पर पदार्थोंका संपर्क है और दूसरी आकुलतासे रहित है क्योंकि इसमे परपदार्थींका सपर्क दूर हो गया है। जहाँ पर पदार्थके संपर्कको जीव निज मानता है श्रोर जहाँ परमें निजत्वकी कल्पना करता है वहीं श्रापत्तियोंकी उत्पत्ति होने लगती है। कर्ट-कर्माधिकारमें स्वामीने यही तो लिखा है कि जब तक आत्मा आलव और आत्माके विशेष श्रन्तरको नहीं जानता तव तक यह श्रज्ञानी है श्रौर श्रवस्यामें क्रोधादिमें प्रवृत्ति करता है। यहाँ क्रोध उपलक्ष्ण है अतः मिथ्याद्शीन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगका बहुण समक्ता चाहिये। क्रोधादि कपायोंसे प्रवर्तमान जीवके कर्मीका संचय होता है। इस तरह भगवान्ने जीवके वन्ध होता है यह वतलाया है। श्रात्माका ज्ञानके साथ तादात्म्य सिद्ध सम्वन्ध है अर्थात् श्रात्माका ज्ञानके साथ जो सम्बन्ध है वह कृत्रिम नहीं, किन्तु अनादिकालसे चला श्राया है। यही कारण है कि श्रात्मा निःशङ्क होकर ज्ञानमें प्रवृत्ति करता है। करता क्या है ? स्वाभाविक यह प्रवाह चल रहा है श्रौर चलता रहेगा। इसी तरह यह जीव संयोगसिद्ध सम्बन्धसे युक्त जो क्रोधादिक भाव हैं उनके विशेष श्रन्तरको न जानता हुआ श्रज्ञानके वशीभूत हो उनमें प्रवृत्ति करता है। यह जीव जिस कालमें क्रोधादिको निज मानता है उस कालमें क्रोधादिक भावस्प क्रिया परभाव होनेसे यद्यपि त्याग चोग्य है तो भी उस क्रियामे स्वभाव-रूपका निश्चय होनेसे यह उन्हें उपादेय मानता है जिससे कभी

क्रोध करता है, कभी राग करता है श्रौर कभी मोह करता है। यहाँ पर श्रात्मा श्रपनी उदासीन श्रवस्थाका त्याग कर देती है श्रात्पव इन क्रोधादिक भावोंका कर्ता बन जाती है श्रौर ये क्रोधादिक इसके कर्म होते हैं। इस प्रकारसे यह श्रमादिजन्य कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति धारावाही रूपसे चली श्रा रही है। श्रतएव श्रन्योन्याश्रय दोषका यहाँ श्रवकाश नहीं।

यहाँ पर क्रोधादिकके साथ जो संयोग सम्बन्ध कहा है इसका क्या तात्पर्य यह है—क्रोध तो आत्माका विकृत भाव है और ऐसा नियम है कि द्रव्य जिस कालमें जिस रूप परिण्मता है उस कालमें तन्मय हो जाता है। जैसे लोहका पिण्ड जिस समय अग्निसे तपाया जाता है उस समय अग्निमय हो जाता है। एवं आत्मा जिस समय क्रोधिदिरूप परिण्मता है उस कालमें तन्मय हो जाता है फिर क्रोधादिकों के साथ संयोग सम्बन्ध कहना संगत कैसे हुआ ? यह आपका प्रश्न ठीक है किन्तु यहाँ जो वर्णन है वह औपाधिक भावोंको निमित्तजन्य होनेसे निमित्तकी मुख्यताकर निमित्तके कह दिये हैं ऐसा सममना चाहिये। क्रोधादिक भाव चारित्रमोहके उदयसे उत्पन्न होते हैं, चारित्रमोह पुद्गल द्रव्य है। उसका आत्माके साथ संयोग सम्बन्ध है अतः उसके उदयमें होनेवाले क्रोधादिका भी संयोग सम्बन्ध है खतः उसके उदयमें होनेवाले क्रोधादिका भी संयोग सम्बन्ध कह दिया। मेरी तो यह श्रद्धा है कि रागादिक तो दूर रहो मितज्ञानादिक भी च्योपशमजन्य होनेसे निवृत्त हो जाते हैं।

श्रपनी परिएति श्रपने श्राधीन है, उसे पराधीन मानना ही अनर्थकी जड़ है श्रीर श्रनर्थ ही संसारका मूल स्वरूप है। श्रनर्थ कोई पदार्थ नहीं। श्रर्थको श्रन्यथा मानना ही श्रनर्थ है।

कटनीमे वनारससे पण्डित कैलाशचन्द्रजी भी छा गये। यहाँकी संस्थाओंका उत्सव हुछा । पं॰ जगन्मोहनलालजीने संस्थात्रोंका संचिप्त विचरण सुनाया। लोगोंने यथाशक्ति संस्थात्रोंकी नहायता की। वहुत सहायताकी संभावना थी परन्तु श्राज कल लोग एक काम नहीं करते। एक उत्सवसे श्रानेक कार्योंका श्रायोजनकर लेते हैं। फल एकका भी पूर्ण नहीं हो पाता। कुण्डलपुर चेत्रकी श्रापील हुई तो उसे भी सहायता मिल गई। पण्डित कैलाशचन्द्रजीका भी व्याख्यान हुशा। यहाँ ५ दिन रहना पड़ा। यहाँ पर जवलपुरसे वहुत श्राधिक मनुष्य श्राये। सवका श्रत्यन्त श्रायह था कि जवलपुर चलिये परन्तु हम श्रपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए।

## वनारसकी ऋोर

श्री चन्पालालजी सेठी गयावांले मोटर लेकर पहले ही आ गये थे। मोटरमे साथके लोगोंका सामान जाता था तथा उसके द्वारा आगामी निवासकी व्यवस्था हो जाती थी। श्री चन्पालालजी व्यवस्थामें वहुत पटु हैं, अन्तरज्ञसे स्वच्छ हैं। फाल्गुन कृप्णा १४ को संध्याकाल कटनीसे ४ मील चलकर चाकामें ठहर गये। प्रातः ३ मील चलकर कैलवारके जंगलमें एक वंगला था उसमें ठहर गये। वहीं पर भोजन हुआ। मध्यान्हके वाद यहाँसे २ मील चलकर टिकरवारा शाममें ठहर गये। आतन्दसे रात्रि वीती। यहाँ पर रात्रिको समयसारका निर्जराधिकार पढ़कर परम प्रसन्नता हुई। निर्जरा प्राणी मात्रके होती हैं परन्तु नवीन कर्भ वन्धन होनेसे गजस्नानवत् उसका कोई मूल्य नहीं होता। यहाँसे ३ मील चलकर १ स्कूलमें ठहर गये। इस शामका नाम मकोही था। यहाँ पर कटनीसे वहुत मनुष्य शाये। हृदयमें प्रेम था। सब कुछ होना सरल है परन्तु प्रेम पर विजय पाना अति दुष्कर है। यहाँसे ३ मील

चलकर सवागाँवके स्कूलमें निवास किया । रात्रिको प्रवचन किया। मास्टर लोग आये। सभ्यताकी पराकाष्टा थी। स्रभी भारतमे स्रतिथियोंका सम्मान है।

यहाँसे चलकर ३ मील पर श्री गोकुल साधुकी कुटियामें निवास किया। श्रापने वड़े श्रादरसे स्वागत किया, शाक श्रादि सामग्री दी तथा साथमें सांयकाल २ मील त्र्राये। पकरिया शाममें एक राजपूतके मकानमे ठहर गये। स्थान वहुत ही स्वच्छ था। रात्रि सानन्द वीती। प्रातः ४ मील चलकर अमद्रा आ गये। यही पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चलकर घुनवाराकी धर्मशालामें आ गये। यहीं पर श्री भगवानदासजी सेठ सागरसे आये। साथमे श्री रामचरणलाल तथा मुन्नालालजी कमरया थे। रात्रि सुखसे वीती। प्रातःकाल ४ मील चलकर मदन-पुरके वगीचामें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँसे ४ मील चल कर सङ्कके किनारे धर्मशालामे ठहर गये। प्रातःकाल ३ मील चल कर पौंड़ी आ गये। यहीं पर आहार किया। यहाँ १ ठाकुर जागीरदार आये। बहुत ही सज्जन हैं। यहाँसे चल कर ५ बजे मैहर आ गये। रात्रिको श्री नाथूरामजी ब्रह्मचारीने प्रवचन किया। समुदाय ऋच्छा था। दूसरे दिन कटनीसे पं॰ जगन्मोहन-लालजी श्राये। प्रात काल हमारा प्रवचन हुश्रा। २ वजेसे सभा हुई जिसमे पण्डितजीका भक्तिमार्गेपर सुन्दर विवेचन हुआ। जनता मुग्ध हो गई। हमने भी कुछ उपदेश दिया। लोगोंको रुचिकर हुआ। यहाँ पर पूर्णचन्द्रजी वहुत सज्जन हैं। श्रापकी वृत्ति श्रात्यन्त उत्तम है। व्यापार करनेमे न्यायका त्याग नहीं। राजाज्ञाका डल्लंघन भी आप नहीं करते। यहाँ श्री राघवेन्द्रसिंह विरमीवाले ठाकुर साहबसे धार्मिक वात हुई। श्राप निरपेच हैं। यदापि श्राप वैष्णव सम्प्रदायके हैं तथापि जैनधर्मसे प्रेम है। यहाँसे ४३ मील

चल कर नरौरा श्रामकी सङ्कके किनारे १ कुमींकी धर्मशालामें ठहर गये। समय सानन्द व्यतीत हुआ।

यहाँसे ४३ मील चलकर वरइया त्रामके वगीचामें ठहर गये। सतनावाले श्री ऋषभकुमारकी माँने श्राहार दिया। यहाँसे ३ मील चलकर एक कृषकके यहाँ रह गये। रात्रिमे श्री नाथूरामजी शास्त्रीने च्याख्यान दिया। जनता त्रामीण थी। सवको धर्म पिपासा है परन्तु योग्य उपदेष्टा नहीं भिलते अतः इनकी प्रवृत्तिका सुधार नहीं होता । प्रातःकाल ३ मील चल कर श्रमरपाटन श्राये। पं० जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आपने स्नानादिसे निवृत्त हो प्रवचन किया। पञ्चात् इमने भी कुछ कहा। यहाँ पर २० वर जैनियोंके हैं। २ मन्दिर हैं। १ प्राचीन मूर्ति वहुत ही मनोड़ हैं। १ पाठशाला भी है जिसमें जैन अजैन सव मिलकर १०० छात्र हैं। यहाँ पर जनताने भोजनाच्छादन आदिमें जो व्यय हो उस पर एक पैसा रुपया दानमें निकलना स्वीकृत किया। श्री ह्वारीजल वहोरेलालजी सिंघईने त्राहारके समय कटनीकी ५०१) देना स्वीकृत किया तथा स्वागतमें वीसों स्पयेके पैसे गरीवों-को वितरण कर दिये। मध्यान्हके वाद यहाँसे चलकर ४३ मील वाद कतपारीके वागमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँसे ५ मील चलकर इटवा नदीके तीर धर्मशालामें ठहर गये। यहाँ पर श्री हनुमानजीका मन्दिर है। स्थान रम्य है परन्तु कोई पुजारी नहीं रहता। रात्रिको सुख पूर्वक सोया किन्तु १ वजे श्री नीरजने खबर दी कि मोटर लौट जानेसे चम्पालालजी सेठी आदिको चोट लग गई। सुनकर चित्तमें वहुत खेद हुआ। प्रातःकाल ६३ वजेसे चलकर १ वजे १ वगीचामें श्राये। यहाँ पर भोजन किया। तदनन्तर सामायिकादिसे निवृत्त हो २ वजे चल दिये और ५ वजे मतना श्रा गये। श्री चम्पालालजी श्रादिको देखा, वहुत चोट लगी थी।

डपयोगमे यह आया कि इस सर्व डपद्रवके निमित्त कारण तुम थे। न तुम होते न यह समुदाय एकत्रीभूत होता। आगममें लिखा है कि जुल्लक मुनिके समागममे रहता है पर तूँ डसकी अवहेलनाकर इस परिकरके साथ भ्रमण कर रहा है यह उसी अवहेलनाका फल है।

सतना अच्छा शहर है। जैनियोंकी सख्या अच्छी है। प्रायः सम्पन्न हैं। एक मन्दिर है। पास ही धर्मशाला भी है। श्री शान्तिन्ताथ भगवान्की प्राचीन मूर्ति है। एक जैन स्कूल भी है। प्रातःकाल समयसार पर प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। प्रवचनके बाद पं॰ महेन्द्रकुमारजीका व्याख्यान हुआ। व्याख्यानका विषय रोचक था। तृतीय दिन श्री पं॰ जगन्मोहनलालजी भी आ गये। आज पं॰ महेन्द्रकुमारजीका प्रवचन और पं० जगन्मोहनलालजीका भाषण हुआ। खजराहा चेत्रकी व्यवस्थापक समितिका निर्माण हुआ। एक दिन प्रवचनके वाद यहाँकी पाठ-शालाके अर्थ चन्दा हुआ। लगभग १४००० चौदह हजार रूपया आ गये। लोग उदार हैं—आवश्यकतानुसार धन देते हैं परन्तु व्यवस्थाके अभावमे कार्य सिद्ध नहीं होता। रूपयाका मिलना कठिन नहीं किन्दु कार्यकर्ताका मिलना कठिन है। फाल्गुन कृष्ण १३ को सतना आये थे और चैत्र कृष्ण ६ को यहाँसे निकल पाये।

सतनासे ३ वजे चल कर ५ मीलके वाद माधवगढ़ के स्कूलमें ठहर गये। स्थान श्रात्यनत स्वच्छ था। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चल कर रामवन श्राये। यहाँ पर १ वाग है। उसीमें १ कूप है। १ छोटीसी टेकरी पर १ छुटिया वनी है। छुटियाके नीचे तलघर है। उसमें श्रच्छा प्रकाश है। उण्णकालके लिये बहुत उपयोगी है। छुटियामे ३ तरफ खिड़कियाँ श्रोर १ तरफ उत्तर मुख दरवाजा है। दरवाजा के श्रागे १ दहलान है। जिसमे १० श्रादमी धर्म साधन कर सकते हैं। ३ मील लम्बा चौडा बाग है। हनूमानका १ मन्दिर

है। उसमें २७ करोड़ राम नाम लिखे गये हैं। यहाँसे सायंकाल चल कर वकनाके मन्दिरमें ठहर गये।

प्रातःकाल ५ मील चल कर कुरहीमें ठहर गये। एक गृहस्थने वहुमान पूर्वक स्थान दिया। यहाँ सतनासे २० आदमी आये। श्री ऋषभकुमारकी माँके यहाँ आहार हुआ। प्रायः सवके परिणाम निर्मल थे। सवको कल्याणकी चाह है परन्तु जिन कारणोंसे कल्याण होता हूँ उनसे दूर भागते हैं। कषायाग्नि ही प्राणी को संतप्त कर रही है। जब कषायोंका वेग आता है तव इस जीवको सुध बुध नहीं रहती। जिस निमित्तको पाकर कोथ उत्पन्न हुआ उस निमित्तको मिटानेका प्रयत्न करता है पर यह उसका वीज हमारी ही आत्मामे विद्यमान है यह नहीं विचारता।

यहाँसे २ मील चल कर सार्यकाल कृषिकार्यालयमें आ गये।
रात्रिभर आनन्द्रसे रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चल कर
वेलापुर आ गये और यहाँ के स्कूलमें ठहर गये। यहीं पर भोजन
किया। सतनासे श्री ऋपभकुमारकी मां आदि आये। मायमें
पं० पन्नालालजी धर्मालंकार और चौधरी पन्नालालजी मैनेजर
तेरापंथी कोठीके थे। मार्गमे इन महानुभावोंके समागमसे अत्यन्त
शान्ति रहती है। अन्तिम शान्ति नहीं, औपाधिक शान्तिका ही
लाभ होता है। अन्तिम शान्ति तो वह है जिससे किर अशान्ति न
हो। यह शान्ति इच्छाके अभावमें होती हे। दूसरे दिन प्रातःकाल
व वजे रीवां आ गये। धर्मशालामें ठहर गये। स्नान वर
मन्द्रिज़ीमें श्री शान्तिनाथ भगवान्के दर्शन किये। मृर्ति बहुत ही
सुन्दर हे। इसके दर्शनसे हृद्यमे यह भावना हुई कि शान्तिका
मार्ग तो वाह्याभ्यन्तर परियहका त्याग है। इसमे वाह्य परियहका
त्याग तो सरल है परन्तु आभ्यन्तर परियहका त्याग होना अनि

शरीर की कथा छोड़ो, स्त्री पुत्र वान्धवको भी पृथक् करना कठिन है। हम सबसे भिन्न हैं "यह पाठ प्रत्येक व्यक्ति पढ़ता है परन्तु भीतरसे उन्हें छोड़ता नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल बाजारके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। वहीं पर श्राहार हुआ। तद्नन्तर धर्मशालामें आ गये। सामायिकके वाद एक वृद्ध जिनकी आयु ५४ वर्षकी थी आये। और तत्त्वज्ञानकी उपयोगी चर्चा करते रहे। आपका पुत्र पुलिस विभागमें जनरल इन्सपेक्टर है। स्राप जैनधर्मकी चर्चासे प्रसन्न हुए। रीवाँ विन्ध्यप्रान्तकी राजधानी है। जैनियोंके घर भी श्राच्छे हैं। यहाँसे ३ बजे चलकर २३ मीलके बाद १ स्कूलमे ठहर गये। उक्त वृद्ध महाराय हमारे साथ मार्गमें १ मील तक आये। यहाँ टीकमगढ़से प० नन्हेलालजी प्रतिष्ठाचार्य श्राये । श्राप बहुत ही सरल स्वभावके हैं । श्रापने वादा किया कि हम ईसरी श्रावेंगे। श्रगले दिन प्रातःकाल ६ मील चल कर रामऊनके मिडिल स्कूलमें निवास किया। स्कूलके अन्त भागमें च्याम्र वन च्रौर कूर था। उसी स्थान पर रीवाँसे च्राये हुए : ५ श्रादमी ठहरे हुए थे। यहीं पर बनारससे श्री पं॰ कैलाशचन्द्रजी तथा वर हरिश्चन्द्रजी आये। आप लोगोंके आनेसे विशेष स्फूर्ति आ गई। श्राहार यहींपर हुआ। चैत्र कृष्णा १३ को ५ मील चल कर विलवाके उद्यानमे ठहर गये। यहाँ रीवाँसे श्री कपूरचन्द्रजीका चौका आया था। वहीं पर आहार हुआ। मध्याह्नके उपरान्त यहाँसे ३ मील चलकर मनगुवाँकी पुलिस चौकी पर निवास किया। स्थान सुरम्य था, दिनकी थकावटसे जल्दी सो गये ख्रतः रात्रिके १ वजे निद्रा भग्न हो गई। छहढालाकी छटवीं ढालका पाठ किया परन्तु पाठ करना श्रन्य वात है, हृद्यमे शान्तिका श्राना श्रन्य वात है। शान्तिका लाभ कषायके श्रभावमें है। शान्तिका पाठ पढ़ना प्रत्येक व्यक्तिको त्राता है किन्तु भीतरसे शान्तिका होना कठिन है।

प्रातः ५ मील चल कर वावाजीकी कृटियामें ठहर गये। यहीं पर भोजन किया। विचारमें यह श्राया कि गिरिराज पहुँचकर धर्म-साधन करना। परसे न शान्ति मिलती है श्रौर न मिलनेकी संभावना है। हम अनादिसे परके साथ अपना अस्तित्व मान रहे हैं। फल उसका जो है सो प्रत्यच है। यहाँसे ५३ मील प्रयाण कर एक वावाजीकी कुटियाके सामने श्राम्रतरुके नीचे निवास किया। यहाँ पर ज्यों ही भोजन वनानेका श्रारम्भ हुआ त्यों ही प्रामीण मनुष्य वहुत आ गये, मना करने पर भी नहीं हटे। श्रस्तु आज दयाचन्द्रने असत्य भाषण कर श्रभच्य दुग्यका भन्नण करा दिया। यद्यपि मैंने दुग्ध त्याग दिया फिर भी आत्मामें ग्लानि वनी रही। हम लोग वहुत ही तुच्छ प्रकृतिके वन गये हैं, शरीरको ही अपना मान लेते हैं। आत्मद्रव्यको श्रमृतिक कह देना अन्य वात है। उस पर श्रमल करना श्रन्य वात है। यहाँसे २३ मील चल कर हवहवा श्रा गये। रात्रिमें निवास करनेके वाद प्रावःकाल इवहवासे पू मील चल कर मङगंजके एक वागमें श्राम्रवृत्तके नीचे निवास किया। स्थान सुरम्य था। यहीं पर भोजन किया। यहाँ पर परिगामोंमें शान्ति रही। परमार्थसे सङ्गमे शान्ति नहीं रहती। इसका मूल कारण हृदयगत मिलनता है। हम लोग हृदयमें छुछ रखते हैं, कहते कुछ हैं, कायसे कुछ करते हैं। ३६ के अनुरूप हमारा व्यवहार है। इसमे शान्तिकी आशा मृगतृप्णामें सलिलान्वेषएके तुल्य है।

भोजनके उपरान्त स्कूलमें निवास किया। मास्टर योग्य थे। ४ वजे यहाँसे चले। घड़ी भूल श्राये। ४ मील चलनके वाद १ मिडिल स्कूलमें ठहर गये। यहाँ पर शान्तिसे रात्रि काटी। स्कूलमें २५ छात्र देहातके श्राय्ययन करते हैं। मास्टर लोग पढ़ाई श्रच्छी करते हैं। श्रार्थना होती है। सभ्यताकी श्रोर लक्ष्य है परन्तु सभ्यता पश्चिमी

है। यहाँसे प्रातः ४ में मील चलकर पुनः एक स्कूलमे ठहर गये। यहाँके मास्टर वहुत ही योग्य थे। आपने वहुत ही आदरके साथ स्थान दिया। स्थान शान्तिपूर्ण था। शरीरमे कुछ थकावट भी थी अतः इस दिन संध्याकलीन प्रयाण स्थिगत कर रात्रिको यहीं विश्राम किया। स्थान निर्जन था, कोई प्रकारका नोलाहल न था फिर भी अन्तरज्ञकी शान्ति न होनेसे अन्तरज्ञ लाभ नहीं हुआ। जहाँ तक विचारसे काम लेते हैं यही समममे आता है कि अनादि कर्जु घताके प्रचुर प्रभावमें कुछ सुध-बुध नहीं रहती, केवल उपरी वेष रह जाते हैं।

यहाँसे प्रातः ३ मील ३ फर्लाग चलकर हनुमना आ गये। यह नगर अच्छा है। यहाँ पर श्री कोमलचन्द्रजीकी दूकान है। रीवाँसे २ गृहस्थ आये। उन्हींने आहार दिया। पण्डित फूलचन्द्रजी भी आये। ३ वजे स्वामिकार्तिकेयानुप्रेचामें जो वोधिदुर्लभानुप्रेचा है उस पर विचार हुआ। सर्व पर्यायोंमें मनुष्य पर्याय अति दुर्लभ है। इसमें उत्तरोत्तर संयम पर्यन्तकी दुर्लभता दिखाई। संयमरत्नको पाकर जो विषयलोलुपी संयमका घात, कर लेते हैं वे भूति (भस्म) के अर्थ रत्नको जला देते हैं। इस परिण्तिको धिक् है। रात्रिको यहीं रहे। प्रातःकाल श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पूजन समारोहके साथ हुआ। भोजन रीवांवालोंके यहाँ हुआ। मिर्जापुरसे श्री पोष्ट-मास्टर कन्हैयालालजी आये। परिशहका पिशाच सबके अपर अपना प्रभाव जमाये है। अच्छे अच्छे धनी मानी इसके प्रभावमे अपनी प्रतिष्ठाको खो देते हैं। सम्यग्झान होनेके वाद भी इसका रिच्ति रहना कठिन है। अज्ञानीकी कथा छोड़ो। अज्ञानी परिगहको न छोड़े, आश्चर्य नहीं परन्तु जानकार ज्ञानी न छोड़े यह आश्चर्य है।

यहाँसे सायंकाल ३ मील चलकर भैसोड़के डाँकवङ्गलामें ठहर गये। प्रातःकाल ३३ मील चल लुहस्थिहरके पहाड़ पर आ

गये। यहाँ पर सड़कके किनारे १ चौकी है। उसीमे भोजन वना । यहां ७७ हाथ गहरा कूप है परन्तु पानी इतना मिष्ट नहीं। नदी १ फर्लाङ्ग है। स्थान रम्य है। १० घर गोपाल लोगोंके हैं। सायंकाल ४॥ मील चलकर द्रासिलगंज आ गये। यहां पर एक संस्कृत पाठशाला है। उसमें ठहर गये। पाठशालाके प्रधानाध्यापक महान् साघु पुरुष हैं। श्रापके प्रयत्नसे इस पाठशालाका काम साधु रूपसे चलता है। व्याकरण-साहित्यके ब्राचार्य पर्यन्त यहाँ श्रध्ययन होता है। ५१ छात्र श्रध्ययन करते हैं। पाठशालाके सर्वस्त्र प्रधानाध्यापक हैं। श्राज बनारससे पं॰ महेन्द्रकुमारजी श्रोर पं॰ पन्नालालजी श्राये। दूसरे दिन प्रातः ३ मील चलकर मार्गमें 9 मुसलमानके घरमें ठहरे। घरका स्त्रामी साचर था। वहुत सत्कारसे उसने ठहराया। वह अपने धर्मका पूर्ण श्रद्धानी था। सायं-काल यहाँसे ५ मील चलकर वरीधा आ गये। यहाँ पर १ मिडिल स्कूलमें ठहरे। यहाँके अध्यापकवर्ग अत्यन्त सभ्य हैं। १ कमरा तत्काल रिक्त कर दिया। प्रातःकाल यहाँसे ६ मील चलकर एक महन्तके स्थानपर निवास किया। वहुंत ही पुष्कल श्रौर पवित्र स्थान था। श्री ठाकुरजीके मन्दिमें जो दालान थे उसमें गर्मीकी बिताया। {यहाँ पर मिर्जापुरके तहसीलदार जो कि जैन थे आये। श्राप बहुत भद्र हैं। धर्मकी उत्तम रुचि भी रखते हैं। वैष्णव सम्प्रदायमें ऋतिथिसत्कारकी समीचीन प्रथा है। इसका अनुकरण हम लोगोंको करना चाहिये। परमार्थसे सव जीव समान हैं। विकृत परिमाणोंसे ही भेद है। जिस दिन विकार चला जायगा उसी दिन यह जीव परमात्मा हो जायगा। परन्तु विकारका जाना ही कठिन है। शरीरमे थकावटका श्रनुभव होनेसे रात्रि यहीं व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ३ मील चलकर तुलसीयाम त्रा गये। यहां पर नागा वावात्रोंका अखाड़ा है। ६ वजे प्रवचन हुआ। प्रवचनमें यह वात

थी कि श्रात्मा श्रौर पुदुगल स्वतन्त्र द्रव्य हैं। इनमे जो परिएामन होता है उसके आत्मा श्रीर पुद्गल स्वतन्त्र कर्ता हैं। एक दूसरेके परिएमनमे निमित्त कारए। हैं। जैसे जव रागकर्मका विपाक होता हे तव जिस । त्रात्माके साथ रागकर्मका सम्वन्ध है वह त्रात्मा रागरूप परिएमन करता है तथा उसी काल कार्मणवर्गणा ज्ञाना-वरणादिरूप हो जाता है। प्रवचनके वाद यहीं पर भोजन हुआ। सायंकाल चलकर एक वनमे ठहर गये। श्रागामी दिन प्रातःकाल ३ मील चलकर १ मन्दिरमें निवास किया। मन्दिर बहुत रम्य था। यहीं पर भोजन किया। यहाँसे मिर्जापुर ६ मील है। रात्रि भी यहीं व्यतीत की। यहाँ पर बनारससे प० कैलाशचन्द्रजी, मंत्री सुमतिलालजी, श्रिधिष्ठाता हरिश्चन्द्रजी तथा कोपाध्यत्तजी श्राये। त्राप लोग ४ घँटा । यहाँ पर रहे । श्रनन्तर मन्त्रीजीको त्याग सब चले गये। प्रातःकाल ३ मील चलकर मिर्जापुरके बगीचामे ठहर गये। यहाँ एक सुन्दर कूप तथा श्रखाड़ा है। ठहरनेके लिये वंगला है। एक शिवालय भी है। चारो श्रोर रम्य उपवन है। यहीं पर भोजन हुआ। यहाँ मिर्जापुरसे कई मनुष्य आ गये। मध्यान्हकी सामायिकके वाद मिर्जापुर गये। लोगोंने उत्साहसे स्वागत किया।

दूसरे दिन चैत्र शुक्ता १३ सं० २०१० होनेसे महावीर जयन्तीका उत्सव था। बनारससे पं० महेन्द्रकुमारजी तथा कैताशचन्द्रजी आ गये। प्रात काल पं० महेन्द्रकुमारजीने शास्त्र प्रवचन किया। आपने यह भाव प्रकट किया कि सप्त तत्त्व जाने विना मोचमार्गका निरूपण नहीं हो सकता! रात्रिको आमसभा हुई। उसमें श्री महावीर स्वामीके जीवनचरित्रका वर्णन श्री पं० केताशचन्द्रजीने उत्तम रीतिसे किया। पं० महेन्द्रकुमारजीका भी उत्तम व्याख्यान हुआ। कुछ हमने भी कहा। एक दिन प्रातःकाल वड़े मन्दिरमे प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। जैनधर्मका

मूल उपदेश तो यह है कि स्वपरका भेदज्ञान प्राप्त कर विषय कपायसे निवृत्त होत्रो। शास्त्रप्रवचनोंमे यही वात प्रतिदिन कही जाती है परन्तु अमलमे नहीं लाई जाती इसलिये वक्ताके हाथ केत्रल कहना रह जाता है श्रीर श्रोताके हाथ सुनना । प्रथम वैशाख वदी को यहाँसे चलना था परन्तु मोटर द्वारा दुर्घटना हो गई जिससे रुकना पड़ा। मनमें विचार आया कि यदि यह परिकर साय न होता तो न्यर्थका संक्लेश न उठाना पड़ता। इस दुर्घटनाके कारण मिर्जापुरमे २ दिन श्रौर रुकना पड़ा। वार वार विचार होता था कि अतिशय दुर्त्तभ मनुष्य जीवन पाकर भी मैंने इसका उपयोग नहीं किया। मानव जीवन सकत योनियोंमें श्रेष्ठ है। इस जीवनसे ही मनुष्य जगत्के विकृत भावोंसे रिचत होकर स्वभाव परिणितिका पात्र होता हैं। अगले दिन श्री सुमतिलाल जी मंत्रीके यहाँ आहार हुआ। आप वहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य हैं। स्याद्वाद विद्या-लयका कार्य इनहीं द्वारा चल रहा है। यह एक सिद्धान्त है कि जिस संस्थाका संचालक निर्मेल परिणामी होता है वही संस्था सुचारुरूपसे चलती है। श्राप उन महापुरुषोमसे हैं जो कार्य कर नाम नहीं चाहते हैं।

प्र० वैशाख वदी ३ सं० २०१० को यहाँसे संध्याकाल चलकर चिलीके उपवत्तमे ठहर गये। रात्रि सानन्द व्यतीत हुई। प्रातःकाल ४३ मील चल कर एक धर्मशालामें ठहर गये। श्री हरिश्चन्द्रने सानन्द भोजन कराया। भोजन भक्तिसे दिया। श्रत्यन्त स्त्रादिष्ट या। हम लोग उद्दिष्ट त्यागकी क्यामात्र कर लेते हैं परन्तु पालन नहीं करते। उसीका फल है कि परिणामोंमें शान्ति नहीं श्राती। शान्तिका मूल कारण अन्तरङ्ग श्रमिप्रायकी पवित्रता है। हम लोग वाह्य त्यागसे ही श्रपनी परिणातिको उत्तम मानते हैं यह सर्वया श्रमुचित है। रात्रि यहीं विताई।

दूसरे दिन प्रातः ४ मील चल कर महाराजगंजकी संस्कृत पाठशालामे निवास किया। यहाँ पर जमनादास पन्नालालजीके नाती आये और उन्हींके यहाँ आहार हुआ। मध्यान्ह कालमे हुई चर्चाका सार यह निकला कि जो आत्माको पिवत्र बनानेके लिये कलुपताका त्यागं करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि अपनी परिणित मायाचारसे रिच्चत रक्कें। गर्मांकी बहुलतासे अब संध्याकालका अमण कष्टकर होने लगा अतः यहीं पर रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर राजमार्गस्थ रूपापुरके शिद्युपाठालयमे निवास किया। यहीं पर भोजन किया। यहाँ स्याद्वाद विद्यालयके २ छात्र आये। मंत्रीजीने उन्हें भेजा था। यहाँ स्याद्वाद विद्यालयके २ छात्र आये। मंत्रीजीने उन्हें भेजा था। यहाँ स्मात दूरीपर मिर्जासराय है वहींपर जानेका विचार हुआ।

प्रातःकाल ५ मील चल कर राजातालाब पर भोजन हुआ। यहाँ दिल्लीसे राजकृष्ण तथा उनकी धर्मपत्नी आईं। उन्होंके यहाँ भोजन हुआ। बनारसंसे कई छात्र महोदय आये। यहीं पर श्री १०८ विजयसागरजी मुनियुगल, २ जुल्लक तथा २ ब्रह्मचारी भी आये। शान्तपरिणामी हैं परन्तु विजयसागरजीके नेत्रों की ज्योति वहुत कम हो गई है तथा वृद्ध भी अधिक हैं अतः उन्हें चलनेका कृष्ट होता है। फिर भी आजकलके युवाओंकी अपेत्ता शक्तिशाली हैं। संध्याकालमे ४ मील चल कर भास्करके उपवनमें १ कूपके उपर निवास किया। यहाँ १ शिवालय है। पुजारीकी आज्ञासे उसीमें ठहर गये। पुजारी भद्रस्वभावका है। जैसा आतिथ्य सत्कार ये लोग करते हैं वैसा हम लोगोंमे नहीं है। हम लोग तो अन्य लोगोंको मिथ्यादृष्टि वाक्यका उपयोग कर ही अपने आपको कृतकृत्य मान लेते हैं। संध्याकाल यहाँसे चल कर श्री बनारसी-दासजीके उपवनमें ठहर गये। रात्रि सुखसे वीती। यहाँसे वनारस केवल ३ मील दूर है।

## वनारस और उसके अंचलमें

प्रथम वैशाख कृष्ण ६ सं० २०१० को प्रात.काल ३ मील चलकर भेल्पुर आ गये। यह स्थान हमारा चिर परिचित स्थान था। यहीं वाईजी रहती थीं और यहीं पर रहकर हमने बहुत दिन विद्याका अभ्यास किया था। उस समय यहाँ १ शान्तिप्रिय नामक ब्रह्मचारी भी रहते थे जो प्रवल शक्तिशाली थे। यहाँ २ मन्दिर हैं—एक नीचे सड़कके समीप श्रीर १ अपर। मुन्दर उद्यान है। मूर्तियाँ अत्यन्त मनोज्ञ हैं। अपरका मन्दिर बोलाइलसे अतीत अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। श्री राजकृष्ण्जीके यहाँ श्राहार किया। एक दिन तथा एक रात्रि यही निवास किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल चलकर स्याद्वाद विद्यालय श्रागये। स्योदयका समय था। गंगाके उस पार दूर चितिज्ञमे न्यंशी सुनहली श्राभा प्रकट होकर गङ्गाके निर्मल वारिको रत्त-शीन बना रही थी। विस्तृत छतके अपर श्री मुपार्वनाय भगवानका मुन्दर मन्दिर है। उसकी शिखरपर सूर्वकी मनोहर किरलें पर रही भी। छत परसे मूर्योदयका हृद्य बड़ा मुन्दर जान पड़ना था। स्याद्वार विद्यालयमें पहुँचते ही पिछले जीवनकी स्मृति नवीन होगई। यापा भगीरयजी तथा स्व० सेठ माणिकचन्द्रजी श्रादिया समरगा ही श्राया जिनकी कि उपस्थितिमें बड़े ममारोहने नाथ जेठ सुरी प से० १९६२ में उस स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्या श्राव हो हृद्य गड़गह होगया। जुन श्राव माम्याद्वाद विद्वानोंने हैंन ह्याद्वार पड़गह होगया। जिस समय श्रम्य श्रावरा विद्वानोंने हैंन ह्याद्वार पड़गह होगया।

कर दिया था उस समय श्राप एक ही ऐसे सहदय विद्वान् थे जिन्होंने मुफ जैसे निराश व्यक्तिको प्रेमसे विद्याध्ययन कराया था। श्री शास्त्रीजीकी हमारे ऊपर पूर्ण छुपा थी। मुफे जो छुछ ज्ञान है वह उन्हींका दिया हुआ है। स्नानादिसे निवृत्त हो श्री सुपार्श्वनाथ भगवान्के दर्शन किये। तदनन्तर श्री हरिश्चन्द्रजीके यहाँ भोजन हुआ। सायंकाल छात्रोंके बीच भाषण हुआ। रात्रिको यहीं विश्राम किया। दूसरे दिन विद्यालयके बालकोंने बहुत भक्तिके साथ भोजन कराया। उनकी प्रवृत्तिसे उनका आस्तिक्यभाव टपक रहा था।

सायंकाल ५ वजे चलकर ६॥ वजे सन्मति निकेतनमें श्रागये। यहाँपर श्रीसेठ हुकुमचन्द्रजी इन्दौरवालोने वहुत ही रम्य जिनालयका निर्माण कराया है। श्री महावीर स्वामीका विम्व श्रत्यन्त सुन्दर श्रीर श्राकर्षक है। सन्मति निकेतनमें वे छात्र रहते हैं जो यूनिवर-सिटीमें श्रध्ययन करते हैं। रात्रिको यहीं विश्राम किया। प्रातःकाल गङ्गाके तट पर प्रातःकालीन कियाओं से निवृत्त हो हिन्दू विश्व-विद्यालयके भवनों को देखते हुंए सन्मति निकेतनमें श्रागये। स्नानादिसे निवृत्त हो श्रीमहावीर स्वामीके दर्शन किये। हृद्यमें बड़ा श्राह्लाद उत्पन्न हुआ। एक सीधी साधी वेदिका पर भगवान् महावीर स्वामीकी विशालकाय शुभ्र मूर्ति विराजमान की गई है। सायंकालके समय निकेतनमें उत्सव हुआ। कई प्रोफेसर श्राये। सानन्द छात्रावासका उद्घाटन हुआ।

प्रथम वैशाख कृष्णा १४ सं० २०१० को प्रातःकाल ७ वजे चलकर स्वाद्वाद विद्यालय श्रा गये। यहीं पर भोजन हुआ। ३ वजेसे विद्यालयका वार्षिक उत्सव हुआ। जनता श्रच्छी श्राई। कैलाशचन्द्रजीने विद्यालयका परिचय कराया। उत्सवमे ४ बजे श्रीश्रानन्दमयी माता भी पधारीं। श्राप शान्तिमूर्ति हैं। सचमुच ही श्रानन्दमयी हैं। सबके श्रानन्दमें निमित्त हो जाती हैं। उत्सव में छात्रोंको पुरस्कार दिया गया। अन्तमें शान्तिपूर्वक सव लोग स्वस्थानको गये। आनन्दमयी माताका आश्रम विद्यालयके समीप ही गङ्गाके तटपर है। मुमे वहां बुलाया गया श्रतः में भी अमावस्थाके दिन वहां गया। वहुत ही सुन्दर भवन वनाया गया है। वहां अनेक साध्वियां तथा साधु निर्मल परिणामोवाले थे। क्रम विकास पर हमारा भाषण हुआ। अन्तमें आनन्दमयीने यह कहा कि अपना पराया मतभेद छोड़ो। आप बंगाली हैं। बंगाली लोग आपको वड़ी श्रद्धासे देखते हैं। एक दिन मैदागिनके मन्दिरमें गये। श्री पं० कैलाशचन्द्रजी तथा पं० जगन्मोहनलालजी कटनीका व्याख्यान हुआ। आतमदर्शनका अच्छा प्रतिपादन हुंआ। तदनन्तर हमने भी कुछ कहा। जनता अच्छी थी।

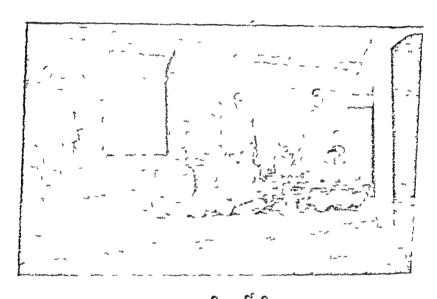
प्रथम वैशाख शुक्ता ३ को प्रातःकाल ५१ वजे चलकर एक उप-वनमें ठहर गये। यहीं पर भोजन हुंआ। यहाँ पर पं० पन्नालालजी व पं० फूलचन्द्रजी साहव आये। उपवनमें जो कूप है उसका जल अत्यन्त मिष्ट हैं। यह उपवन श्री मोतीलालजी सिंघईके लघु वालक सूरजमल्लका है। स्थान रम्य है। यदि कोई धर्मसाधन करे तो कर सकता है परन्तु इस समय धर्मसाधनकी दृष्टि चली गई है। अब तो लोग विषय साधनमें मग्न हैं। यहाँसे ११ मील चलकर सारनाथ (सिंहपुरी) आ गये। सिंहपुरी श्री श्रेयान्स भगवान्का जन्मस्थान है। सुन्दर मन्दिर वना हुआ है। एक धर्मशाला तथा उद्यान भी है। धर्मशाला में स्वच्छता कम है। प्रातःकाल मन्दिर में प्रवचन हुआ। दिल्लीसे पं० दरवारीलालजी तथा राजछूटणका वालक प्रेमचन्द्रजी आये। २ घंटा रहे। यहाँ आरासे पं० महंन्द्र-कुमारजी तथा एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि आराकी जैन जनता आपको आरामें चौमासा करनेका निमन्त्रण देती है। मैं सुनकर चुप रहा। यहीं पर कलकत्तासे सरदारमष्ट हुलासरायजी श्री गोम्मटस्वामीके दर्शन कर श्राये । १ घंटा रहे। श्राप लोग श्री स्व० सूरिसागरजीके परम भक्त हैं । तेरापन्थके माननेवाले हैं। वास्तवमे धर्मका स्वरूप तो निविकार है। उपाधिसे नाना विकार मनुष्योंने उसमे ला दिये हैं श्रतः जिन्हे श्रात्मकल्याण करना हो उन्हें यह विकार दूर करना चाहिये।

गरमीकी प्रवलताके कारण कुछ समय विश्राम करनेकी इच्डा हुई। सारनाय कोलाहलसे परे शान्तिपूर्ण स्थान है स्रतः १५ दिन यहीं रहनेका विचार किया। एकान्त होनेसे स्वाध्यायका लाभ भी यहाँ श्रच्छा मिला। श्रौर चिन्तन भी श्रच्छा हुत्रा। श्रष्टमीका दिन था। सध्यान्हके वाद विचार आया कि चित्तकी स्थिरताके लिये क्या करना चाहिये ? हृद्यसे उत्तर मिला कि संयम धारणं करना चाहिये। उसी चए विचार श्राया कि संयम तो वहुत समयसे धारण किये हूं फिर चित्तकी स्थिरता क्यों नहीं है। तब संयम शब्दके श्रर्थकी श्रोर दृष्टि गई। 'संयमनं संयमः' सम उपसर्ग पूर्वक 'यम उपरमे' धातुसे संयम शब्द बना है जिसका श्रर्थ होता है सम्यक् प्रकारसे रुक जाना। अर्थात् पञ्चे निद्रयोंके विषयोंमे जो प्रवृत्ति हो रही है उसका भले प्रकारसे रुक जाना संयम है। जब तक इन्द्रियोंके विषयोसे यथार्थ निवृत्ति नहीं होती तव तक नाम निच्चेपके संयमसे क्या लाभ होनेवाला है ? निवृत्तिका श्रर्थ तटस्य रहना है तथा मनोनिपहका श्रर्थ कषाय कुराता है। इन्द्रियांके दमनका अर्थ इन्द्रियों द्वारा विषय जाननेका अभाव नहीं। उनमे लोलपता न होना चाहिये। शरीरदमन न कोई कर सकता है श्रीर न उसका दमन होता ही है। भोजन करनेसे शरीरकी नृप्ति नहीं होती किन्तु श्रात्मामें ही भोजन करनेकी जो इच्छा थी वह शान्त हो जाती है। वही र्नाप्तका कारण है। जो केवल कायक्लेश करते हैं वे शान्तिके पात्र नहीं होते।

द्वितीय वैशाख कृष्णा २ को सिंहपुरीसे ५ मील चलकर मेंदागिनमे आ गये। यहीं पर भोजन हुआ। रात्रि भी यहीं व्यतीत की। अगले दिन प्रात:काल ५। वजे चलकर ३॥ मीलकी दूरी पर एक खत्रियके वागमें ठहर गये। स्थान सुरम्य था। बहुत आनन्दिस समय गया। श्री गरोशदासजीके सुपुत्र श्री गुल्खवाबू तथा मौजीलालजीका चौका आया था। इन्हींके यहाँ भोजन हुं आ। सायंकाल २ मील चलकर एक वागमें ठहर गये। बृद्धावस्थाके कारण अधिक चला नहीं जाता था इसलिये थोड़ा ही चलते थे और यह निश्चय कर लिया था कि जितनी शक्ति होगी तदनुकूल। गमन करेंगे परन्तु गमन श्री पार्विश्नके सम्मुख ही करेंगे।

# पार्श्वप्रभुकी श्रोर

प्रातःकाल वागसे ४ मील चल कर मोगलसरायकी धर्मशालामें ठहर गये। धर्मशालामें सब प्रकारके मनुष्य आते हैं। यदि वहाँ कोई धर्मप्रचार करना चाहे तो अनायास कर सकता है। सायंकाल ३ मील चलकर १ वावाजी की कुटीमें ठहर गये। अन्य साधु जिस प्रकार निरीह हो नगरके वाहर शान्तिसे जीवन विताते हैं उस प्रकार हमारे साधु नहीं। अब इन्हें बिना परिकरके एक दिन भी चैन नहीं पड़ता। दूसरे दिन प्रातःकाल कुटीसे ४ मील चले तो जुहक महोहरलाल जी वर्णी मिल गये। प्रसन्नता हुई। यहाँसे २ मील चलकर चंदौलीके शिवालयके पास धर्मशालामे ठहर गये। यहाँ पर भोजन हुंआ। दुपहरी शान्तभावोसे वीती किन्तु जहाँ पर अधिक समागम होता है वहाँ सिवाय अप्रयोजनीभूत कथाओं के कुछ नहीं



पूज्य श्री वर्गीजी
श्री व्र॰ नाथृलालजी श्रादि खड़े हुए हैं
श्रीर श्री भवरीजाल जी सरिया व
श्री नदलाल जी मरावगी
क्लकत्ता श्रादि बैठे हुए हैं।

[ão 883]

होता । ऋगले दिन ५ मील चलकर सैय्यद्राजा शाममें आ गये। एक ऋयवालकी धर्मशालामे रह गये। धर्मशालाका मैनेजर धार्मिक था। उसने कहा कि भगवद्भजनमें उपयोग लगे ऐसी प्रकृति किस तरह प्राप्त हो सकती है ? हमने यही उत्तर दिया कि उसका उपाय तो विपयोंसे चित्तको रोकना है। उसका दूसरा प्रश्न था कि प्रत्येक प्राणीको भगवद्भजनकी इच्छा क्यों रहती है ? इसके उत्तरमें हमने कहा कि भगवान् पूर्ण है, वीतराग है श्रीर हितोपदेशी है तथा हम परमार्थसे अनेक प्रकारके अपराध करते हैं एवं निरन्तर पतित मार्गमे जाते हैं श्रतः एतन्निवारणाय किसी महापुरुषकी शरणमें ही जाना इमारे लिये श्रेयोमार्ग है है। यहाँसे चलकर कर्मनाशा स्टेशनके समीप ठहर गये और दूसरे दिन प्रातः ६ मील चलकर दुर्गावती नदीके तट पर डाँक वॅगलामें निवास किया। यहीं पर आहार हुआ। यहाँसे 🗦 फर्लांग पर एक स्कूल था। उसमे सानन्द निवास किया । श्रध्यापकवर्ग शिष्ट था । एक वालकने प्रश्न किया—त्राप कौन हैं ? मैंने उत्तर दिया—जैन हैं। उसने फिर जिज्ञासा भावसे पूछा—जैन किसे कहते हैं ? मैंने कहा—जो जीवमात्र पर दया करे। उसने फिर प्रश्न किया - जीवमात्र पर द्या करनेसे संसारकी व्यवस्था किस प्रकार चलेगी ? मैंने कहा-श्रच्छी तरह चलेगी। उसने कहा श्रच्छी किस तरह ? मैंने कहा-दयाका यथोचित विभाग करनेसे सब व्यवस्था चल सकती है। श्रपने श्रपने पद् श्रोर श्रपनी श्रपनी शक्तिके श्रनुसार जीवदयाका पालन करनेसे कहीं कोई व्यवस्था भग्न नहीं होती। उत्तर सुनकर वालक प्रसन्न हुआ।

प्रातः ५ मील चलकर एक वावाकी कुटियामे फिर विश्राम किया। बावाने प्रेमसे स्थान दिया। यहां गयासे सोनू वावू श्रा गये। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर १ वंगलामे ठहर गये। -यहाँपर दुर्गावती नदी वहती है । यहींपर जैनबद्रीकी यात्रासे श्री राजेन्द्रकुमारजी वनारसवाले श्रोर पं० श्रीलालजी श्राये । यहीं भोजन किया। २५ श्रादमियोंका समागम था, धर्म रुचिवाले थे परन्तु श्रन्तरङ्गसे जो वात होना चाहिये वह नहीं थी। श्रन्तरङ्ग-की कथा इस समय अत्यन्त दुर्लभ हो रही है। यहाँसे प्रातः ।।। मील चलकर पुसौली रेलके क्वार्टरोंमें ठहर गये। जो मैनेजर था उसने बहुत आदरसे ठहराया। यहाँपर दुर्गावती नदी है। उसका जल पिया, अच्छा था। सायंकाल चलकर एक वावाकी कुटीमें विश्राम किया। वहांसे प्रातः ५॥ मील चलकर जहानाबादके शिवा-त्तयके पास जो धर्मशाला है उसमें ठहर गये। धर्मशाला श्रच्छी थी। ज्ञुल्लक मनोहरजी वर्णीं यहां त्रा गये। श्रापका डालमिया-नगरमें मन नहीं लगा। हमारी बुद्धिमें तो यह त्राता है कि परसे सम्बन्ध रखना ही नाना प्रकारके विकल्पोंका उत्पादक है त्रौर परकी शल्य तव तक नहीं जा सकती जव तक कि अन्तरङ्गसे मोह नष्ट न हो जाय । जहानावादसे २॥ मील चलकर १ स्कूलमें ठहर गये। दूसरे दिन प्रातःकाल था। मील चलकर शिवसागर प्राममें एक शिवालयमे ठहर गये। शिवालयकी दहलानमें भोजन हुआ। शिवालयका जो पुजारी था वह अत्यन्त शिष्ट था। गर्मीकी अधिकता देख उसने हमें शिवालयके भीतर स्थान दिया । भीतर देवस्थान है। वहाँ ठइरनेसे अविनय होगी "ऐसा हमारे कहनेपर उसने उत्तर दिया कि मनुष्यकी रत्ता करना सर्वोपरि है। भगवान्का उपदेश है कि दया करो। हम भीतर आपको स्थान देकर दयाका ही तो पालन कर रहे हैं इसमें अविनयकी कौनसी वात है ? अविनय तो तव होती जव हम उनके उपदेशके प्रतिकृल कार्य करते। उसका उत्तर सुनकर जब हमने अपने लोगोंकी प्रवृत्तिकी ओर दृष्टि दी तो जान पड़ा कि हम लोग मुखसे ही द्याका पाठ पढ़ते हैं। काम

पड़ जावे तो हम लोग अन्य धर्मावलिन्वयोको मन्दिरमे ठहरना तो दूर रहा वैठने तक न देवेंगे। यह वात जैनधर्मके सर्वथा प्रतिक्ल है। अरे! जैनधर्म तो उन जीवोंकी भी रचाका उपदेश देता है जो इन्दियोंके गोचर नहीं। फिर चलते फिरते मनुष्योंकी तो वात ही क्या है?

प्रात काल यहाँसे था। मील चलकर १ शिवालयमे फिर ठहर गये। यहांके पुजारीने भी बड़े सत्कारसे रक्खा। यह स्थान श्रति रमणीय है। अक्षय तृतीयांके दिन प्रातःकालं २ मील चलकर ससराम आ गये। यहाँ एक सुन्दर धर्मशाला है। उसीमे ठहर गये। गर्मीके प्रकोपके कारण स्वाध्यायमें मन नहीं लगा तथा तृषाके कारण भी अशान्ति रही परन्तु मैंने देखा कि पानी पीनेवाले इससे भी अधिक अशाम्त रहते हैं अतः पानी ही शान्तिका कारण नहीं है। सायंकाल यहासे २ मील चलकर एक कूपपर ठहर गये। यह कूप एक तेलिनने बनवाया है। उसपर एक आदमी रहता है जो दिनभर पशुत्रों तथा मनुष्योंको पानी पिलाता रहता है। यहाँसे प्रातः ४ मील चलकर'एक पानीका स्थान था वहीं ठहर गये। वहींपर भोजन हुआ। ३ वजे यहाँसे चलकर डालिमयाँनगर आ गये। लोगोंने अच्छा स्वागत किया। स्थान रम्य है। यह वही स्थान है जहाँ पर श्री स्वर्गीय सूरिसागरजी महाराजने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग किया था। श्राप वड़े तपस्त्री थे। तेरापन्थ दिगम्बर जैन धर्मके अनुयायी थे। आपका ज्ञान विशाल था। आपके द्वारा संयम-प्रकाश आदि अनेक शास्त्रोंकी रचना हुई है। आपका स्वर्गवास गत वर्षके श्रावण वदी = को यहीं हुआ था। श्राप ६ घंटा समाधि मे रत रहे। १२ वजे रात्रिको आपने देहोत्सर्ग किया। आपकी दिगम्बर पद्यासन मुद्रा देह त्यागके वाद ज्यों की त्यों रही। यहाँ श्राते ही मुमे श्रापका नाम स्मृत हो उठा श्रीर मनमे श्रपने प्रति

एक ग्लानिका थाव चठने लगा—ग्लानिका भाव इसलिए कि मैंने नर तन पाकर भी कुछ नहीं किया—

श्रमी वर्षकी श्रायुमें किया न श्रातम काम। ज्यों श्राये त्यों ही गये निशदिन पोसा चाम।

क्या कहें १ किससे कहे १ कुछ कहा नहीं जाता १ व्यर्थके जंजालमें पड़कर अपनी अभिलापाओं को न रोक सके। यथार्थमें चों करेंगे, त्यों करेंगे' ऐसे शब्दों द्वारा जनता के समन्न शेखी वधारना कुछ लाभदायक नहीं। पानी के विलोलने से हाथ चीकना नहीं होता। वह तो परिश्रमका कारण है।

ढालिमयाँनगर श्री साहु शान्तिप्रसादजीके पुरुपार्थका फल है। पुरुषार्थ उसीका सफल होता है जिसके पास पूर्वीपार्जित पुण्य कर्म है। अथवा पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म भी पूर्व पर्यायका पुरुवार्थ ही है। यहाँ श्रापके द्वारा निर्मित नाना कारखाने हैं। कार्यकर्ताश्रोंके रहनेके लिए अच्छे स्थान हैं तथा धर्मसाधनके लिए सुन्दर मन्दिर है। शान्तिप्रसाद् प्रकृत्या शान्त तथा भद्र परिणामी हैं। इस सम्ब आपके द्वारा जैनधर्मके उत्कर्पको वढ़ानेवाले अनेक कार्य हो रहे हैं। श्रापकी पत्नी रमारानी भी सुयोग्य तथा सुशीला नारी है। पं॰ महेन्द्रकुमारजी तथा पं० फूलचन्द्रजी वनारससे यहाँ आये थे। साथमें नरेन्द्रकुमार वालक भी था। पं० युगलने साहु शान्ति प्रसादजीसे सन्मति निकेतनके अर्थ माँग की तो आपने १३ कमरे दुहरे करवा देनेका वचन दिया और १००) मासिक छात्रावाम चलानेको कह दिया। आप वहुत ही उदार मानव हैं। विशेषना यह है कि आप निरपेन त्याग करते हैं। नरेन्द्रकुमार छात्र वन्त ही शिष्ट तथा होनहार वालक है। प्रकृतिका स्वाभिमानी है अतः किसीसे याचना नहीं करता। यदि कोई उसे विशेष रूपसे महावना देवे तो यह श्रद्भुत मानव हो सकता है।

मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मैंने कहा-कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। संयोगवश यदि यह प्राप्त हो गया है तो इससे इसका कार्य करना चाहिये। भोग विलासमें मस्त रहना मनुष्य जन्मके कार्य नहीं है किन्तु भोगोसे निवृत्त हो संयम धारण करना मनुष्य जन्मका सर्वोपिर कार्य है। जीवनमें इसे अवश्य ही धारण करना चाहिये। अनादिकालसे हमारी अन्य द्रव्य पर दृष्टि लग रही है, श्रन्य द्रव्यसे तात्पर्य पुद्गल द्रव्यसे है। श्रात्मा तथा पुद्गल दोनोंका अनादिकालसे ऐसा एक चेत्रावगाह हो रहा है कि जिससे आत्माकी श्रोर दृष्टि जाती ही नहीं है। केवल पुद्गलमें ही दृष्टि उलम कर रह जाती है। गौके स्तनसे जो दूध दुहा जाता है उसमे पानीका बहुभाग रहता है परन्तु वह दुग्धके साथ इस प्रकार मिला हुआ है कि उसे कोई पानी कहता ही नहीं है। इसी प्रकार शरीर श्रीर श्रात्मा इस प्रकार मिले हुए हैं कि कोई श्रात्माको श्रलगसे जानता ही नहीं है। परन्तु जिस प्रकार मिठया दूधको कड़ाहीमें चढ़ाकर भट्टीकी र्घांचसे दूध श्रीर पानीको श्रलग श्रलग कर देता है उसी प्रकार ज्ञानी प्राणी आत्मा श्रीर पुद्गलको अपने भेदज्ञानके द्वारा त्रालग-त्रालग कर देता है। भले ही त्रात्माके साथ पुद्गलका जो सम्बन्ध है वह अनादिकालसे चला आ रहा हो पर इससे श्रमन्त काल तक चला जावेगा यह व्याप्ति नहीं। भव्य जीवके श्रात्मा श्रौर पुद्गलका सम्बन्ध श्रनादि-सान्त माना गया है। सुवर्णके साथ किंद्रकालिमादिका संसर्ग कबसे है यह कौन जानता हैं। परन्तु अग्निके संयोगसे दोनों अलग-अलग हो जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि दोनों पृथक् पृथक् हैं। इसी प्रकार संसार दशामें जीव श्रीर पुद्गल एकमेक श्रनुभवमें श्राता है परन्तु भेद-ज्ञानके द्वारा दोनों ही पृथक पृथक् हो जाते हैं। अतः प्रयत्न ऐसा करो कि जिससे परसे भिन्न आत्माका अस्तित्व आपकी दृष्टिमे श्रा जावे । डालिमयांनगरमे हम श्राठ दिन रहे। वावू जगत्-प्रसादजी, श्रयोध्याप्रसादजी गोयलीय तथा पं॰ चेतनलाल जी श्रादिने सव व्यवस्था ठीक रक्खी। यहाँ साहु शान्तिप्रसाद जी ने स्वयं अष्टपाहुड्का स्वाध्याय कर सवको श्रवण कराया। शान्तिसे समय वीता। द्वि० वैशाख शुक्ला ११ को साहुं जी कलकत्ता चले गये। पंडित महाशय बनारस चले गये और हम १२ को प्रात-काल ५ वजे पार्श्वप्रमुकी और वढ़ गये।

## गयामें चातुर्मासका निश्चय

हालिमयाँनगरसे चलकर शोणभद्र नदी (सोनभद्रा नदी) को नाव द्वारा पारकर नहरके ऊपर एक वंगलामें ठहर गये। स्थान अच्छा था परन्तु संपर्क अच्छा न होनेसे हृदयमे शान्ति नहीं आई। संध्याकाल यहाँसे चलकर वारौन पहुँच गये। रात्रिको विश्राम किया। तदनन्तर प्रातःकाल ५३ मील चलकर पुनपुन गङ्गापर ठहर गये। ठहरनेके लिये १ कुटिया थी, उसीमें ठहर गये। गर्मीका प्रकोप रहा परन्तु श्रीसोन् वायू गयाके रहनेसे तत्त्य चर्चा का अच्छा प्रभाव रहा। परमार्थसे गर्मीकी व्याकुलतासे विशेप आनन्द नहीं रहा। तथा परीपहका अनुभव किया। धन्य है उन मुनिराजोंको जो वर्षा, शीत उप्याकालमे नाना प्रकारके कष्ट उठाकर आत्मध्यानसे विचलित नहीं होते। वास्तवमे आत्मझानकी महिमा अपरम्पार है जो संसार वन्धनका नाश करनेवाला है। रात्रिभी यहीं विताई।

दूसरे दिन प्रातःकाल पुनपुन गङ्गासे ४ मील चलकर जोगिया-में १ महाजनके कोठामे निवास किया। यहीं पर भोजन हुआ। साथ मे २ श्रन्य त्यागियोंका भी भोजन हुआ। सायंकालका भ्रमगा स्थगित रहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ५ मील चलकर औरङ्गाबाद श्रागये। यहाँपर ईसरीसे पं॰ शिखरचन्द्रजी श्रा गये। श्राप बहुत ही योग्य तथा शान्तस्वभावी विद्वान् हैं। श्रापने शिष्ट व्यवहार किया। त्राजीविकासे चिन्तित हैं फिर भी त्रन्तरङ्गसे तत्त्व विचारमे मग्न रहते हैं। समाजकी दशा क्या कहे ? वह व्यर्थ कार्यों मे धनका द्रुरुपयोग करनेमे नहीं चूकती पर ज्ञान भण्डार आजीविकाके विना चिन्तातुर रहते हैं। एक समय तो वह आ गया था कि जब संस्कृत विद्याके जानकार विद्वान् समाजमें बहुत ही विरल हो गये थे परन्तु त्र्याज सौभाग्य मानना चाहिये कि इस विद्याके जानकार विद्वान् समाजमे उत्पन्न हुए हैं श्रौर उनके द्वारा जैनधर्म तथा जैनसमाजका उत्कर्ष बढ़ा है । यदि जैनसमाज उदारतासे इनकी रत्ता करे तो वे स्थिर रहकर समाज तथा धर्मका उत्कर्ष बढ़ानेमे समर्थ होंगे। आपके आनेसे आज तत्त्वचर्चाका अच्छा श्रानन्द रहा।

श्रागामी दिन प्रातःकाल श्रौरंगावादसे ४ मील चलकर श्रौरा श्रागये। यहां १ कुनमीके मकानमे ठहर गये। मकान दोहरा था इसिलए गर्मीका प्रकोप न रहा। दिन सानन्द व्यतीत हुआ। प्रामीण जनता दर्शनके लिये बहुत श्राई। मुक्ते लोगोंकी सरलता देख श्रनुभव हुआ कि यदि इन्हें कोई कल्याणका मार्ग वतानेवाला हो तो इनका उद्धार हो जाय। श्राज कल लोग व्याख्यान या उपदेश शहरके उन लोगोंको देने जाते हैं जिनके हृद्य निरन्तर विषयकी लालसासे मिलन रहते हैं। उन सरल श्रामीण मनुष्योंके पास कोई भी व्याख्याता या उपदेशक नहीं पहुँचते जिनके हृदय श्रत्यन्त उज्वल तथा पापसे भीक् हैं।

दूसरे दिन प्रातः श्रौरासे ४३ मील चलकर शिवगंजमें निवास २६ किया। यहाँ १ डाक्टर साहवने अपना स्थान खाली कर दिया और स्वयं परिमार्जन कर हमें प्रेमसे ठहराया। ३ दिन उनकी दुकान वन्द रही। दुपहरीमें आप स्वयं छपरीमें लेटे रहे पर हमें अल्प कप्ट नहीं होने दिया। शिष्टताका जैसा व्यवहार अन्य समाजमें है उसका शतांश भी हमारी समाजमें नहीं। इसका मूल कारण अज्ञान है। जो जनता ज्ञांनकों ही नहीं जानती वह क्या परोपकार करेगी? शामके समय १ मील चलकर एक कृटियामें ठहर गये। जंगलके स्वच्छ वातावरणमें शान्तिसे निद्रा आई।

प्रातःकाल ४ मील चलकर १ जजके वॅगलामे ठहर गये। स्थान अत्यन्त रम्य है। उपयोग निर्मल रहा। स्वाध्यायमे काल गया। यहाँ पर एक नानकपंथी साधु रहता है जो साचर है तथा श्रपने मतमे हु अद्धा रखता है। यहाँ एक वहुंत वृद्ध पुरुप श्राया। उसने हमे महात्मा जानकर प्रणाम किया और रात्रिके ११ वजे एक प्रामसे २० मानव दर्शन करनेके लिये श्राये।

प्रातःकाल यहाँसे ४ मील चलकर चित्रशाली प्राममे पहुँच गये। स्थान उत्तम था श्रतः गर्मीका प्रकोप नहीं हुत्रा। यहाँसे श्री सोहनलालजी व श्री चम्पालालजी सेठी गया चले गये। एफीगंज यहाँसे ४ मील है। श्राजकल ऋतुकी उप्रतासे भोजनके वाद तृपाका प्रकोप हो जाता है, प्रायः २२ घण्टा रहता है फिर भी चित्तमे यह खेद नहीं होता कि व्रत क्यों धारण किया। खेद इस वातका रहता है कि इम वाह्य वाधा तो सहन कर लेते हैं परन्तु श्रन्तरङ्ग कषायको नहीं रोक पाते श्रतः वाह्य क्लेश सहना नहींके तुल्य है।

ज्येष्ठ कृष्णा ५ सं० २०१० को प्रातःकाल ८ वजे रफीगंज त्रा गये। श्री मन्दिरजीके नीचे ठहर गये। यहाँ पर जैन वन्धुत्रोमें परस्पर श्रत्यन्त प्रेम है। पं॰ गोपालदासजी योग्य व्यक्ति हैं। श्राप साह्मलके हैं। श्रापके पिता वहुत ही सज्जन थे, पण्डित थे, त्यागी थे, वहुत उदार थे श्रौर जैनधर्ममे श्रतिराग रखते थे। श्रापके भाई शीलचन्द्रजी भी उत्तम विद्वान् हैं। गयासे पं० राज-कुमारजी शास्त्री भी श्राये । श्राप योग्य व्यक्ति हैं, त्यागी हैं, सरल परिणामी हैं, गयामें अध्ययन कराते हैं तथा समाजको भी स्वाध्याय कराते हैं। श्रापको करणानुयोगका श्रच्छा श्रभ्यास है तथा चरणानुयोगपर विशेष श्रनुराग है। श्राज-कल लोगोंने चरणानुयोगका पालन करना श्रत्यन्त कठिन बना दिया है। मन्दिरमें प्रवचन हुआ। प्रकरण था कि जो इस जीवको संसारके वन्धनमे फॅसाते हैं ऐसे कुटुम्वीजन परमार्थसे इसके शत्रु हैं न्त्रीर जो हितका ध्यान रखते हैं ऐसे योगी इसके वन्धु हैं। परन्तु इस जीवकी अनादिकालसे विपय वासनामे ही प्रीति हो रही है इसलिए इसमे सहायक लोगोंको यह मित्र मानता है श्रौर जो इसमे वाधक हैं उन्हे शत्रु सममता है। वास्तवमे विचार किया जाय तो यह सव कथन व्यवहारकी मुख्यतासे है। निश्चयसे न तो जीवका कोई शत्रु है श्रीर न कोई मित्र है। इसके जो रागादिक परिणाम हैं वही इसके शत्रु हैं श्रीर जो वीतरागादि भाव हैं वही हमारे मित्र हैं। मोहके उदयमें अनेक कल्पनाएँ होती हैं अतः जो जीव आत्महितेषी हैं उन्हें परपदार्थीका संपर्क त्यागना चाहिये, केवल गल्पवादसे कुछ लाभ नहीं। एक दिन पं० चन्द्रमौलिजीके द्वारा भोजनमे फलोंका श्राहार हुआ। भारतमें अव तक पात्रदानका महत्त्व है। यथार्थमे पात्रका होना कठिन है। यदि श्रागमानुकूल पात्र हों तो श्राज दानकी जो दुरवस्था है वह सुधर जावे। परन्तु यही होना कठिन है। पात्र ३ प्रकारके हैं - १ संयमी, २ देशसंयमी और ३ अविरत सम्यग्दष्टि। श्राजकल ये तीनों पात्र प्रायः वेषमात्रसे मिलते हैं।

अन्तरङ्गसे मिलना कठिन है। यहाँ एक महानुभावने पूछा कि कल्याण किस प्रकार हो सकता है ? मैंने कहा—इसके लिये अधिक प्रचासकी आवश्यकता नहीं, यह कार्य तो अत्यन्त सरल है। मेरा <del>उत्तर सुनकर वह</del> आश्चर्यमें पड़ गया तथा कहने लगा कि यह कैसे ? मैंने कहा कि इसमें आख्रयंकी वात क्या है ? वर्तमानमें जो तुम्हारी अवस्था है वह कैसी है ? इसका उत्तर दो। उसने कहा कि दुःखमय है। मैंने पूछा कि दुःखमय क्यों हे ? उसने उत्तर दिया कि आकुलताकी जननी है। तब मैंने कहा कि अब किसीसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं, तुम्हारा कल्याण तुम्हारे श्राधीन है। जिन कारणोंसे दुःख होता है उन्हें त्याग दो, कल्याण निखित है। एक आदमी सूर्य आतापमे वैठकर गमींके दुः खसे दुखी हो रहा है। यदि वह त्रातापसे हटकर छायामें वैठ जाय तो अनायास ही उसका दुःख दूर हो सकता है। दुःख इस वातका है कि हम लोग सुख दुःख आदि प्रत्येक कार्यमें परमुखापेज़ी वनकर स्वकीय शक्तिको भूल गये हैं।

यहाँ वाचनालय खोलनेके लिये लोगोंने कहा। मैंने उत्तर दिया कि खोलिये, आपकी सामध्येके वाहरका कार्य नहीं। आप जितना खर्च अपने भोजनाच्छादनादिमें करते हैं उस पर प्रति स्पया। एक पैसा एक पेटीमें हालते जाउये। समिक्तये हमारा एक पैसा अधिक खर्च हो गया है। इस विधिसे आपके पास कुछ समयमे उतना इच्य एकचित हो जायगा कि उससे आप वाचनालय क्या वड़ा भारी सरस्वती भवन भी खोल सकेंगे। सबने यह कार्य ३ वर्षकें लिये स्वीकृत किया। एक दिन राजपुरसे ज्योतिप्रसाद शीलचन्द्रजी आयो। आप वहुत ही सज्जन तथा उदार हैं। आपके धार्मिक विचार हैं। यहाँ ५ दिन लग गये।

एकाद्शीको प्रातःकाल ४३ मील चलकर हवुहा प्राममे टहर



श्री त्र॰ पतासीवाई जीके विषयमें क्या लिखूँ १ वह तो श्रत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे श्रनुराग रखनेवाली हैं। श्रापको देखकर वाईजीका स्मरण हो श्राता है। [ पृ॰ ४५३]

गये। यहाँ दिनभर रहकर शामको १ मील आगे चले तथा १ भूमिहारके स्थान पर ठहर गये। बहुत आदरसे उसने रक्छा। मोजनके लिए भी अत्यन्त आग्रह किया। प्रातःकाल यहाँ से ४ मील प्रस्थान कर गुण्डू आगये। यहाँ एक फूलचन्द्रजी जैनका घर है उन्हीं के यहाँ ठहर गये। मोजन भी उन्हीं के घर हुआ। प्रकृतिका सज्जन है। गर्मीं का प्रकोप पूर्ण रूपसे था परन्तु सहन करना पड़ा। सायंकाल यहाँ से चलकर सलेमपुर पहुँच गये। दूसरे दिन प्रात काल ४ मील चलकर परैया आगये। यहाँ १ गुवालाके घर निवास किया। यहाँ पर आहार देने के लिये गयासे कई औरतें आईं उन्होंने भक्तिसे आहार कराया। दुपहरी १ मोपड़ीमे विताई। सायंकाल यहाँ से २ मील चलकर १ पाठशालामे ठहर गये। यहाँपर एक प्रामसे २० वालक तथा आदमी दर्शनार्थ आयें। लोगोंमे ऐसी श्रद्धा हो गई है कि ये महात्मा हैं परन्तु महात्मा तो अत्यन्त निर्वकार जीव होता है यह कौन पूछनेवाला है।

ज्येष्ठ कृष्णा श्रमावस्याको यहाँसे ५ वजे चलकर ७३ वजे गया श्रागये। वड़े ठाट वाटके साथ स्वागत हुत्रा। श्रन्तमे जैन भवनमे ठहर गये। वहुत रम्य स्थान है। समीप ही फल्गु नदी वहती है। भवनसे निकलते ही दो मन्दिर हैं—१ प्राचीन श्रौर १ नया। यहाँ जैनियोंके बहुत घर हैं। सम्पन्न हैं। श्री चम्पालाल सेठीने मुक्ते इस श्रोर लानेमे बहुत प्रयत्न किया है। उन्हींका प्रभाव था जो मैं इस वृद्धावस्थामें इतना लम्वा मार्ग चलनेके लिए उद्यत हुत्रा श्रौर यहाँतक श्रागया। श्राप घरसे निःस्पृह रहते हैं। वावू सोन्जालजी भी धार्मिक व्यक्ति हैं। श्रापका श्रधकांश समय धार्मिक कार्योमें ही व्यतीत होता है। श्री ब्र० पतासीवाईजी के विपयमे क्या लिखूँ १ वह तो श्रत्यन्त शान्तमूर्ति तथा धर्मसे श्रनुराग रखनेवाली है। श्रापको देखकर वाईजीका स्मरण हो श्राता है। श्रापके प्रभावसे

यहाँ स्त्री समाजमे स्वाध्यायकी अच्छी प्रवृत्ति चली है। कई स्नियाँ तो शास्त्रका अच्छा ज्ञान रखती हैं।

मन्दिरमे शास्त्रका प्रवचन हुआ। प्रकरण था स्व द्रव्य और पर द्रव्यका। ज्ञाता-दृष्टा आत्मा स्व द्रव्य है और कर्म नोकर्म पर द्रव्य हैं। अनादि कालसे यह जीव पर द्रव्यका प्रहण कर उसका स्वामी वन रहा है। पर द्रव्यको अपना माननेमे अज्ञान ही मूल कारण है, अन्यथा ऐसा कौन विवेकी होगा जो परको जानता हुआ भी उसे प्रहण करे। जिसका जो भाव है वही उसका स्व है और वही उसका स्वामी है। जब यह सिद्धान्त है तब ज्ञानी मनुष्य परका प्रहण कैसे कर सकता है? इस भवाटवीम मार्ग प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मोह राजाकी यह अटवी है। इसके रक्षक रागद्वेप हैं। इनसे यह निरन्तर रिचत रहती है। जीवोंका इससे निकलना अति कठिन है। जिन महापुरुषोंने अपनेको पहिचाना वे ही इससे निकल सकते हैं।

दूसरे दिन ईसरीसे त्र० सुरेन्द्रनाथजी आ गये। आप वहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य हैं। आपका त्याग अतिनिर्भल है। स्वाध्यायके अति प्रेमी हैं। त्रिनय गुणके भण्डार हैं। उदार भी हैं। कलकत्ता निवासी हैं। घरसे उदास रहते हैं। उतने निर्मोही हैं कि लड़का मोटरसे गिर पड़ा फिर भी कलकत्ता नहीं गये। एक दिन वाद श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तासे आये। आप अनुभवी दयाल भी हैं। आपका निवास अधिकतर कलकत्तामे रहता है। आप प्राचीन पद्धतिके रत्तक हैं। किसीके रीवमे नहीं आते। आपकी व्याख्यानगैली उत्तम है। आपने आकर वहुत ही प्रमसे वार्तालाप किया। एक दिन डालमियानगरसे वावू जगनप्रसादजीना ग्रुमी-गमन हुआ, साथमे पण्डित चेतनदासजी भी थे। आप अत्यन्त सरल स्वभावके हैं। कल्याण चाहते हैं। यिय उन्हें धार्मिन पुन्यों सरल स्वभावके हैं। कल्याण चाहते हैं। यिय उन्हें धार्मिन पुन्यों

का समागम मिले तो आपकी परिणति विशेषरूपसे निर्मल हो सकती है।

दिल्लीसे राजकृष्ण भी आये। आपने मूडविद्रीमें स्थित श्री धवलके फोटो लेनेका पूर्ण विचार कर लिया है। इस कार्यमे १५०००) व्यय होगा। आपका निश्चय है कि यदि यह रूपया कोई अन्य न देगा तो हम अपनी तरफसे लगा देंगे। काल पाकर श्रा जावेगा । श्रापका उत्साह श्रौर श्रदम्य साहस प्रशंसनीय है । संभव है आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जावे क्योंकि आपकी भावना श्रिति निर्मल है। हमारा निजका विश्वास है कि यह कार्य श्रवश्य पूर्ण होगा। संसारमे जो हृद्पतिज्ञ होता है उसके सर्व कार्य सफल होते हैं। पन्द्रह दिन रहनेके बाद आषाढ़ कृष्णा १ को विचार किया कि पाश्वे प्रभुकी निर्वाण भूमिपर पहुँचनेके संकल्पसे तूंने शीष्मकालमे भी प्रयाण किया है। अब यहां निकटमे आकर **ज्लम जाना उत्तम नहीं। ईसरीसे पं**० शिखरचन्द्रजी तथा व्र० सोहनलालजी भी श्रा गये। गयावालोंको जब यह समाचार विदित हुआ तव वे यहीं चौमासाकी प्रेरणा करने लगे परन्तु इमने यही निख्रय प्रकट किया कि अब तो पार्श्वप्रभुकी शरणमें जाना चाहते हैं। मेरा उत्तर श्रवण कर लोग निराश हो गये। ईसरी जानेके लिये उद्यम किया कि श्राकाशमे सघन बादल छा गये, इससे विवश होकर इस दिन रुक जाना पड़ा।

श्राषाढ़ कृष्णा द्वितीया सं० २०१० के दिन दिनके २ वजेसे ४ मील चलकर १ चित्रयके वंगलापर ठहर गये। हमारे चले जानेसे गयावालोंको बहुत खेद हुआ। हमको भी कुछ विकल्प हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल वंगलासे १ मील चले परन्तु मार्गमें कहीं शुष्क प्रदेश नहीं मिला। सब श्रोर हरी-हरी घास तथा मार्गमें जन्तुश्रोंकी प्रवलता दिखी। ऐसे मार्गपर चलना हृदयमें श्रक्तिकर हुआ

जिससे लौटकर उसी वंगलामें आ गये। गयासे स्वर्गीय दान्मल्ल-जीकी धर्मपत्नी आदि ४ स्त्रियोंने आकर आहार कराया। पश्चान् २ वजे यहाँसे प्रस्थान कर वापिस गया पहुँच गये और चार मास वहीं रहनेका निश्चय कर लिया। गयाके लोग प्रसन्न हो गये परन्तु इ॰ सोहनलाल तथा पं० शिखरचन्द्रजीको मनमें अत्यन्त खेद हुआ। श्यामलालजी तपस्त्री भी खिन्न थे, अतः वे ईसरी चले गये।

# स्मृतिकी रेखार्ये

यहाँ पं० राजकुमार जी शास्त्री पहलेसे ही विद्यमान थे तथा यथावसर अन्य विद्वान् भी पधारते रहते थे इसिलये लोगोंको प्रवचनका अच्छा लाभ मिलता रहता था। श्रावण कृष्णा १० को प्रातः काल ५ वर्जे विनोवा जी भावे आये, १५ मिनट ठहरे। आप वहुत ही शान्त स्वभावके हैं। आपका भाव अत्यन्त निर्मल है। सर्वन्त्राणी सुखके पात्र हैं। तथा कोई दुःखका अनुभव न करे यह मैत्री भावना आपमे पाई जाती है। 'दुःखानुत्पत्त्यभिलापी मैत्री' यही तो मैत्रीका लक्षण है। देहातोंमें गरीव जनता खेती योग्य भूमिमे रिहत न रहे इस भावनासे प्रेरित होकर आप परिकरके साथ अमण करते हैं और सम्पन्न मनुष्योंसे भूमि माँगकर गरीवोंके लिये वितरण करते हैं। उत्तम कार्य है। यदि जनतामे ऐसी उद्याता आ जावे कि हम आवश्यकतासे अधिक भूमिके स्वामी न वर्ने तथा वह अतिरिक्त भूमि भूमिहीन मनुष्योंके लिये दे हें तो देशका कत्याण अनायास हो जावे।

श्रावर्ण द्युक्ला न सं० २०१० को श्री साहु शान्तिप्रमाट जी श्राचे। १ घण्टा मन्दिरमें रहे। गयावालोंने उन्हें श्रीर उन्होंने



श्रावण कृष्णा १० को प्रातःकाल ५ बजे विनोवा जी भावे श्राये. १५ मिनट ठहरे।

[ पृ० ४५६ ]

गयावालोंको धन्यवाद दिया। भाद्रपद शुक्ला ३ को टाउन हालमें विनोवाभावेकी जयन्ती थी। हम भी गये। उत्सवका श्रायोजन सफल हुआ। पर्यूषण पर्वमे तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन करनेके लिये वनारससे श्री पं॰ केलाशचन्द्रजी साहव पधारे। श्रापकी प्रवचन-जैली उत्तम तथा वाणी मिष्ट हैं। त्याग धर्मके दिन स्याद्वाद विद्यालय बनारसको श्रच्छा दान मिल गया।

भाद्र शुक्ला १४ के दिन पुराने गयामे श्री पार्श्वनाथ स्वामीके दर्शन किये। यहाँपर पूजाका प्रबन्ध श्रच्छा है। गानतानके साथ पूजा होती है। श्राज १ बजे दिनसे ३ बजे दिनतक श्री पतासी-वाईके जन्म दिवसका उत्सव था। जनता श्रच्छी संख्यामे थी। श्राजके दिन श्रिधिक स्त्री पुरुष उपस्थित थे। मन्दिरसे वाहर जुलूस भी गया।

पर्वके बाद आश्विन कृष्णा ४ को वर्णी जयन्तीका उत्सव था! वाहरसे अनेक महानुभाव आये थे। आरासे पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य भी आये थे। द्वितीय टाउनहालमे व्याख्यान सभाका आयोजन था। श्री नेमिचन्द्रजीने आहिसा तत्त्वपर अच्छा प्रकाश डाला। आपने कहा कि हम जिस मुहलामे रहते हैं उसमें रहनेवाले सब लोगों के साथ हमे कुटुम्ब जैसा व्यवहार करना चाहिये। यदि किसीके घर किसी वस्तुकी कमी है तो उसकी पूर्ति करना चाहिये। हम लोग आहिंसाके नाम पर छोटे छोटे जीव जन्तुओं की तो रक्षा करते हैं परन्तु मनुप्यों की उपेक्षा कर देते हैं।

श्राश्विन कृष्णा दशमी २ श्रक्टूबरको यहाँ मन्नू लाइत्रेरी में गांधी जयन्तीका उत्सव था। कोई ५०० महिलायें - हाँ पर थीं। इम लोगोंका भी निमन्त्रण था, श्रत गये थे। गांधीजी १ त्यागी पुरुप थे। जो काम वह करते थे। निष्कपटभावसे करते थे। इसीसे उनका प्रभाव पूर्ण जनताके हृद्यंगम था। यही कारण था कि इतना प्रभावशाली विटेन भी उनके प्रभावमे आगया तथा विना किसी शर्तके भारतको त्याग कर स्वदेश चला गया। इतना त्याग जगत्-की एक अपूर्व घटना है।

एक दिन (कार्तिक कृष्णा ७) नालन्दा वौद्ध विद्यालयके श्राधिष्ठाता मिले। वहुत शिष्ठ पुरुष हैं। श्रापका जैनदर्शनमें श्रानुराग हैं। श्रापकी श्रान्तरङ्ग इच्छा है कि नालन्दामें भी जैन-दर्शनके श्रध्यापनादि कार्य हों श्रोर इसके लिए वहाँ १ जैन विद्यालय खोला जावे। ऐसा करनेसे परस्पर श्रादान प्रदान होगा जिससे छात्रोंको तुलनात्मक श्रध्ययन करनेका श्रवसर श्रानायास मिल सकेगा। श्रात्मा जानी है श्रतः वह सत्यको प्रहण करेगी श्रोर श्रसत्यको छोड़ देगी। उक्त महानुभावकी उक्त बात हमें रुचि-कर हुई। विचार लें तो पैसेवालोंको कार्य कठिन नहीं।

#### विचार प्रवाह

गयामे कुछ विचार दैनंदिनीके पृष्ठोंपर श्रंकित किये थे उन्हें यहाँ दे रहा हूँ—

'वही मनुष्य सुखका पात्र होता है जो विश्वको अपना नहीं मानता । परको अपना मानना ही संसारकी जड़ है ।'

'यह केवल कहनेकी बात है कि नश्वर देहसे अविनश्वर सुख मिलता है। सुख तो आत्मीक गुण है। उसका घातक न तो शरीर है और न द्रव्यान्तर। यह आत्मा स्वयं रागादिरूप परिणमनकर स्वयं आकुलतारूप दुःखका भोक्ता होता है और जब रागादि परिणामोंसे पृथक् अपनी परिणतिका अनुभव करता है तभी श्रमन्त सुखका उपभोक्ता हो जाता है। देह न सुखका कारण है। श्रीर न दुःखका।'

'रागादिकका मूल कारण मोह है अतः सबसे प्रथम इसीका त्याग होना चाहिये। जब पर पदार्थोंमे त्यागकी कल्पना मिट जावेगी तब अनायास रागद्वेष प्रलयावस्थाको प्राप्त हो जावेंगे " " इस कथासे कार्यसिद्धि नहीं होती। भोजनकथासे भोजन नहीं वन जाता। भोजनकी प्रक्रियासे भोजन बनेगा तथा भोजन वननेसे तृप्ति नहीं होगी किन्तु भोजन खानेसे तृप्ति होगी।'

'संग सर्वथा श्रच्छा नहीं। श्रन्तरङ्गसे हम स्वयं निर्मेल नहीं श्रतः श्रपनेको दोषी न समभ श्रन्यको दोषी समभते हैं।'

'धर्मका सम्बन्ध शारीरिक कष्टसे नहीं होता। धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। जब सब उपद्रवोंकी समाप्ति हो जाती है तब धर्मका उदय होता है।'

'दूसरेकी नहीं किन्तु श्रपनी ही तारतम्यावस्थाको देखकर विरक्त होना चाहिये। परमार्थसे तत्त्वज्ञान विना विरक्तता होना श्रित दुर्लभ है।'

'जिन्हे आत्मकल्याण करनेकी इच्छा है वे तत्त्वज्ञानकी वृद्धि की चेष्टा करते हैं। जिनकी उस ओर रुचि नहीं वे अपनेको तत्त्व-ज्ञानके सम्पादनमे क्यों लगावेंगे ?

'पर द्रव्य मेरा स्व नहीं, मैं उसका स्वामी नहीं, परद्रव्य ही पर द्रव्यका स्व है श्रौर वही उसका स्वामी है। यही कारण है कि ज्ञानी पर द्रव्यको प्रहण नहीं करता।'

'जिन्हें संसार तत्त्वसे पृथक् होनेकी श्रमिलाषा है उन्हें हृद्यकी दुर्बलताको समूल नष्ट कर देना चाहिये।'

'श्रनादिकालसे इस जीवके पर पदार्थींका सम्बन्ध हो रहा है, श्राकाशवत् एकाकी नहीं रहा। यद्यपि पर सम्बन्धसे इसका कोई भी श्रंश अन्यरूप नहीं हुआ। जीव द्रव्य न तो पुद्गल हुआ श्रीर न पुद्गल जीव हुआ। केवल सुवर्ण-रजतका गलनेसे एक पिण्ड होगया। उस पिण्डमें सुवर्ण रजत अपनी अपनी मात्रामें उतने ही रहे परन्तु अपनी शुद्ध परिणितिको दोनोंने त्याग दिया एवं जीव और पुद्गल भी वन्धावस्थामे दोनों ही अपने अपने स्वरूपसे च्युत हो गये।

'ऊपरी चमक दमकसे आभ्यन्तरकी शुद्धि नहीं होती।'

'आत्म द्रव्य की सफलता इसीमे है कि अपनी परिण्तिको परमें न फंसावे। पर अपना होता नहीं और न हो सकता है। संसारमें आजतक ऐसा कोई प्रयोग न वन सका जो परको अपना वना सके और आपको पर वना सके।'

'स्नेह ही वन्धनका जनक है। यदि संसारमे नहीं फॅसना है तो परका संपर्क त्यागना ही भद्र है।'

'श्रात्मामें कल्याण शाक्तिरूपसे विद्यमान है परन्तु हमने उसे श्रीपाधिक भावों द्वारा ढक रक्खा है। यदि ये न हों तो उसके विकास होनेमें विलम्ब न हो।'

'आत्मा अनादिकालसे परके साथ सम्वन्ध कर रहा है और उनके उदयकालमे नाना विकार भावोंका कर्ता वनता है। यही कारण है कि अपने उपर इसका श्रिधकार नहीं।'

'जो त्रात्मा परसे ही श्रपना कल्याण श्रीर श्रकल्याण मानता है वह पराधीनताको स्वयं श्रंगीकार करता है।'

'समाजमे श्रव श्रादर विद्वत्ताका नहीं किन्तु वाचालताका रह गया है।'

'अन्तरङ्गकी परिणितिको निर्मल करना ही पुरुपार्थ है। जिसने मनुष्य जन्मको पाकर अपनी परिणितिकी मिलनतासे रचा न की उसका मनुष्य जन्म यों ही गया।' 'परिग्रहका अर्जन करना ही संसारका मूल कारण है। आत्मा अनादिसे परिग्रहके चक्रमे है, इससे पीछा छूटे तो आत्मदृष्टि आवे अथवा जव आत्मदृष्टि आवे तव परिग्रहसे पीछा छूटे।'

'जिसने रागादि भावोंपर विजय प्राप्त करली वही मनुप्यताका पात्र है।'

'चित्तको अधिक मत भ्रमात्रो, चित्तकी कलुषता ही दुःखका मूल कारण है और कलुषताका मूल कारण परमे निजत्व बुद्धि है।'

'कड़्बी तूंबड़ी किसी कामकी नहीं फिर भी उसके द्वारा नदी पार की जा सकती है इसी प्रकार मनुष्यका शरीर किसी कामका नहीं फिर भी उससे संसार सागर पार किया जा सकता है।'

'श्रवोध वालक एक पैसाका खिलौना टूटने पर रो उठता है पर घरमे श्राग लगनेपर नहीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि वालक खिलौनाको श्रपना मानता है श्रौर घरको वापका।'

'संसारमे नाना मनुष्योंके व्यवहार देख लच्य स्थिर करने का प्रयास मत करो किन्तु अपनी शक्ति देख आत्मीय लच्य स्थिर करो।'

'जनताकी प्रशंसाके लोभी मत बनो। प्रशंसा :चाहना ही अज्ञानता द्योतक है।'

'श्रन्तरङ्ग सामर्थ्यके प्रभावसे ही श्रात्मा कल्याणका पात्र होता है। कल्याण कहीं श्रन्यत्र नहीं श्रोर न श्रन्य उसका उत्पादक है। जब तुम स्त्रयं विपरीत भावके कर्ता बनते हो तव स्त्रयं श्रपने स्त्रभावके घातक हो जाते हो।'

'शान्तिका मूल रागादिभावोंमे उदासीनता है। रागादिभावोंमें न तो मित्रता करो श्रोर न शत्रुता। यह भाव स्वाभाविक नहीं।'

'विश्वविद्यामे पाण्डित्य हो उत्तम है परन्तु जिनको आत्मपरिचयः हो गया उनके समन्त उस ज्ञानका कोई महत्त्व नहीं।' 'धर्मकी परिभाषा प्रत्येक पुरुष करता है परन्तु उसरूप प्रवृत्ति करना किसी महापुरुपके द्वारा ही होता है ।'

'गुरु मार्गदर्शक हैं चलानेवाले नहीं। सूर्य मार्गप्रकाशक हैं चलानेवाला नहीं। यदि कोई निरन्तर सूर्यकी उपासना करे और मार्ग चले नहीं तो क्या इच्छित स्थानपर पहुँच जावेगा।'

'जिस त्रात्मामे त्रनन्त संसारके निर्माणकी शक्ति है। उसमें उसके नाश करनेकी भी शक्ति है।'

'श्राजकल मनुष्य मनुष्यताका श्रादर करना भूल गया, केवल प्रशंसाका लोभी होगया है।'

'संसारमें दुःखका मूल कारण श्राशाके श्रतिरिक्त परको निज मानना है।'

'जानना उतना कठिन नहीं जितना उपयोग द्वारा कर्तव्यमें -लाना कठिन है। अविरत सम्यग्टिष्ट मोच्चमार्गको यथार्थ जानता है परन्तु तद्नुरूप आचरण नहीं कर पाता।'

'संसारकी प्रशंसासे न कुछ लाभ है और न निन्दासे कुछ हानि। -लाभ तो अपने परिणामोंको निर्मल करनेसे ही होगा।'

'चित्त भूमिकी मलिनता ही संसारकी जनती है। संसारको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना भी संसारका कारण है।'

'धर्म क्या हैं ? यह तो वही आत्मा जानता है जिसने संसारके प्रपञ्जोंको त्याग निजकी शरण ली है।'

'अनन्तकाल वीत गया पर परको अपनाना न त्यागा, उमीका फल अनन्त संसार है।'

'धीरतासे च्युत नहीं होना महान् आत्माका कार्य है।'

'किसीके प्रभावमें श्राना ही इसका द्योतक है कि श्रान्मीय स्वत्वसे च्युत है।' 'प्रतिदिन जो कथा करते हो यदि उसमेसे एकका भी पालन करो तो दुःखसे मुक्त हो सकते हो।'

'श्रात्मा श्रौर श्रनात्माका भेद ज्ञान ही संसार छेदका उपाय है।'

#### लघु यात्रा

हृद्यमें गिरिराजके दर्शन करनेकी उत्कट उत्सुकता थी इसलिये यहाँसे प्रस्थान करनेकी बात सोच ही रहा था कि कलकत्तासे श्री प्यारेलालजी भगत तथा ईसरीसे त्र० सोहनलालजी व सेठ भंवरी-लालजी त्रा गये । इन सवकी प्रेरणासे शीव ही प्रस्थान करनेका निश्चय कर लिया। फलस्वरूप कार्तिक सुदी २ सं० २०१० रविवार-को १ वजे गयासे प्रस्थान कर दिया। ५०० नर-नारी भेजने आये। संसारमे राग बुरी वस्तु है। जहाँ ऋधिक संपर्क हुआ वहीं राग अपने पैर फैला देता है। चार पाँच माहके संपर्कसे गयाके लोगों का यह भाव हो गया कि ये हमारे हितकर्ता हैं अतः इनका समा-गम निरन्तर बना रहे तो श्रच्छा है। मेरे वहाँसे चलनेपर उन्हे वहुत दुःख हुआ। पर संसारके समस्त पदार्थ मर्नुष्यकी इच्छानुसार तो नहीं परिणमते। गयासे ४३ मील चलकर संध्याकाल हरिस्रो म्राम पहुँच गये। यहाँ कोडरमासे भी कुछ सज्जन आये। रात्रि सानन्द न्यतीत हुई। प्रात ६ वजे ३ मील चलकर मस्कुरा प्राम श्रागये। यहाँ वॅगलामे ठहर गये। गयासे चीका श्राये थे, उसमे भोजन किया। यहाँ जैनोंके घर नहीं हैं। मध्याहकी सामायिक के बाद १ वजे यहाँसे प्रस्थान कर जिन्दापुरके स्कूलमे विश्राम किया।

आगामी दिन प्रातःकाल ६ वजे चलकर ७॥ वजे कर्मगीके डाँक वॅगलामे ठहर गये। गयावाले सूरजमलजी तथा रतन वावृकी मा के चौकेमे आहार हुआ। स्थान स्वच्छ था। साथमें लगभग २५ मनुष्य होंगे। सबका भोजन हुआ। १ वजे चलकर २॥ वजे एक स्थानपर ठहर गये। वहीं कुछ उपदेश दिया। नगरके कोलाहल पूर्ण स्थानसे निकलकर जब जंगलमे पहुँचते हैं तो मनमे अपने श्राप शान्ति श्राजाती है श्रीर उन दिगम्बर मुनियोंके ऊपर सुतरां ध्यान आकर्षित हो जाता है जो जंगलके स्वच्छ वातावरणमें ही अपना समय यापन करते थे। रात्रिको जहाँ विश्राम किया वहाँ प० घर मुसलमानोंके थे। सबने सौमनस्य व शिष्टताका व्यवहार किया। यहाँसे अगले दिन प्रातः ६ वजे चलकर ८ वजे डोभीके डांक वंगलामे पहुँच गये। प्रत्रचनके वाद गयावाले सोन् वायूके चौकामें श्राहार हुत्र्या । मध्यान्हके वाद चलकर रात्रिमे भदेया प्रामके सरकारी मकानकी दहलानमे विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः ६॥ वजे ६ मील चलकर ना। वजे कादुदाग प्रामके ढाक वंगलामे पहुँच गये। श्रयतक ४० मनुष्योंका संघ होगया था। श्री विहारीनालजी गया-वालोंके यहाँ त्र्याहार हुत्र्या। रात्रिको भी यहीं विश्राम किया।

श्रन्य दिन प्रायः मिल चलकर १॥ वजे नदी पार कर जंगलमें भोजन हुश्रा। कोहरमात्रालोंका चौका था, उसीमें भोजन हुश्रा। कोहरमासे श्री गौरीलालजी श्रादि ६ महानुभाव श्राये। नायंक्राल चलकर भलुश्राके हाक वंगलामें विश्राम किया। श्राज श्रिक्त चलना पड़ा उसलिए शरीरमें थकावटका श्रनुभव होने लगा। दूमरे दिन प्रातः ६ वजे चलकर १। वजे चौपारन पहुँच गये। गयां या यहां पर जिन मन्दिर मिला। श्री जिनेन्द्रदेवने द्र्शन कर हरणमें श्रपार श्रानन्द हुश्रा। श्राज श्रष्टभीना दिन था। श्रव नाश्र्या श्रास्त्रीने शास्त्र प्रयचन किया। दूमरे दिन मन्दिरमें प्रातः प्रयचन

हुआ। दिनमे एक वजे सभा हुई जिसमें भगतजीका भाषण हुआ। हमने भी कुछ कहा। रात्रिको त्र० नाथूराम तथा भगत सुमेरुचन्द्रजी के भापण हुए। लोगोंने स्त्राध्यायका नियम लिया। तीसरे दिन श्री सोहनलालजीके यहाँ आहार कर २ बजे आगेके लिए प्रस्थान कर दिया। प्रामके लोगोंने वहुत ही शिष्टतासे व्यवहार किया। यहाँसे कोडरमा १४ मील है। रात्रि एक हाक वंगलामे व्यतीत की।

श्रागामी दिन प्रातःकाल ४ मील चलकर पर् वजे रामपुर श्रा गये। यहाँ कोढरमासे चौका श्राया था, उसीमे श्राहार हुआ। यहाँ कोढरमासे २० स्त्री पुरुप श्रा गये। श्रपराह्म काल चलकर एक मिंद्र्याके समीप विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः चलकर भोंडीके स्कूलमे ठहरे। वहींपर श्राहार हुआ। संध्याकाल चलकर विन्दामें विश्राम किया। श्रागामी दिन प्रातः ४ मील चलकर एक स्कूलमें ठहरे। कोडरमावालोंके चौकामे श्राहार हुआ। वहाँसे १ बजे ४ मील चलकर ३॥ वजे भूमरीतलैया श्रा गये। लोगोंने उत्साहसे स्त्रागत कर धर्मशालामें ठहरा दिया।

भूगरीतलैया ग्रामका नाम है और स्टेशनका नाम कोहरमा है। यहाँ जैनियों के अच्छे घर हैं। मन्दिर अच्छा है। लोगों में धार्मिक भावना उत्तम है। यहाँ श्री जगन्नाथ जी पाण्डयाने आहार होने के उपलद्यमें पाठशाला, औषधालय तथा चैत्यालय बनाने के लिये अच्छा दान किया। श्री पं० गोविन्दरामजी यहाँ अच्छे विद्वान् हैं। वनारससे पं० कैलाशचन्द्रजी भी आ गये। आपका अहिसा व मानवधर्मपर आमसभामें उत्तम भाषण हुआ। यहाँ १५ दिन लग गये।

श्रगहन बदी ११ सं० २०१० को १ बजे प्रस्थान कर चिगलावर, जयनगर तथा फरसावादमे क्रमशः ठहरते हुए त्रयोदशीके दिन सरिया (हजारीबाग रोह) श्रा गये। यहाँ स्टेशनके पास एक सुन्दर मन्दिर है। श्राममें एक चैत्यालय है। सेठ भॅवरीलालजीके वहाँ श्राहार हुआ। यहाँ श्रारासे व्र॰ चन्दावाईजी श्रा गई'। २वजे मभा हुई जिसमें भगतजी तथा नाथूरामजीके भाषण हुए। यहाँ ३िन लग गये। यहाँसे मुन्सिर्या तथा चौधरीवादमे विश्राम किया। यह लघुयात्रा मुखद रही।

# भारहीनो वभृव

श्रगहन सुदी ३ संवत् २०१० को प्रातः चोधरीयादसे चलकर ८३ वजते-वजते ईसरी पहुँच गये। चित्तमे वड़ा हर्ष हुश्रा। एक बार यहाँ श्राकर पुनः परिवर्तन करनेके लियं निकल पड़ा था श्रीर उस चक्रमें फॅस १० वर्ष यत्र तत्र भटकता रहा। श्रारिमे शक्ति नहीं थी फिर भी भटकना पड़ा। श्राज पुनः श्रीपार्य प्रभुकी निर्वाण भूमिके समीप श्रा जानेसे हृदयमें जो प्रानन्त हुश्रा वह शब्दोंके गोचर नहीं। यहाँके समस्त त्यागियों तथा पिवर इश्रम्य लोगोंको भी महान् हर्ष हुश्रा।

होता है। श्रनन्तर भोजनके बाद ११३ वजेसे सामायिक सव त्यागीवर्ग करते हैं। फिर २ बजेसे शास्त्रप्रवचन होता है। अनन्तर सायंकालकी सासायिक श्रौर रात्रिके प्रारम्भका शास्त्रप्रवचन होता है। सब त्यागी तथा धर्मलाभकी भावनासे यहाँ रहनेवाले श्रन्य महानुभाव इन सब कार्यक्रमोंमें शामिल रहते हैं। मैं भी सब कार्यक्रमोंमें पहुँच जाता था। प्रातःकालका प्रवचन मैं कर देता था परन्त मध्याह और रात्रिके प्रवचन श्रन्य विद्वान् करते थे। मैं श्रवण करता था। प्रातःकालके प्रवचनमें कभी समयसार. कभी प्रवचनसार, कभी पञ्चास्तिकाय, कभी नियमसार त्रादि कुन्दकुन्द स्वामीके त्रन्थ रहते थे। कुन्दकुन्द स्वामीने श्रपने त्रन्थोंसे जो पदार्थका वर्णन किया है वह वहुत ही सरलताके साथ वस्तुके शुद्ध स्वरूपको वतलाने-वाला है। मेरी श्रद्धा तो यह है कि इस युगमे कुन्द्कुन्दके समान वस्तुतत्त्वका निरूपण करनेवाला दूसरा श्राचार्य नहीं हुश्रा। मध्याह में सैद्धान्तिक प्रन्थका विवेचन रहता था श्रौर रात्रिको सर्वसाधा-रगोपयोगी हिन्दी यन्थ तथा प्रथमानुयोगके यन्थोंका स्वाध्याय चलता था।

यहाँ वाहरसे अनेक विद्वान् तथा विशिष्ट महानुभाव यदा कदा आते रहते हैं। उनके भोजनकी व्यवस्थाके लिये रायवहादुर श्री-चाँदमल्लजी रांचीवालोंकी ओरसे एक चौका खोल दिया गया जिसमे अतिथियोंके भोजनकी उत्तम व्यवस्था वन गई। यहाँका प्राकृतिक दृश्य भी नयनाभिराम है। पास ही हरे भरे गिरिराजके दर्शन होते हैं। श्रीपार्श्व प्रभुका निर्वाण स्थान अपनी निराली शोभा से दर्शकोंको अपनी ओर अकर्षित करता रहता है। आकाशकों चीरती हुई गिरिराजकों हरी भरी चोटियाँ कभी तो धूमिल घनघटा-से आच्छादित हो जाती हैं और कभी स्वच्छ-अनावृत दिखाई देती हैं। प्रातःकालके समय पर्वतकी हरियालीपर जब दिनकरकी लाल

लाल किरणें पड़ती हैं तव एक मनोहर दृश्य दिखाई देता है। लम्बी चौड़ी चट्टानें और वृचोंकी शीतल छायाएं ध्यानके लिये वलात् प्रेरणा देती हैं।

धर्म साधनकी भावनासे यहाँ चारों तरफकी जनता सर्वदा श्राती रहती है। स्टेशन छोटा है पर कलकत्ताके मार्गमें होनेसे गाड़ियोंका यातायात प्रायः श्रहनिंश जारी रहता है। मोटरोंका आवागमन भी यहाँसे पर्याप्त होने लगा है। अगहन सुदी ६ को श्रीप्यारेलालजी भगत कलकत्तावालोंकी जयन्तीका उत्सव हुत्रा। **ऋाप विशिष्ट तथा ज्ञानवान् मनुष्य हैं।** श्राश्रमके ऋधिष्ठाता हैं। २ वजे दिनसे जुलूस निकला और उसके वाद सभा हुई जिसमे श्रद्धा-ञ्जलियां समर्पित की गई। स्वूतके छात्रोंको किसमिस विवरण दी गई। श्रीगिरिराजकी वन्दनाका हृदयमें वहुत अनुराग था श्रतः अगहन सुदी १० को मधुवनके लिये प्रस्थान किया। बीचमे मटियो नामक श्राममे रात्रि ज्यतीत की। तदनन्तर प्रातः चलकर मधुवन पहुँच गये। द्वादशीको प्रातः वन्दनार्थ गिरिराज पर गये। साँथमे श्रीभगत सुमेरुचन्द्रजी, त्र० नाथुरामजी तथा त्र० मंगलसेनजी थे। यात्रियोंकी भीड़ वहुत थी। भक्तिसे भरे नर-नारी पुण्य पाठ पढते हुए पर्वतपर चढ़ रहे थे। जिस स्थानसे श्रनन्तानन्त मुनिराज कर्म-वन्थन काटकर निर्वाण धामको प्राप्त हुए उस म्थानपर पहुँचनेसे भावोंने सातिशय विशुद्धता आ जाय इसमें आश्चर्य नहीं। शुक्ला पत्त था श्रतः चारों श्रोर स्पष्ट चाटनी छिटक रही थी। मार्गके टोनों श्रोर निस्तव्य वृत्तपंक्ति खड़ी थी। श्रीकुन्युनाय भगवानकी टॉक्पर पहुँच गये। सूर्योदय कालकी लाल लाल आभा यृजोंकी हरी-भरी चोटियोंनर श्रनुपम दृश्य उपस्थित कर रही थी। क्रम क्रममे समन्त टों कोंकी वन्दनाकर १० वजे श्रीपार्व्यनाय मगवानके निर्वाण स्थानः। पर पहुँच गये। वन्दना पूर्ण होनेपर हदयमें श्रत्यन हर्ष हुन्या



श्री गिरिराजकी वन्दनाका हृदयमें वहुत श्रनुराग था, श्रतः श्रगहन सुदी १० को मधुवनके लिए प्रस्थान किया। [ पृ० ४६८ ]

श्रीसमन्त नद्रस्वामीने पार्श्वनाथ भगवान्का जो स्तोत्र लिखा है उसे पढ़कर चित्तमे शान्ति श्राई। यहीं पर मध्याह्नकी सामायिककर दिनके ३३ वजे मधुवन वापिम श्रा गये श्रीर श्रीपन्नालालजी चौधरी के यहाँ खाहार किया। भक्तिका प्राबल्य देखो कि स्त्रियां तथा आठ च्चाठ वर्षके वच्चे भी १८ मीलका पहाड़ी मार्ग चलकर भी खेदका श्रनुभव नहीं करते । जो स्त्रियाँ श्रन्यत्र २ मील चलनेमें भी कष्टका श्रनुभव करती हैं वे यहाँ १८ मीलका लम्बा मार्ग एक साथ चलकर भी कष्टका श्रतुभव नहीं करतीं। यथार्थ बात यह है कि उस समय उनका उपयोग दूसरी ही श्रोर रहता है। तीन चार दिन मधुवनमें रहे । नं चे तेरहपन्थी कोठीमे श्रीभगवान् पार्वनाथकी विशाल प्रतिमा विराजमान है। तथा श्रीसोहनलालजी कलकत्तावालोंके मन्दिरमें श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्की भी मनोज्ञ प्रतिमा है। यहाँसे चलकर पुनः ईसरी वापिस श्रा गये । यहाँ कलकत्तानिवासी श्री सेठ शान्तिप्रसादजी तथा वाचू नन्दलालजी, सेठ वैजनाथजी सरावगी, पटनानिवासी बद्रीप्रसाद्जी सरावगी, खरखरी निवासी श्री बावू विमलप्रसादजी, वावू शिखरचन्द्रजी, वरनावावाले नत्थू-मल्लजी, गिरीडीइनिवासी श्री बालचन्द्रजी मोदी, राधाकृप्ण काल्हरामंजी, रामचन्द्रजी सेठी, सागरमहजी पाण्डया, गिर-नारीलालजी सरावगी, कोंडरमा निवासी श्री जगन्नाथजी पाण्डया, गौरीलालजी, जीतमलजी, भॅवरीलालजी पाण्डया, राँचीनिवासी श्री रायवहादुर हरषचन्द्रजी, लालचन्द्रजी सेठी, हजारीवागनिवासी श्री कन्हैयालाल मिश्रीलालजी तथा गयानिवासी श्री छोगालालजी, सोनूल।लजी तथा चम्पालालजी सेठी त्र्यादि महानुभाव समय-समय पर पधार कर सब व्यवस्था वनाये रहते हैं।

## राष्ट्रपतिसे साचात्कार

ईसरीमे सम्वत् २०१२ सन् १९५५ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें विहार राज्य ग्राम पञ्चायतका चतुर्थ अधिवेशन था। जिसके उद्घाटनकं लिए भारतवर्षके राष्ट्रपति हा० राजेन्द्रप्रसादजी आये थे। जैन हाईस्कूलके मैद्रानमे आपका भापण हुआ। आप प्रकृतिके सरल तथा श्रद्धालु व्यक्ति हैं। साचात्कार होनेपर आपने वहुत ही शिष्टता दिखलाई। मैंने आपसे कहा कि विहार आपका प्रान्त हैं और इसी प्रान्तमें मद्यके सेवनकी प्रचुरता देखी जाती है। इस मद्य-सेवनसे गरीवोंकी गृहस्थी उजड़ रही है। उनके वाल-वच्चोंको पर्याप्त अन्न और वस्त्र नहीं मिल पाता। निर्धन अवस्थाके कारण शिचाकी ओर भी उनकी प्रगति नहीं हो पाती इसलिए ऐसा प्रयत्न कीजिये कि जिससे यहाँके निवासी इस दुर्व्यसनसे वचकर अपना भला कर सकें। आप जैसे आस्थावान् राष्ट्रपतिको पाकर भारतवर्ष गौरवको प्राप्त हुआ है।

डत्तरमे उन्होंने कहा कि हम प्रयत्न ऐसा कर रहे हैं कि विहार ही क्यों भारतके किसी भी प्रदेशमे मद्यपान न हो। पूज्य गाधीजीने मद्य-निषेयको प्रारम्भ किया है और हम उनके पदानुगामी है परन्तु खेद इस वातका है कि हम दुतगितसे उनके पीछे नहीं चल पाते हैं।

# स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

वनारसका स्याद्वाद विद्यालय जैन समाजकी प्राचीन एवं महोपकारिणी नंस्या है। गङ्गाके तटपर इमकी विशाल इमारत



उत्सवके श्रध्यच श्री साहु शान्तिप्रसाद जी कलकत्ता थे। श्रापने सपरिवार पधारकर उत्सवको श्रच्छी तरह सम्पन्न कराया। वनी हुई है। उसीमें श्री भगवान् सुपार्श्वनाथका सुन्दर मन्दिर है। ५० वर्षसे जैन समाजसे संस्कृत विद्याका प्रचार इस विद्यालयसे हो रहा है। सक्ड़ों विद्वान् इस विद्यालयसे पढ़कर तैयार हुए हैं। वनारसका स्थान संस्कृत विद्याका प्रचार केन्द्र है। यहाँ हिन्दूधर्मा-वलिम्बयोंके द्वारा चलनेवाले संस्कृतके सेकड़ों विद्यालय हैं, अनेकों छोटी मोटी पाठशालाएँ, सरकारी कालेज हैं तथा मालवीयजी द्वारा उद्धाटित हिन्दू यूनिवरसिटी है। ऐसे केन्द्र स्थानमे यह स्याद्वाद विद्यालय अपना वड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पं० कैलाश-चन्द्रजी इसके प्रधाना ध्यापक हैं। यथार्थमे आप विद्यालयके प्राण् हैं। आपके द्वारा ही वह ज्यवस्थितक्ष्पसे चला आ रहा है।

विद्यालयके अधिकारियोंका यह निश्चय हुआ कि ५० वर्ष हो जानेके कारण इस विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महात्सव सम्पन्न कराया जाय । मेरा वनारस पहुँचना संभव नहीं था इसलिये उत्सव का आयोजन मधुवनमे रक्ला गया। मेरा कहना था कि उत्सव विद्यालयके स्थान पर ही शोभा देगा परन्तु सुननेवाला कौन था। उत्सवके आयोजकोका भाव यह था कि श्री सम्मेदशिखरजी जैसे परम पवित्र सिद्ध चेत्रपर मेरा सन्निधान रहते हुए जनता श्रनायास श्रा जायगी। उत्सवके श्रध्यक्ष श्री साहु शान्तिप्रसादजी कलकत्ता थे। श्रापने सपरिवार पधारकर उत्सवको अच्छी तरह सम्पन्न कराया । कलकत्तासे श्री सेठ गजराजजी, श्री वावू छोटेलालजी तथा उनके भाई श्री नन्दलालजी आदि अनेक महानुभाव पधारे। हजारीवाग, कोडरमा, राँची, गिरीडीह ज्यादिसे प्रानेक व्यक्ति सपरिवार श्राये । श्रन्य जनता भी इतनी श्रधिक श्राई कि मधुवनकी तेरापन्थी, बीसपन्थी तथा श्वेताम्वर कोठीकी सव धर्मशालाएँ ठसाठस भर गयीं। ऊपरसे डेरा-तम्बुत्रोंका प्रवन्ध करना पड़ा।

माय वदी १४ संवत् २०१२ को श्री ऋषभ निर्वाण दिवसका

उत्सव मनाया गया जिसमे भगवान् ऋष्मदेवसे सम्वन्ध रखनेवाले भाषण हुए। विद्वानोंसे श्री पं० वंशीधरजी न्यायालंकार इन्होर, पं० फूलचन्द्रजी वनारस, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं० मुन्नालालजी समगौरया सागर श्रादि श्रनेक विद्वान श्राये थे। काशीके सव विद्वान् थे ही। रात्रिमें वर्णीं जयन्तीका श्रायोजन था जिसमे श्रनेक लोगोंने श्रपनी श्रपनी इच्छानुसार श्रद्धाञ्जलियाँ दीं जिन्हें मैंने नत मस्तक होकर संकोचके साथ श्रवण किया। दूसरे दिन स्याद्वाद विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव हुत्रा। विद्यालयका परिचय देते हुए उसके श्रवतकके कार्यकलापोंका निर्देश श्री पं० कैलाशचन्द्रजीने किया। साहुजीने श्रपना भाषण दिया तथा भाषणमें ही विद्यालयको चिरस्थायी करनेकी श्रपील समाजसे कर दी। समाजने हृद्य खोलकर विद्यालयको सहायता दी। लगभग डेढ् दो लाखकी श्राय विद्यालयको हो गई।

एक दिन श्री रमारानीकी अध्यक्तामें महिलासभाका भी अधिवेशन हुआ था जिसमें श्री चन्दावाईजीकी प्रेरणासे महिलासभा को भी अच्छी आमदनी हो गई। जैनसमाजमे दान देनेकी प्रहित नैसर्गिक है। वह देती है और प्रसन्नतासे देती है परन्तु समाजमें एक संघटनका अभाव होनेसे उस दानसे जो लाभ मिलना चाहिये नहीं मिल पाता। समाजमें जहाँ तहाँ मिलकर प्रतिवर्ष लाखों स्पर्योका दान होता है पर वह दान की हुई रकम स्व स्थानोंमें रहनेसे छिन्न भिन्न हो जाती है और उससे समाजको ऊँचा उठाने वाला कोई काम नहीं हो पाता। समाजके सर्व दानको एक प्रमिलाया जाय तो उससे विद्यालय तथा कालेज तो दूर रहो यूनिवर-सिटीका भी संचालन हो सकता है और उसके द्वारा जन मंदित का प्रचार सर्वत्र किया जा सकता है। दानका स्पया एक तब तक नदी हो सकता जव तक कि दाता महानुभाव अपने स्थानमा

मोह नहीं छोड़ देते हैं। श्राज कोई दान देता है तो उसका परिणाम श्रपने ही यहाँ देखना चाहता है। पर यह निश्चित है कि उसकी उतनी छोटी रकमसे कोई वडा काम नहीं चल सकता श्रीर न सर्वत्र उत्तम कोटिके कार्यकर्ता ही हो सकते हैं। देनेवाले महानुभाव जब तक श्रपने हृदयको विशाल कर उदार नहीं बनाते हैं तब तक उक्त कार्य स्वप्नवत् ही जान पड़ते हैं। श्रस्तु,

तीसरे दिन प्रातःकाल साहुजीको 'श्रावक शिरोमिण' की पद्वी दी जानेका प्रस्ताव रक्खा गया। उसके उत्तरमे श्रापने जो भाषण दिया उससे जनताने सममा कि श्राप कितने उज्ज्वल तथा नम्न-निरहंकार व्यक्ति हैं।

उत्सव समाप्त होनेपर मैं प्रातःकाल श्री पार्श्व प्रभुकी वन्टना करनेके लिए गया था। उसी समय किन्हीं लोगोंने परिषद्के द्वारा प्रकाशित हरिजन मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी पुस्तिकार्ये जनतामे वितरण कर दीं। फिर क्या था ? कुछ लोगोंने इसकी खबर उस समय मधुवनमे विद्यमान श्री मुनि महावीरकीर्तिजीको दे दी। खबर पाते ही आपका पारा गरम हो गया और इतना गरम होगया कि श्रापने जनतामे एकदम उत्तेजना फैला दी। जब मैं गिरिराजसे लौटकर २ बजे श्राया तब यहाँका रङ्ग दूसरा ही देखा। तेरापंथी कोठीके सामने महाराज जनताके समन्त उत्तेजनापूर्ण शब्दोंमें अपना श्रमिप्राय प्रकट कर रहे थे। यह दृश्य देखकर मुमे लगा कि मनुष्य किसी वस्तुस्थितिको शान्त भावसे न सोचते हैं श्रौर न सोचनेका प्रयत्न ही करते हैं। मैं चुपकेसे जहाँ महाराज भाषण कर रहे थे पहुँचा श्रौर मैंने लोगोंसे कहा कि भाइयो। मैं तो रात्रिके ४ वजेसे श्री पार्श्व प्रभुकी वन्दनाके लिए गया था। यह पुस्तकें जो वितरण की गई हैं इसकी जानकारी मुक्ते न पहले थी छौर न छव भी है कि पुस्तकें कहाँसे श्राई श्रीर किसने वितरण की ? हरिजनोंके विषयमे

महाराज जो कहें सो आप लोग मानों इसमें मुमें आपित नहीं। आप आगमके ज्ञाता हैं सो आपको वतलावेंगे कि धर्म कान धारण कर सकता है ? श्री समन्तमद्र स्वामीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्जान ओर सम्यक्चारित्रको धर्म कहा है। इनके धारक कौन हो सकते हैं और धर्म धारण करनेके वाद भी धारण करनेवाले जीवोंमें इछ विशेषता होती है या नहीं ? मेरा तो विश्वास है कि जैनागममें सम्यग्दर्शनके धारण करनेकी प्रत्येक संज्ञी पछ्छोन्द्रय पर्याप्तकको छूट है। मनुष्यश्री वात तो दूर रहो तिर्येळ्ळके लिए भी इसका अधिकार है। जब अनन्त संसारसे पार करनेवाला धर्म इसके हात लग गया तब भी वह पापी बना रहा यह वात जैनागममें मेरे देखनेमें नहीं आई। उन्हें आप मन्दिर न आने दो क्योंकि मन्दिर आपके हैं परन्तु सम्यग्दर्शनहूप क्योतिके प्रकट होनेपर भी उनमे पापहूप धन्वनार विद्यमान रहता है यह वात बुद्धिमें नहीं आती।

अनन्तर वातावरण शान्त होगया जिससे रथयात्रा आहि कार्य शान्तिसे सम्पन्न हुए। हम सार्यकाल मधुवनसे ईमरी आगये। मेला भी यथाक्रमसे विघट गया।

# त्राचार्यं नमिसागरजी महाराजका समाधिमरण

श्री श्राचार्य निमसागरजी महाराज महातम्स्री थे। न र ने क्यों श्रापका हमपर श्राविक स्नेह था। जब देहली तथा दर्शनमें श्रापके चातुर्मास हुए थे तब श्राप वरावर हमारे लिये हुमार्गादे भेजते रहते थे। हम ईसरी में थे, श्रापकी श्राप्यं हो। इस श्रापकी समित्र कार्यका हो। इस श्रापकी समित्र वर्णी गणेसश्रसाइके साहिष्यमें हो। इस श्राहरिण समाविमरण वर्णी गणेसश्रसाइके साहिष्यमें हो। इस श्राहरिण

से प्रेरित होकर आप देहलीसे मधुवन तकका लम्वा मार्ग तयकर श्री पार्श्वप्रमुके पादमूलमें पधारे थे। आप निर्द्धन्द्ध-निरीह वृत्तिके साधु थे। संसारके विषम वातावरणसे दूर थे। आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था। ७० वर्षकी आपकी अवस्था थी फिर भी दैनिक चर्यामे रख्नमात्र भी शिथिलता नहीं आने देते थे।

श्री सम्मेद्शिखरजीकी यात्रा कर आप ईसरी आ गए जिससे सवको प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्थाके कारण त्रापका शरीर दुर्वल हो गया तथा उद्रमें व्याधि उत्पन्न हो गई जिससे श्रापका विचार हुत्रा कि यह मनुष्य शरीर संयमका साधक होनेसे रच्नगीय श्रवश्य हैं पर जब रचा करते-करते श्ररचित होनेके सम्मुख हो तब उसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। " यह विचार कर श्रापने १२-१०-१६५६ शुक्रवारको समाधिका नियम ले लिया। श्रापने सव प्रकारके त्राहार और औषधिका त्याग कर केवल छाछ श्रौर जल बहुए करनेका नियम रक्खा। उदासीनाश्रमके सव त्यागी गण श्रापकी वैयावत्यमे निरन्तर निमग्न रहते थे। श्री प्यारेलालजी भगत भी उस समय ईसरीमे ही थे। श्रतः श्राप वैयावृत्यकी पूर्ण देख-रेख रखते थे। इम भी समय समयपर आपको भगवती श्राराधना सुनाते थे। महाराज वड़ी एकात्रतासे अवरण करते थे। महाराजके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए दिल्लीसे श्रनेक लोग पधारे । श्रासःपासके भी श्रनेक महानुभाव श्राये । सेठ गजराजजी गंगवाल भी सकुटुम्ब श्राकर श्रापकी परिचयमि निमग्न थे। महा-राज तेरापन्थी कोठीमें ठहरे थे। मैं श्रापके दर्शनके लिए गया। चलते-चलते मेरी श्वास भर श्राई। यह देख महाराज वोले—श्रापने क्यों कष्ट किया ? श्राप तो हमारे हृदयमे विद्यमान हैं।

श्रनम्तर सवकी सलाहसे उन्हे उदासीनाश्रममे ले श्राये श्रौर सरम्बतीभवनमे ठहरा दिया। इस समय श्रापने श्रपने उपरसे

भुंगी हटवा दी तथा खुले स्थानमे पलाल पर शयन किया। जव श्रन्तिम दो दिन रह गये तव श्रापने छौँछका भी परित्याग कर दिया, केवल जल लेना स्वीकृत रक्खा। कार्तिक वदी ३ सं० २-१३ को १० वजे आपने तीन चुल्छ् जलका आहार लिया। आहारके वाद आपको अधिक दुर्वलताका अनुभव हुआ फिर भी मुखाकृति श्चत्यन्त शान्त थी। श्चापने सवसे कहा कि श्चाप लोग मोजन करें। महाराजकी स्राज्ञा पाकर सव लोग भोजनके लिये चले गये तथा सेवामें जो त्यागी थे उन्हें छोड़ अन्य त्यागी सामायिक करने लगे। इस भी सामायिकमे वैठना ही चाहते थे कि इतनेमें समाचार मिला कि महाराजका स्वास्थ्य एकदम खराव हो रहा है। हम उसी समय उनके पास आये। हमने पूछा कि महाराज ! सिद्ध परमेष्टीका ध्यान है। उन्होंने हूंकार भरा श्रीर उसी समय श्रापके प्राण निकल गये। सबके हृद्य शोकसे भर गये। महाराजके शवको पद्मासनसे विमानमें वैठाकर माममें जुल्स निकाला श्रीर आश्रमके पास ही वगलवाले मैदानमें श्रापका श्रन्तिम संस्वार किया गया। गोला तथा चन्दनका पुष्कल प्रवन्ध श्री गजराज-जी कलकत्तावालोंने पहलेसे कर रक्खा था। रात्रिमे शोकसभा हुई जिसमें महाराजके गुणोंका स्मरण कर उन्हें श्रद्धा जिल्यों दी गई ।

हमारे हृद्यमे विचार श्राया कि जिनका संसार श्रत्यन्त निकट रह जाता है उन्हींका उस प्रकार समाधिमरण होता है। श्रागममें लिखा है कि जिसका सस्यक् प्रकारसे समाधिमरण होता है वह सात श्राठ भवसे श्रधिक संसारमें भ्रमण नहीं करता। भक्त भग-विज्ञिनेन्द्रसे प्रार्थना करता है कि—

दुक्खक्खश्रो कम्मक्खश्रो चमाहिमरणं च वोहिलाहो व। मम होउ जगदवान्धव! तव जिल्वा चरणकरलेए॥

हे भगवन् ! हे जगत्के वन्धु ! श्रापके चरणोंकी शरण पाकर मेरे दु:खोंका च्रय हो इस प्रकार कोई मक्त भगवान्से प्रार्थना करता है। भगवान्की श्रोरसे उत्तर मिलता है कि दुःखोका चय तवतक नहीं हो सकता जवतक कि कर्मीका चय न हो जाय। यह सुन भक्त. भगवान्से कहता है कि भगवन् । कर्मोंका भी चय हो । भगवान्की श्रोरसे पुनः उत्तर मिलता है कि कमींका चय तबतक नहीं हो सकता जवतक कि समाधिमरण न हो। कायरोंकी तरह रोते चीखते हुए जो मरण करते हैं वे कर्मोंका चय कदापि नहीं कर सकते। यह सुन भक्त भगवान्से पुनः प्रार्थना करता है कि भगवन् ! समाधिमरएकी भी मुक्ते प्राप्त हो। भगवान्की श्रोरसे पुनः श्रावाज श्राती है कि वोधि - रत्नत्रयकी प्राप्तिके विना समाधिमरणका होना दुर्लभ है। तब फिर भक्त प्रार्थना करता है कि सहाराज ! बोधिका लाभ भी मुम्ते हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्जान श्रीर सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं कर लेता तब-तक इसके दु:खोंका चय नहीं हो सकता। जिस प्रकार हिमके कुण्डमें श्रवगाहन करनेसे तत्काल शीतलताका श्रनुभव होने लगता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शनादिके होनेपर तत्काल सुखका श्रानुभव होने लगता है। श्रन्यकी बात जाने दो, नारकी जीव भी सम्यग्दर्शन के होनेपर तत्काल सुखका श्रमुभव करने लगता है। विपरीताभि-निवेश दूर होना ही सम्यग्दर्शन हैं। जहाँ विपरीतभाव गया वहाँ सुखकी बात क्या पूछना ?

मैंने श्राद्धा जिले भाषणमे लोगोंसे यही कहा कि महाराज तो श्रात्मक त्याण कर स्वर्गमे क त्यासी देव होगये। श्रव उनके प्रति शोक करनेसे क्या लाभ हैं ? शोक तो वहाँ होना चाहिये जहाँ श्रपना स्नेहभाजन व्यक्ति दुखको प्राप्त हो। श्रव तो हम स्वका पुरुषार्थ इस प्रकारका होना चाहिये कि जिससे जन्म-मरणकी यातनाओंसे वचकर हमारा श्रात्मा शाश्वत सुखका पात्र होसके।

## सागर विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव

सागरकी सत्तर्कसुधातरिङ्गणी पाठशाला पहले सत्तर्क विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध हुई. अव गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। उस संस्थाने वुन्देलखण्ड प्रान्तमें काफी कार्य किया है। ५० वर्ष पूर्व जहाँ मन्दिरोंमे पूजा और विधान वाँचनेवाले विद्वान नहीं सिलते थे वहाँ अव धवल-महाधवल जैसे प्रन्थराजोंका अनुवाद और प्रवचन करनेवाले विद्वान विद्यमान हैं। जहाँ संस्कृतके प्रन्थ वांचनेमें लोग दूसरेका मुख देखते थे वहाँ आज संस्कृतमे गद्य पद्य रचना करनेवाले विद्वान तैयार हो गये हैं।

सारार बुन्देलखण्डका केन्द्र स्थान है अतः यहाँपर विद्याके एक विशाल आयतनकी आवश्यकता सदा अनुभवमे आती रहनी थी। सागरके उत्साही लोगोंने अपने यहाँ एक छोटीसी पाठशाला खोली थी वह बृद्धि करते करते आज विशाल विद्यालयका रूप धारण कर समाजमें कार्य कर रही है। किसी समय इसमे ५ विद्यार्थी थे पर अव इसमें २०० छात्र भोजन पाते हुए विद्याच्ययन करते हैं। एक पहाड़ीकी उपत्यकामें सुन्दर और स्वच्छ भवन विद्यालयका वना है उसीमे संस्कृत विभाग तथा हाईस्कृल इस प्रकार दोनों विभाग अपना कार्य संचालन करते हैं। संस्कृतमें प्रारम्भसे णाम्त्री आचार्य तक तथा हाईस्कृतमें एन्ट्रेस तक पढ़ाई होती है।

समय जाते देर नहीं लगती। इस संस्थाको भी कार्य करते हुए वहुत वर्ष हो गये थे इसलिए इसके आयोजकोंने भी स्वणंजयन्ती

इसी वर्ष कोडरमामे पञ्चकल्याग थे। लोग हमे भी ले गये।

मनानेका श्रायोजन किया। वनारस विद्यालयके उत्सवके समय श्री समगौरयाजीने कहा था कि इस वर्ष बड़े भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती हो रही है श्रौर श्रागामी वर्ष छोटे भैयाकी स्वर्ण-जयन्ती मनाई जायगी। छोटे भैयाके मायने सागरका विद्यालय है। सुनकर जनताकी उत्सकता वढ़ी।

अगली वर्ष सागरसे पं॰ पन्नालालजी और समगौरयाजी हमारे पास आकर कहने लगे कि इस वर्ष सागर विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती सनाना है इसलिए आप सागर पधारनेकी कृपा करें। मैं सागर जाकर वड़ी कठिनाईसे वापिस आ पाया था तथा शरीरकी शक्ति भी पहलेकी अपेचा अधिक हासको प्राप्त होगई थी इसलिए मैंने सागर जाना स्वीकृत नहीं किया। तब उन्होंने दूसरा पच्च रक्खा तो यहींपर अर्थात् मधुवनमें उत्सव रखनेकी स्वीकृति दीजिये। मैं तटस्थ रह गया और उक्त दोनो विद्वान् कलकत्ता जाकर मधुवनमें स्वर्णजयन्ती महोत्सव करनेकी स्वीकृति ले आये।

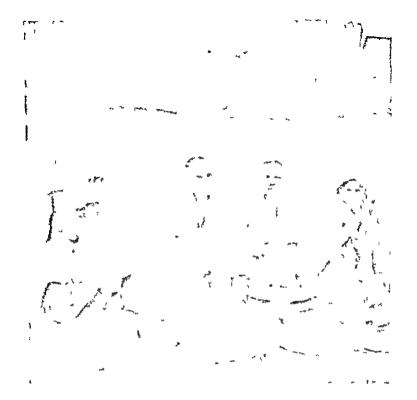
इसी बीच श्री कानजी स्वामी भी श्री गिरिराजकी वन्दनार्थ ससंव पधार रहे थे जिससे लोगोंम उक्त अवसर पर पहुँचनेकी उत्कण्ठा बढ़ रही थी। इसी वर्ष कोडरमामे पञ्चकल्याएक थे। लोग हमें भी ले गये। वहाँ भी सागर विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती महो-त्सवका काफी प्रचार हो गया। फाल्गुन सुदी १२-१३ सं० २०१३ उत्सवके दिन निश्चित किये गये। इस उत्सवमें बहुत जनता एकत्रित हुई। सब धर्मशालाएँ भर चुकीं और उसके बाद सैकड़ों डेरे तम्बुओंका प्रबन्ध कमेटीको करना पड़ा। चारों आरकी जनता का आगमन हुआ। उसी समय यहाँ जैनसिद्धान्तसंरक्षिणी सभाका अधिवेशन भी था। तेरापन्थीकोठीमे इसका पंडाल लगा था और श्री कानजी स्वामीके प्रवचनों तथा सागर विद्यालयके उत्सवका संयुक्त पंडाल बीसपंथी कोठीमे लगा था। इन आयो-

जनोंमें वाहरसे श्री पं॰ माणिकचन्द्जी न्यायाचार्य, पं॰ वन्शीधरजी न्यायालंकार, पं॰मक्खनलालजी, पं॰ लालारामजी, पं॰ फूलचन्द्रजी, पं॰ कैलाशचन्द्रजी, पं॰ इन्द्रलालजी ख्रादि अनेक विद्वान् आये थे। सागरके सव विद्वान् तथा छात्रवर्ग थे ही।

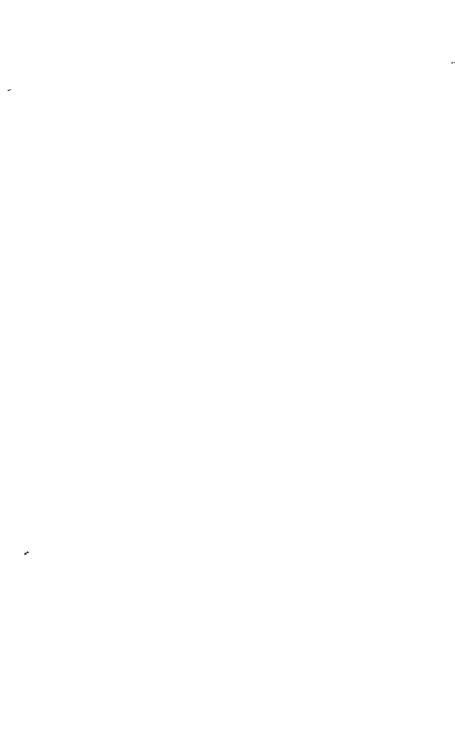
सागर विद्यालयवालोंने उत्सवका ऋष्यक्ष मुक्ते वना दिया। उत्सवके प्रारम्भमे विद्यालयमे अवतक पढ़कर निकलनेवाले स्नातकों (छात्रों) की श्रोरसे ५२ स्वर्णमुद्राएँ विद्यालयकी सहायताके लिए हमारे सामने रखी गईं। विद्यालयके ५२ वर्षका कार्यपरिचय जनताके समच उसके मन्त्री श्री नाथूराम गोदरेने रक्खा। पं० पूलचन्द्रजीने विद्यालयके लिए अपील की जिससे ५०-६० हजार रुपयेके वचन मिल गये। फुटकर सहायता भी लोगोंने बहुत दी। उत्सवका कार्यक्रम दो दिन चलता रहा श्रीर जनता वड़ी प्रसन्नतासे इसमे भाग लेती रही।

श्री कानजी स्वामी फागुन सुदी ५ को संघ सहित मधुवन श्रा गये थे। जितने दिन रहे प्रायः हमसे मिलते रहे। प्रसन्नमुख तथा विचारक व्यक्ति हैं। श्राप प्रारम्भमें स्थानकवासी श्वेतान्वर थे परन्तु श्री कुन्दकुन्दस्वामीके प्रन्थोंका श्रवलोकन करनेसे श्रापकी दिगम्बर धर्मकी श्रोर हढ़ श्रद्धा हो गई जिससे श्रापने स्थानकवासी श्वेताम्बर धर्म छोड़कर दिगम्बर धर्म धारण कर लिया। न केवल आपने ही किन्तु श्रपने उपदेशसे सौराष्ट्र तथा गुजरात प्रान्तके हजारों व्यक्तियोंको भी दिगम्बर जैन धर्ममे दीचित किया है। श्रापकी प्रेरणासे सोनगढ़ तथा उस प्रान्त मे अनेक जगह दिगम्बर जैन मन्दिरोंका निर्माण हुआ है।

आपके प्रवचन प्रायः निश्चय धर्मकी प्रमुखता लेकर होते हैं तथा आपका जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, मैंने तो आनुपृशिंसे देखा नहीं पर लोग कहते हैं कि निश्चयधर्मकी प्रधानताको लिये



दानवीर सेट भागचन्द्रजी ( हागरगत ) स एवन में हापनी नर्मनिया पत्नी ती नर्देश गर्देकी सीर ती पश् नियासानी जात्वारे सा म्पूब्य प्रसाहित में स्थास के स्टारिंग स्थापने दी पश्चित हो सीर्या ।



हुए हैं। इस स्थितिमे श्रभी नहीं तो श्रागे चलकर व्यवहार धर्मसे लोगोंकी उपेन्ना हो जाना इष्ट नहीं है श्रतः दोनों नयों पर दृष्टि डालते हुए श्री कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, श्रकलंक श्रादि श्राचार्योंके समान पदार्थका निरूपण किया जाय तो जैनश्रुतकी परम्परा श्रज्ञण्ण बनी रहे। विद्वान् लोग यही चर्चा श्रापसे करना चाहते थे पर कार्यक्रमोंकी बहुलताके कारण मधुवनमे वह श्रवसर नहीं मिल सका।

उत्सवमे आपके यात्रा संघकी ओरसे विद्यालयको १०००) समर्पित किया गया। उत्सवके बाद आपका संघ कलकत्ताकी श्रोर प्रस्थान कर गया। मेला विघट गया और हम भी ईसरी वापिस आ गये।

#### श्री ज्ञु० संभवसागरजीका समाधिमरण

श्री ज्ञुल्लक संभवसागरजी वारासिवनीके रहनेवाले थे। प्रकृतिके वहुत ही शान्त तथा सरल थे। जबसे ज्ञुहक दीचा त्रापने प्रहण की तबसे वरावर हमारे साथ रहे। संसारके चक्रसे त्राप सदा दूर रहते थे तथा मुक्तसे भी निरन्तर यही प्रेरणा करते रहते थे, आप इन सब मंमटोंसे दूर रहकर आत्मिहत करें। एकवार शाहपुरमें में सामायिक कर रहा था और मेरे पीछे त्राप सामायिक मे वैठे थे। किसी कारण मेरे खेसमें आग लग गई, मुक्ते इसका पता नहीं था और होता भी तो सामायिक मेसे कैसे उठता १ परन्तु त्रापकी हिष्ठ त्रचानक ही उस त्राग पर पड़ गई और त्रापने मटसे उठकर हमारा जलता हुआ खेस निकाल कर अलग कर दिया। उस दिन उन्होंने एक असंभाव्य घटनासे हमारी रक्षा की।

श्रापका स्वास्थ्य धीरे धीरे खराव होता गया। जब श्रापकी श्रायुके कुछ दिन ही शेष रह गये तब वोले महाराजजी। श्रापम मेरी श्रगाध श्रद्धा है, मैं बिशेष पढ़ा लिखा नहीं हूँ श्रोर न शास्त्रका विशेष ज्ञान ही मुम्मे हैं परन्तु गृहवाससे मेरे परिणाम विरक्त हो गये। पहलेसे ब्रह्मचारीके वेषमें रहा श्रोर श्रव चुल्लक दीजा धारण की हैं। मेरा श्रामिप्राय सदा यह रहा है कि श्राप विशिष्ट ज्ञानी तथा श्रम्तरात्माके पारखी हैं, इसिलये श्रापके निकट रहनेसे हमारा समाधिमरण होगा। मेरा स्वास्थ्य श्रव श्रच्छा होनेकी श्राशा नहीं है इसिलये श्राप जिस तरह वने उस तरह हमारा सुधार करें। हमारा उपकार अपकार श्राप पर निर्मर हैं। यह कहकर श्रापने सल्लेखना धारण करली। श्राशमके सब ब्रह्मचारी श्रापकी सेवामें लीन हो गये। मैं भी यथा समय उन्हें संवोधता रहता था। मेरा तो उनसे यही कहना था कि इस समय श्रिधक चिन्तनकी श्रावश्यकता नहीं। इस समय तो श्राप इतना ही चिन्तन करो—

एगो में सासदो श्रप्पा गाग्यदंसग्लक्खगो। सेसा में वाहिरा भावा सब्वे संजोगलक्खगा॥

कुन्दकुन्द स्त्रामीके वचन हैं कि ज्ञान-दर्शन तज्ञण्वाला एक आत्मा ही मेरा शाश्वत द्रव्य है। अन्य, कर्म संयोगसे होनेत्राले समस्त भाव वाह्य भाव हैं। उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। शरीरादि पर पदार्थोंसे भिन्न हमारी आत्मा है। उसे कोई भी नष्ट करनेवाला नहीं है।

यहाँ पर्यूषणके वाद आसोज वदी ४ को लोग वर्णी जयन्तीके समारोहका आयोजन कर रहे थे वहाँ श्री संभवसागरजीका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिरता जाता था। मैंने सब जगह नृचना करवा दी कि इस वर्ष जयन्तीका समारोह नहीं होगा, क्योंकि हमारा एक सहयोगी सन्त समाधि पर आरूद है। यद्यपि जयन्ती उत्सव

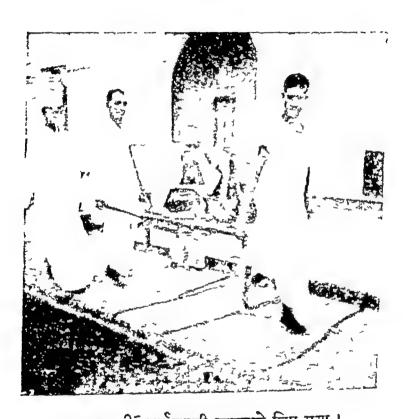
भागत कर दिया था फिर भी आस-पासके लोगोंकी अच्छी संख्या आकर यहाँ उपस्थित हो गई। कुँतार बदी ३ वीर निर्वाण २४८३ आपकी वर्तमान पर्यायका अन्तिम दिन था। दुर्वल होने पर भी आपकी चेतना यथापूर्व थी। आप वोज नहीं सकते थे फिर भी यथार्थ तत्त्व आपके ज्ञानमें समाया हुआ था। आज आपने अन्न-जलका सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने कहा कि सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होंने हूँकार भरा। तदनन्तर मैंने कहा कि आतमा पर पदार्थोंसे भिन्न जुदा पदार्थ अनुभवमें आता है या नहीं १ पुनः उन्होंने हूँकार भरा। तदनन्तर नमस्कार मन्त्रका अवण करते-करते आपके प्राण् शरीरसे वहिर्गत हो गये। सवको दु ख हुआ। पश्चात् आपको आर आपके परिवारको 'शान्तिलाभ हो' ऐसी भगवानसे प्रार्थना की गई। सब लोगोंके मुखसे आपकी प्रशंसामें यही शब्द निकलते थे कि बहुत ही शान्त थे।

#### हजारीवागका ग्रीष्मकाल

हजारीबागका जलवायु उत्तम है। ग्रीप्मकी वाधा भी वहाँ कम होती है इसलिये अन्तरङ्गकी प्रेरणा सममो या वहाँ के लोगों के आग्रहकी प्रवलता : बुझ भी कारण सममो, मैं वहाँ चला गया। बसंतीलालजीने अपने उद्यानमें ठहराया। सुरम्य स्थान है। यहाँ आकर गरमीके प्रकोपसे तो वच गया परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्वलतासे जैसी शान्ति मिल्लनी चाहिये नहीं मिल सकी। सागरसे तार आये कि यहाँ सिंघई कुन्दनलालजीका स्वास्थ्य अत्यन्त खराव

है, इसलिये उनकी समाधिके लिये त्राप सागर पवारनेकी कृपा करें। सिं॰ कुन्द्नलालजी अन्तरङ्गके निर्मल एवं परोपकारी जीव हैं। उनके संपर्कमें हमारा वहुत समय चीता है, इसलिये मनमें विकल्प उत्पन्न हुआ कि यदि हमारे द्वारा इनके परिणामोका सुधार होता है तो पहुँचनेमे क्या हानि है। तारके वाद ही सागरसे कुछ व्यक्ति भी लेनेके लिए आ गये। जब इस वातका यहाँके समाजको पता चला तो सवमें व्ययता फैल गई। लोग यह कहने लगे कि आपकी अत्यन्त घृद्ध त्र्यवस्था है इसलिए श्री पार्श्व प्रमुकी शरण छोड़कर श्रन्यत्र जाना अच्छा नहीं है। साथ ही यह भी कहने लगे कि आपने इसी प्रान्तमें रहनेका नियम किया था इसलिए इस प्रान्तसे वाहर जाना उचित नहीं है। हजारीवाग ही नहीं कई स्थानोंके भाई एकत्रित हो गये। मैं दोनों श्रोरसे संकोचमे पड़ गया। इधर सागरके महाशय श्रागये इसलिये उनका संकोच श्रौर उधर इस प्रान्तके लोगोका संकोच । हजारीवागसे चलकर ईसरी आये तो यहाँ भी वहुतसे लोगोंका जमाव देखा । वात यही थी, सवका यही कहना था कि आप इस प्रान्तको छोड़कर श्रन्यत्र न जावें। जानेमे नियमकी अवहेलना होती है परन्तु मेरा कहना था कि समाधिके लिए जानेका विचार है। यदि मेरे द्वारा एक आत्माका सुधार होता है तो क्या बुरा है ? लोगोंकी युक्ति यह थी कि यदि सिंघईजी कोई व्रती जुल्लक या मुनि होते तो जाना संभव हो सकता था। श्रन्तरङ्गमे विचारींका संघर्ष चल रहा था कि सागरसे दूसरा समाचार आ गया कि सिंघईजीका स्वास्थ्य सुधर रहा है। समाचार जानकर हृद्यकी व्ययता कम हुई। मनमें यह लगा कि मेरा हृदय बहुत निर्वल है। जरा जरा सी वार्तोंको लेकर उलमनमें पड़ जाता हूँ इसे हृदयकी दुवलता न कहा जाय तो क्या कहा जाय। स्वस्यताके तारने हमारी उलमन समाप्त कर दी श्रीर मैंने सागरवालोंसे कह दिया कि





प्रातःकाल श्री, पार्श्वप्रमुकी वन्द्रनाके लिए गया । ढोलीमे जाना पड़ा । [ पृ० ४५५ ]

हमारा सागर पहुँचना शक्य नहीं है। इधरके लोगोंको इससे संतोष हुआ पर सागरके लोग निराश होकर चले गये। संसार है, सबका असम्र रखनेकी चमता सबमें नहीं है। सूर्योदयसे कमल विकसित होता है पर उसी तालाबमे कमलके पास लगा हुआ कुमुद बंद हो जाता है। इसे क्या कहा जाय १ पदार्थका परिणमन विचित्र रूप है। हर्ष और विपादका अनुभव लोग अपनी अपनी कषायके अनुसार ही करते हैं।

### साहुजीकी दान-घोषणा

वृद्धावस्थाके कारण शरीरकी जर्जरता तो वढ़ रही थी। उस पर भी यदा कदा वातका प्रकोप व्ययताको वढ़ा देता था इसलिए एक दिन निश्चय किया कि राजगृही रहा जाय। वहाँका वायुमण्डल शरीरके श्रनुकूल वैठ सकता है। श्रीराजकृष्णजीने इसके लिए एक विशिष्ट प्रकारकी कुर्सीका निर्माण कराया जिसमे पहिये लगाये गये थे श्रीर एक श्रादमी जिसे श्रच्छी तरह चला सकता था। ईसरीसे जाते समय मनमें विकल्प श्राया कि पार्श्व प्रभुके पादमूलसे हटकर जा रहा हूँ। फिर लौटकर श्रा सका या नहीं, इसलिए एक वार गिरिराजपर जाकर उनके दर्शन श्रवश्य करना चाहिये। निश्चयानुसार मधुवनके लिए प्रस्थान कर दिया।

प्रात काल श्रीपार्श्व प्रभुकी वन्दनाके लिये गया। डोलीमे जाना पड़ा। मन ही मन श्रीदारिक शरीरकी दशापर खेद उत्पन्न हो रहा था। एक समय था जब इसी शरीरसे पैदल यात्रा कर पार्श्वप्रभुके दर्शन किये थे पर धव उसे वाहन करनेके लिये दो श्रादमियोंकी श्रावश्यकता पड़ती हैं। सीधे पार्श्वनाथ भगवान्की टोंकपर ही गये थे इस लिये श्राठ बजते वजते वहाँ पहुँच गये। पार्श्वभुके दर्शन कर हृद्यमे श्रपार शान्ति उत्पन्न हुई। एकबार स्वर्गीय वाईजीके साथ गिरिराजकी यात्रा की थी तब पार्श्व प्रमुके पादमूलमें उन्होंने श्रपना जीवनचक्र सुनाते हुये प्रतिक्रमण कर नाना व्रत धारण किये थे। वह हर्य सहसा श्रांखोंके सामने श्रागया श्रोर वाईजीका उज्जल रूप सामने दृष्टिगत होने लगा। साथके लोगोंसे तत्त्वचर्चा करता हुश्रा वाहर श्राया। चारों श्रोर हरे भरे वृत्तों पर सूर्यकी सुनहली धूप पड़ रही थी। फिर भी शीतल वायुके मकोरे शरीरमे सिहरन पैदा कर रहे थे। मध्यान्हकी सामायिक वीचमे कर मधुवन श्रा गये। श्राहार श्रादिसे निवृत्त हो संतोपका श्रवभव किया।

मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। शीतकी प्रकोपतासे पानों में सूजन आगई और वातका दद भी अधिक वढ़ गया। इसलिए राजगृही जाना किन हो गया। गिरीडीहके महानुभानों ने आग्रह किया कि अभी आप गिरीडीह चलें, वहाँ हम उपचार करेंगे। अच्छा होनेपर आप राजगृही जानें। हम गिरीडीह चले गये। लोगोंने वहुत सम्मानसे ठहराया और नाना उपचार किये। स्वास्थ्यकी खराबीके समाचार जहाँ तहाँ पहुँच गये जिससे अनेक लोग गिरीडीह पहुँचे। चुल्लक मनोहरलालजी भी आ पहुँचे। आपके प्रवचनोंसे जनताको लाभ मिलने लगा। श्री साहु शान्तिप्रमावजी भी आये। आप प्रकृतिसे मद्र एवं उदार चेता हैं। आपने एक दिन कहा कि महाराज जी! में सागर विद्यालयकी जयन्तीके समय सम्मेद्शिखरजीमें नहीं आ पाया था सो अब आज्ञा कीजिये। मैंने कहा कि में क्या आचा करूँ ९ उस प्रान्तमें वह विद्यालय जेन समाजके उत्थानमे बहुत भारी काम कर रहा है। बना रहे यही हमारी भावना है। समीपमें वैठे कुछ लोगोंने कह दिया कि वहाँ



पर श्रव उसे ( शरीरको ) वाहन करनेके लिए दो श्रादमियोंकी श्रावश्यकता पड़ती है ।

पांच हजार स्पयेका वार्षिक घाटा रहता है। सुनकर उन्होंने कहा कि हम सदाके लिए इसकी पूर्ति कर देंगे। श्रनन्तर बनारस विद्यालयके भवन गिर जानेकी बात श्राई तो वोले कि हम सन्मित निकेतनमें इसके लिये दूसरा भवन बनवा देंगे। यह सब कह चुकनेके बाद उन्होंने श्राप्रह किया कि श्रापका शरीर श्रत्यन्त जर्जर है। न जाने कव क्या हो जाय ? इसलिये श्राप सम्मेदशिखर जीसे दूर न जावें। गिरीहीह, ईसरी तथा इसीके श्रास पास रहे तो उत्तम हो। मैंने कहा—श्रच्छा है।

राजगृही जाना स्थिगत हो गया तथा कुछ स्वस्थ होने पर ईसरी आ गया। ईसरीमें दिनचर्या पूर्ववत् चलने लगी।



'स्वतन्त्रता ही संसार वल्लरीकी सत्ताको समूल नाश करनेवाली स्त्रसिधारा है श्रौर पराधीनता ही संसारकी जननी है।'

'ईश्वर अन्य कोई नहीं। आत्मा ही सर्व शक्तिमान् है। यही संसारमे अपने पुरुपार्थके द्वारा रङ्क्षसे इतना समर्थ हो जाता है कि संसारको इसके अनुकूल वनते देर नहीं लगती।'

'यदि आ्रात्मकल्याणकी अभिलाषा है तो परकी श्रमिलाषा त्यागो।'

'कल्याणका मार्ग निश्चिन्त दशामें है। जन श्रात्मा स्वतन्त्र द्रव्य है तव उसे परतन्त्र वनाना ही वन्धनका कारण है।'

'कल्याणका मार्ग अति सुलभ है परन्तु हृद्यमें कठोरता नहीं

होनी चाहिये।'

'इस संसारमें जो शान्तिसे जीवन विताना चाहते हैं उन्हें पर की चिन्ता त्यागना चाहिये तथा स्वयंका इतना स्वच्छ आचरण करना चाहिये कि जिससे परको कष्ट न हो।'

'किसीको वह उपदेश नहीं देना चाहिये जिसे तुम स्वयं

करनेमें असमर्थ हो।'

'मनको कायू करना कठिन नहीं, क्योंकि वह स्वयं पराधीन है। वह तो श्रव्नके सदृश है। सवार उसे चाहे जहां ले जा सकता है।'

'समयका सदुपयोग करो। पुस्तकोंके अपर ही विश्वास मत

करो । अन्तःकरण्से भी तत्त्वको देखो ।'

'परकी आशा त्यागो। परावलम्वनसे कभी किसीका कल्याण

नहीं हुआ।'

'निरन्तर यही भावना रक्खो कि स्वप्नमें भी मोहके श्राधीन न होना पड़े। जो श्रात्मा मोहके श्राधीन रहता है वह कदापि सुख का पात्र नहीं हो सकता।' 'मोह क्या है <sup>१</sup> यह यदि ज्ञानमे आ जावे तो निर्मोह होना कुछ कठिन नहीं।'

'आहारत्यागका नाम उपवास नहीं किन्तु आहारसम्बन्धी आशाका त्याग ही उपवास है।'

'जो कार्य करना चाहते हो प्रथम उसके करनेका दृढ़ संकल्प करो श्रमन्तर उसके कारणोंका संग्रह करो। जो वाधक कारण हों उनका परित्याग करो।'

'वहुत मत वोलो । वोलना ही फंसनेका कारण है । पन्नी बोलने से जालमें फंसता है ।'

'उपयोगकी स्वच्छता ही अहिसा है—रागादि परिणामोंकीः अनुत्पत्ति ही अहिंसा है।'

'शान्तिके पाठसे शान्ति नहीं किन्तु श्रशान्तिके कारण दूर करनेसे शान्ति प्राप्त होती है।'

'बाह्य वेषसे परकी बख्नना करनेवाला स्वयं आत्माको दुःखके सागरम डालता है। जो ईंधन परको दग्ध करनेके अभिप्रायसे अग्निका समागम करता है वह स्वयं भस्म हो जाता है।'

'आत्माका परिचय होना उतना कठिन नहीं जितना आत्माको जानकर आत्मनिष्ठ होना कठिन है।'

'यदि अशान्तिका साचात् अनुभव करना है तो समाजके कार्योंमे अप्रेसर बन जाओ।'

'यदि हम चाहे तो प्रत्येक अवस्थामें सुखका अनुभव कर सकते हैं । सुख कोई वाह्य वस्तु नहीं। आत्माकी वह परिग्रित है जहां पर आत्मा आकुलताके कारणोंसे अपनेको रिचत रखती है।

'स्वाधीनता कहो या यह कहो परके अवलम्बनका त्याग। जो मानव इस संकल्प-विकल्पसे जायमान विविध प्रकारकी वेदनात्रोंका श्रभाव करना चाहते हैं उन्हे उचित है कि पर पदार्थों का श्रपनाना त्यागें।

'प्रशंसाकी इच्छासे कार्य आरम्भ करना आत्माको पतित चनानेकी कला है।'

'अपनी सुध भूलकर यह आतमा दु:खका पात्र वना। गृहस्थों के जालमे आकर जैसे चुगके लोभसे चिड़ियां फंस जाती हैं वैसे ही त्यागी वर्ग मोह-जालमे फंस जाता है।'

'श्रात्माराम श्रकेला श्राया श्रीर श्रकेला ही जावेगा। कोई भी इसका साथी नहीं। श्रन्यकी क्या कथा, शरीर भी सुख-दुःख भोगनेमे साथी नहीं।'

'शुद्ध हृदयकी भावना नियमसे फलीभूत होती है। निर्माय [ मायारहित ] ही कार्य सफल होता है।'

'पर का भय मत करो। पर को अपनाना छोड़ो। परको अपनाना ही राग-द्वेपमें निमित्त है।'

'भयसे व्यवहार करना श्रात्माकी वक्चना है। मोश्रमार्गका सुगमोपाय श्रपनी श्रहम्बुद्धि त्यागो। मै कौन हूँ ? इसे जानो। इसे जानना कुछ कठिन नहीं। जिसमे यह प्रश्न हो रहा है वहीं तो तुम हो।'

'त्रात्मज्ञान होना कठिन नहीं किन्तु परसे ममता भाव त्यागना त्राति कठिन है।'

'सुख—शान्तिका लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेश्वकी देन हैं।'

'शान्त मनुष्य वह हो सकता है जो अपनी प्रशंसाको नहीं चाहता।'

'परकी समालोचना न करो श्रौर न सुनो।'

'धन अधिक संग्रह करना चोरी है, इसलिये कि तुमने श्रन्यका स्वत्व हरण कर लिया।'

'राग द्वेष घटानेसे घटता है किन्तु उसके प्राक् मोहका नाश करो। मोहके नशामे आत्मा उन्मत्त हो जाता है।'

'यदि शान्ति चाहते हो तो स्थिर चित्त रहो। व्ययता ही संसार की दादी है। यदि संसारमे रुलनेकी इच्छा है तो इस दादीके पुत्रसे स्तेह करो।'

'यदि परोपकार करनेकी भावना है तो उसके पहले आत्माको पवित्र वनानेका प्रयत्न करो।'

,परोपकारकी भावना उन्होंके होती है जो मोही हैं। जिनकी सत्तासे मोह चला गया वे परको पर समकते हैं तथा श्रात्मीय वस्तुमें जो राग है उसे दूर करनेका प्रयास करते हैं।'

'ज्ञानार्जन करना उत्तम है किन्तु ज्ञानार्जनके वाद यदि आत्म-हितमे दृष्टि न गई तव जैसा धनार्जन वैसा ज्ञानार्जन।'

'मनुष्य वही है जिसने मानवता पर विश्वास किया।'

'लोभ पापका वाप है। इसके वशीभूत होकर मनुष्य जो जो अनर्थ करते हैं वह किसीसे गुप्त नहीं।'

'अपने लच्यसे च्युत होनेवाले मनुष्यके कार्य प्रायः निष्कल रहते हैं।'

'जितना ऋधिक संग्रह करोगे उतना ही ऋधिक व्यप्र होगे।'

जो सुख चाहत स्रातमा तज दो स्रपनी भूल।
परके तजनेसे कहीं मिटे न निजकी श्रल ॥
जो स्रानन्द स्वभावमय ज्ञानपूर्ण स्रविकार।
मोहराजके जालमें सहता दुख स्रपार॥